कहानी साहित्य में

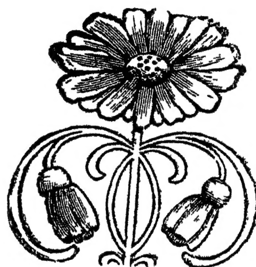
महिलाओं की देन

साहित्यरत्न बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक'

प्रकाशक
ग्रैंड बुक डिपो
जीरोरोड, इलाहाबाद

१९५५ ई०] [मूल्य ३।)

प्रकाशक
कुंवर बहादुर सक्सेना
संचालक
ग्रैंड बुक डिपो, प्रयाग



मुद्रक
प्रभात प्रेस
इलाहाबाद

विषय सूची



प्राक्कथन

आधुनिक कहानी-कला हमने योरप से ली है। इसका विकास उपन्यास की अपेक्षा ज़रा देर से हुआ। कहानी-कला की ओर सर्व-प्रथम प्रेरणा हमको बंगला के कहानी-साहित्य के हिन्दी अनुवादों से मिली ; साथ ही हमारे उच्च शिक्षा-प्राप्त नवयुवकों ने अंग्रेजी साहित्य मे कहानियों का अध्ययन कर इस ओर डग बढ़ाया। आधुनिक उपन्यास, कहानी, नाटक तथा काव्य आदि सभी क्षेत्रों मे बंगला साहित्य अपने को यूरोपीय ढाँचे में ढालने में हिन्दी साहित्य का अग्रज रहा। इसका कारण बंगाल प्रान्त पर अंग्रेजों का उत्तरी भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पहले ही अधिकार तथा आधुनिक शिक्षा-प्रसार था

एक ओर बंगला से अनूदित कहानियाँ हिन्दी की लब्ध-प्रतिष्ठ पत्र-पत्रिकाओं 'सरस्वती', 'विशाल भारत', 'माधुरी', 'सुधा' और 'विश्वमित्र' तथा 'हंस' आदि मे प्रकाशित होने लगीं, दूसरी ओर हमारे साहित्यकार उन्हीं के आधार पर शैली, चरित्र-चित्रण आदि का निर्माण करते हुए मौलिक कहानियो की रचना की ओर अग्रसर हुए ; किन्तु सर्व-प्रथम इस प्रयत्न मे विशेष सफलता न मिली। स्व० पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी की 'उसने कहा था' के प्रकाशित होने के बाद काफ़ी समय तक सफल कहानियों की रचना कम संख्या में हुई। किन्तु बाबू प्रेमचन्द्र जी के पदार्पण से यह त्रुटि दूर हो गई और कहानी-साहित्य अपने श्रेष्ठ स्वरूप में हमारे समक्ष आने में सफल हुआ। इसी समय के लगभग बाबू जयशंकर प्रसाद, सुदर्शन, कौशिक और बाद में पं० विनोद शंकर व्यास, उग्र जी, श्री भगवतीचरण वर्मा, निराला, अज्ञेय, जैनेन्द्र, यशपाल, पं० भगवती प्रसाद बाजपेयी आदि महानुभाव मैदान में आये।

अति आधुनिक युगीन मनोवैज्ञानिकता तथा प्रगतिवादिता के प्रादुर्भाव के पूर्व कहानी-क्षेत्र पर स्व०बाबू प्रेमचन्द्र का स्पृहणीय प्रभाव रहा। चरित्र-चित्रण. शैली, वार्तालाप, कथानक, भाषा, उद्देश्य आदि जो उनकी कहानियों मे मिलते हैं, वे ही हमे अन्यत्र दिखाई पड़ते हैं। यह बात अवश्य है कि विभिन्न श्रेष्ठ कहानीकारो में अपनी भी कुछ प्रमुख विशेषतायें आ ही गई हैं, जैसे प्रसाद जी की कहानियों की भाषा अत्यंत साहित्यिक और काव्यात्मक है किन्तु उनका वातावरण कुछ विचित्रता अथवा असाधारणता लिये हुए है; जिसमें कहीं-कहीं कुछ सस्ती या अव्यावहारिक भावुकता उनकी कृतियों के मूल्य-ह्रास का कारण बन जाती है। किन्तु प्रेमचन्द्र जी का चरित्र-चित्रण, मानव-दुख-सुख-प्राधान्य, हास्य-व्यंग्य, वार्तालाप तथा उद्देश्य आदि प्रायः सर्वत्र मिल जाते है। प्रेमचन्द्रजी का गल्प-साहित्य भारत की आत्मा तथा वाह्य-आकार, राष्ट्रीय-संघर्षों, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि समस्याओं का वास्तविक स्वरूप हमारे सामने उपस्थित करता है। वास्तव में उनकी शैली का अब भी काफी बोल-बाला है।

योरप में स्त्री-स्वातन्त्र्य का जो आन्दोलन १६ वीं शताब्दी मे आरम्भ हुआ वह बीसवीं शताब्दी के आगमन तक स्त्रियों के पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेने से शान्त हो गया। अब स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में पुरुषो के समान स्वतन्त्र, स्वायत्त-प्राप्त एवं कर्म करने का अधिकार रखती थीं। भारत मे यह आन्दोलन ज़रा विलम्ब से फैला और ऐसा होना स्वाभाविक भी था। जैसे-जैसे अंग्रेजी शिक्षा तथा विचार बढ़ते गये, वैसे-वैसे शिक्षित भारतीय स्त्री-समाज ने इस दिशा में भी प्रगति की। स्त्रियों ने कॉंग्रेस के राजनीतिक संघर्ष मे अत्यन्त उत्साह तथा वीरता से भाग लिया। उनमें से बहुतों ने सामाजिक कुप्रथाओं, विशेषकर पर्दा,

बहुविवाह, बाल-विवाह आदि के विरुद्ध सामाजिक आन्दोलन मे भाग लिया और विधवा-विवाह का खुल कर समर्थन किया। उच्च घराना विशेषकर अंग्रेजी पढ़े-लिखे परिवारों, सरकारी कर्मचारियों एवं प्रगतिशील विचार रखने वाले सम्पत्तिशाली नागरिकों और कुलीन परिवारो की लड़कियाँ कालेजो तथा विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिये जाने लगीं। दिन-प्रतिदिन यह प्रगति बढ़ती ही जा रही है।

अस्तु, यह स्वाभाविक ही था कि भारतीय महिलायें साहित्य-क्षेत्र मे भी प्रवेश करें। भारत के लिये यह नवीन बात न थी। प्राचीन काल से लेकर अब तक कितनी ही उच्च शिक्षा प्राप्त विदुषियों ने श्रेष्ठ साहित्य विशेषकर काव्य का सृजन किया है। हिन्दी-साहित्य में मीरा, सहजोबाई, शेख, दयाबाई, तथा अन्य कितनी ही कवियित्रियो का नाम सर्वदा अमर रहेगा।

प्राचीन काल में साहित्य पर धर्म का पूर्ण प्रभाव था। साहित्यकार को धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, दार्शनिक तथा उपदेशक और सुधारक का बाना धारण करना ही पड़ता था। इसका कारण यही था कि जीवन की सभी क्रियाओं, उसके सभी अंगों में धर्म का प्रवेश हो गया था। दातून करना और नहाना तक धर्म बन गया था। आधुनिक साहित्य ने धर्म का यह खाल उतार फेंका और अपने लिये एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित कर लिया जो वैसा ही प्राण-पूर्ण, सुन्दर तथा आवश्यक है जैसा हमारे जीवन का आर्थिक, शारीरिक, और धार्मिक आदि पहलू। शिक्षा के प्रजातांत्रिक प्रसार और राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में सामान्य मानव के अधिकार-विस्तार तथा राजाओं-नवाबों आदि के तिरोभाव आदि से साहित्य, जो पहले केवल कुछ चुने हुए गण्यमान्य व्यक्तियों की सम्पत्ति था अब जन-सम्पत्ति बन गया

है। उसका प्राचीन सुरीला, मधुर स्वर अब भीषण और सुविस्तृत जन-घोष में बदल चुका है।

परिणामतः उपन्यास तथा कहानी-कला का विकास सरल भाषा मे होना स्वाभाविक हो गया। सामान्य जनता तक पहुँचने के लिये सरल भाषा ही सफल हो सकती है। प्रसाद जी की कहानियों की भाषा साधारण पाठको के लिये अनेक स्थलों पर दुर्बोध ही है। दूसरे यह युग विज्ञान, तर्क, सन्देह, निरीक्षण अथवा संक्षेप मे बुद्धिवादिता का युग है, जिसमें लोग काव्यात्मक भावों तथा कल्पनाओं को सन्देह की दृष्टि से देखते और इनकी अतिशयता को फीलपाँव की तरह व्यर्थ का रोग समझते हैं। काव्य के ह्रास तथा गल्प-साहित्य के विकास का यह भी एक कारण है। ज्यों-ज्यों हमारी दौड़-धूप बढ़ती जा रही है, और अवकाश का समय घटता जा रहा है, त्यों-त्यों उपन्यास-कला का ह्रास तथा छोटी कहानियों का विकास हो रहा है। अस्तु, कहानी-लेखकों का दायित्व भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है।

समाज के चरित्र-सुधार, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि समस्याओं के प्रकट करने तथा उनके रचनात्मक सुलझाव हमारे सामने रखने का और समाज की शक्ति को उचित दिशा में मोड़ने आदि का विशेष भार दिन-पर दिन अब हमारे कहानी-कलाकारों पर ही पड़ेगा। यहाँ हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि कहानी-लेखक उपदेशक बन जायँ या दर्शन झाड़ें, किन्तु उनका साहित्य ऐसा अवश्य हो जिसमें उचित रूप से वे एक साहित्यकार के कर्तव्यों का निर्वाह कर सके हो। संक्षेप मे उसमें भावना एवं कल्पना आदि से निर्मित उच्च सौन्दर्य अवश्य हो, ताकि वह हमें नीचे की ओर न घसीटे।

अन्य क्षेत्रों की तरह स्त्रियों ने साहित्य क्षेत्र में भी पदार्पण किया और उनको इस क्षेत्र में सफलता भी मिली; किन्तु फिर भी

मानना पड़ेगा कि उन्हें जो सफलता काव्य-साहित्य में मिली वह कहानी या उपन्यास के क्षेत्र में नहीं। उपन्यास-रचना का साहस बहुत कम देवियों ने किया; कदाचित उसमें बहुत अधिक परिश्रम, विस्तृत जीवन एवं जगत का अध्ययन करना पड़ता है। नाटकों की रचना से भी उन्होंने अपने को अलग रखा। मुक्तक छायावादी कवितायें तथा छोटी कहानियाँ अधिकांश स्त्री साहित्यकारों की प्रतिभा, सीमित जीवन-अनुभव आदि के उपयुक्त थीं। अस्तु, इन्हीं क्षेत्रों में इस वर्ग ने क्रिया-शीलता दिखाई। यह मानना पड़ेगा कि अब भी हमारे स्त्री-समाज पर जो अपने को स्वतंत्र विचारधारी तथा पूर्ण प्रगतिशील समझता है, प्राचीन परम्परा का पर्याप्त प्रभाव है जिसमें पर्दा तथा पुरुष समाज से अलग रहने तथा अपने को पारिवारिक कर्त्तव्यों तक ही सीमित रखने की प्रवृत्ति प्रमुख है। उपन्यास, महाकाव्य तथा उच्च कोटि के नाटक आदि ऐसी प्रवृत्ति के रहते हुए नहीं लिखे जा सकते। इनके लिये जीवन को उसकी सर्वांगता में समझने तथा अनुभव करने की आवश्यकता है।

पाश्चात्य देशों में स्त्री-साहित्यकारों ने श्रेष्ठ कृतियों का सृजन किया है; हालाँकि वे भी नाटक के क्षेत्र में आश्चयजनक रूप से असफल दिखाइ पड़ती हैं। उनकी इस सफलता का कारण उनका स्वतंत्र, विस्तृत, बहु-व्यापी सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन है। इतने दिनों के स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन के बाद भी हमारी ग्रामीण स्त्रियाँ लगभग उसी स्थान पर हैं जिस पर वे आन्दोलन के श्री गणेश होने के पूर्व थीं। बिना पूर्ण शिक्षा-प्रसार के स्त्री-सुधार की आकांक्षा स्वप्न मात्र होगी। केवल शिक्षा ही शताब्दियों से जड़ीभूत कुसंस्कारों, अन्धविश्वासों, अज्ञान-पूर्ण प्रवृत्तियों—भय, क्रोध आदि से मनुष्य को मुक्त कर सकती है। केवल शिक्षित नारी अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों की सीमाओं का समुचित ज्ञान प्राप्त कर भली भाँति उनका निर्वाह कर सकती है।

अस्तु, अन्य क्षेत्रों की तरह साहित्य में भी सफलता प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि आधुनिक नारी को श्रेष्ठ शिक्षा, उचित वातावरण एवं आत्म संस्कार के प्रचुर साधन प्राप्त हों। साहित्य-क्षेत्र मे पुरुष कलाकारों से उनके पिछड़े रहने का प्रमुख कारण इन्हीं बातों का अभाव है। उनकी कृतियों में हमें वह विषय-व्यापकता, गहराई, तथा अनुभव-पूर्णता नहीं मिलती जो श्रेष्ठ साहित्यकार में होनी चाहिये। अपवाद रूप में कुछ नाम अवश्य गिनाये जा सकते हैं और ये ही इस बात को भली भाँति प्रमाणित करते हैं कि स्त्रियों में प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा पुरुषों की अपेक्षा कम नही होती। शारीरिक शक्ति मे चाहे भले ही वे कुछ निर्बल पड़ें किन्तु इस निर्बलता को भी व्यायाम आदि साधनों से काफी सीमा तक दूर किया जा सकता है।

प्रायः हमारे आलोचकों की प्रवृत्ति अब तक यही रही है कि स्त्री-कहानीकारों की साहित्यिक त्रुटियां अथवा निर्बलताओं को गोप्य रखकर या तो उनकी झूठी प्रशंसा की जाय या उनके गुणों का अतिशयोक्तिपूर्ण गुणानुवाद गाया जाय। यह प्रवृत्ति पहले कुछ अंशों में ठीक भी कही जा सकती थी, क्योंकि प्रारम्भिक काल में स्त्रियों को उत्साहित करना अत्यन्त आवश्यक था, जिससे अपनी साहित्यिक योग्यता मे विश्वास कर वे साहित्य-सृजन के पथ पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर हों। किन्तु अब यह प्रशंसावादी आलोचना उनके लिये घातक होगी क्योंकि वे अब यथेष्ट संख्या में साहित्य-सृजन के क्षेत्र मे आ चुकी है। साथ ही उनमें से अनेक ने श्रेष्ठ साहित्यकार का आदरणीय स्थान भी प्राप्त कर लिया है और बहुतों में श्रेष्ठ साहित्यकार के गुण भी उपलब्ध हैं; भले ही अभ्यास अथवा उचित परिस्थितियो के अभाव से वे अब तक अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास न ही कर सकीं।

स्त्री कहानीकारों के लिय यह आवश्यक है कि वे अपनी

त्रुटियों, तथा क्षमताओं को भली-भाँति समझ लें और अपनी त्रुटियों को दूर करने तथा गुणों को विकसित करने का प्रयत्न करें। उनको अच्छी तरह स .झ लेना चाहिए कि श्रेष्ठ साहित्यकार बनने के लिये केवल प्राकृतिक प्रतिभा और कल्पना-शक्ति ही आवश्यक नही है, वरन् विस्तृत अध्ययन, भाषा-अधिकार, तथा जीवन एवं जगत का अनुभव भी काफी जरूरी है। इसके अतिरिक्त प्रतिभा एवं कल्पना-शक्ति प्रकृति किसी को निश्चित मात्रा में पहले से ही नहीं दे देती। प्रयत्न, अवस्था, परिस्थिति तथा अनुभव-वृद्धि से इनमें वृद्धि होती है, और इनके अभाव से इनका ह्रास भी होता है। नीची कक्षाओं के कितने ही प्रतिभाशाली छात्र ऊँची कक्षाओं में परिश्रम के अभाव अथवा मानसिक असंगठन के कारण अवनति कर जाते हैं। इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि जिसमें प्राकृतिक प्रतिभा का अभाव है वह कभी महान् प्रयत्न, अध्ययन तथा अनुभव से अध्यवसायभी सफल साहित्यकार नहीं बन सकता।

हमारे स्त्री-कहानीकारों में यदि प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा का अभाव होता; तब तो आलोचक को कलम उठाने का अवसर ही नहीं था। यह विषय वहीं-का-वहीं समाप्त हो गया होता। खलने वाली बात तो यह है कि हमारी देवियों में नियमित परिश्रम करने, श्रेष्ठ साहित्य-सृजन की महत्वाकाँक्षा तथा उसके लिये जीवन और जगत की समस्याओं को देखने, और उस पर स्वतंन्त्र मौलिक ढंग से विचार करने आदि का अभाव दिखलाई पड़ता है। परिणामतः उनकी प्रतिभा का उचित विकास नहीं होता। यही कारण है कि उन्हें गेय पदों अथवा आत्म अभिव्यक्ति-पूर्ण छायावादी रचनाओं में विशेष सफलता मिली है और यह बात केवल आधुनिक समय के लिये ही नहीं वरन् प्राचीन समय के लिये भी लागू था।

मीरा, शेख, दया, ताज और सहजो आदि सभी की रचनायें आत्म-भाव प्रधान हैं जिनमें मुख्यतः बाह्य वस्तुओं के वर्णन का अभाव है। सूरदास के पद अवश्य गेय हैं; किन्तु उनमे हमें कृष्ण तथा गोपियों के शारीरिक सौन्दर्य, विभिन्न भावों के समय शारीरिक क्रियाओं तथा रसोत्पत्ति में सहायक वस्तुओं मुरली एवं प्राकृतिक परिस्थितियो आदि का विशद वर्णन मिलता है। अस्तु, सूर में अन्तर्भावों की अभिव्यक्ति बाह्य बातों के माध्यम से होती है। इस बाह्यता का अभाव 'प्रेम-दिवानी' मीरा, रसराज में रमण करने वाली चटकीली शेख और भक्ति रस-प्रधान सहजो आदि सभी मे मिलता है।

आगे चल कर जिन देवियों ने आराध्य के शारीरिक सौन्दय एवं क्रियाओं के वर्णन का प्रयत्न भी किया, उनमे भाव-सन्दार का अभाव होने से नीरस वस्तु-गणना मात्र दिखाई पडती है। सुभद्रा कुमारी चौहान को छोड़ कर शेष लगभग सभी आधुनिक स्त्री साहित्यकारों में बाह्यता का यह अभाव पूर्ण रूप झलकता है। छायावाद ने उनकी आत्म-अभिव्यक्ति-प्रधान प्रवृत्ति को काफ़ी सह दी और धीरे-धीरे कविता नाटक के तत्वो से दूर हट गई। नाटक के इन तत्वो ही से गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस को इतना श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ है। विभिन्न मनुष्यो के बाह्य एवं आन्तरिक मनोवैज्ञानिक सघर्ष नाटक का प्राण है जो छायावादी रचनाओं मे कवि मात्र के भाव प्रदर्शन तक ही सीमित रह गया है।

स्त्री, कहानीकारों की यह आन्तरिकता जहाँ उनकी काव्य-रचना के लिये सहायक थी, वहाँ उनकी कहानियों के लिये विशेष रूप से रोड़ा बन गई। उनमें जीवन की अनुभूतियो एवं अनुभवों की विविधता, व्यापकता तथा भावो की अनेकरूपता का अभाव काफ़ी खलता है। बाह्यता जिसके अन्तर्गत अन्तरिक भावों को लेकर

तमाम राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, परिवारिक, तथा व्यक्तिगत जीवन-सम्बन्धी समस्यायें आती हैं, श्रेष्ठ कहानीकार उपन्यासकार, नाटककार महाकाव्यकार और खण्ड-काव्यकार आदि सभी के लिये आवश्यक है। जिसकी कल्पना युद्ध-स्थलों, शस्त्र स्त्रों, युद्ध की तैयारी, वास्तविक संग्राम, और द्वन्द्वी-प्रतिद्वन्द्वों के घात-प्रतिघात आदि पर सहर्ष नहीं दौड़ती तथा इनके विषय में सजीव एवं प्रभावशाली चित्र नहीं बना पाती, वह व्यर्थ युद्ध-वर्णन का प्रयत्न करता है। आवश्यकता केवल दिलचस्पी की है।

श्रेष्ठ साहित्यकार सर्वदा जीवन को उसकी सर्वांगीणता में अपनाते हैं और अपनी प्रचंड कल्पना-शक्ति के बल पर उसे विविध मनोरम, एवं जीवन पूर्ण रूपों में प्रस्तुत करते हैं। शेक्सपियर ने कभी रोम और यूनान की यात्रा नहीं की थी; किन्तु उसने इन देशों से सम्बन्धित प्राचीन चरित्रों तथा कथानकों को लेकर श्रेष्ठतम् दुखान्त तथा दुखमय सुखान्त नाटकों की रचना की। तुलसीदास ने कभी वास्तविक युद्ध-दृश्यों को नहीं देखा था; उनका जीवन भी एक शान्त, परोपकारी, अहिंसक और विश्व-शुभ-चिन्तक मनुष्य का जीवन था किन्तु उन्होंने मानस में युद्धों तथा मनुष्य के विभिन्न अशांतिपूर्ण भावोद्गारों का जीता-जागता चित्र हमारे समक्ष रखा। इस सफलता का मूल उनकी बृहद् कल्पना-शक्ति में है। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि हमारी स्त्री कहानी लेखिकाएँ पहले जीवन की विविध समस्याओं में दिलचस्पी उत्पन्न करें। उनके विषय में थोड़ा बाह्य अध्ययन कर लें, क्योंकि कथानक को शक्तिशाली बनाने के लिए उनका स्वरूप समझ लेना आवश्यक है। इसके बाद वे अपनी कल्पना के बल पर इनका आकर्षक और प्रभावशाली स्वरूप सफलता पूर्वक हमारे समक्ष रख सकती हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सभी स्त्री-कहानीकार असफल नहीं कहे जा सकते। विशेषकर इधर हाल में सुश्री चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, विमलादेवी रैना, हीरा देवी चतुर्वेदी और चन्द्रप्रभा द्विवेदी आदि देवियाँ श्रेष्ठ रचनायें प्रस्तुत कर रही हैं। सौनरेक्सा जी की दृष्टि काफी पैनी, तीव्र तथा यथार्थवादी है। उनकी रचनाये जीवन के विस्तृत प्रदेशों को छिपाये हुए मिलती हैं। उनमें स्वतन्त्र विचारक की शक्ति, साहस तथा स्पष्टता भी मिलती है। सौनरेक्सा जी आधुनिक यथार्थवादी दृष्टि-कोण के कारण भव्य और मनोहारी चरित्रोंकी सृष्टिकी ओर कम ध्यान देकर जीवन मे घोर क्षोभ, अशांति, तथा सामाजिक घृणा, मनमुटाव और संघर्ष उत्पन्न करने वाली सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हैं।

निचले स्तर के सामाजिक वर्ग का चित्र आप एक कठोर विचारशील, व्यापक दृष्टियुक्त साहित्यकार के रूप में हमारे सामने रखती हैं जिसके द्वारा हमें आर्थिक पीडा तथा उनसे उत्पन्न विध्वंस को नग्न रूप का दर्शन होता है। सौनरेक्सा जी ने जीवन के अन्य पहलुओं का भी सुन्दर चित्र उपस्थित किया है, किन्तु उसमें आत्म-निमज्जिन करने वाली भव्यता तथा उदात्त भाव नहीं दिखलाई पड़ते। जीवन की कठोरता से परिचित व्यक्ति के लिये सम्भवतः यह कठिन भी है क्योंकि उसकी यथार्थवादी दृष्टि से इसका कोई मेल नहीं। विपुला जी ने भी एक सीमित क्षेत्र मे श्रेष्ठ कलात्मकता तथा भाव-गहराई का परिचय दिया है। आपकी रचनाओं से उदात्त कल्पना-शीलता का परिचय मिलता है जिसमे भव्य मौलिक चरित्रों के निर्माण की शक्ति है। बहुत अच्छा हो कि सौनरेक्सा जी और विपुला जी की तरह ही हमारे अन्य स्त्री-कलाकार जीवन को

व्यापक दृष्टि से देखने तथा उसका सामना करने का प्रयत्न करें।

यह बात तो सर्व विदित ही है कि पुरुष कहानीकार पहले इस क्षेत्र में आये और स्त्री कहानीकार बाद में। प्रेमचन्द जी के आगमन ने कहानी-कला में बाह्य एवं आन्तरिक दोनों दृष्टियों से काफी जान फूँकी। यदि बाद के कहानीकारों ने उनकी भाषा का अनुकरण नहीं किया तो कम-से-कम उनकी कहानियों की आन्तरिकता, चरित्र-चित्रण, जीवन-सत्यता, धार्मिकता, वार्तालाप, शैली-विविधता, हास्य-व्यंग्य एवं बाह्य समस्या-प्रधानता आदि के आधार पर अपनी कहानियों का संगठन अवश्य ही किया। यहाँ किसी पर अनुकरण करने का आक्षेप नहीं लगाया जा सकता। वास्तव में यह कहानी-कला हमने यूरोप से बँगला तथा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ली है। सर्व-प्रथम प्रेमचन्द्र ने इसके रहस्य को समझा और इसे आधुनिक रूप दिया।

स्त्री कलाकारो में भी प्रेमचन्द्र जी के आधार पर ही रचना करने की प्रवृत्ति आरम्भ हुई और अब तक बहुत-कुछ बनी हुई हैं। परिणामतः प्रेमचन्द्र-शैली के बहुत से ऐसे अवशेष भी, जो उनके समय के लिये ठीक कहे जा सकते हैं; किन्तु आज की भाषा-सम्बन्धी परिस्थिति तथा कहानी-शैली की परिवर्तित स्थिति के उपयुक्त नहीं हैं, अब तक चले आ रहे है।

भाषा में उर्दू के शब्दों का मिश्रण प्रेमचन्द्र जी ने काफी मात्रा में किया है जो कहीं-कहीं खटकता है; साथ ही उर्दू के कितने ही शब्द जो पहले काफी प्रचलित थे अब समानअर्थी हिन्दी शब्दों से स्थानान्तरित होते जा रहे हैं। अस्तु, प्रेमचन्द्र जी की भाषा-शैली का पूर्ण अनुकरण अब समीचीन नहीं प्रतीत होता। प्रारम्भिक स्त्री कहानीकारों में प्रेमचन्द्र जी की आदर्शवादिता भी मिलती है जिसका निर्वाह कला-सम्राट प्रेमचन्द जी ने तो किया किन्तु उनके

अनुयायी गण न कर सके। आदर्शवादिता की यह प्रवृत्ति तेजरानी पाठक, यशोदा देवी, शान्ति देवी और शिवरानी देवी आदि मे देखी जा सकती है। आज भी यह प्रवृत्ति पूर्णतया समाप्त नहीं हुई है, जिनके अनुसार किसी नैतिक पथ का त्याग करने वाला व्यक्ति अन्त में यथेष्ट दण्ड पाता है आदि आदि।

इधर हाल मे अत्यंत सरल भाषा लिखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई है। कहानी की भाषा अवश्य ऐसी होनी चाहिये जिसे साधारण पढ़े-लिखे लोग समझ लें किन्तु एकदम बाज़ारू भाषा का प्रयोग तो असाहित्यिक ही होगा। इस प्रवृत्ति का जन्म सस्ती मासिक पत्रिकाओं से हुआ जिनका उद्देश्य केवल धनोपार्जन होता है। इनके दिमाग़ में यह बात घुस गयी है कि अधिक बिक्री के लिये केवल बाज़ारू भाषा का व्याकरण-सम्मत रूप अपनाया जाय। इससे हिन्दी साहित्य को काफी क्षति पहुँच रही है और कहानी की साहित्यिक प्रतिष्ठा भी घटती जा रही है।

उदात्त भावों तथा विचारों को प्रकट करने के लिये उचित शब्दों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। यह बात हम सरल भाषा के हिमायती प्रेमचन्द्र, सुदर्शन और कौशिक आदि में भी पाते हैं। इससे पाठक की कल्पना शक्ति तीव्र होती है तथा उस पर प्रभाव भी अधिक पड़ता है। अस्तु, समुचित साहित्यिक भाषा का प्रयोग होना प्रत्येक दृष्टिकोण आवश्यक है; और उस पर व्यर्थ के कठिन शब्दों, पदावलियों या अयथार्थवादी काव्यात्मक शब्दों का गुरुतम बोझ लादा न जाय।

अन्त में हम कह सकते हैं कि स्त्री–कहानी कला का भविष्य काफी आशाजनक है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि भाषा–अधिकार, उचित अभ्यास अध्यवसाय, अध्ययन एवं प्रयत्न करने का कष्ट उठाया जाय।

—:०:—

सुभद्रा देवी काटजू बी० ए०

श्रीमती सुभद्रा देवी का जन्म अक्टूबर सन् १९१२ मे सुशिक्षित श्रेष्ठ काटजू परिवार में हुआ। आपके पिता पं० कैलाश नाथ काटजू अपनी वकालत और बाद में स्वदेश के निमित्त त्याग और तपस्या के लिये भारत-विख्यात है। राष्ट्रीय कांग्रेस के आप उच्चतम कर्णधारो में से है। सम्प्रति आप दिल्ली सरकार के गृह-मंत्रि-पद को सुशोभित कर रहे है। सुभद्रा जी के भाई पं० शिवनाथ काटजू भी यथेष्ट ख्याति-प्राप्त एवं प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति हैं। आपके परिवार मे आधुनिक शिक्षा के साथ ही भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत तथा आधुनिक हिन्दी का भी विशेष प्रचार है।

आपके मानसिक अवस्थान एवं चरित्र-निर्माण में इस प्रकार के उच्च एवं पाश्चात्य-पौर्वात्य मिश्रित वातावरण ने यथेष्ट योगदान दिया है। आपके पिता पं० कैलाशनाथ काटजू स्वयं इस मिश्रण के अद्भुत उदाहरण हैं जो एक चोटी के वकील का जीवन व्यतीत करने तथा पश्चात्य भाषा एवं सभ्यता आदि से भलीभाँति परिचित होते हुए भी अपनी प्राचीन संस्कृति धर्म तथा संस्कृत भाषा के अनन्य पुजारी हैं। लोगों को इस बात पर उस समय अत्यन्त आश्चर्य हुआ जब आप ने संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाये जाने का समर्थन किया। आप संस्कृत भाषा के प्रचार को भारतीय राष्ट्र एवं संस्कृति की एकता एवं पुनर्जीवन के लिये अति आवश्यक मानते हैं।

पारिवारिक वातावरण की इस अनुकूल विशेषता का सुभद्रा जी के जीवन पर गहन प्रभाव पड़ा है। आप की शिक्षा-दीक्षा समुचित रूप से प्रारम्भ हुई। प्रयाग विश्व-विद्यालय से बी० ए० कर लेने के बाद आपने कालेज-जीवन से विश्राम ले लिया; किन्तु घर पर आपका अध्ययन अनवरत जारी रहा। वातावरण भी सदैव स्वाध्याय तथा साहित्य-सेवा के उपयुक्त रहा है। आपके पति पं० प्रकाश नारायण जी हाक्सर डनलप कम्पनी के डाइरेक्टर हैं। आपके श्वशुर कर्नेल सर कैलाशनाथ हाक्सर बीकानेर रियासत के प्रधान मंत्री हैं। इस प्रकार एक श्रेष्ठ शिक्षित धनी-मानी परिवार मे रहकर सुभद्रा जी को अपनी इच्छा के अनुकूल साहित्य-सेवा का यथेष्ट अवसर मिला। आपने इस अवसर का सदुपयोग किया; यह हिन्दी साहित्य के लिए हर्ष की बात है।

सुभद्रा जी ने कालेज-जीवन से ही मौलिक साहित्य-निर्माण का यथेष्ट परिचय दिया। १५-१६ वर्ष की अवस्था से आपने कहानी लिखना प्रारम्भ किया। आपकी कहानियाँ सन् १९३० ई० के लगभग उच्च कोटि की पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी। आप कवितायें भी अत्यन्त सफलता से कर लेती हैं। आपकी भाषा तथा भावनाएँ जो आपकी कहानियों मे देखने को मिलती है आपके पास काव्य-प्रतिभा होने की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं।

सुभद्रा जी की कहानियो पर प्रेमचन्द-युग की कहानियों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। आप मानव-जीवन की किसी शाश्वत मस्या का निरूपण पात्रों के माध्यम से करती है। उनके आचरण, व्यवहार एवं वार्तालाप से ही उनके मानसिक भाव तथा विचार हमारे समक्ष उपस्थित हो जाते हैं। आधुनिक. मनो-

विज्ञान के दृष्टिकोण से लिखने वाले गल्प-रचनाकारो से आप की शैली बिलकुल भिन्न है। आप मनोविज्ञान के अध्ययनों की दृष्टि से हमारे भाव-गुम्फनों का विश्लेषण करने नहीं बैठतीं; वरन् मनुष्य के चित्त मे उद्वेलित होने वाले ऐसे भाव तथा विचारों का चित्रण करती हैं जो हमारे दैनिक जीवन में भली भाँति प्रत्यक्ष नहीं हो पाते क्योंकि हम सामाजिक मान्यता एवं स्वीकृति को देखते हुए अपने भावों को व्यक्त करते हैं। साहित्यकार मनुष्य के अन्तस मे प्रवेश कर वहाँ का दृश्यांकण हमारे मनोरंजन, सौन्दर्य-इच्छा-तृप्ति तथा अनुभव आदि के लिये किया करता है। इस प्रकार मनुष्य के अन्तर का यह चित्रण बाह्य दृश्यों के चित्रण से भिन्न नहीं है। अन्तर केवल यही है कि हृदय में छिपे हुए भावों, प्रवृत्तियों आदि का चित्रण वैसा सरल नही है, जैसा बाह्य दृश्यो का चित्रण है।

पात्रो के भीतर प्रवाहित भाव-स्रोत के प्रत्यक्षीकरण में लेखिका उनका भली भाँति अध्ययन एवं सुन्दर चरित्र-चित्रण करती है। इसी से आपकी अधिकांश कहानियाँ चरित्र-चित्रण-प्रधान हो गई हैं जिनसे जीवन के किसी सत्य पर प्रकाश पड़ता है। इस चरित्र-चित्रण एवं मानव-भाव-रहस्यों के उद्घाटन मे आप यथेष्ट मौलिकता एवं स्वानुभूति का परिचय देती हैं। इस विषय में आप पढ़ी-पढ़ाई बातो के अनुसार अन्ध-पथ-गमन पसन्द नहीं करती। अस्तु, आपकी रचनाओं में मौलिकता तथा नवीनता के दर्शन होते हैं जो एक सुशिक्षिता नारी के अनुभव तथा प्रयत्नों के फल होने से पर्याप्त आकर्षक तथा सत्य-दर्शक हो सकते हैं।

सुभद्रा जी ने जिस समय कहानी-लिखना प्रारम्भ किया उस समय स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध, नीति, आचरण, तथा कर्त्तव्यों

आदि के विषय मे परम्परागत मापदण्ड निश्चित एवं सर्व-मान्य थे। उनके विरुद्ध जाने का कोई कारण नहीं माना जाता था क्योंकि उनमें कोई त्रुटि नही दिखाई पड़ती थी। अवश्य छुआ-छूत, हरिजनोद्धार विधवा-विवाह, वर्णाश्रम आदि सामाजिक बातों के विरुद्ध आन्दोलन चल रहे थे, किन्तु हमारे दैनिक आचरण तथा कर्त्तव्य, न्याय, श्रद्धा, सम्मान, आज्ञापालन, राष्ट्र-प्रेम. सतीत्व, आदि के विषय मे मीन-मेख निकालना ठीक नहीं माना जाता था। अस्तु, अधिकांश साहित्यकार अपनी रचनाओ में इन मान्यताओं का निर्वाह करते चलते थे, कुछ लोग थोड़ा-बहुत असंतोष, कुछ संशोधन, और कुछ विरोध आदि अवश्य उपस्थित कर रहे थे। यह विशेषता हम उस समय के प्रायः सभी गल्प-साहित्यकारो में पाते हैं। सुभद्रा जी में भी यही विशेषता मिलती है।

आचरण तथा कर्त्तव्य के विषय मे परम्परा से निश्चित मान्यताओं के प्रति जो असंतोष आपमें मिलता है वह आपकी कहानियों का प्राण है; किन्तु यह असंतोष या त्रुटि-दर्शन न तो आज-जैसा खुलकर है और न इतना व्यापक और सर्व-ग्राम्य। दृष्टि कोण बिल्कुल भारतीय संस्कृति के उपयुक्त है। अस्तु, आप पति-पत्नी-सम्बन्ध में सतीत्व की श्रेष्ठ मान्यता को पूर्ण हृदय से स्वीकार करने पर भी मनुष्य के परिवर्तनशील भावों या दुर्दम्य इच्छाओ के विरोधी रूप की ओर संकेत करती हैं। "तुम कौन हो" नामक कहानी में सुभद्रा जी स्पष्ट करती हैं कि 'नयना' का परिचय बाल्यावस्था में 'मोहन' से हुआ था। मोहन ने उसे देश-सेवा का अपना श्रेष्ठ लक्ष्य बतला कर उससे सहयोग का अनुरोध भी किया था। बाद में नयना का विवाह मुरारी से हो गया, जो एक प्रसिद्ध वकील था। मोहन उसके विवाह के पूर्व

ही बैरिस्टरी पढ़ने विलायत चला गया था। श्रेष्ठ सतीत्व को अपना आदर्श मानने वाली नयना, मोहन को कभी अपने हृदय-मन्दिर से बाहर न निकाल सकी। उसके लिये वह आँसू बहाती, अपने को कोसती, पश्चात्ताप करती आदि-आदि। पुत्र के लालन-पालन में नयना ने अपनी समझ में मोहन को विस्मृत कर दिया, किन्तु जिस दिन पुत्र-वधू घर मे आई उस दिन वृद्धावस्था के निकट पहुँची हुई नयना के हृदय मे मोहन की स्मृति तथा आकर्षण एक तूफान की तरह उठा, जिसको नियन्त्रित करना उसकी शक्ति के बाहर था। "दुःख और सन्ताप से नयना बहू को हृदय से लगाये हुये ही अचेत हो गई"। ५६ वर्ष की अवस्था में नयना बीमार पड़ी और फिर न उठ सकी, किन्तु अन्तिम क्षण तक मोहन उसके हृदय-मन्दिर मे अनवरत तूफान मचाता रहा।

कहानी में चित्रित नयना के इस भाव-संघर्ष मे कई बाते निहित है। प्रथम तो अनजान मे ही उसमे मोहन से प्रेम उत्पन्न हो गया था। दूसरे उसने मोहन से 'उसका साथ' देने की प्रतिज्ञा की थी। यद्यपि मोहन स्वयं उद्देश्य-भ्रष्ट होकर अन्य पथ का पथिक हुआ; फिर भी नयना अपनी प्रतिज्ञा पर अटल न रहने के कारण मानसिक कष्ट से बच नहीं सकती थी। जितना ही वह मोहन को भूल जाना चाहती है, उतना ही वह उसके पीछे पड़ा हुआ है। उसे इस पर आश्चर्य होता है और वह मन ही मन चिल्ला उठती है "तुम कौन हो ? क्यों मेरे पीछे पड़े हो ?" आदि आदि। इस कहानी से यह भली भाँति प्रकट हो जाता है कि मनुष्य की भावनायें तथा प्रवृत्तियाँ अपने नियमो से अनुशासित हैं। यह आवश्यक नहीं कि वे विवाह आदि के विषय मे समाज एवं धर्म-विहित पथ का ही अनुसरण करें। समाज मे इनके

विषय मे कितनी चुप्पी और कितना मौन बर्ता जाता है। आज का साहित्यकार इस मौन और चुप्पी की लेशमात्र भी परवाह न कर अत्यन्त मुखरता से मनुष्य की इच्छाओ और भावों की स्वतंत्र उन्मुक्त गति का पदर्शन करता है किन्तु २०-२२ वर्ष पहले के लेखक मे इस प्रकार की बातें यथेष्ट मौलिकता, स्वतंत्र विचारशीलता, अनुभव और साहस का परिचय देती है। क्या इस कहानी से यह प्रतिध्वनि नहीं निकलती कि मनुष्य सामाजिक मान्यताओं का अनुसरण करने में अपनी ही प्रवृत्तियों के कारण असफल हो जाता है। अस्तु, मनुष्य के स्वभाव पर विचार रखते हुए इन मान्यताओं के विषय में पुनः विचार किया जाय ? हो सकता है सन् १९३० की सुभद्रा देवी जी इस नवीन सीमा तक जाने में हिचकिचायें; किन्तु आज तो केवल ऐसा विचार ही नहीं प्रकट किया जा रहा है, वरन् इसके अनुसार हमारे आचरणो तथा कर्त्तव्यों का नव-निर्धारण आवश्यक माना जाता है। आज की सुभद्रा तो अवश्य ही इस प्रकार के परिवर्तन की समर्थक हैं और इस विषय मे हमे आश्चर्य भी होना चाहिये।

सुभद्रा जी की कहानी-शैली प्रभावशाली, चित्ताकर्षक एवं चेतना से परिपूर्ण है। इस दृष्टि से आप प्रेमचन्द के निकट आ जाती है। आपका एक-एक वाक्य पाठक के कान में विशेष दबाव के साथ पड़ता है, जिससे ज्ञात होता है कि आपने उन्हें काफी सोच-समझ कर लिखा है। इस शैली से दैनिक जीवन की साधारण बातों का वर्णन भी आकर्षक तथा मार्मिक हो जाता है। सुभद्रा जी केवल आवश्यक बाते लेती हैं। टाठी-लोटा, छप्पर-किवाड़, कागज-पेंसिल का वर्णन न करके सचमुच आप पाठक पर बड़ा उपकार करती हैं। प्रति दिन सामने आने वाली बातें

या वार्तालाप की उद्धरणी कलात्मक कृतियों मे शोभा नही देती। हम किसी रचना को पढ़ते है अपने मनोरंजन तथा नवीन सत्य-दर्शन के लिये। ठाटी-लोटा और छान-छप्पर न तो हमारा मनोरंजन करते है और न किसी त्रिकाल सत्य की ओर संकेत ही करते है। इनका ढेर-का-ढेर लिखकर पृष्टपेषण करना और पाठक के चित्त मे ऊब उत्पन्न करना साहित्य-निर्माण न होगा। यह प्रवृत्ति आज कल के छिछले यथार्थवादी लेखको मे विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है।

सुभद्रा जी को भली भाँति ज्ञात है कि साहित्य जीवन नही है, वरन् जीवन की छाया है। वह जीवन-सा प्रतीत होने पर भी वास्तविक जीवन न होकर साहित्यकार की कल्पना एवं भावना के संसार से उद्भूत हुआ है। इस कल्पना तथा प्रतिभा की टकसाल में पडकर वह (जीवन तथा संसार) नवीन रूप धारण करता और इसी से हमारे आकर्षण का कारण बनता है। लेखक की इन विशेषताओ से रहित साहित्य मृतक या निर्जीव होता है। यथार्थ वार्तालाप तथा दैनिक जीवन की वस्तुओं साग-भाजी, जौ-गेहूँ-दाल-चावल, और चाय-दूध आदि का वर्णन तब तक साहित्य नहीं माना जायगा जब तक वह साहित्यकार के कल्पना-जगत से नवीन जीवन, तथा नवीन स्वरूप नहीं ग्रहण करता। साहित्यिक जीवन एवं चेतना लेखक के मानसिक जीवन एवं चेतना का व्यक्त रूप होता है; बाह्य परिस्थितियो तथा वस्तुओं की सूची नही।

सुभद्रा जी की कहानियाँ उनकी कल्पना की नव-निर्माणकारी शक्ति की द्योतक हैं। उनमे आई हुई घटनाओं का क्रम-विकास तथा कार्य-कारण-सम्बन्ध वास्तविक जगत से उठाकर

नहीं रख दिया गया है और न तो ऐसा किसी भी साहित्यकार के साहित्य मे मिलेगा। यह क्रम-विकास तथा परिस्थिति-संचरण सर्वप्रथम लेखक के मस्तिष्क मे उत्पन्न होता है और बाद में साहित्य का रूप धारण करता है। अस्तु, जीवन से मिलता-जुलता भी यह लेखक के अन्तर्जीवन-संसार की वस्तु होता है। इस मापदण्ड से सुभद्रा जी की रचनायें विशेष सफल हैं। आप उन्हीं बातों को हमारे सामने रखती हैं जो रचना के कलात्मक जीवन के लिये आवश्यक हैं। "तुम कौन हो" में वृद्धा नयना सर्व-प्रथम मरण-शय्या पर दिखाई गई है। लेखिका उसके चारों ओर स्थित नौकर-चाकर, पुत्र, पुत्र-वधू, पति या देवर, बिस्तर और दवा आदि का वर्णन नहीं करती क्योंकि उसकी कृति के निर्माण में इन बातो की आवश्यकता ही नहीं है; वह तुरन्त एक मार्मिक वाक्य लिखकर कहानी के गर्भ में छिपे हुए विस्तृत जीवन-संघर्ष की ओर संकेत कर पाठक की जिज्ञासा को जागृत करती है। वे वाक्य यों हैः—"ओह ! आज की नयना और उस बालिका नयना में कितना अन्तर है ? इस ५६ वर्ष की बुढ़िया की देह मे वह रूप, वह कान्ति कहाँ ?

उपर्युक्त दो वाक्यो मे जीवन के दो छोरों की तुलना करती कितनी साकार मूर्तियाँ पाठक की कल्पना मे उत्पन्न करती है। इस प्रकार की बातों पर कला के सच्चे पारखी की ही कल्पना दौड़ सकती है। कला का मुख्य उद्देश्य भी हमारी कल्पना में नवीन मूर्तियाँ, नवीन दृश्य तथा कल्पना की दौड़ के लिये एक विशाल प्रदेश हमारे सामने रखना है। जो साहित्य हमारी कल्पना को उत्तेजित न कर सका, वह पूर्ण सफल कदापि नहीं कहा जा सकता। सुभद्रा जी की कहानियाँ इसी उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। वे वर्णनात्मक न होकर संकेतात्मक होती हैं। कहानी

पढ़ते समय लेखिका की उस द्रुत कल्पनाशीलता का परिचय मिलता है जो एक स्थान या दृश्य पर जमकर इस बात की प्रतिज्ञा नही कर बैठती कि हरेक छोटी-बड़ी बात का वर्णन करके ही उठेगी, चाहे उसका कोई कलात्मक मूल्य भी हो या नही।

आपकी रचनाओ में दृश्य-परिवर्तन शीघ्र होते है। ये दृश्य एक दूसरे से पूर्ण रूप से जुड़े होते हैं। वर्षो का व्यवधान यद्यपि आप ठुकराती चलती हैं किन्तु फिर भी रचना के कलात्मक औचित्य मे बाधा नही पड़ती। पाठक भी अपनी कल्पना के सहारे दर्जनो वर्षों को फॉदता चलता है। इस प्रकार आपकी प्रचण्ड कल्पना-शक्ति मे स्थान तथा काल के विस्तृत प्रसार को बॉध लेने की शक्ति दिखाई पडती है। इसके लिये आवश्यक है कि लेखक अपने पथ पर अत्यन्त सावधानी से आगे बढ़े; वह अन्य अनावश्यक बातो के वर्णन में फॅसकर लक्ष्य-भ्रष्ट न हो। सुभद्रा जी मे चुनाव का यह गुण विशेष मात्रा मे मिलता है। वास्तव मे आप मे कला की आवश्यकता को समझने की स्वाभाविक शक्ति दिखाई पड़ती है। मार्मिक से मार्मिक परिस्थिति को उभार कर आप उस विरक्ति के साथ शीघ्र ही दृश्य-परिवर्तन कर देती हैं, जिस विरक्ति से माली फूलो तथा लताओ को आवश्यकता से आगे नहीं बढ़ने देता।

सुभद्रा जी की कहानियो में पात्रों के आचरणों तथा कार्यो की विशेष प्रधानता है। इनके बीच से उनका मानसिक व्यापार भली भाँति झलकता है। तीव्र कल्पना शक्ति, तथा अन्तर्द्वन्द्व के कारण आपकी कहानियों मे यथेष्ट नाटकीय तत्व मिल जाते हैं। अनेक दृश्य जो एक लम्बे स्थान तथा काल-विस्तार मे फैले हुए

दिखाई पड़ते है। हमारे समक्ष एक के बाद दूसरे फिसलते जाते और आकर्षक दृश्य-विधान करते चलते है। उनका महत्व पात्रो के अन्तर्द्वन्द्व से विशेष रूप से बढ़ जाता है।

सुभद्रा जी के पात्रो का वार्तालाप आवश्यक, भावपूर्ण एवं उनके चरित्र पर प्रकाश डालने वाला होता है। इस प्रकार गम्भीर प्रकृति के लोग विनोदशील व्यक्तियो से भिन्न वार्तालाप-शैली मे हमारे सामने आते है। उनके स्वकथन उसी प्रकार उनके चरित्र का उद्घाटन करते है जैसे शेक्सपियर के दुखान्त नाटकों के पात्रो के स्वकथन। "तुम कौन हो" मे नयना का मानसिक कष्ट एवं संताप तथा मोहन के प्रति अविरल आकर्षण उसके उन स्वकथनो से भली भाँति प्रकट होता है, जिनमे वह अपने को बुरा-भला कहने से भी कभी नहीं चूकती। प्रवृत्तियों तथा सामाजिक आदर्शों का यह संघर्ष मानव-जीवन की चिर समस्या है और यह सर्वदा हमारे लिये आकर्षण का विषय रहेगी। आप की कहानियो में व्यर्थ के पात्र या वार्तालाप अथवा वर्णनों को कहीं भी स्थान नहीं मिलता। पाठक सोचता है कि अमुक स्थल पर यदि लेखिका चाहती तो बहुत कुछ और लिख सकती थी।

सुभद्रा जी प्रकृति एवं परिस्थितियों का वर्णन अत्यंत आकर्षक ढंग से करती हैं; किन्तु यहाँ भी नियन्त्रण एवं कलात्मकता को नहीं भूलतीं। ये वर्णन प्रायः प्रकृति के सुन्दर दृश्य हमारे समक्ष रखते हुए कहानी का वातावरण बनाते, कहानी की गति में योग देते और पात्रों के कार्य तथा आचरण मे संगति प्रदान करते हैं। प्रकृति के इस वर्णन में भी सुभद्रा जी कल्पना-शक्ति, गति एवं क्रिया-शीलता खोज निकालती हैं। 'तुम कौन हो" में चित्रित बेरो के कारण होने वाला मोहन और मुरारी का झगड़ा

और बाद मे नयना पर पड़े हुए मोहन के दो तमाचे सर्वदा पाठक की स्मृति मे उक्त बेर के वृक्ष तथा बेरों को लिये हुए आवेगे। इस प्रकार प्रकृति मानव-संसार का एक अविभाज्य अंग बनकर आती है।

सुभद्रा जी की भाषा शक्ति, भाव-प्रवणता, जीवन तथा गति लिये हुए होती है। आप उर्दू फारसी के सरल शब्दो का भी सुन्दर प्रयोग करती है। कहीं-कहीं सुन्दर मुहावरे और लोकोक्तियाँ आपकी भाषा-शक्ति को बढ़ा देती है। आपकी भाषा पूर्ण साहित्यिक तथा आपके व्यक्तित्व की छाप लिये होती है; जिसमे काफी उष्णता, प्रभाव, तेज, एवं शक्ति निहित है। आप शब्दो के समुचित चुनाव पर भी विशेष ध्यान रखती हैं।

—:o:—

तुम कौन हो ?

दिवस अवसान के समीप था। नयना अपने बिस्तर पर पड़ी हुई कष्ट से कराह रही थी। डूबते हुए सूर्य की हल्की-हल्की किरणें उसके मुख पर पड़ रही थीं ! ओह ! आज की नयना और उस बालिका नयना मे कितना अन्तर है ? इस ५६ वर्ष की बुढ़िया की देह मे वह रूप, वह कान्ति कहाँ ! अपने इस शरीर

के यौवन और रूप को गवाँ कर अब नयना अपने इस शरीर को भी गँवाने जा रही है ! वह शायद आखिरी बार बिस्तर पर पड़ी हुई इस जीवन की शेष घड़ियाँ गिन रही है।

नयना ने अपनी आँखें मूँद लीं और अन्तिम बार उसके जीवन की घटनायें चित्र के सदृश उसके सामने आ गईं। उसको जान पड़ा मानों वह फिर उसी अतीत काल के साम्राज्य में विचरण कर रही है। पूर्व स्मृति से वह अपने कष्ट को भूल गई। एक क्षण में ५५ वर्ष की बुढ़िया से नयना दश वर्ष की बालिका हो गई।

स्कूल में खाने की छुट्टी का घंटा बजते ही सब बालक बालिकायें कूदते-फाँदते अपनी अपनी कक्षाओं से निकल आये। बात की बात मे बच्चो का झुंड टीड़ी-दल के समान स्कूल के बाग में फैल गया। बच्चो के झुंड मे एक बालिका एक बालक का हाथ पकड़े हुए बेर के पेड़ की ओर दौड़ी जा रही थी। यह नयना और मोहन थे। मोहन अभी हाल में स्कूल आया था। पर थोड़े ही समय मे इस गम्भीर प्रकृति के बालक का चंचल नयना से मेल हो गया था।

बेरी के पेड़ के पास पहुँच कर मोहन पेड़ पर चढ़ गया और नयना पेड़ की ओर उत्सुक दृष्टि से देखने लगी। इस बीच में मुरारी, जो मोहन का सहपाठी था, चुपके से नयना के पीछे आ कर खड़ा हो गया। बेर पर चढ़े हुए मोहन ने पेड़ जोर से हिलाया और ढेर से बेर नीचे गिर पड़े। पर जब तक नयना सब बेर उठा सके, मुरारी ने थोड़े से अपने जेब में भर लिये। मोहन पेड़ पर

से देख रहा था। उसने ऊपर ही से मुरारी से कहा—बेर मैंने तोड़े है; उनको तुम मत लो।

मुरारी ने ज़रा हँस कर कहा—क्यों जनाब, मैं क्यो न लूँ? मेरी समझ मे तो जितना अधिकार नयना को इन पर है उतना ही मुझको भी है।

मोहन ने जोर से कहा—नहीं, तुम को इन पर कोई भी अधिकार नहीं है। बेहतर है, जितने बेर लिये हैं, चुपचाप जेब से निकाल कर धर दो, वरना अच्छा न होगा।

"और मैं भी देखूँ कि तुम मेरा क्या कर सकते हो, जेब से निकालना तो दूर, कहो तो नयना के बेर भी अपनी जेब में भर लूँ"—यह कहता हुआ नयना के पास आ कर खड़ा हो गया। उसके मुख के भाव से जान पड़ता था कि मोहन को तंग करने मे उसे आनन्द आ रहा है। पर गम्भीर मोहन में इतनी ताब कहाँ कि वह मज़ाक सह सके। वह शीघ्रता से पेड़ पर से कूदकर मुरारी और नयना के बीच मे आकर खड़ा हो गया और मुरारी को धमकाते हुए बोला—देखूँ तो, अब तुम कैसे बेर लेते हो?

मामले ने रंग पलट लिया था। हँसी-हँसी में लड़ाई की नौबत आ गई थी। पर सरला नयना को अभी तक दिल्लगी ही सूझ रही थी। चंचल प्रकृति थी। सोचा, जरा मोहन को और चिढाऊँ। उसने जल्दी से अपनी जेब के बेर मुरारी के हाथ में देकर उसे भागने का इशारा किया। मुरारी भी सम्पूर्ण रीति से अपनी जीत होते देख भाग खडा हुआ। मोहन थोड़ी देर तक तो हक्का-बक्का सा देखता रहा। धीरे-धीरे सब बातें समझ में आते ही उसके क्रोध का वारापार न रहा। गम्भीर प्रकृति के बालक को नयना की दिल्लगी तीर के समान लगी। जिसके लिए काँटों

का ख्याल छोड़कर भी वह बेर तोड़ने गया था, वही उसे चिढ़ावे ! नयना से उसे यह आशा न थी। क्रोध के वेग को न सह सकने के कारण एक बारगी ही बालिका के दोनों हाथों को पकड़ कर उसने उसके गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। नयना का मुख तमतमा उठा। इतनी मजाल ! इतनी हिम्मत ! उसने दोनों हाथ एक साथ ही मोहन को मारने के लिए उठाये, पर उसकी दृष्टि मोहन के मुख पर पड़ी और हाथ रुक गये। बालक का सौम्य मुख तमतमा रहा था। क्रोध से लाल नेत्रों में भी आँसू की झलक दिखाई पड़ रही थी। वे नेत्र कह रहे थे—तुमसे मुझे यह आशा न थी। क्या तुम इसी तरह मेरा साथ दोगी ?

बालिका के उठे हुए हाथ उठे ही रह गये। ग्लानि और क्षोभ से उसकी दृष्टि आप से आप ही नीची हो गई। सच तो है; उसे ऐसा न करना चाहिए था। पर कुछ क्षण में ही यह भाव मिट गया। आज सब के सामने मोहन ने उसे पीटा है। उसकी मान-मर्यादा, उसके गर्व को चूर-चूर कर डाला है। अधिक क्रोध के कारण नयना की आँखों से दो बूँद आँसू ढुलक पड़े। इस समय मोहन वहाँ से न चला गया होता तो शायद शायद वह उसे पकड़ कर झकझोर डालती या खूब जोर से पीटती।

उस दिन रात को सब के सो जाने के बाद भी एक बारह वर्ष की बालिका निद्रा-विहीन नेत्रों से कमरे के अंधकार में एक प्रश्न को हल करने की चेष्टा कर रही थी। नयना की छोटी सी बुद्धि में समझ ही नहीं पड़ता था कि मोहन से उसने चुपचाप मार कैसे खाली। यदि कोई और बालक होता तो वह उसकी शिकायत तो अवश्य ही कर देती। बहुत देर तक सोचने के बाद

वह सो गई। रात को नयना की माँ कुछ शब्द सुन कर जाग गई। उसने देखा वह छोटी सी लड़की तकिये को कस कर पकड़े कह रही है—तुमको मैं क्यों न मारूँ ? तुम मेरे कौन हो ?

सात वर्ष बीत गये। अब नयना बालिका नहीं है। वह सत्रह वर्षकी सुन्दरी युवती है। बचपन की चंचल प्रकृति अब उसमे नहीं रही। नयना कमरे की खिड़की के सामने खड़ी हुई क्या सोच रही है ? द्वितीया के चन्द्र की क्षीण रेखा आकाश मे एक अपूर्व ज्योति फैला रही थी। तारो से घिरे हुए चन्द्रदेव अपने साम्राज्य की ओर देख कर हँस रहे थे। धीमी-धीमी चाँदनी नयना के मुख पर पड़ रही थी। उसको स्कूल छोड़े हुए बहुत दिन बीत गये है। पर आज न जाने क्यों बहुत दिनो की स्मृति उसके कोमल हृदय में हलचल मचा रही है। उसने आज सुना है कि मोहन विलायत चला गया। क्यो गया, उसको नहीं मालूम। मोहन को देखे हुए भी उसे चार वर्ष हो गये। इधर बहुत समय से नयना को उसका ध्यान भी नहीं आया था। इतने समय के बाद आज नयना के हृदय मे एक अजीब वेदना होने लगी। बहुत देर तक सोचने के बाद उसने अपना सिर उठाया। अनजाने मे ही एक आँसू ढुलक कर उसके गाल पर गिर पड़ा। स्कूल की बातें चित्रवत् उसके सामने आने लगीं। यकायक जान पड़ा कि मोहन बेरी के पेड़ के नीचे खड़ा हुआ उसकी ओर उसी रोषपूर्ण व्याकुल दृष्टि से ताक रहा है। नयना ने धीरे से गाल पर गिरे हुए आँसू को पोछ दिया। फिर अकस्मात् ही अंधकार में विलीन होते हुए चन्द्र की ओर दृष्टि पड़ते ही उसे एक बात याद आ गई। उसने स्त्रियों को कई बार अपने प्रियजनों के लिए द्वितीया के चन्द्र की पूजा करते देखा था और इसके लिए कई बार उनकी हँसी भी उड़ाई थी। पर आज नयना उन

बातों को सोच कर हँस न सकी। वरन् धीरे से श्रद्धा के साथ दोनों हाथों को जोड़कर आकाश की ओर देखकर उसने नतमस्तक हो कर कहा—देव, आज तुम्हारे चरणों की शरण ली है। नाथ, ठुकरा मत देना। न जाने तुमने कितने प्राणियों को सुखी किया है। मेरी भी एक इच्छा है। मोहन को सदैव सच्चा सुखी रखना, प्रभो ?

नयना के नेत्रों से झर-झर कर आँसू गिरने लगे। सरल बालिके, वह तेरा कौन है जो तू उसकी मंगल कामना कर रही है। मोहन के लिए आँसू बहाते हुए तुझे लाज नहीं लगती ? यदि कोई देख ले तो क्या कहे। शायद नयना के हृदय में ये ही भाव उठे। उसने नीले आकाश की ओर देखते हुए कहा—आज मैंने तुम्हारे लिए पूजा की है, मै तुम्हारे लिए रोई हूँ। पर तुम मेरे हो कौन ?

तीन वर्ष और बीत गये आज वही द्वितीया की रात है। कमरे की खिड़की के सामने नयना खड़ी है। पर आज की नयना और उस तीन वर्ष पूर्व की नयना में कितनी अन्तर है। आज नयना साधारण वेश में नही है। आज वधू के वेश में नयना साक्षात् रमा ही भास रही है। हाथ जोड़कर और नत मस्तक हो कर नयना ने चन्द्र की आराधना कर उसकी ओर हाथ जोड़ कहा-हे चन्द्रदेव, अब तक न जाने कितने अपराध किये हैं। उनको क्षमा करना। अब शक्ति दो प्रभो कि मैं अपने स्वामी की योग्य सहधर्मिणी बन सकूं।

वह रात्रि नयना के जीवन मे नवीन युग कारी थी। पिता ने जिसके साथ ठीक समझा विवाह हो गया। वह मुरारी था। हे ईश! मुरारी उसका स्वामी है!

एक-एक कर के वह बचपन की बातें सोचने लगी। पर वह अपने विचारों की माला भी ठीक से बाँधने न पाई थी कि अचानक उसके सामने एक किशोर की रोषपूर्ण मूर्त्ति आ गई। नयना की देह काँप उठी। भगवान् यह क्या! इस समय भी... फिर वह एक बारगी ही ज़ोर से रो उठी। रुद्ध कंठ स कम्पित स्वर से अस्पष्ट शब्द निकल कर वायु में विलीन हो गये—'तुम कौन हो ?'

विवाह होने के उपरान्त एक दिन मुरारी ने हँसते हुए कहा—नयन, स्कूल की बात याद है ?

नयना, का हँसता हुआ चेहरा एक दम कुम्हला गया। उसने दुखित स्वर में स्वामी से कहा—हाथ जोड़ती हूं, स्कूल की बात मत किया करो।

उसके बाद फिर कभी मुरारी ने उस बात को नहीं छेड़ा। समय के साथ-साथ नयना की सारी चिन्ता अतीत की गोद में सो गई। उसके दिन बड़े सुख से कटने लगे। मुरारी उसके स्वामी हैं, सर्वस्व हैं। नयना के अहोभाग्य हैं कि उसने ऐसा जीवन-साथी पाया। उसके स्वामी उसके गर्व की वस्तु हैं। कितनों के ऐसे स्वामी होते हैं !

और मुरारी। उसके सुखों की सीमा नहीं है। वह समझता है मनुष्य के लिए संसार में ऐश्वर्यपूर्ण घर और योग्य पत्नी ही सब कुछ है। और उसने यह सब पाया ही है।

विवाह को चार वर्ष बीत गये, आज दम्पति के लिए अपूर्व दिन है। शुभ समय में नयना ने एक पुत्ररत्न पाया। विशाल नेत्र, लम्बी भुजायें उसके सौन्दर्य्य का परिचय दे रही थीं। पर हाय रे नयना! पुत्र को प्रथम बार आलिंगन करते ही क्या हुआ ? अपने चार वर्ष के भ्रमपूर्ण परिश्रम से ही वह पुरानी

बातों को भूल सकी थी। पर गोदी मे बालक को लेते ही उसे ज्ञात हुआ कि उसके हृदय का घाव साधारण नहीं वरन नासूर हैं, जा ज़रा से धक्के से फिर हरा हो गया। पुत्र के मस्तक पर अश्रु पूर्ण नेत्रों से प्रथम बार स्नेह-चुम्बन देते समय नयना ने कम्पित स्वर मे कहा- हाय रे दैव ! क्या मै कभी सफल न हो सकूँगी ? हे निर्दय, तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो ? तुम मेरे हो कौन ? तुमने मुझसे जो बातें की थीं, उन्हें तुम कहाँ पूरी कर सके ? विलायत-यात्रा, बैरिस्टरी, यह सब तो तुम्हारा जीवन-पथ न था। फिर मेरा क्या दोष ? तुम बैरिस्टर हो, मेरे पति बैरिस्टरों से बढ़े-चढ़े वकील हैं। दोनों के रास्ते में अन्तर क्या है ?

समय किसी की राह नहीं देखता। कल का पैदा हुआ बालक आज विवाह करने के योग्य युवक हो गया। युगल दम्पति के हर्ष की सीमा नहीं है। अभी कल को ही तो बात है, प्रभात ने मिट्टी खा लेने पर नयना से मार खाई थी। इतने बड़े युवक को सामने देख कर मुरारी और नयना अपने छोटे से प्रभात को भूल नहीं सकते। उनका खिलौना प्रभात, उनका जीवन सर्वस्व उनके लिए बहू लाने जा रहा है। प्रभात सुन्दर है, होनहार युवक है और योग्य माता-पिता का योग्य पुत्र है। माता-पिता अपने पुत्र के लिए और अधिक कामना ही क्या कर सकते हैं ? वह अपने माता-पिता का सुपुत्र है, आँखों का तारा है, इसीलिए नयना और मुरारी हर्ष से फूले नहीं समाते।

शुभ समय में सब कार्य समाप्त हुआ। नयना नई बहू के आलिगन के लिए विकल हो रही थी। इसी समय पालकी द्वार पर आई। हर्ष से प्रफुल्लित सास ने नव-वधू को गले से लगा लिया उसको वह दिन याद आया जब उसकी सास ने भी उसे प्यार से हृदय से लगा लिया था। पर एक पुरानी बात

के साथ-ही-साथ 'कई और बातें याद आ गईं। क्या इस अवस्था में उसे फिर से परिश्रम करना पड़ेगा? दुख और सन्ताप से नयना बहू को हृदय से लगाये हुए ही अचेत हो गई। चारों ओर सन्नाटा हो गया। नव-वधू चित्र-लिखित की भाँति खड़ी-की-खड़ी रह गई! बेहोशी में नयना ने देखा वह बीमार पड़ी है, उसका स्वामी उसके सिरहाने बैठा है, प्रभात अपनी बहू के साथ खड़ा है, इसी समय मानों मोहन ने आकर उससे कहा—अब तो मैं बालकपन के वादे के अनुसार काम कर रहा हूँ। मैंने बैरिस्टरी छोड़ दी है। अब मैं अपने भाइयों को लड़ाकर लूटना नहीं चाहता। यह विद्या का दुरुपयोग है। अब तुम मुझे प्रभात को दो। वह मेरे साथ सेवा का काम कर तुम्हारे वादे को पूरा करे। तुमने मेरा साथ नहीं दिया, पर प्रभात मेरा साथ देगा।

नयना चिल्ला उठी-ले जाओगे? तुम प्रभात को ले जाओगे? तुम कौन हो?

नयना ने अपनी आँखें खोलीं। संध्या हो रही थी। अस्त होते हुए सूर्य की हल्की-हल्की सुनहरी आभा से उसका मुरझाया चेहरा अन्तिम बार खिल उठा। उसको जान पड़ता था मानों उसने फिर से अपना सारा जीवन व्यतीत किया है अतीत की वह स्मृत कैसी मधुर, नवीन तथा सुन्दर थी? एकाएक नयना की दृष्टि उसके स्वामी पर पड़ी। वे भी बूढ़े हो गये हैं। उसको अपनी दशा एक बारगी ही याद आ गई।

क्या उसके सारे परिश्रम पर पानी फिर गया? अब तो समय भी नहीं है कि वह एक बार फिर चेष्टा करके देखे। सारे जीवन में उसने एक युद्ध किया था; और वह समझती थी कि उस युद्ध में उसकी जीत हुई है। पर अब, अन्तिम समय में

उसे विदित हुआ कि उससे कितनी भारी भूल हुई है। लाख प्रयत्न करने पर भी वह अपना हृदय पूर्ण रूप से अपने स्वामी को नहीं दे सकी। झर-झर कर आँसू नयना के तकिये को भिगोने लगे। आज उसे कितना दुख और पश्चाताप हो रहा था! नयना के आँसू मानों उसके अपराध को धोने की चेष्टा कर रहे थे। पर उसका अपराध क्या था?

कमरे मे बहुत देर तक नीरवता का राज्य रहा। फिर उस मौन को तोड़ते हुए मुरारी ने पूर्व-परिचित स्वर में कहा- 'नयन'

नयना एकबारगी ही कल्पना-राज्य में विचरण करते-करते पृथ्वी पर आ गिरी। फिर एक बार चारों ओर देखकर उसने अपने स्वामी से कहा—नाथ, मैं अब चली। मेरे सब अपराधों को क्षमा करना। अन्तिम समय, अपने चरणों की रज दो, जिससे मैं सुख से मर सकूँ।

मुरारी रो उठा। उसकी स्त्री जा रही है, सदैव के लिए जा रही है, और वह देखने के सिवा कुछ भी नहीं कर सकता है। और नयना? उसने स्वामी की चरण- रज काँपते हुए हाथों से आँखो में लगाकर उनको मूँद लिया। सूर्य की अन्तिम किरणों से उसके श्वेत बाल चमक उठे। पर आँखे बंद करते ही नयना ने फिर खोल ली। जान पड़ता था एक रोषपूर्ण बालक छलछलाती आँखो से उसकी ओर देखकर कह रहा है—तुमसे मुझे यह आशा न थी। क्या तुम इसी तरह मेरा साथ दोगी? नयना चीख उठी, अन्तिम बार आंखें खोलकर वह अस्फुट स्वर में चीत्कार कर उठी—तुम कौन हो? कमरे से प्रतिध्वनि हुई—तुम कौन हो? डूबते हुए भास्कर ने मानों व्यंगपूर्ण स्वर में कहा-"तुम कौन हो" बहुत दूर क्षितिज

की रेखा से किसी ने बहुत ही क्षीण स्वर में-पूछा "तुम कौन हो?"

मंगला बालूपुरी

श्रीमती मंगला बालूपुरी का जन्म आज से लगभग ३५ वर्ष पूर्व सन् १९१८ ई० मे प्रसिद्ध साहित्यकार, कई विषयों के प्रकाण्ड विद्वान एवं राष्ट्र-सेवक बाबू सम्पूर्णानन्द जी के परिवार में काशी में हुआ। आप के पिता बाबू अन्नपूर्णानन्द जी श्री सम्पूर्णानन्द जी के छोटे भाई हैं जो हास्य रस के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक हैं। आप के पितृव्य श्री परिपूर्णानन्द जी हिन्दी-जगत में एक श्रेष्ठ पत्रकार के रूप मे प्रसिद्ध हैं। आप के भाई श्रीसवर्दानन्द जी भी हिन्दी के श्रेष्ठ आधुनिक सेवको में गिने जाते हैं। मंगला जी अन्नपूर्णानन्द जी की प्रथम सन्तान थीं। आपके जन्म के एक ही वर्ष पश्चात् आप की माता का देहान्त हो गया। इस दुखद घटना के बाद आप कुछ दिन तक अपने नाना राय-बहादुर मुंशी कामता प्रसाद रिटायर्ड दीवान बीकानेर के यहाँ रहीं, किन्तु कुछ अधिक अवस्था होने पर आप पिता के पास काशी मे आकर रहने लगीं।

मंगला जी को प्रकृति ने मुक्तहस्त प्रतिभा एवं ज्ञान-जिज्ञासा प्रदान की थी। आपकी पढ़ने-लिखने की दक्षता, अवस्था से अधिक योग्यता की बातें करने की शक्ति तथा विलक्षण प्रतिभा से परिवार के लोगों पर आपका यथेष्ट प्रभाव पड़ा। वातावरण भी विद्याध्ययन एवं ज्ञान-प्राप्ति के लिए पर्याप्त उपयुक्त एवं उत्साह-वर्द्धक था। परिणामतः थोड़े ही समय में मंगला जी ने यथेष्ट स्कूली ज्ञान प्राप्त कर लिया। आप अपनी कक्षाओं में सर्वदा अग्रणी रहीं; किन्तु आपको उच्च स्कूली शिक्षा न प्राप्त हो सकी।

आपके पिता स्वयं सुशिक्षित तथा कई वर्ष के लन्दन-निवासी होते हुए भी इस विषय में पुरानी विचार-धारा रखते थे। पता नहीं लड़कियो की उच्च स्कूली तथा कालेजों की शिक्षा के विषय में उनके आज के विचार क्या हैं; किन्तु उस समय तो वे इसके विरोधी ही थे। फलतः प्रारम्भिक कक्षाओं को उत्तीर्ण कर लेने के बाद मंगला जी को स्कूल छोड़ देना पड़ा। घर पर ही आपकी शिक्षा-दीक्षा की सुन्दर व्यवस्था की गई। वही आपने हिन्दी अंग्रेजी तथा इतिहास आदि विषयों का गम्भीर अध्ययन किया।

मंगला जी के परिवार में हिन्दी का विशेष बोल बाला था जिसकी ओर प्रारम्भ में ही संकेत किया जा चुका है। अस्तु, हिन्दी की ओर विशेष ध्यान देना आपके लिये स्वाभाविक ही था। किशोरीवस्था में पदार्पण करने के साथ ही आप साहित्य-सृजन भी करने लगीं। आप की प्रतिभा बहुमुखी थी। आप ने कविता, कहानी तथा निबन्ध तीनों क्षेत्रों में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। आपकी प्रारम्भिक रचनायें आपके चाचा परिपूर्णानन्द जी द्वारा सम्पादित 'प्रेमा' में निकलने लगीं जो उस समय जबलपुर से प्रकाशित होती थी। 'चाँद' में भी आप की रचनायें कभी-कभी प्रकाशित हुआ करती थीं।

मंगला जी का विवाह २८ जून सन १९३४ ई० को १६ वर्ष की अवस्था में हिन्दी के श्रेष्ठ कवि एवं लेखक श्री सुरेन्द्र जी बालूपुरी के साथ सम्पन्न हुआ जो हिन्दी-जगत में एक सफल पत्रकार के रूप में भी सुपरिचित हैं। सन १९३८ में आप बलिया मे युक्त-प्रान्तीय-उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा आनरेरी मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हुईं; किन्तु थोड़े ही समय पश्चात ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध किये गये असहयोग आन्दोलन के सिलसिले

में आपने इस पद से त्याग-पत्र दे दिया। उस समय आप के पति श्री सुरेन्द्र जी ने प्रान्तीय सरकार के पत्रकार-पद से तथा चाचा श्री सम्पूर्णानन्द जी ने प्रान्तीय मंत्रिपद से अन्य मन्त्रियों के साथ त्याग-पत्र दे दिया। मंगला जी का स्वास्थ्य भी बीमारी के कारण इधर कुछ समय से गिरता जा रहा था। लखनऊ के अनेक प्रसिद्ध डाक्टरों की चिकित्सा की गई, रुपया पानी की तरह बहाया गया, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। १२ मई सन १६४० ई० को आपके निधन से आपके परिवार तथा हिन्दी-जगत् की अपरिमित क्षति हुई। आपके देहावसान से आप के दो बच्चे प्रकाश बालूपुरी तथा अशोक बालूपुरी मातृहीन हो गये। दोनों बच्चे काफी होनहार एवं योग्य है।

विवाह के पश्चात् साहित्य-सेवी पति की संगति तथा अनुकूल वातावरण पाने से मंगला जी की साहित्यिक चेष्टायें काफी बढ़ गईं। इतने अल्प काल में ही पारिवारिक कर्त्तव्यों तथा दायित्वों का धुर्णतया निर्वाह करते हुए भी आप ने २० कहानियों, कई सुन्दर कविताओ तथा गम्भीर लेखों को लिख कर उन पर अपनी प्रतिभा एवं व्यक्तित्व की अमिट छाप लगा दी। इतनी थोड़ी अवस्था मे ही आपने श्रेष्ठमौलिकता का परिचय दिया। आपकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित हो चुका है।

मंगला जी में हमे विलक्षण योग्यता एवं साहित्यिक दक्षता के दर्शन होते हैं। एक ओर आपकी कविताओं में श्रेष्ठ तथा सुकुमार कल्पना, भाव-गहराई एवं भाषा-सौन्दर्य के दर्शन होते हैं तो दूसरी ओर आपकी कहानियो में उत्तम कहानी-कला परिलक्षित होती है। दोनों क्षेत्र एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं! विश्वास नहीं होता कि कैसे एक ही व्यक्ति दोनो प्रकार की रचना कर सकता है। आपकी कवितायें आत्मानुभूति-पूर्ण छायावादी रचनायें हैं जिनका

केन्द्र कवि या कवियित्री ही होती है। संक्षेप में विविध शब्द-चित्रों एवं प्राकृतिक दृश्यों के माध्यम से आपने अपने ही मनोहर, गम्भीर एवं विविध भावों को हमारे समक्ष रखा है जिसमें आपने किसी कवि के शब्दों या भावों का कहीं भी अनुकरण नहीं किया। आपकी कहानियो मे आपका मस्तिष्क प्रधानता रखता है। उनमें आप एक विचार-शील, पूर्ण संयत, सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक समस्याओ मे पूरी दिलचस्पी लेने वाली पूर्ण जागरूक आधुनिक युग की महिला के रूप मे हमारे सामने आती है। यहाँ तक कि आप की कहानियों की भाषा भी काव्य के उन प्रभावों से मुक्त हैं जो प्रायः भावुक कवियों के गद्य मे आ जाते है जैसे भावुकता-प्रदर्शन-काव्यात्मक शब्द-समूह, उपमा, रूपक और अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारो की योजना इत्यादि। अपका गद्य पूर्ण परिष्कृत, विशुद्ध संस्कृत-शब्दों से युक्त, समथ तथा आकर्षक है। वह किसी भी प्रकार के विचारो को व्यक्त करने की सामर्थ्य रखता है। इतनी छोटी अवस्था में इतना बड़ा भाषाधिकार, विचारो का फैलाव, विषय की विविधता तथा उन पर गहराई से विचार करने की आपकी शक्ति को देखकर सचमुच हमें आपकी विलक्षण प्रतिभा-शक्ति का लोहा मानना पड़ता है। आपका गद्य काफी संयत, धारावाहिक एवं क्रमबद्ध है जो आप की श्रेष्ठ विचार-शीलता तथा व्यापक अध्ययन का परिचय देता है।

भाषा के क्षेत्र में मंगला जी का उद्देश्य अत्यंत सरल भाषा के प्रयोग करने का नहीं है। जैसे कि आज हम चन्द्र किरण जी सौन रेक्शा तथा हीरा देवी जी चर्तुवेदी आदि में देखते हैं। आप आवश्यकतानुसार कठिन तथा सरल दोनो प्रकार के शब्दो का प्रयोग करती हैं बल्कि आप की प्रवृत्ति भाषा के कुछ विशेष साहित्यिक रूपकी ओर ही है। इसलिये कुछ ऐसे शब्द भी मिल सकते हैं जो बिलकुल साधारण पाठकों के लिये

कदाचित् दुर्बोध हो किन्तु इससे उनकी भाषा को कृत्रिम या कठोर नहीं कहा जा सकता। वास्तव मे वह युग हिन्दी कहानी-कला का प्रारम्भिक काल था जिसमें भाषा के साहित्यिक रूप पर विशेष ध्यान दिया जाता था। खड़ी बोली के गद्य पर द्विवेदी जी का अध्यापकी हाथ उस समय भी कर्यशील था, यों काव्य-क्षेत्र मे कवियों ने इतिवृत्तात्मक खड़ी बोली के पद्य का तिरस्कार कर अन्तर्भाव-प्रधान छायावाद की शरण ली थो। यहाँ भी किसी कवि को द्विवेदीयुगीन व्याकरण एवं भाषा-परिष्कार तथा उसकी साहित्यिक स्वरूप की प्रवृत्ति से विरोध नहीं था। अस्तु, भाषा में उस समय दैनिक जीवन मे अप्रचलित शब्दों का प्रयोग ज़ोरों से होता था। कहानियों में भी लेखको ने इसी प्रवृत्ति को चालू रखा। प्रेमचन्द्र जी तथा सुदर्शन जो इसके अपवाद ही माने जायँगे।

इधर बहुतेरे लोग समझने लग गये हैं कि कहानी और उपन्यास विशेषकर कहानी जन-साधारण की वस्तु होती है, जिसके लिये आवश्यक है कि भाषा सरल, प्रवाहमयो तथा अर्थालंकृता हो। अवश्य वह परिष्कृत तथा साहित्यिक धरातल पर हो, किन्तु उसको अनावश्यक कठोर शब्दों से न भरा जाय। मंगला जी की कहानियों की भाषा में यह बात नहीं है। यद्यपि आप प्रचलित शब्दों का प्रयोग करती है, तथापि आप को ओर से यह प्रयत्न नहीं किया जाता कि गूढ़ भावों या विचारों को सरल भाषा में व्यक्त किया जाय। संक्षेप में आपकी कहानियों का गद्य गंभीर लेखों के उस गद्य के समान है, जो तर्क-वितर्क करने, वक्तता देने तथा उच्च कक्षा के विद्यार्थियों को कोई बात समझाने या किसी बात की विचारपूर्ण आलोचना करने के लिये प्रयुक्त होता है।

मंगला जी को राजनीतिक और सामाजिक आदि समस्याओं से पैतृक अथवा पारिवारिक सम्पत्ति के रूप में दिलचस्पी प्राप्त

हुई थी। आपकी कविताओं में भी ये विचार व्यक्त हुए हैं, किन्तु आपकी कहानियों में इनकी विशेष प्रबलता है। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि आपकी कहानियों का आधार ही ये वाह्य समस्यायें है। इनका अध्ययन आप काफी योग्यता से करती हैं। फिर भी हमें इस बात पर ध्यान रखना ही होगा कि इनकी रचना एक १६-१७ वर्ष की नवयुवती द्वारा हुई है। परिणामतः इन समस्याओं के विषय मे आपके मौलिक तथा देर तक सोचे-समझे विचार या भाव नहीं दिखाई पड़ते, वरन् किताबों में पढ़ी गई या सभा-सोसाइटियों में भाषण-रूप मे सुनी गई बातों के आधार पर इनका निर्माण हुआ है। खैर, आप तो अल्प वयस्का साहित्य-सेविका ही थीं, प्रौढ़ एवं धुरन्धर साहित्यकार भी हमें इन समस्याओं पर कोई मौलिक, विचारशील एवं नवीन दृष्टिकोण नहीं प्रदान कर पाते। कलाकार प्रायः मौलिक विचारक हुआ भी नहीं करता। उसकी विशेषता पहले ही से सोची हुई या अन्वेषित बात को प्रभावशाली, भावपूर्ण या विचार एवं तर्कपूर्ण ढंग से हमारे सामने रखने मे होती है। इस दृष्टि से देखने पर मंगला जी को उनकी अवस्था के अनुसार यथेष्ट सफलता मिली है। आपकी कहानियों से सामाजिक एवं राजनीतिक सुधार की आप की प्रचण्ड इच्छा, अत्याचार के विरुद्ध क्षोभ एवं क्रोध तथा पीड़ित असहाय व्यक्तियों के प्रति आपकी सहानुभूति एवं दया का परिचय मिलता है। 'गरीब की आबरू' मे आप यह दिखलाने का प्रयत्न करती हैं कि किस प्रकार धनी लोग गरीब स्त्रियों तथा गरीब घर की लड़कियो की प्रतिष्ठा रुपये अथवा पशुबल के द्वारा नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। इस कहानी में आपकी नायिका खिड़की से नीचे कूदकर अपने सतीत्व की रक्षा करती है, हालाँकि इससे उसे काफी शारीरिक चोट पहुँचती है।

मंगला जी की कहानियों मे वाह्य समस्याओं की प्रधानता

के कारण पात्रों के चरित्र-चित्रण पर कम ध्यान दिया गया है। कहानी पढ़ने के बाद सामाजिक धार्मिक और आर्थिक समस्यायें हमारे मस्तिष्क मे गूँजने लगती है और पात्र प्रायः तिरोहित हो जाते हैं। कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि आप को मनुष्य के विषय में उसके चरित्र, आचरण व्यवहार आदि का कोई ज्ञान या अनुभव नहीं है। बीच-बीच में आप मनुष्य की प्रवृत्तियों के सामान्य रूपों पर काफी स्वतन्त्र एवं मौलिक विचार प्रकट करती चलती हैं जो उस समय की रमणी के लिये आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं। समय को देखते हुए स्त्री-पुरुष के यौनगत सम्बन्ध विशेषकर पुरुषो की मनचली, भद्दी और अश्लील प्रवृत्ति के विषय में आपके विचार काफी सही मौलिक और स्वतन्त्र हैं जिन्हें आप बिना किसी हिचकिचाहट के प्रकट करती हैं। किन्तु यह सब वाह्य समस्याओं के स्वरूप को प्रकट करने के लिये किया जाता है। इसका प्रयोग पात्रों के चरित्र-चित्रण में नहीं होता। आपके पात्र वाह्य समस्याओं के स्पष्टीकरण के लिये प्रयुक्त-से दिखाई पड़ते हैं।

ऐसी अवस्था में पात्रों का चरित्र-विकास सम्भव नहीं है। मानवी प्रवृत्तियो का चित्रण वाह्य समस्याओं के साथ ही होता है। इन्हीं प्रवृत्तियो के चित्रण के सिलसिले में पात्रों को जो भी व्यक्तित्व प्राप्त हो जाता है, पाठक को उसी से सन्तोष कर लेना पड़ता है। वास्तव में गल्प-साहित्य-सृजन, अवस्था एवं अनुभवों की वृद्धि से प्रौढ़ होता है। निश्चय ही भविष्य में आप पूर्ण सफलता प्राप्त करतीं, किन्तु कराल काल ने वह न होने दिया। आपकी कहानी-कला एक नवयुवती की प्रारम्भिक साधना मात्र है।

कहानी-कला का एक रहस्य इस बात को गोप्य रखने में है कि आगे क्या होगा। इससे पाठक का कूतूहल और जिज्ञासा

बनी रहती है। 'उसने कहा था' की सफलता का एक कारण यह भी है। यह बात विशेष रूप से हम श्रीमती चन्द्रप्रभा द्विवेदी और सुश्री हीरा देवी चतुर्वेदी की रचनाओं में भी पाते हैं; किन्तु मंगला जी की रचनाओं में इस बात का समुचित निर्वाह नहीं हो पाया। आज का पाठक उनकी कहानी-कला की स्पष्टता या सरलता पर चकित रह जाता है। सम्भवतः आगे चलकर यह कमी भी दूर हो जाती।

ग़रीब की आबरू

किसी भी युवती की ओर पुरुषों की दृष्टि का आकर्षित हो जाना आश्चर्य की बात नहीं। चाहे वह कितना ही उच्च चरित्र का व्यक्ति हो। वह चाहता भी रहेगा कि उस ओर न देखे, पर स्वभावतः बरबस उसकी आँखे उठ ही जाएँगी।

गाँव के निश्छल भोले जीवन में पली रधिया को शहर के किसी युवक के साथ बातचीत करने का संयोग नहीं आया था। यह पहला ही मौका था जब कि आज दूध देने जाकर उसे रमेश बाबू से पैसा माँगने को बाध्य होना पड़ा था। सङ्कोच से काँपते गले से उसने रमेश बाबू से कहा—'भैया, दूध का दाम बाबू ने माँगा है।' कालेज की उच्च शिक्षा प्राप्त, धनी बाप का बिगड़ा दिल बेटा, रमेश उसकी ओर एकटक ताकते हुए बोला—'इस समय तो नोट भुनाना है, दूसरे दिन आकर ले जाना।' रधिया का कलेजा रमेश बाबू की उस आँख को देख कर काँप गया। वह लज्जा से सिमटती, एक अज्ञात भय से कापती हुई वहाँ से दूध का खाली लोटा लिए चली आई। उसने तै कर लिया कि जब तक रमेश बाबू फिर गाँव से

कालेज न चले जायँगे, तब तक वह उनके घर दूध देने न जायगी।

२

अन्धा वृद्ध पिता, जर्जर-वृद्धा माता, दोनों भाई-भौजाई द्वारा तिरस्कृत, ऐसी अवस्था में रधिया अगर खुद गाँव-गाँव घूम कर, दूसरों के सम्मुख हाथ फैला कर न लावे तो कैसे पापी पेट माने? भाई-भौजाई हैं, पर वह सब अपने ऐश-आराम में वृद्धा माता, और वृद्ध पिता की चिन्ता नहीं करते। रधिया के माता-पिता जी मे सोचते—'अगर रधिया चली जायगी, उसके ससुराल वाले उसका गौना करा ले जायँगे, तो हम लोगों की क्या दशा होगी? पेट की नौका किस तीर पर जाकर लगेगी?'

सुबह रधिया की माँ ने उससे कहा—'बिटिया, जा रमेश बाबू की माँ को दूध दे आ।' रधिया चुपचाप खड़ी रह गई। माता ने फिर पूछा—'खड़ी क्यों है; जाती क्यों नहीं? रधिया ने हिम्मत करके दुलराये-से शब्दों में कहा—'माँ, मैं वहाँ न जाऊँगी, रमेश बाबू अपने दोस्तों के साथ दरवाजे पर बैठे रहते हैं, मुझे शर्म लगती है, तुम ज़रा चली जाओ, दूध भी दे आओ और दाम भी माँगती आना।' जमाने का हर तरह का व्यवहार देख चुकने वाली रधिया की माँ ने सब समझ लिया। और हाथ में दूध लिया, लाठी उठाई और टेकती हुई रमेश बाबू की कोठी की ओर चली। फाटक पर पहुँचते ही देखा, चौकी पर रमेश बाबू अपने तीन मित्रो के साथ बैठे है, हँसी-मजाक का बाज़ार गर्म है, चाण्डाल-चौकड़ी जमी है। बुढ़िया को देखते ही रमेश बाबू ने कहा—'आज तुम्हारे यहाँ से दूध क्यो नहीं आया बुढ़िया? माँ पूछ रही थीं।' बुढ़िया ने स्पष्ट देखा, 'माँ पूछ रही थीं' कहते समय रमेश बाबू का मुख चोर की तरह हो

गया था। बुढ़िया ने रमेश बाबू से कहा—'बेटा, यह क्या लाई हूँ, जरा देर हो गई। आज तो बेटा, होली के भी दस ही दिन रह गये, दूध का दाम मिलना चाहिए।' रमेश बाबू ने कहा—'किसी दूसरे दिन ले जाना' फिर कुछ सहमते-से शब्दों मे कहा—तुम बहुत बूढ़ी हुई, तुमसे दूर चलते तो न बनता होगा ?' कह कर उन्होंने अपने दोस्तों की ओर एक अर्थ-पूर्ण दृष्टि से देखा। बुढ़िया ने कहा—'क्या कहूँ बेटा ? भाग्य का लिखा भुगत रही हूँ।' फिर वह भीतर गई, दूध दिया और अपने घर चली गई।

३

रधिया की माँ ने कष्ट से खाँसते हुए कहा—'राधा बेटी, जा रमेश बाबू के घर दूध देती आ और कह देना कि आज खाने के लिए अनाज खरीदना है, पैसा दे दो, जा बेटी, होली कल ही है। लाज की कोई बात नहीं है। ज़मींदार और बाप बराबर होता है।' रधिया दूध का लोटा लिये रमेश बाबू के घर की ओर चल पड़ी और सोचने लगी—अगर रमेश बाबू घर पर न होते तो बड़ा अच्छा होता। वे अपनी बड़ी-बड़ी लाल लाल आँखों से मुझे ऐसे घूरते हैं कि मैं लाज से मर जाती हूँ। अभी चौथे रोज़ रमेश बाबू के छोटे भाई वीरेश बाबू के बदन में रमुआ ने खेल-खेल में जरा सी मिट्टी लगा दी थी तो रमेश बाबू ने उसे पीटते-पीटते अधमरा कर दिया था। अगर मैं भी धनवान होती, मेरे बाप के पास भी महल होते, घोड़े होते, नौकर खूब से होते, और तब वह मेरी ओर इस तरह घूरते तो मैं उनकी खाल उधड़वा लेती। पर हाय, मैं तो एक ग़रीब किसान की लड़की हूँ; सेवा करने पर भी लात खाने वाली। एकाएक चौंक कर रधिया ने देखा कि वह फाटक पर पहुँच गई है, सामने रमेश बाबू अपने कुछ मित्रों के साथ खड़े उसे घूर रहे हैं। वह जल्दी-

जल्दी बग़ल से निकल कर ऊपर चली गई। दूध दूसरे बर्तन मे ढाल कर उसने रमेश बाबू की माता से कहा—'मैया, दूध का दाम आज माँ ने माँगा है, कल होली है, घर में नाज का एक दाना भी नहीं है'। रमेश बाबू की माँ ने कहा—'बेटी, मेरे पास तो भुना रुपया नहीं है। नीचे रमेश होगा उससे माँग लेना, वह दे देगा'। रधिया उठी क़साई के खूँटे पर बँधी हुई गाय के समान काँपती हुई नीचे चली। नीचे जाकर देखा, रमेश बाबू जहाँ-के-तहाँ वैसे ही खड़े है। वह सहम गई, पैर जैसे आगे बढ़ ही नही रहे थे, बँध से गए थे। पर ग़रीबी के पाप ने, दीनता के अभिशाप ने प्रेरणा की, वह आगे बढ़ी और कहा—'मैया, दूध का दाम मिलना चाहिए। 'रमेश बाबू ने मुस्करा कर कहा—'हाँ-हाँ, तुम कल दोपहर को आकर ले जाना, कल ज़रूर दे दूँगा।' रधिया को ज्यादा हठ करके माँगने की हिम्मत नहीं हुई। वह चली आई और चलते-चलते देखा, रमेश बाबू अपने दोस्त से कह रहे है— क्यों विनायक, कल होली है न यार; कल शाम को भङ्ग बनेगी और······। 'रधिया का कलेजा काँप गया, उफ उस 'और' के साथ ही उसने देखा, उनकी नाचती हुई आँखो के कोने मे वासना का एक पारावार उमड़ पड़ा था।

४

फागुन का मस्त महीना, बसन्त ऋतु, होली का दिन, भङ्ग की बहार—इन चारो ने मिल कर गाँव के बूढ़े, जवान, अधेड़, लड़के सभी में एक नई जान फूँक दी है। लड़के डफ बजा-बजा कर कूद-कूद कर गा रहे हैं। युवतियाँ अपने पतियों को प्रसन्न करने के लिए तरह-तरह के शृंगार मे लीन हैं। युवक जवानी के नशे मे चूर भङ्ग पीकर मस्त, इधर-उधर घूम-घूम कर युवतियों को रङ्ग से सराबोर कर रहे हैं। रधिया भी इसी रङ्गीली

दुनिया की एक अंश है, सुन्दरी नवयुवती है। सफेद धोती पहने, सिन्दूर की बिन्दी लगाये, सखियो के संग घूम-घूम कर नाते रिश्ते की भौजाइयो से रङ्ग खेल रही थी। सारी धोती रङ्ग से सराबोर हो गई है, पर उसके पास दूसरी धोती भी तो नहीं है जो वह बदल डाले। खेल कूद मे पता ही नहीं चला कि कैसे इतनी जल्दी सन्ध्या हो गई। सब सखियाँ खाने-पीने गईं, और तब रधिया का ध्यान अपनी झोपड़ी की ओर गया। सोचा, वह क्या खाएगी घर मे तो एक दाना भी नहीं है। और उसके साथ ही उसकी आँखो के आगे रमेश की वे शरारती आँखें छाया-चित्र की तरह घूम गईं। वह सिहर उठी। अपने अस्त-व्यस्त कपड़े को ठीक करके घर की ओर चली। दरवाज़े पर से ही उसने अपनी माँ को आवाज़ लगाई—'माँ अरी माँ!' घर के भीतर से एक हल्की आवाज़ आई—'क्या बेटी?' अपनी दीन-मलीन झोपड़ी के दालान मे पहुँच कर उसने देखा, उसकी वृद्धा माता बाँस की खाट पर बैठी तम्बाकू पी रही है। रधिया हाँफती हुई जाकर अपनी माँ की गोद में गिर पड़ी। रधिया की माँ प्यार से उसके सर पर हाथ फेरने लगी। १५ मिनट बाद वृद्धा ने रधिया से कहा—'राधा? घर मे तो अनाज का एक दाना भी नहीं है, बेटी कैसे क्या होगा? आज ही रमेश बाबू ने तुझे बुलाया था न? तो जा, मेरी बेटी? रुपया माँगती आ। आज वर्ष भर का होली का शुभ दिन है। क्या आज भी उपास होगा?' ओह, कितनी करुणा थी उन शब्दो में। रधिया माँ की गोद से चट से निकल कर बैठ गई और कहा—'माँ, कह तो जमुना काकी के घर से थोड़ा सा आटा माँग लाऊँ, फिर दूसरे दिन पीस कर दे दूँगी?' बुढ़िया ने कहा—'बिटिया, आज के दिन कोई उधार न देगा, अपनी लक्ष्मी कोई बाहर न जाने देगा। जाओ चली जाओ, दौड़ कर लेती आओ।' रधिया का प्रसन्न

हँसता हुआ चेहरा मलीन पड़ गया! होठ सूख-से गए और एक लम्बी सी साँस खींच कर रधिया दरवाज़े की ओर बढ़ी। बाहर आकर रधिया ने सुना, उसकी माँ कह रही है—'भगवान इस दुनिया से जल्दी छुड़ाओ।'

५

महल के बड़े फाटक के भीतर घुसते ही रधिया ने देखा, ऊपर के बड़े कमरे मे रमेश बाबू उन्हीं पूर्व-परिचत मित्रों के साथ बैठे एकटक सामने की ओर देख रहे हैं, मानो किसी की इन्तज़ारी कर रहे है। रधिया को देख कर रमेश बाबू ने अपने दोस्तो को कुछ इशारा किया। वे उठ कर दूसरे कमरे में चले गये। बेचारी असहाय रधिया काँपती, सिकुड़ती, डरती जाकर रमेश बाबू के सामने खड़ी हो गई। कहा—'भैया, माँ ने रुपया माँगा है, खाने को ख़रीदना है, आज त्योहार का दिन है।' रमेश ने समझ लिया, घर में दाना नहीं है, माँ ने माँग लाने को बाध्य किया है, तभी यह इस समय यहाँ आ सकी है। रमेश ने जेब में हाथ डाल कर बहुत से रुपये खनखनाते हुए निकाले और कहा—'ले।' रधिया खड़ी रही। कैसे कमरे में घुस कर चौकी के पास जाय? रमेश बाबू ने मुस्काते हुए कहा—'डरती क्यो है? यहाँ आकर बैठ और बता कि तेरा कितना होता है?' रधिया ने कहा—'भैया, मेरा ३) रु० होता है, दे दीजिये, मैं जाऊँ। अबेर हो जायेगी तो सामान न मिलेगा।' रमेश बाबू ने मधुर स्वर में कहा—'तो ले न भाई, मैं कब कहता हूँ कि यहाँ बैठी रह।' रधिया के पसीना छूट गया और वह काँपती हुई बढ़ी। थोड़ी देर दोनों चुप रहे। रधिया घायल हरिणी की तरह मन-ही-मन तड़प रही थी। संयत भाषा में बोली—'भैया, दे दो, जाऊँ।' रमेश के मुँह का रङ्ग पल-पल में

बदल रहा था। इतने में बाहर से दर्वाज़ा बन्द हो गया और साथ ही खुली हुई खिड़की के नीचे उद्यान में एक धमाके की आवाज़ हुई।

× × ×

रात की कालिमा संसार पर अधिकार कर चुकी थी। रमेश बाबू ने नौकर को आवाज़ दी—'रमुआ, रमुआ'। रमुआ दौड़ता हुआ आया। रमेश ने रमुआ की मुट्ठी गरम की और कहा—'रधिया को डोली पर सुला कर उसके घर पहुँचा आओ और कह देना कि बाबू-जी के घर कोठे के जीने से फिसल कर गिर गई थी। माँ जी तभी से उसकी सेवा कर रही थीं। उन्हीं ने जब इसको कुछ होश हुआ है तो पहुँचाने को कहा है। यह लो तीन रुपया, उसकी माँ को दे देना।'

रधिया उठा कर, डोली पर लाद कर घर लाई गई। माता उसे देख कर चिल्ला पड़ी, पर पूछने पर रमुआ ने शोक-भरे शब्दों में रमेश द्वारा सिखाई हुई बातें कह सुनाईं और उसके हाथ पर तीन रुपया रख दिया। रुपया देकर नौकर चला गया। वृद्धा माता बैठी रधिया को लेकर अपनी क़िस्मत को रो रही थी। आधे घन्टे के बाद रधिया को फिर होश हुआ। उसकी अधखुली सभीत आँखों में एक ऐसा प्रश्न था, जिसका उत्तर दीनों का बन्धु ही दे सकता है। माँ ने सब बातें समझ लीं और एक मजबूरी की साँस लेकर बोली—'हाय, गरीब के भी कहीं आबरू होती है; जिसे बचाने के लिये तूने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी।'

—:०:—



कुमारी सावित्री कुच्छल एम० ए० एल टी०



सुश्री हीरा देवी चतुर्वेदी

हीरा देवी चतुर्वेदी

सुश्री हीरा देवी चतुर्वेदी का जन्म २ मई सन् १६१५ ई० को एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण-परिवार में हुआ। आप के पिता पं०-दुर्गा प्रसाद पाठक ने महिला नार्मल स्कूल में आपकी शिक्षा तथा अध्ययन की समुचित व्यवस्था कर दी। पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त बाल्यावस्था से ही कविता, नाटक तथा कहानियों की ओर आप को विशेष रुचि थी। विवाह के पश्चात् आप की रचनाओं को विकास का यथेष्ट अवसर उपलब्ध हुआ।

सम्प्रति हीरा जी अपने पति पं० देवी दयाल जी चतुर्वेदी 'मस्त' के साथ इलाहाबाद मे रहती है। पं० देवी दयाल जी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि एवं सुलेखक है और आज-कल प्रयाग में रह कर 'सरस्वती' का सम्पादन कर रहे हैं। हम लोगों के लिए यह परम सौभाग्य एवं हर्ष की बात है कि पति-पत्नी दोनों हिन्दी साहित्य की मूल्यवान सेवा मे संलग्न हैं। दो-चार ऐसे ही और दम्पतियों के मैदान मे आ जाने से हमारा बड़ा कल्याण होता।

विवाह के पूर्व ही हीरा देवी जी की साहित्यिक सेवा प्रारम्भ हो चुकी थी। यह प्रयत्न अब तक अबाध रूप से जारी है। आप कहानी-लेखिका के अतिरिक्त कवियित्री भी हैं। दोनों क्षेत्रों में आप को समान सफलता उपलब्ध है; फिर भी आपकी कहानियों का क्षेत्र अपेक्षाकृत काफी अधिक व्यापक विचारपूर्ण विश्लेषणात्मक, नाटकीय एवं निरीक्षण-पूर्ण है। बीच-बीच में आपके प्रकृति-चित्रण, भाव-चित्रण, तथा जीवन के प्रति काव्यमय

दार्शनिक भाव भी आपके कथानकों मे आ जाते है। आपके व्यक्तित्व के सभी तत्व जिनकी अभिव्यंजना कोई साहित्य-कार शिष्टता एवं मर्यादा आदि पर ध्यान रखते हुए कर सकता है, आपकी कहानियो मे आ जाते हैं। साथ ही राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक तथा जीवन के सुख-दुख, सफलता-असफलता आदि जैसे जटिल प्रश्नो से सम्बन्धित आपके विचार भी प्रकट हो जाते है। संक्षेप मे हम आपकी कहानियो को आपके संम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रतिनिधि अथवा आपके व्यक्तित्व को यथेष्ट मात्रा में प्रकट करने का साधन मान सकते हैं।

आपकी कविताओं में व्यक्तित्व-अभिव्यंजना की दृष्टि से एकांगिता हैं। वे आपके केवल भावना एवं कल्पना-जगत को हमारे सामने ला पाती हैं। अस्तु, उनमें सौन्दर्य, एवं आकर्षण अधिक है, किन्तु जीवन की विविध समस्याओ के प्रति आपके भावों तथा विचारों का परिचय न दे सकने के कारण उनमें वह पूर्णता नहीं है जो आपकी कहानियों में मिलती है।

आप की कहानियों से ज्ञात होता है कि आप इस क्षेत्र में काफी समय से कार्यरत है। उसमें हमें एक परिष्कृत निश्चित, तथा स्पष्ट शैली के दर्शन होते हैं। यह बात हमें कहानी के प्रायः सभी तत्वो, चरित्र-चित्रण, कूतूहल, उद्देश्य कथा-विकास, और भाषा आदि—में मिलती है। यद्यपि यह कहना तो अनुचित होगा कि साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से उनकी सभी कहानियों को समान समझा जा सकता है, तथापि उनमें इतना सादृश्य अवश्य मिलता है कि पाठक उनमें लेखक की एकरूपता को परख कर सकें। संक्षेप मे सतत अभ्यास से कला-क्षेत्र में जो कुछ प्राप्त हो सकता है वह देवी जी को प्राप्त हो चुका है। जिस सीमा तक उनकी कहानी-कला पहुँच चुकी है, उससे आगे अब

कला-दृष्टि से—मानवी भावनाओ, कल्पनाओ तथा जीवन-दर्शन की दृष्टि से और आगे जाना आपके लिये कठिन है। भाषा मे चाहे भले ही थाड़ा-बहुत परिष्कार हो जाय, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं के विषय मे विचार चाहे अधिक परिपक्व या परिवर्तित हो जायँ; किन्तु रचनाकार की भावना एवं कल्पना-शक्ति, सहानुभूति एवं समवेदना संक्षेप में पाठक को प्रभावित करने, हँसाने, रुलाने, भयतीत करने, उत्साहित और करुणाद्र करने आदि की शक्ति अपनी पराकाष्टा पर पहुँच चुकी है।

आपकी कहानियों का यथेष्ट प्रभाव हम पर पड़ता है; फिर भी हम यही अनुभव करते है कि ये कहानियाँ द्वितीय श्रेणी की है। स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दी-स्त्री- साहित्यकार कहानी, उपन्यास तथा नाटक के क्षेत्र मे अभी तक विशेष सफलता नहीं प्राप्त कर सकी हैं। कम-से-कम गल्प-क्षेत्र में अधिकांश देवियो की रचनायें तृतीय श्रेणी की ही समझी जायँगी। यह जरा हास्यास्पद अवश्य प्रतीत होता है कि हम उन्हें श्रेणियो में उसी तरह विभक्त कर रहे हैं, मानो उन्हे कोई परीक्षा उत्तीर्ण करनी हो, किन्तु उनके वास्तविक मूल्य को समझने मे यह श्रेणी-निर्देश अधिक सहायक हो सकता है। अस्तु, हीरा जी को हम स्त्री-कहानीकारों मे एक श्रेष्ठ स्थान की अधिकारिणी मान सकते है। यही नही उन्हें हिन्दी कहानीकारों में आदरणीय स्थान दिया जा सकता है।

हीरादेवी जी की जीवन-दृष्टि अत्यंत व्यापक है। उनकी कहानियो के पढ़ने से सामान्य जीवन की अखिलता का बोध होता है। आपकी कहानियों में प्रायः सामान्य जीवन की अनेक समस्या अपने विविध रूपो में मिलती है। इन में आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओ को प्रधानता मिली है। आर्थिक दृष्टि से

लेखिका साम्यवादी विचारो मे विश्वास रखती है। वास्तव में यह युग ही साम्यवाद का है। अब वे लोग भी जो अपनी क्रियाओ में पूंजीवादी हैं, साम्यवादी बनने का पाखण्ड करते ही हैं। हमारा प्रगतिवादी साहित्य साम्यवाद की भूमिका पर चल रहा है, किन्तु हीरादेवी जो को साम्यवादी सिद्धान्तों से कोई प्रयोजन नही है। उनको इस पागलपन से कुछ लेना-देना नहीं। वे गरीबो से वास्तविक सहानुभूति रखती है; उन्हे इस बात पर कष्ट होता है कि नित्य ही उनका शोषण तथा अपमान होता है। वे उनकी आर्थिक समस्याओं का चित्रण उनकी अन्य समस्याओं कौटुम्बिक, सामाजिक, पारस्परिक रहन-सहन, स्त्री-पुरुष-संबन्ध आदि की संगति में रखकर करती है। फलतः आपकी कहानियों मे आर्थिक पहलू जीवन का एक अंग बनकर आता है। आप उस प्रचारक-वृत्ति से सर्वथा मुक्त हैं जो साहित्यकार को वास्तविकता के प्रति अन्धा बनाकर किसी सिद्धान्त अथवा पार्टी का अन्ध-उपासक बनाकर उसके साहित्य को अपूर्ण ही नहीं, वरन् अवास्तविक, असंतुलित तथा पक्षपात-पूर्ण बना देता है, अवश्य कहीं-कहीं आप आर्थिक प्रश्नो पर अपेक्षाकृत अनावश्यक बातें लिख देती हैं पर अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये शीघ्रता कर जाती हैं, किन्तु इससे आपको कहानियां को कला की दृष्टि से विशेष हानि नहीं पहुँची है।

आपकी कहानियों में जीवन सर्वत्र अपनी बहुरूपता में मिलता है। फलतः उनमें हमें किसी एक पहलू की विशेषता नहीं मिलती। एक ओर जहाँ गरीबों के आर्थिक कष्टों का चित्रण है तो दूसरी ओर उनकी कौटुम्बिक समस्यायें, अन्धविश्वास, पारस्परिक प्रेम झगड़े, वैमनस्य आदि का भी वर्णन मिलता है। आप में व्यर्थ गलदश्रु भावुकता नहीं मिलती जिसके कारण कितने

ही कवि तथा गल्प-लेखक गरीबों का कृत्रिम और अस्वाभाविक चित्र हमारे सामने रख गये हैं। उनके निकट गरीब लोग पूर्ण निर्दोष, धार्मिक, परोपकारी, निरीह, ईमानदार तथा सर्वदा दया के पात्र हैं, उनमें कोई दोष है ही नहीं और उनके शोषक दानवता से पूर्ण, बेईमान, दुष्ट, दुश्चरित्र एवं ठग आदि हैं। इससे बढ़कर और क्या गलत तथा पक्षपातपूर्ण धारणा हो सकती है? गरीब होना सभी अच्छाइयों को प्राप्त कर लेने का कोई प्रमाण पत्र नहीं है और न अमीरी तथा बुराई में कोई कार्य-कारण सम्बन्ध ही है। धनाभाव से मनुष्य मे प्रायः अनेक दोष पैदा हो जाते हैं। उसकी दयालुता, दानशीलता, तथा सौम्यता आदि गुण नष्ट हो सकते हैं। पेट की ही चिन्ता मे चौबीसों घण्टे व्यतीत करने वाला व्यक्ति जीवन की अन्य उच्च बातों तथा कलाओं को न सीख सकता है और न उनके विषय मे कुछ सोच सकता है। कुछ भी हो गरीबी और अमीरी से चरित्र का मापदण्ड नहीं हो सकता।

हीरादेवी जी इस सत्य से भली भाँति परिचित है। आपके दीन-हीन पात्रों में हम वास्तविकता पाते हैं। वे अशिक्षित होते हैं, सफाई पर कम ध्यान देते हैं; अपने भावों पर नियन्त्रण नहीं कर पाते। साथ ही आप इस बात का भी ध्यान रखती है कि सभी पात्र चरित्र की दृष्टि से समान नहीं होते। उनके गुण-दोष, चाल-ढाल, व्यवहार आदि एक दूसरे से भिन्न होते है।

जहाँ तक चरित्र-चित्रण का प्रश्न है हीरादेवी जी को इसमे यद्यपि उच्चकोटि की नहीं, तथापि सराहनीय सफलता मिली है। आप पात्रों के मन में प्रविष्ट-सी जान पड़ती हैं। इसे आपकी उनके प्रति सहानुभूति का फल समझना चाहिए। पात्रों का चरित्र-चित्रण अधिक गहराई से न होने के कारण केवल उनका ऊपरी

स्वरूप, सामाजिक दौड़-धूप तथा 'साधारण मनोवैज्ञानिक रूप ही हमारे सामने आ पाता है। परिणामतः उनमें रंग-बिरंगापन तो होता है किन्तु ठोस व्यक्तित्व का अभाव रहता है, जिसके कारण आपका चरित्र-चित्रण हमे प्रभावित नहीं कर पाता।

चरित्र-चित्रण की शिथिलता के साथ ही आपकी रचनाओ मे चरित्र-विकास प्रायः नहीं के तुल्य है। चरित्र-विकास का सुविस्तृत अवसर उपन्यास में होता है। कहानियो के अल्प स्थान में चरित्र-विकास जरा कठिन समझा जाता है। अधिकांश कहानी-लेखक अपने को इस झंझट से दूर ही रखते हैं; किन्तु प्रेमचन्द की अनेक कहानियो में अद्भुत चरित्र-विकास मिलता है। परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से हमारे स्वभाव तथा दृष्टि-कोण मे परिवर्तन हो जाता है। बाल्यावस्था मे चंचल, उद्दण्ड, लापरवाह लड़के यौवन आते ही गम्भीर, शान्त और उत्तरदायी बन जाते हैं। श्रेष्ठ कलाकार इन परिवर्तनों को कारण-युक्त दिखलाकर, महान कहानी-कृतियों का सृजन कर डालते हैं। श्रीमती चन्द्रप्रभा द्विवेदी की कहानियो में भी हम इस विशेषता को पाते हैं। इस अभाव के कारण हीरादेवी जी की रचनाओं में हमें पात्रो के स्वभाव में आद्यंत एकरूपता दिखलाई पड़ती है।

अस्तु, आप की कहानियों मे संघर्ष का वह विस्तृत एवं विशाल रूप हमारे सामने नही आ पाता, जो पात्रों के परिस्थित्यानुकूल परिवर्तित होने से उत्पन्न होता है। संघर्ष तो अवश्य मिलता है; क्योंकि बिना संघर्ष के कहानी या नाटक आदि की रचना सम्भव ही नहीं है, किन्तु यह संघर्ष अपनी तीक्ष्णता एवं कसमकस में शिथिल प्रतीत होता है। आपके पात्रों में वार्तालाप या वाद-विवाद की प्रवृत्ति विशेष होती है जो संघर्ष का शत्रु समझी जाती है। संघर्ष की उत्पत्ति, गति एवं घनापन विरोधी

व्यक्तियों के कार्यों तथा मानसिक जगत मे एक ओर बुद्धि तथा दूसरी ओर भावो के द्वन्द्व से उत्पन्न होता है दूसरे प्रकार का संघर्ष, जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, आपकी कहानियो में नगण्य है। बाह्य संघर्ष पात्रों की विवादशील प्रवृत्ति से शिथिल पड़ जाता है।

आपके पात्रों का विवाद कभी-कभी लम्बा और बहुधा दार्शनिक या सैद्धान्तिक (Theoritical) होता है, किन्तु यह बात विशेष रूप से पढ़े-लिखे शिक्षित वर्ग में मिलती है। आपके अशिक्षित पात्र अपने सुख-दुख तथा समस्याओ के विषय में सीधे ढंग से प्रायः संक्षेप मे बातचीत करते हैं। उनसे जीवन की विशेष सहानुभूति एवं समवेदना प्रकट होती है। हीरादेवी भी बीच-बीच में जीवन की समस्याओं के प्रति अपने दार्शनिक या सैद्धान्तिक विचार प्रकट करती चलती हैं। इनमें कभी बुद्धि की और कभी भावना की प्रधानता होती है। ये भावना-प्रधान गद्य-खण्ड आपकी कवित्व-शक्ति के द्योतक होते हैं। सैद्धान्तिक अथवा भावपूर्ण गद्य के अतिरिक्त पात्रों की परिस्थितियो, वेश-भूषा आदि का वर्णन करने के लिये आप वर्णनात्मक गद्य का प्रयोग करती हैं।

यह गद्य प्रसंगानुकूल आपकी समवेदना, सहानुभूति, व्यंग्य, उपहास, क्रोध एवं अस्वीकृति आदि चरित्र-तत्वों से युक्त रहता है, किन्तु ये तत्व बहुत स्पष्ट न होकर उसमें छिपे-से रहते हैं। यह सम्पादकीय गुण आप में सर्वत्र मिलता है। इसका पाया जाना स्वाभाविक भी है क्योंकि आप काफी समय तक 'मनोरमा' नामक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका का सम्पादन भी कर चुकी हैं और सम्पादकीय संसार से आपका घनिष्ट सम्बन्ध-रहा है। परिणामतः आप आधुनिक हिन्दी साहित्यकार की आर्थिक दुर्दशा से भलीभाँति परिचित हैं। आपकी कई कहा-

नियो मे यह शोषित बौद्धिक वर्ग अपने नग्न दैन्य को लिए हुए अत्यन्त भीषणता से प्रकट होता है, अहर्निशि प्रकाशक लोग जिसका शोषण करके उत्तरोत्तर मोटे हो रहे हैं।

हीरादेवी जी का प्राकृतिक चित्रण भी उल्लेखनीय है। प्रकृति का चित्रण आप एक ऐसे वास्तविक प्रकृति-प्रेमी की लेखनी से करती हैं जिसे प्रकृति मे सर्वत्र सौन्दर्य दिखलाई पड़ता है। ये चित्रण होते तो हैं छोटे; किन्तु मिलते हैं आपकी प्रत्येक कहानी मे। इनसे कहानियो का आकर्षण बढ़ जाता है।

आपकी कहानियो मे कभी-कभी कुछ ऐसी भी बाते मिल जाती हैं जिन्हें हम अप्रयोज्य कह सकते हैं। कभी-कभी आप कहानी के साधारण वर्णन से अकस्मात उठकर बड़े तीक्ष्ण भावपूर्ण अर्थ या निर्णय निकालने लगती हैं जो कहानी की प्रकृति के प्रतिकूल होता है। दैनिक जीवन, घर. परिवार, सड़क तथा शहर की साधारण वस्तुओ का लम्बा-चौड़ा वर्णन कभी-कभी पाठक की दिलचस्पी तथा कुतूहल को कम कर देता है।

आपकी भाषा सरल, मधुर एवं साहित्यिक है। उसके तीन प्रकार के रूप पाये जाते है। वर्णनात्मक, भावात्मक तथा भावपूर्ण दार्शनिक। इनमें प्रथम रूप की अधिकता है। भावात्मक भाषा प्रकृति-चित्रण तथा भावो के वर्णन में मिलती है। आपकी भाषा एक सम्पादक की भाषा से मिलती-जुलती है जो एक निश्चित परिष्कृत पथ पर चलती है; किन्तु कहीं-कहीं अपने साधारणत्व से ऊपर उठकर कुछ उष्ण और भावात्मक स्वरूप को अपना लेती है और कुछ समय बाद पुनः अपने चिरपरिचित ढर्रे पर आ लगती है। आप की भाषा को साधारण पढ़े-लिखे लोग आसानी से समझ सकते हैं।

अब तक आप की निम्नलिखित रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं:—

कविता-संग्रह— (१) मंजरी (२) नीलम (३) मधुवन।
कहानी-संग्रह— उलझी लड़ियाँ
निबन्ध संग्रह— घर की शोभा
एकाङ्की नाटकों का संग्रह— रङ्गीन परदा

मोल-तोल

तार-तार-सी हो चुकी साड़ी मे पैबन्द लगाने की कहीं कोई गुंजाइश नहीं, फिर भी कमला सुई-धागा लेकर अपनी साड़ी मे पैबन्द लगा रही है। इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न ही नहीं। दुनिया में बहुत-से काम मानव को अनिच्छापूर्वक भी करने पड़ते हैं न। सो, पैबन्द लगाने का यह काम भी कमला अनिच्छा-पूर्वक ही कर रही है। ऐसे काम करते समय मानव का मन स्वभावतः भटक जाता है। काम पर वह केन्द्रित नहीं रह पाता। कमला के हाथों की अंगुलियाँ सुई-धागे के साथ पैबन्द लगा रही हैं, उसकी आँखें इस काम को यथाविधि देख रही हैं; लेकिन उसका मन अतीत के निकुञ्जों में भटक रहा है। हाँ, भटकना ही तो इसे कहा जायेगा। कभी अतीत के सुनहरे दिनों, कभी वर्तमान के नीरस दिनों और कभी भविष्य के अदृश्य दिनों की अस्पष्ट-सी पगडण्डी पर जो लक्ष्यहीन-सा दौड़ रहा हो, वह भ्रमित नहीं तो और क्या है?

बचपन के सुनहरे क्षणों को कमला कोई महत्त्व नहीं देती। लड़की होकर माता-पिता की छाया में सदा रह सकना सम्भव जो नहीं! कभी कभी वह इतना अवश्य सोचती है कि जन्म देकर लाड-दुलार से पुत्री के पालन-पोषण और उसकी तोतली बातों से लेकर उसके बिदा हो जाने के समय के कातर रुदन तक, जिन स्मृतियों का पुंज माता-पिता सहेजकर अपने पल्ले बाँध रखते

हैं, वह पता नहीं किस अभिशाप के कारण, लड़की की ससुराल भेज देने की विवश कठोर शिला से टकराकर छिन्न-भिन्न हो जाता और माता-पिता को बेबस बना जाता है।

नये घर मे जाकर शायद कुछ समय के बाद अनुकूल वातावरण पाकर लड़की भले ही उन सारी बातों को भूल जाती हो, लेकिन माता-पिता इन बातो को कभी भुला नहीं पाते। जो कुछ भी हो, दुनियादारी के रस्म-रवाजों का बन्धन धीरे-धीरे कमला को भी ऐसा ही बना चुका है—उसे बन जाना पड़ा है। कहाँ तक माता-पिता की सुखद स्मृतियों का स्मरण कर वह तिलमिलाती रहे। इसीलिए वह बचपन की स्मृतियों में कभी उलझती नहीं।

लेकिन तरुणाई की रङ्गीनियों को—दाम्पत्य जीवन के प्रारम्भिक क्षणों को—वह कैसे भूले? पाणिग्रहण के समय की वह चिरस्मरणीय सात फेरियाँ। हर्षोल्लास के उस वातावरण में पहली बार जब कमला की माँग लाल-लाल सिन्दूर से भरी गई, उसकी कोमल कलाइयो मे दो-दो सोने की और चार-चार काँच की चूड़ियाँ हौले-हौले पहनाई गईं, पैरो में महावर की लाल-लाल रेखाएँ रञ्जित की गईं, और जीवन-सङ्गी के साथ जब वह अपने कहे जानेवाले, किन्तु सर्वथा अपरिचित घर मे आई, तब उसकी मनोदशा बहुत ही अजीबो-ग़रीब-सी थी।

हर्ष और विषाद के दो विशद क्षेत्रों को मिलानेवाली देहरी पर वह खड़ी थी। जीवन-सङ्गी से मिलकर दाम्पत्य जीवन की रङ्गीनियो के स्पर्श करने का हर्ष जहाँ उसके मानस-सर में उद्वेलित हो रहा था, वहीं माता-पिता से बिछुड़ जाने का विषाद भी हिलोरें ले रहा था।

ससुराल में आकर कमला को संयुक्त परिवार की परेशानियों का सामना कभी नहीं करना पड़ा। एकमात्र बूढ़ी सास थीं यहाँ।

सो, वह भी दो साल के बाद इस दुनिया से कूच कर गई। ननद-ननदोई अथवा देवर-देवरानियाँ कोई नही थी। आधुनिक युग के संघर्षशील वातावरण में इन सबको कमला अभिशाप नहीं, प्रत्युत वरदान समझती है। कमला के जीवन-संगी मोहन बाबू भी कभी-कभी कह उठते हैं—'आजकल की परेशानियो के वक्त मे जिस परिवार में जितने कम व्यक्ति हों, उतना ही अच्छा है, कमला !"

'क्यों नहीं !' कमला शायद विद्रूप के स्वर मे कहती—' जो सर्वथा एकाकी रहता होगा, वह सबसे अधिक चैन में है।'

कमला के इस विद्रूप को मोहन बाबू समझ नहीं पाते, अधिक स्पष्टीकरण की अपेक्षा करते हुए उसकी तरफ़ वह एकटक देखने लगते। तभी कमला कह देती—'मेरा मतलब है कि पत्नी भी जिसके न हो वह बड़े मजे में रहता होगा।'

मोहन ने पहली बार जब यह सुना, तो एक धक्का-सा लगा हृदय पर। कमला के इस उद्‌गार में जो विद्रूप था; उसे वह भली भाँति समझ गया। उसने स्वीकार किया कि यह सब कमला के प्रति व्यक्त की गई उसकी झुँझलाहट का ही करारा जवाब उसे दिया जा रहा है। वह चुप रह गया एक क्षण के लिए। कमला को कोई उत्तर देने के पहले उसने अपने ही व्यवहार की मीमांसा कर लेनी चाही।

कमला शायद ठीक ही कह रही है। दाम्पत्य जीवन की सुखद आशाओं को सँजोये वह अपने तन-मन का अर्घ्य जिसे अर्पित कर चुकी और प्रतिदान में जिसे एकाध साल ही सरसता का स्पर्श कर सकने के बाद रात-दिन तीखी झुँझलाहट और बात-बात मे बेरुखी फटकार सुननी पड़ती हो, उसका यह विद्रूप कदाचित् ठीक ही है।

अपराधी की तरह अपना दोष स्वीकार करते हुए मोहन बोला मेरा मतलब यह नहीं था, कमला ! लेकिन तुमने जो कुछ समझा वह भी गलत नहीं। यह मेरे स्वभाव की जबरदस्त त्रुटि है कि तनिक-तनिक-सी बात पर मैं खीझ उठता हूँ। क्या करूँ मैं ! अपनी भावुकता को सदा के लिए दफना देने की मैं कितनी कोशिश करता हूँ, लेकिन कभी कामयाबी हासिल नहीं हो पाती। उलटे मैं ही दग्ध होता जा रहा हूँ। कभी-कभी मैं सोचता हूँ, इन सबके लिए मेरे स्वभाव की कमजोरी शायद उतनी जिम्मेवार नहीं जितनी आज के युग की विषमता।'

कमला समझ गई कि उसके जीवन-सङ्गी अपने सरल हृदय की यह कैफियत दे रहे हैं। यह बात नहीं कि इनकी सदाशयता और सहृदयता पर कमला को आस्था नहीं। लेकिन रात-दिन की झुँझलाहट से उसका भी खीझ उठना स्वाभाविक-सा होता जा रहा है न ! फिर भी अपनी खीझ को संयमपूर्वक दबाते हुए कहा उसने—"खीझ और भावुकता—दोनों का उद्गम एक ही है। मस्तिष्क की जिन ग्रन्थियों से ये उद्भूत होती हैं, उन पर नियन्त्रण रख सकना आसान नहीं। लेकिन कोशिश तो हमें करनी ही चाहिए न ! फिर इस खीझ से जब मैं देखती हूँ कि तुम्हारे स्वास्थ्य पर भी धक्का पहुँच रहा है, तब मैं इसके उपचार का पता लगाने के लिए बहुत ही अधीर हो उठती हूँ।"

"खोज सकीं या नहीं, कोई उपचार ?"

"अब तक तो नहीं।"

"भविष्य में खोज सकने की कोई आशा है !'

"कह नहीं सकती !"

"तब व्यर्थ है अधीर होना, कमला !" मोहन ने कहा।

कमला जैसे अपना लक्ष्य-वेध कर चुकी थी। कहा उसने—'नाराज न हो तो यही बात आपके लिए भी लागू होती है। जिस

खीझ का कोई उपचार नहीं, जिस झुँझलाहट से कठिनाइयों के कम होने की कोई आशा नहीं, उसके लिए कोई प्रयत्न करना अथवा मानसिक ऊहापोह पर तिरना व्यर्थ ही है न! मैं तो यही कहना चाहती हूँ कि जीवन-संग्राम की कठिनाइयों का सामना धीरज के साथ करते जाइए। अपना मन कभी मैला न होने दीजिए। सफलता-असफलता, आशा-निराशा सबका सामना समान रूप से करते जाइए।'

और, कमला ने उस दिन की इस बातचीत का ऐसा कुछ प्रभाव देखा अपने पति पर कि उनका खीझ और झुँझलाहट अपने-आप तिरोहित होती गई। आज की असाधारण विषम परिस्थितियों में भी मोहन बाबू बराबर प्रसन्न दीखते हैं। लेकिन उनकी इस प्रसन्नता में अब कमला किसी कृत्रिमता का आभास पाने लगी है। हाँ, कृत्रिमता!

पहले किसी भी कठिनाई का स्पर्श करते ही मोहन बाबू घर में आते ही अपनी खीझ प्रकट करने लगते थे। उस खीझ से कमला को, मोहन बाबू के जीवन और उनकी भावनाओं को स्पर्श करनेवाली झंझटों का बहुत-कुछ पता चल जाता था। लेकिन अब! अब तो उसे पूछने पर भी कभी यह ज्ञात नहीं हो पाता कि घर के बाहर कहाँ, क्या और कैसी परेशानियों से उसके पति को अपना सर टकराना पड़ रहा है।

लेकिन कोई कहे या न कहे, दिल और दिमाग़ को परेशान करनेवाली घटनाओं की प्रतिच्छाया मानव के—कम से कम औसत दर्जे के साधारण मानव के—चेहरे पर बराबर अपना प्रभाव अङ्कित कर देती है। और, मोहन बाबू भी साधारण ही हैं। वह कहें या न कहें, लेकिन कमला-जैसी नारी उनकी मनोदशा को बहुत अच्छी तरह भाँप लेती, पढ़ लेती और समझ

लती है। इन सबको समझ लेने की क्षमता शायद कमला में न भी आ पाती; लेकिन मोहन बाबू की रात-दिन की खीझ ने ही उसे यह क्षमता प्रदान कर रक्खी है। यह बात दूसरी है कि कमला यह सब समझ लेने के बावजूद भी मौन रह जाती है। वह अपने पति को टोककर उनकी भावनाओं को उकसाना नहीं चाहती; उन्हें परेशान नहीं करना चाहती। परन्तु कभी-कभी कमला को अपने इस संयम की सीमा-रेखा का अतिक्रमण करना ही पड़ता है।

अभी थोड़े ही दिन पहले की बात है। ठण्ढ ज़ोरों से पड़ रही थी। सन्ध्या समय जब अन्धकार की गहरी काली छाया इस दुनिया पर फैल जाती और घर-घर में दीपक जल जाते, तब कहीं मोहन बाबू अपने कार्यालय से घर लौट पाते। आते ही उनका पहला काम होता चाय पीना। इसके बाद नन्हे से दस-पाँच मिनट बातें करते, तब कोई दूसरा काम। लेकिन उस दिन मोहन बाबू घर आकर बाँस की आराम-कुर्सी पर आकर जो बैठे, तो बैठे ही रहे। नित्य की तरह न तो उन्होंने हाथ मुँह धोया, न यह पूछा कि चाय तैयार है।

कमला को यह समझते देर न लगी कि आज कोई परेशानी मोहन बाबू के अन्तर को छू गई है। लेकिन उसने जान-बूझकर अपने पति को टोका नहीं। पन्द्रह-बीस मिनट के बाद कमला ने चाय तैयार कर ली और छोटी मेज़ पर नाश्ता और चाय रखकर नन्हें को मोहन बाबू के पास भेजकर उसने चाय पीने का अनुरोध करा दिया।

नन्हें ने अपने पिता के पास पहुँच, उनके एक हाथ पर अपना हाथ रखते हुए कहा—'दादा, चाय पीलो।'

अच्छा, बेटा !' मोहन बाबू ने नन्हें के सिर पर अपना एक हाथ फेरते हुए कहा और कुर्सी से उठ, हाथ-मुँह धोकर चाय पीने जा बैठे।

मोहन बाबू का मन नहीं हो रहा था कि चाय पियें। लेकिन अपनी खीझ और झुँझलाहट को व्यक्त न करने और कमला के मानस-सर को तज्जन्य परिणाम से उद्वेलित न करने का जो निश्चय वह कई महीने पहले कर चुके हैं और संयमपूर्वक इस दिशा मे वह सफल भी हो रहे हैं, उससे दूर जा छिटकने की ग़लती वह नहीं करना चाहते। जो कही उन्होंने चाय पीने से इनकार कर दिया और कमला उनकी खीझ को समझ गई तो···?

लेकिन इतना करने पर भी मोहन बाबू अपनी मनोदशा पर आज पूरा-पूरा नियन्त्रण नहीं रख सके। चाय पीने से ही क्या होता है ? नित्य की तरह आज वह कोई बात भी तो नहीं कर रहे थे। और, यह समझने का विवेक ही शायद उनमें नहीं रह गया था कि उनका यह मौन ही उनकी विक्षुब्ध मनोदशा को व्यक्त करने के लिये पर्याप्त था।

चाय पीकर नन्हें बाहर चला गया—अपने पड़ोसी दोस्तों के साथ खेलने-कूदने। कमला ने पान के बीड़े मोहन बाबू को देते हुए कहा—'आज तुम्हारी तबीयत कुछ सुस्त दीखती है ?'

'हाँ !' मोहन बाबू ने संक्षिप्त-सा उत्तर देकर मानो अपनी मनोदशा को इस कमला नारी से छिपा लेने का प्रयत्न करना चाहा।

'सर्दी लग गई है शायद ?' कमला ने फिर पूछा।

'हाँ।'

'और भी कोई बात हुई है शायद आज ?' कमला अपना लक्ष्यबेध करना चाहती थी।

'हाँ।'

इतने प्रश्नों का उत्तर रटे-रटाये तोते की तरह सिर्फ 'हाँ' में पाकर कमला ने अज्ञात परेशानी की विषमता का अनुमान तो बहुत कुछ कर लिया, परन्तु उसे जान लेने की जिज्ञासा का समाधान जब तक न हो जाता, उसे चैन कहाँ? इसीलिए उसने कहा—'मै देखती हूँ, इधर बहुत दिनो से तुम अपने मन की बातें मुझसे छिपाये रहते हो।'

'मैं अपनी स्वाभाविक कमज़ोरी को मिटाने के लिए ही ऐसा किये जा रहा हूँ, कमला।' मोहन ने बैठी-सी आवाज़ में कहा—'फिर, तुम्ही ने तो ऐसा करने की सलाह मुझे दी थी न?'

'सो तो मुझे प्रसन्नता है कि तुम इस लाइलाज रोग का दमन करने में काफी सफल हो रहे हो। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि कभी, कोई भी गम्भीर बात मुझे न बतलावे।'

'सोचता हूँ, जिस बात के बतलाने से मात्र पीड़ा के और कुछ तुम्हें न मिलेगा, उसे छिपाये रहने मे बुराई ही क्या है?'

'क्यों नहीं!' कमला ने कहा—'बुराई तो जरूर है। हाँ, दृष्टिकोण मे अन्तर भले ही हो सकता है।'

'क्या बुराई है?' मोहन ने पूछा।

'यही कि मन की खीझ जबरदस्ती दबाने से तुम तो विक्षुब्ध रहते ही हो, मुझे भी कम पीड़ा नहीं होती।'

और, कमला नारी की यह बात सुन, मोहन को लगा कि नारी का हृदय भी एक पहेली से कम नही। कभी यह कमला कहती है, खीझ और झुँझलाहट से अभिभूत होना व्यर्थ है। इसके व्यक्तीकरण से दूसरों को भी अप्रकट ज्वालाओं से झुलसना पड़ता है। और, कभी कमला कहती है कि मैं जो मन की खीझ जबरदस्ती दबाता हूँ, इससे भी उसे कम पीड़ा नहीं

होती। उत्तर भी चलती है और दक्षिण भी। फिर भी इस बात मे जाने क्यो मोहन को एक ऐसी स्नेहिल सहानुभूति का पुट मिला, जिसके स्पर्श से वह पुलकित हो उठा। उसके मन का विक्षोभ धीरे-धीरे तिरोहित होने लगा। तभी उसने अपने मन का विक्षोभ प्रकट कर दिया। आज की सारी बाते बतला दीं।

कमला को जब यह पता चला कि जिस कार्यालय में मोहन बाबू काम कर रहे थे उसे सदा के लिए ठुकराकर ही उस दिन वह घर लौटे है, तब वह एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गई। भावी जीवन-संघर्ष की विकट विभीषिकाएँ जैसे उसके कानों में ज़ोरों से अट्टहास कर उठीं। उसने तो यही अनुमान किया था कि होगी कोई साधारण-सी परेशानी। दो महीने पहले तक मोहन बाबू जिस प्रकार तनिक-तनिक-सी बात को लेकर खीझ उठते थे, उसी तरह की किसी बात की आशा करना कमला के लिए स्वाभाविक था। लेकिन नौकरी छोड़ देने की उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। इसीलिए तो वह स्तब्ध रह गई।

लेकिन इस स्तब्धता के जाल से मुक्त होते ही उसने स्वीकार किया कि उसके पति मोहन बाबू ने कोई बुरा काम नहीं किया। नौकरी करने का जहाँ तक संबंध है, वह जानती है कि मोहन बाबू घोर परिश्रमी और अपने विषय के उद्भट विद्वान् हैं। कदाचित् इसीलिए उन्हे मालिको की ठकुरसुहाती नहीं भाती। वह ऐसा कर नही सकते। परन्तु आज के युग मे पूंजीपतियो का रवैया कुछ अनोखा ही है। वे नौकरी करायेंगे कसकर, मेहनताना देंगे कम-से-कम और तुर्रा यह कि इतने पर भी यह अपेक्षा करेंगे कि नौकरी करनेवाला साहित्य-स्रष्टा भी उनकी हाँ-मे-हाँ मिलाने का आदी हो। जो ऐसा नही कर सकता, वह चाहे जितना परिश्रमी और विद्वान् क्यो न हो,

पूंजीपतियों की समझ मे उसका कोई मूल्य नहीं। बाज़ार का वस्तुओं के मोल-तोल को तरह ही ये पूंजोपति साहित्यिक का भी मूल्य आँकना चाहते हैं। इस दशा मे, मोहन जैसा पत्रकार इन पूंजीपतियो के इगित पर नाचना कहाँ तक उचित समझता ? सम्मान बेचकर काम करना उसे स्वीकार नहीं।

कमला को विश्वास था कि मोहन बाबू घर बैठे ही अपने छोटे-से परिवार का भरण-पोषण करने लायक बहुत-कुछ उपार्जन कर सकते हैं। कितने ही पत्रों में वह नियमित रूप से लिखते है। फिर, नौकरो छूट जाने पर यह लिखाई और भी अधिक हो सकती है। सबसे बड़ी बात, महायुद्ध अब समाप्त हो चुका था। अतः कमला को यह भी एक आशा थी कि बाजार की महँगाई भी सम्भवतः बहुत शीघ्र कम हो जायेगी।

लेकिन अनुमान सदा सत्य नहीं होता। नौकरी छोड़ने के थोड़े ही दिनो मे कमला का आर्थिक सङ्कट विकट से विकटतर होता गया। पत्र-पत्रिकाओ का यह हाल कि एक मास में प्रकाशित हो चुकी कहानियों अथवा लेखों का पारिश्रमिक तीन-तीन चार-चार महीनों तक प्राप्त न होता। स्थानीय प्रकाशक मोहन की आवश्यकताओ का अनुचित लाभ उठाना चाहते और उसकी मौलिक पुस्तको को मिट्टी के मोल ले लेने की कसम खा चुके-से प्रतीत होते।

मोहन को यह सब स्वीकार नहीं। वह भूखों मर जाना श्रेयस्कर समझता, परन्तु इन अवसरवादी प्रकाशकों को अपनी पुस्तकें देना तो दूर, इनसे कोई बात करना भी अपमानजनक समझता। स्वाभिमान को बेच देना मोहन अपनी आत्म-हत्या जो समझता है! लेकिन इस स्वाभिमान का महँगा मूल्य उसके साथ-साथ कमला को भी चुकाना पड़ रहा है।

मोहन के परिवार की स्थिति आज इतनी गिर चुकी है कि कमला की धोती तार-तार हो चुकी है। उसमें पैबन्द लगाने की कहीं कोई गुँजाइश नहीं, फिर भी वह पैबन्द लगाये जा रही है। उसके अन्तर की नारी इस दयनीय स्थिति से एक अप्रकट ग्लानि का अनुभव भी करती है। लेकिन उसे सन्तोष है अपने स्वाभिमानी पति पर, जो किसी धनवान के आश्रय में रहकर, उसका गुलाम नहीं बनना चाहता।

माना कि वर्त्तमान समाज किसी साहित्यकार को अपना उपयोगी अङ्ग नहीं समझता और फलतः आज का साहित्यकार केवल साहित्य-रचना को ही जीविका का साधन नहीं बना सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि शोषक वर्ग के अन्याय का प्रतिकार भी आज का साहित्यकार न करे। यह प्रतिकार तो उसे करना ही होगा। तभी उसकी साहित्य-सेवा का उचित मूल्यांकन—मोल-तोल—हो सकेगा। साहित्यकार तो जीवन के स्वप्न और यथार्थ—दोनों का विश्लेषण करता है सुन्दरता का सृजन करता है और जीवन के सत्य का अपने ढङ्ग से सन्देश सुनाता है। फिर वह अन्याय का प्रतिकार क्यों न करे?

मोहन कहीं बाहर गया है—शहर से बाहर। सुना था कि कलकत्ते और पटने के प्रकाशक उचित पारिश्रमिक देकर मौलिक उपन्यास लेते हैं। मोहन भी किसी तरह राह-खर्च जुटाकर वहीं गया है। लेकिन आज सात दिन हो चुके, उसका कोइ पत्र भी नहीं आया। पता नहीं, उसे कहीं कोई सफलता मिल रही है या नहीं।

सन्ध्या हो जाने पर भी कमला अपनी तार-तार-सी हो चुकी धोती में पैबन्द लगाती हुई, नन्हे को कहानी सुना रही है, और उसके अन्तर की नारी अपने पिया के पत्र की बाट जोह रही है। शायद डाकिया सन्ध्या को डाक से कोई पत्र ला रहा हो!

६—महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म सन् १९०७ ई० में फर्रुखाबाद में हुआ। आपके पिता बाबू गोविन्दप्रसाद पाश्चात्य सभ्यता एवं शिक्षा में पूर्ण रूप से दीक्षित एक गम्भीर दार्शनिक थे। उनके विचार अत्यन्त प्रगति-शील, शिष्ट, परिष्कृत तथा मौलिकतापूर्ण थे। महादेवी जी के जीवन पर महाविद्वान अर्द्धनास्तिक पिता की नास्तिकता का तो नहीं किन्तु स्वतन्त्र विचारशीलता, अन्ध विश्वास-हीनता एवं जीवन के प्रति अत्यन्त विस्तृत दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रभाव अवश्य पड़ा है। आप उन्हें अत्यन्त प्रिय भी थी।

महादेवी जी की माता का नाम श्रीमती हेमरानी था। आप पवित्र, विचारशील, सनातन धर्मनिष्ठ, और एक सरल स्वभाव की महिला थीं। उनकी सरलता, व्रत-उपवास, धार्मिकता तथा दानशीलता आदि का यथेष्ट प्रभाव उनकी प्रिय पुत्री पर पड़ा। वर्मा जी ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है। महादेवी जी यथेष्ट शिक्षित, शिष्ट एवं सम्पन्न परिवार मे उत्पन्न हुईं। जीवन की भौतिक आवश्यकताओं के विषय में आपको कष्ट नहीं उठाना पड़ा। सभी बातें एक विस्तृत घेरे में इच्छानुसार हो जाया करती थीं। दुलार-प्यार भी महादेवी जी को परिवार के व्यक्तियों से यथेष्ट मात्रा मे मिला। पिता और माता दोनों की आप अत्यन्त स्नेह-भाजन थीं।

महादेवी जी की शिक्षा यथा-विधि प्रारम्भ की गई। पढ़ने-लिखने में आप प्रारम्भ से ही कुशाग्र-बुद्धि एवं अध्ययनशील रही

हैं। ११ वर्ष की अवस्था मे विवाह हो जाने से आप की शिक्षा-दीक्षा में कुछ समय के लिये बाधा उपस्थित हुई, किन्तु होनी के वशीभूत आपको पुन शिक्षा का अवसर प्राप्त हुआ। क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज की शिक्षा समाप्त करने के बाद आपने प्रयाग विश्व-विद्यालय से बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाये श्रेष्ठ अङ्कों से उत्तीर्ण कीं।

सम्प्रति वर्मा जी महिला विद्यापीठ कालेज प्रयाग की प्रिन्सिपल (प्रधानाचार्या) है। आप भूतकाल में सुप्रसिद्ध पत्रिका 'चाँद' का सम्पादकत्व भी कर चुकी हैं। आपको अपनी रचनाओं पर सेकसरिया पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

कविता करने के अतिरिक्त आप ने लेख तथा कहानियाँ भी लिखी हैं। साहित्य की दृष्टि से कविता के बाद आपकी कहानियों का महत्त्व है। आपके यात्रा-सम्बन्धी लेख भी यथेष्ट महत्त्व रखते हैं। 'बदरीनाथ की यात्रा' आपका प्रसिद्ध यात्रा-लेख है। आपने कश्मीर-यात्रा का भी सुन्दर वर्णन किया है।

आपकी गद्य-रचनाओ पर दृष्टि डालते ही सर्वप्रथम जिस बात पर ध्यान जाता है वह है उनकी काव्यात्मकता. किन्तु यह काव्यात्मकता भाषा के माधुय से सम्बन्ध न रखकर दुरूह कल्पना योजना तथा वक्र कथन-प्रणाली से सम्बन्ध रखती है। आप सीधी-सादी बात को काफी टेढ़ा-मेढ़ा कर हमारे सामने रखती हैं जिससे कभी-कभी अर्थ-दुरूहता उत्पन्न हो जाती है। कल्पना की यह विचित्र क्रीड़ा काव्य के लिये विशेष उपयुक्त है किन्तु गद्य-क्षेत्र में इससे दुरूहता उत्पन्न होने का भय रहता है। कविता को हम लय तथा संगीत का अनुसरण करते हुए पढ़ते है, जिससे कल्पना-जन्य दुरूहतायें भी खुलती चलती हैं किन्तु गद्य में हमारी दृष्टि विशेष रूप से

अर्थ पर ही रहती है। वहाँ हमारे मन को तल्लीन रखने के लिये काव्य का माधुर्य, लय तथा संगीत आदि नही रहता और यदि रहता भी है तो बिल्कुल कम मात्रा मे।

महादेवी जी की गद्य-रचनाओं मे गलदश्रु भावुकता न मिलकर काफी कड़ी चट्टानवत् कल्पनाशक्ति के दर्शन होतेहैं। जहाँ आप काव्य-प्रदेश मे आद्योपान्त अपनी करुणा, आँसुओ तथा वेदना का प्रदर्शन करती है, वही अपनी कहानियो मे यथेष्ट यथार्थवादी पकड़, सूक्ष्म निरीक्षण तथा पुरुष भावनाओं, क्षोभ, क्रोध आदि का परिचय देती है। हमे यह जानना चाहिये कि आपकी वक्र-कथन-प्रणाली सर्वथा केवल कल्पना मात्र नहीं होती; वरन् उससे यथेष्ट अर्थ-गरिमा, व्यंग्य, किसी समस्या के प्रति मार्मिक दृकपात आदि प्रकट होता है। 'घीसा' नामक कहानी मे आप घीसा के प्रति अन्य बालको के 'खिचे-खिचे' रहने के कारण को स्पष्ट करती हैं—"लड़के उससे कुछ खिंचे-खिचे रहते थे। इसलिये नहीं कि वह कोरी था। वरन् इसलिये कि किसी की माँ, किसी की नानी, किसी की बुआ आदि ने घीसा से दूर रहने की नितान्त आवश्यकता उन्हें कान पकड़-पकड़ कर समझा दी थी।"

घीसा अछूत बालक था। पाठक इस दृष्टि से उपर्युक्त वाक्यों का महत्व समझ सकते है। "किसी कीमाँ, किसी की नानी, किसी की बुआ" आदि में समाजवादी व्यंग्य छिपा हुआ है।

वास्तव में महादेवी जी के शब्द दुरूह नहीं होते; बल्कि उनकी वर्णन-प्रणाली कुछ टेढ़ी और असाधारण है। आप की भाषा विशुद्ध, परिष्कृत तथा स्वच्छ है। उसमें किसी यथेष्ट अभ्यस्त साहित्यकार की शक्ति का दर्शन होता है। आप अपने भावों तथा विचारों को प्रकट करने के लिये पर्याप्त मस्तिष्क-परिश्रम करती हैं; अन्यथा भाव-वक्रता सम्भव नहीं होती। पहले तो पाठक

के समझाने में कुछ देरी लगती है। कम-से-कम ऐसी भाषा-योजना तथा चिन्तन-प्रणाली के लिये वह प्रस्तुत नहीं रहता है; किन्तु बाद में अर्थ हृदयंगम करने पर प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकता।

आपके व्यक्तित्व की दृष्टि से आपकी कहानियाँ आपकी कविताओं के ठीक विपरीत हैं। कविताओं में हमें आपके अन्तर्जगत मे प्रवाहित वेदना, करुणा तथा वियोग-व्यथा आदि के विविध स्वरूपो एवं कल्पना-क्रीड़ाओ का दर्शन होता है। उनमे आप कुछ अपवादों को छोड़कर दृश्य जगत के स्वरूपो एवं व्यापारो पर ध्यान नहीं देती है। जहाँ ये स्वरूप तथा व्यापार आते भी है वहाँ वे आपके ही भावो के बोझ से दबे होते है—तारे हँसते हैं, रातें रोती हैं, उषा शृंगार करती है, आदि-आदि। किन्तु कहानियो तथा लेखो मे आपने इस आन्तरिक घेरे से निकलकर अपनी सूक्ष्म वाह्य दृश्य-दर्शन-शक्ति का पूर्ण परिचय दिया है।

हमारी भयानक सामाजिक, आर्थिक एवं व्यक्तिगत समस्यायें ही आपकी कहानियो के विषय है। इनमें आपने कतिपय स्त्री कहानी-लेखिकाओं की स्त्री-समस्या तक ही सीमित रह जाने की संकीर्णता का परिचय नहीं दिया, वरन् समाज की अनेक प्रकार की समस्याओ को चित्रित कर उनके सुलझाव को भी हमारे सामने रखा, जिनमें उनकी मौलिकता, निर्भयता तथा आत्म-सम्मान एव गरिमा का परिचय मिलता है। अपनी एक अन्य कहानी मे आप एक विधवा नवयुवती स्त्री को, जिसकी अवस्था १६-१७ वर्ष से अधिक नहीं है, अपने अवैधानिक पुत्र को, समाज के लांछनों की परवाह न कर दृढ़ता के साथ अपनाने की सलाह देती हैं। आप मातृ अधिकार को अत्यन्त श्रेष्ठ अधिकार समझती हैं और रमणी को सलाह देती हैं कि

किसी भी अवस्था मे इस अधिकार का त्याग न करे, बल्कि इसे एक महान गौरवशाली वस्तु समझे।

महादेवी जी ने अपनी कहानियों में आश्चर्यजनक मफलता के साथ समाज के निचले स्तर के प्राणियों का चित्रण किया है उनमे उन्होने उनकी भीषण दरिद्रता का तथा समाजिक उपेक्षा आदि का परिचय दिया है। यह आपकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का ही फल है। 'घीसा' नामक कहानी में घीसा की दीनता, उसके प्रति समाज-व्यापी घृणा आदि का सफल चित्रण मिलता है जो आपकी कठोर यथार्थवादिता का परिचय देता है। आप कहीं भी एक भी करुणा-मिश्रित, अश्रुपूर्ण शब्द नहीं कहतीं। अधिक से अधिक व्यंग्यपूर्ण कठोरता तथा अत्याचार करने वालों के प्रति व्यंग्यपूर्ण क्रोध छिपा हुआ-सा भान होता है। आप किसी उत्तेजनापूर्ण समाज-सुधारक की भाँति बुराइयो तथा उनके कर्त्ता के विरुद्ध प्रायः निरर्थक आग नहीं उगलतीं।

समाज के दैन्य के साथ ही आप मनुष्य की व्यक्तिगत प्रवृत्तियों को जो उनके गम्भीर अधिक अर्थपूर्ण तथा साधारण दैनिक जीवन में प्रकट होती हैं, अत्यन्त ध्यान से देखती हैं। इस निरीक्षण में आपको यथेष्ट आनन्द मिलता है। आप मनुष्य के स्वभाव—उसके पोपलेपन, दिखावटीपन, तथा अत्यन्त धार्मिक जीवन भर उसको अपने प्रभाव मे रखनेवाली प्रवृत्तियों आदि को भली भाँति जानती हैं और मुँह दूसरी ओर कर सहानुभूतिपूर्ण हँसी हँसती हैं।

मनुष्य की कमजोरियों तथा दिखावटी बातों को जानते हुए भी आप उस पर क्रोध नही करतीं, बल्कि प्रेम के साथ व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसती हैं। यहाँ आपके श्रेष्ठ बौद्धिक चिन्तन का परिचय मिलता है। आप मनुष्य की कमजोरियों तथा दोषो पर क्रोध

करने या इनके कारण उससे घृणा करने की निरर्थकता को समझ चुकी है और उसके सुधार का उपाय आपकी दृष्टि में दयापूर्ण व्यवहार के साथ दोषों को दूर करने मे हैं।

जीवन के विपन्न, विकृत अङ्गों का चित्रण करते हुए भी आप हास्य की योजना कर पाठक का बहुत बड़ा उपकार करती हैं। वह उदासीनता तथा निराशा के घोर आवर्त्त में डूबने से बच जाता है और आपके साथ हँसने लगता है। आश्चर्य होता है कि इस स्वस्थ विनोद एवं व्यंग्य शक्ति का एक बूँद भी आपने अपनी कविताओं को देना ठीक नही समझा। कहने में त्रुटि न होगी कि इससे उनमें काफी विविधता उत्पन्न हो जाती और जो गम्भीर करुण एकरसता उत्पन्न हुई है, वह दूर हो जाती। निश्चय ही महादेवी के व्यक्तित्व को समझने के लिये उनके दोनों—कवियित्री तथा कहानी-लेखिका—रूपों का अध्ययन करना पड़ेगा।

महादेवी जी मे चित्रकला की जन्मजात प्रतिभा है। यह उनके साहित्य को यथेष्ट प्रभावित करती है। कहानियों में आये हुए पात्रों की वेष-भूषा, विशेषकर उनके शरीर के छोटे अंगों—बरौनियों, झुर्रियों, धोती तथा कुर्त्ता आदि की सफाई, उजलापन एवं उनका विशेष कोण आदि का निरीक्षण आप विशेष रूप से करतीं हैं, इससे आपकी चित्रकला-प्रियता का परिचय मिलता है। वास्तव में आपके चित्रकार-स्वरूप का विशेष परिचय आपकी कहानियों तथा लेखो में ही मिलता है, जहाँ आप वास्तविक जगत का निरीक्षण करती हैं क्योकि वास्तविक दृश्य-जगत ही चित्रकला का आधार हो सकता है।

—:o:—

एक रेखाचित्र

फागुन के गुलाबी जाड़े की वह सुनहली संध्या क्या भुलाई जा सकती है! सबेरे के पुलकपंखी वैतालिक एक लयवती उड़ान मे अपने-अपने नीड़ो की ओर लौट रहे थे। विरल बादलों के अंतराल से उन पर चलाये हुए सूर्य के सोने के शब्दबेधी बाण उनकी उन्मद गति मे ही उलझ कर लक्ष्य भ्रष्ट हो रहे थे।

पश्चिम मे रंगो का उत्सव देखते-देखते जैसे ही मुँह फेरा कि नौकर सामने आ खड़ा हुआ। पता चला, अपना नाम न बताने वाले एक वृद्ध सज्जन मुझसे मिलने की प्रतीक्षा मे बहुत देर से बाहर खड़े हैं। उनसे सबेरे आने के लिए कहना अरण्य-रोदन ही हो गया है।

मेरी कविता की पहिली पंक्ति ही लिखी गई थी, अतः मन खिसिया-सा आया। मेरे काम से अधिक महत्त्वपूर्ण कौन-सा काम हो सकता है, जिसके लिए असमय में उपस्थित होकर उन्होंने मेरी कविता को प्राणप्रतिष्ठा से पहले ही खण्डित मूर्ति के समान बना दिया! 'मैं कवि हूँ' में जब मेरे मन का संपूर्ण अभिमान पुञ्जीभूत होने लगा तब यदि विवेक का 'पर मनुष्य नहीं' में छिपा व्यंग बहुत गहरा न चुभ जाता तो कदाचित् मैं न उठती। कुछ खीझी, कुछ कठोर-सी मैं बिना देखे ही एक नयी और दूसरी पुरानी चप्पल पैर मे डाल कर जिस तेज़ी से बाहर आयी उसी तेज़ी से उस अवांछित आगन्तुक के सामने निस्तब्ध और निर्वाक् हो रही। बचपन में मैंने कभी किसी चित्रकार का बनाया कण्वऋषि का चित्र देखा था—वृद्ध में मानों वह सजीव हो गया था। दूध से सफ़ेद बाल और दूध फेनी-सी

सफेद दाढ़ी वाला मुख झुर्रियों के कारण समय का अंकगणित हो रहा था। कभी की सतेज आँखें आज ऐसी लग रही थीं मानो किसी ने चमकीले दर्पण पर फूँक मार दी हो। एक क्षण में ही उन्हें धवल सिर से लेकर धूल भरे पैरों तक, कुछ पुरानी काली चप्पलों से लेकर पसीने और मैल की एक बहुत पतली कोरे से युक्त खादी की धुली टोपी तक देखकर कहा—आपको पहचाना नहीं। अनुभवों से मलिन, पर आँसुओं से उजली उनकी दृष्टि पल भर को उठी, फिर कास के फूल जैसी बरौनियों वाली पलकें झुक आयीं—न जाने व्यथा के भार से, न जाने लज्जा से।

एक क्लान्त पर शान्त कण्ठ से उत्तर दिया—'जिसके द्वार पर आया है, उसका नाम जानता है, इससे अधिक माँगने वाले का परिचय क्या होगा? मेरी पोती आप से एक बार मिलने के लिये बिकल है। दो दिन से इसी उधेड़-बुन में पड़ा था। आज साहस करके आ सका हूँ—कल तक शायद साहस न ठहरता, इसी से मिलने के लिए हठ कर रहा था। पर क्या आप इतना कष्ट स्वीकार करके चल सकेंगी? ताँगा खड़ा है।

मैं आश्चर्य से वृद्ध की ओर देखती रह गई—मेरे परिचित ही नहीं, अपरिचित भी जानते है कि मैं सहज ही कहीं आती-जाती। नहीं यह शायद बाहर से आये हैं। पूछा—'क्या वह नहीं आ सकतीं? वृद्ध के लज्जित होने के कारण मैं न समझ सकी; उनके ओठ हिले पर कोई स्वर न निकल सका—और वे मुँह फेर कर गीली आँखों को छिपाने की चेष्टा करने लगे। उनका कष्ट देख कर बीमारी के सम्बन्ध में मेरा प्रश्न करना स्वाभाविक ही था। वृद्ध ने नितान्त हताश मुद्रा में स्वीकृतिसूचक मस्तक हिला कर कुछ बिखरे से शब्दों में यह स्पष्ट कर दिया कि

उनकी वही एक पोती है जो आठ वर्ष की अवस्था मे मातृ-पितृहीन और ग्यारहवे वर्ष मे विधवा हो गयी थी।

अधिक तर्क-वितर्क का अवकाश नहीं था—सोचा, वृद्ध की पोती अवश्य ही मरणासन्न है! बेचारी अभागी बालिका! पर मैं तो कोई डाक्टर या वैद्य नहीं हूँ और मुंडन, कनछेदन आदि में कवि को बुलाने वाले लोग अभी उसे गीतावाचक के समान अंतिम समय मे बुलाना नहीं सीखे हैं। वृद्ध जिस निहोरे के साथ मेरे मुख का प्रत्येक भाव-परिवर्तन देख रहे थे, उसी ने मानो मेरे कण्ठ से बलात् कहला दिया—'चलिए, किसी को साथ ले लूँ क्योकि लौटते-लौटते अँधेरा हो जावेगा।'

नगर की शिराओं के समान फैली और एक दूसरे से उलझी हुई गलियो से, जिसमें दूषित रक्त-जैसा नालियों का मैला पानी बहता है और रोग के कीटाणुओं की तरह नंगे मैले बालक घूमते है, मेरा उस दिन विशेष परिचय हुआ। किसी प्रकार एक तिमंजिले मकान की सीढ़ियाँ पार कर हम लोग ऊपर पहुँचे। दालान में ही मैली फटी दरी पर खम्भे का सहारा लेकर बैठी हुई एक स्त्री-मूर्ति दिखाई दी, जिसकी गोद में मैले कपड़ो में लिपटा एक पिण्डा-सा था। वृद्ध मुझे वही छोड़कर भीतर के कमरे को पार कर दूसरी ओर के छज्जे पर जा खड़े हुये, जहाँ से उनके थके शरीर और टूटे मन का द्वन्द्व धुँधले चल-चित्र का कोई मूक पर करुण दृश्य बनने लगा।

एक उदासीन कण्ठ से 'आइये' मे निकट आने का निमंत्रण पाकर मैंने अभ्यर्थना करनेवाली की ओर ध्यान से देखा। वृद्ध से उसकी मुखाकृति इतनी मिलती थी कि आश्चर्य होता था। वही मुख की गठन, उसी प्रकार के चमकीले पर धुँधले नेत्र और वैसे ही काँपते-से ओंठ, रूखे बाल और मलिन वस्त्रों में उसकी

कठोरता वैसे ही दयनीय जान पड़ती थी जैसी ज़मीन मे बहुत दिन तक गड़ी रहने के उपरान्त खोद कर निकाली हुई तलवार। कुछ खिजलाहट भरे स्वर से कहा–'बड़ी दया की। पिछले पाँच महीने से हम जो कष्ट उठा रहे है उसे भगवान ही जानते हैं। अब जाकर छुट्टी मिली है, पर लड़की का हठ तो देखो, अनाथालय मे देने के नाम से बिलखने लगती है, किसी और के पास छोड़ आने की चर्चा से अन्न-जल छोड़ बैठती है। बार-बार समझाया कि जिससे न जान न पहचान उसे ऐसी मुसीबत मे घसीटना कहाँ की भलमनसाहत है, पर यहाँ सुनता कौन है? लाला जी बेचारे तो संकोच के मारे जाते ही नही थे, पर जब हार गये तब झख मार के जाना पड़ा। अब आप ही उद्धार करे तो प्राण बचे।'

इस लम्बी-चौड़ी सारगर्भित भूमिका से अवाक् मै जब कुछ प्रकृतिस्थ हुई, वस्तु-स्थिति मेरे सामने धीरे-धीरे वैसे ही स्पष्ट होने लगी जैसे पानी मे कुछ देर रहने पर तल की वस्तुएँ। यदि यह न कहूँ कि मेरा शरीर सिहर उठा था, पैर अवसन्न हो रहे थे और माथे पर पसीने की बूँदे आ गई थीं तो असत्य कहना होगा। सामाजिक विकृति का बौद्धिक निरूपण मैंने अनेक बार किया है पर जीवन की इस विभीषिका से मेरा यही पहला साक्षात था। मेरे सुधार-सम्बन्धी दृष्टि कोण को लक्ष्य करके परिवार मे प्रायः सभी ने कुछ निराश भाव से सिर हिलाकर मुझे यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि मेरी सात्विक कला इस लू का झोका न सह सकेगी और साधना की छाया में पले मेरे कोमल सपने इस धुएँ में जी न सकेंगे। मैंने अनेक बार सबको यही उत्तर दिया है कि कीचड़ मे कीचड़ को धो सकना न असम्भव है, न होगा; उसे धोने के लिये निर्मल जल चाहिये। मेरा सदा से विश्वास है कि अपने दलों पर मोती-सा जल भी न ठहरने देने वाली कमल की सीमातीत स्वच्छता ही उसे पंक में जाने की

शक्ति देती है।

—और तब अपने ऊपर लज्जित होकर मैंने उस मटमैले शाल को हटाकर निकट से उसे देखा जिसको लेकर बाहर भीतर इतना प्रलय मचा हुआ था। उग्रता की प्रतिमूर्ति-सी नारी की उपेक्षा-भरी गोद और मलिनतम आवरण उस कोमल मुख पर एक अलक्षित की छाप लगा रहे थे। चिकने, काले और छोटे-छोटे बाल पसीने से उसके ललाट पर चिपक कर काले अक्षरों-जैसे जान पड़ते थे और मुँदी पलकें गालों पर दो अर्धवृत्त बना रही थीं। छोटी लाल कली जैसा मुँह नींद मे कुछ खुल गया था और उस पर एक विचित्र-सी मुस्कराहट थी, मानो कोई सुन्दर स्वप्न देख रहा हो। इसके आने से कितने भरे हृदय सूख गये, कितनी सूखी आँखो मे बाढ़ आ गयी और कितनो को जीवन की घड़ियाँ भरना दूभर हो गया, इसका इसे कोई ज्ञान नहीं। वह अनाहूत, अवांछित अतिथि अपने सम्बन्ध मे भी क्या जानता है? इसके आगमन ने इसकी माता को किसी की दृष्टि में आदरणीय नहीं बनाया, इसके स्वागत में मेवे नहीं बँटे, बधाई नहीं गाई गई, दादा-नाना ने नाम नहीं सोचे, चाची-ताती ने अपने अपने नेग के लिये वादविवाद नहीं किया और पिता ने इसमें अपनी आत्मा का प्रतिरूप नहीं देखा। केवल इतना ही नहीं इसके फूटे कपाल में विधाता ने माता का वह अंक भी नहीं लिखा जिसका अधिकारी, निर्धन-से-निर्धन पीड़ित से पीड़ित स्त्री का बालक हो सकता है।

समाज के क्रूर व्यंग से बचने के लिये एक घोरतम नरक में अज्ञातवास कर जब इसकी माँ ने अकेले में छटपटा-छटपटा कर इसे पाया तब मानों उसकी साँस छूकर ही यह बुझे कोयले से दहकता अंगारा हो गया। यह कैसे जीवित रहेगा, इसकी

किसी को चिन्ता नहीं है। है तो केवल यह कि कैसे अपने सिर बिना हत्या का भार लिए ही इसे जीवन के भार से मुक्त करने का उपकार कर सकें! मन पर जब एक गम्भीर विषाद-असह्य हो उठा तब उठकर मैंने उस बालिका को देखने की इच्छा प्रकट की। उत्तर में विरक्त-सी बुआ ने दालान की बाईं दिशा में एक अँधेरी कोठरी की ओर उंगली उठा दी।

भीतर जाकर पहले तो कुछ स्पष्ट दिखाई हो नही दिया, केवल कपड़ो की सरसराहट के साथ खाट पर एक छाया-सी उठती जान पडी पर कुछ क्षणो में जब आँखें अंधेरे की अभ्यस्त हो गईं तब मैंने आले पर रखे हुए दिये के पास से दियासलाई उठा कर उसे जला दिया।

स्मरण नहीं आता वैसी करुणा मैंने और कहीं देखी है। खाट पर बिछी मैली दरी, सहस्रों सिकुड़न भरी मलिन चादर और तेल के कई धब्बे वाले तकिये के साथ मैंने जिस दयनीय मूर्ति से साक्षात् किया उसका ठीक चित्र दे सकना सम्भव नहीं है। वह १८ वर्ष से अधिक की नहीं जान पड़ती थी—दुर्बल और असहाय-जैसी। सूखे ओंठ वाली, साँवले पर रक्तहीनता से पीले मुख में आँखें ऐसा जल रही थीं जैसे तेलहीन दीपक की बत्ती।

उस अस्वाभाविक निस्तब्धता से ही उसकी मानसिक स्थिति का अनुमान कर मै सिरहाने रखी हुई ऊँची चौकी पर से लोटे को हटा कर उसी पर बैठ गयी और तब न जाने किसी अज्ञात प्रेरणा से मेरे मन का निष्क्रिय विषाद क्रोध से सहस्र स्फुलिंगों मे बदलने लगा।

अपने अकाल वैधव्य के लिये वह दोषी नहीं ठहराई जा सकती, उसे किसी ने धोखा दिया इसका उत्तरदायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता, पर उसकी आत्मा का जो अंश, हृदय

का जो खण्ड उसके समान है, उसके जीवन-मरण के लिये केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष, यदि उसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार करता तो केवल इसी मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को, अपने बालक को अस्वीकार कर देगी? संसार में चाहे इसको कोई परिचयात्मक विशेषण न मिला हो परन्तु अपने बालक के निकट तो यह गरिमामयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी? इसी कर्तव्य को अस्वीकार करने का यह प्रबन्ध कर रही है। किसलिये? केवल इसलिये कि या तो उस वञ्चक समाज मे फिर लौट कर गङ्गा-स्नान कर, व्रत उपवास, पूजा-पाठ आदि के द्वारा सती विधवा का स्वाँग भरती हुई और भूलों की सुविधा पा सके या किसी विधवा-आश्रम मे पशु के समान नीलाम पर चढ़ कर कभी नीची, कभी ऊँची बोली पर बिके, अन्यथा एक-एक बूँद विष पीकर धीरे-धीरे प्राण दे।

स्त्री अपने बालक को हृदय से लगा कर जितनी निर्भर है उतनी किसी और अवस्था मे नहीं। वह अपनी संतान की रक्षा के समय जैसी उग्र चण्डी है वैसी और किसी स्थिति में नहीं इसी से कदाचित् लोलुप संसार उसे अपने चक्र व्यूह में घेर कर बाणों से चलनी करने के लिये पहले इसी कवच को छीनने का विधान कर देता है! यदि ये स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद मे लेकर साहस से कह सके कि 'बबरो, तुमने हमारा नारीत्व पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी' तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावें। जो समाज इन्हें वीरता, साहस, और त्याग-भरे मातृत्व के साथ नही स्वीकार कर सकता, क्या वह इनका कायरता और दैन्य भरी मूर्ति को ऊँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर पूजेगा? युगो से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिये नही, सहन-शक्ति के लिये ही दण्ड देता आ रहा है।

मैं अपने भावावेश में इतनी अस्थिर हो उठी थी कि उस समय का कहा-सुना आज उस रूप मे ठीक-ठीक याद नहीं आता। परन्तु जब उसने खाट से ज़मीन पर उतर कर अपनी दुर्बल बाँहों से मेरे पैरो को घेरते हुये मेरे घुटनों मे मुँह छिपा लिया, तब उसकी चुपचाप बरसती हुई आँखो का अनुभव कर मेरा मन पश्चात्ताप से व्याकुल होने लगा।

उसने अपने नीरस आँसुओ से अस्फुट शब्द गूँथ-गूथ कर मुझे यह समझाने का प्रयत्न किया कि वह अपने बच्चे को नहीं देना चाहती। यदि उसके दादा जी राज़ी न हों तो मै उसके लिये ऐसा प्रबन्ध कर दू, जिससे उसे दिन मे एक बार दो रूखी-सूखी रोटियाँ मिल सके! कपड़े वह मेरे उतारे ही पहन लेगी और कोई विशेष खर्च उसका नहीं है! फिर जब बच्चा बड़ा हो जायगा, तब जो काम मैं उसको बता दूँगी वही तन-मन करती-करती वह जीवन बिता देगी।

पर जब तक वह फिर कोई अपराध न करे तब तक मैं अपने ऊपर उसका वही अधिकार बना रहने दूँ जिसे वह मेरी लड़की के रूप मे पा सकती थी! उसको माँ नही है, इसी से उसकी इतनी दुर्दशा सम्भव हो सकी—अब यदि मैं उसे माँ की ममता-भरी छाया दे सकूं तो वह अपने बालक के साथ कहीं भी सुरक्षित रह सकेगी।

उस बालिका माता के मस्तक पर हाथ रख कर मैं सोचने लगी कि कहीं यह वरद हो सकता। इस पतझर के युग में समाज से फूल चाहे न मिल सके पर धूल की किसी स्त्री को भी कमी नही रह सकती, इस सत्य को यह रक्षा-याचना करने वाली नहीं जानती।

—पर २७ वर्ष की अवस्था में मुझे १८ वर्षीय लड़की और २२ दिन के नाती का भार स्वीकार करना ही पड़ा।

वृद्ध अपने सहानुभूतिहीन प्रान्त में भी लौट जाना चाहते थे, उपहास-भरे समाज की विडम्बना मे भी शेष दिन बिताने को इच्छुक थे और व्यंग-भरे क्रूर पड़ोसियो से भी मिलने को आकुल थे, परन्तु मनुष्यता की ऊँची पुकार में यह संस्कार के क्षीण स्वर दब गये।

अब आज तो वे किसी अज्ञात लोक में हैं। मलय के झोंके के समान मुझे कण्टक-वन में खींच लाकर उन्होंने जो दो फूलों की धरोहर सौंपी थी, उससे मुझे स्नेह की सुरभि ही मिली है। हाँ, उन फूलों में से एक को शिकायत है कि मैं उसकी गाथा सुनने का अवकाश नहीं पाती और दूसरा कहता है कि मैं राज-कुमारी की कहानी नहीं सुनाती।



सुश्री रत्न कुमारी एम० ए०

रत्नकुमारी देवी एम० ए०

सुश्री रत्नकुमारी जी का जन्म अगस्त सन् १९१२ ई० को गाजीपुर जिले में एक प्रतिष्ठित एवं सुशिक्षित परिवार में हुआ। शैशव से ही आपकी शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था की गई। बाल्यावस्था से ही आपने पठन-पाठन की ओर विशेष ध्यान दिया। आपने क्रास्थवेट इण्टर कालेज इलाहाबाद से इण्टरमीडियेट की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी० ए० तथा एम० ए० परीक्षाएँ आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से क्रमशः सन् १९३५ और सन् १९३७ ई० में उत्तीर्ण की। उसी वर्ष अर्थात् सन् १९३७ ई० से आप आर्य कन्या पाठशाला इलाहाबाद की प्रधान अध्यापिका के रूप में कार्यरत हैं। आपका विबाह फर्वरी सन् १९३५ ई० में डा० सत्य प्रकाश जी के साथ सम्पन्न हुआ जो आजकल प्रयाग विश्वविद्यालय में विज्ञान के आचार्य हैं। रत्नकुमारी जी के पिता श्री बनारसी लाल एम० ए०, एल० एल० बी० अवकाश-प्राप्त डिप्टी कलक्टर हैं। आपकी बहिन सुश्री प्रभा कुमारी जी का विवाह श्री जय नारायण वर्मा डिप्टी कलक्टर, प्रयाग से हुआ है। आपका दाम्पत्य जीवन सुख एवं शान्ति से परिपूर्ण है। आपके दो पुत्र-रत्न हैं। प्रथम अरविंद कुमार अवस्था १६ वर्ष, द्वितीय आनन्द कुमार अवस्था १४ वर्ष।

रत्नकुमारी जी के परिवार मे हिन्दी को विशेष सम्मान प्राप्त है। आपकी छोटी बहिन श्रीमती प्रभाकुमारी जी भी हिन्दी साहित्य को सेवा में अपनी प्रशंसनीय प्रतिभा से यथेष्ट योग दे रही हैं। आपकी प्रसिद्धि भी हिन्दी-जगत में कहानी-लेखिका के रूप में विशेष रूप से फैल रही है। अल्प वयस में ही हिन्दी के

प्रति रत्नकुमारी जी में अभिरुचि का जागृत होना स्वाभाविक ही था। आपने हिन्दी साहित्य का अध्ययन भी विशेष मनोयोग से किया। हिन्दी के अतिरिक्त आप अँग्रेजी साहित्य से भी विशेष प्रेम रखती हैं। साहित्य-निर्माण के क्षेत्र में आपने कहानी-कला को विशेष प्रेम एवं निष्ठा से अपनाया। इसके अतिरिक्त एकाङ्की नाटकों के निर्माण में भी आपकी विशेष रुचि रहती है। कहानियाँ तो आप छात्र-जीवन से ही लिखती थीं। आगे चलकर आपकी प्रतिभा ने पूर्ण मौलिक रचना-शक्ति का परिचय दिया। आप निबन्ध लिखने में भी सिद्धहस्त हैं। वर्तमान काल में कुछ ऐसी प्रवृत्ति चल गई है कि एक ही लेखक साहित्य के विभिन्न अंगों की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है। कुछ लोगों में तो ऐसी स्वाभाविक प्रतिभा ही होती है कि साहित्य के विविध क्षेत्रों में उनकी क्रियात्मक प्रतिभा का विकास दृष्टिगोचर होता है। रत्नकुमारी जी की गणना भी ऐसे ही प्रतिभा-सम्पन्न साहित्य-सेवियों में होनी चाहिये। कुछ लोग साहित्य के विवध अंगों की पूर्ति साधारण ढंग से करते हैं और कुछ लोग एक ही क्षेत्र में जम कर बैठते और कुछ करके उठते हैं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल आलोचना के क्षेत्र में तथा बाबू प्रेमचन्द जी गल्प-रचना के क्षेत्र में ऐसे ही व्यक्ति थे। दूसरी ओर भारतेन्दु काल के अधिकांश लेखकों—पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, श्री बद्री नारायण चौधरी प्रेमघन और स्वयं भारतेन्दु में हीं हम बहुमूल्य विषय-व्यापक एवं साहित्य के विविध अंगों—निबन्ध—नाटक,साहित्य-प्रचार, सम्पादकीयता. नाटक का खेलना, काव्य-रचना आदि सभी कुछ पाते हैं।

साहित्यिक विकास की प्रथम अवस्था में प्रायः साहित्यकार साहित्य के अनेक अंगों की पूर्ति करता है; किन्तु शनैः—शनैः साहित्य के विकसित हो जाने पर उसके एक या दो अंगों को

लेकर चलने की प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ लेती है, हालाँ कि ऐसा कोई नियम नहीं है क्योंकि इसके विपरीत असंख्य उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। रत्नकुमारी जी भी एक उदाहरण ही हैं। आपकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं :—

(१) 'व्यङ्ग–चित्रण' (२) एकाङ्किनी (३) पाक–विज्ञान इत्यादि।

रत्नकुमारी जी की कहानियों में सामाजिक, एवं व्यक्तिगत मानवी समस्याओ को विशेष स्थान दिया गया है। आप अपनी रचनाओ मे एक समस्या उपस्थित करती हैं और उसकी गम्भीरता का मूर्तरूप पाठक के समक्ष उपस्थित कर देती है। यह असम्भव है कि कोई भी विचारशील मनुष्य आपकी रचनाओं को पढ़ने के बाद, उनमें प्रदर्शित समस्या पर विचार न करे। उनको पात्र तथा घटना के माध्यम से शनैः–शनैः निश्चित गति से प्रस्फुटित करने की आप में विशेष प्रतिभा है। आप अन्य अधिकांश गल्प–कलाकारों की भाँति समस्या का सुलझाव नहीं उपस्थित करतीं। यह कहना अनुचित न होगा कि समस्या के उपस्थित किये हुए सुलझाव प्राय. ठीक भी नहीं होते। यथार्थवादी दुनिया को समझनेवाले व्यक्ति की जिज्ञासा उनसे सन्तुष्ट भी नहीं होती। यदि थोड़ी देर के लिये उसे भुलावा भी दे दिया जाय तो भी वास्तविकता उसके भ्रम को दूर कर देती है। जब तक हृदय और मस्तिष्क में, भावों तथा विचारों में, श्रेयस्कर परिवर्तन न होगा तब तक सुधार की आशा व्यर्थ है। आपकी कहानियाँ हमारे भावों तथा विचारों में परिवर्तन उपस्थित करती हैं। समस्या की गम्भीरता स्वभावतः हमें सोचने–विचारने की ओर प्रेरित करती है। हम मन-ही-मन सोचने लगते हैं कि कितने अभागे दिन–रात इस प्रकार पिस रहे हैं। क्या इस

अविरल चालू अत्याचार का कोई परिष्कार नहीं ? इससे निश्चय ही पाठक का अनुभव, अनुभूति तथा व्यक्तित्व ऊँचा उठता है। वह अपने स्वार्थ को छोड़कर दूसरों के सुख-दुख में अपनत्व का प्रसार करता है।

हिन्दी मे समस्या-प्रधान कहानियो का अभाव है। सुश्री महादेवी वर्मा, श्री अज्ञेय तथा जैनेन्द्र जी ने भी इस प्रकार की सफल कहानियो की रचना की है। प्रेमचन्द तथा प्रसाद जी की अधिकांश कहानियाँ सुलझाव के लिये होती हैं। समस्या-प्रधान कहानियों का उद्गम् क्या है ? इसका श्रोत लेखक की विवशता की अनुभूति में है। वह जानता है कि समाज या व्यक्ति की कतिपय समस्याओं का समाधान शीघ्र नहीं हो सकता। ये समाज के पोर-पोर में घुसी हुई ये उसका सत्यानाश कर रही हैं। साधारण सोच-विचार के बाद वह किसी समस्या का निराकरण देना व्यर्थ समझता है। इससे पाठक भूल-भुलैया में भी पड़ जाता है। अस्तु, वह इसी बात का प्रयत्न करता है कि किसी समस्या का भीषणतम रूप मार्मिक कला का सहारा लेकर पाठक के समक्ष रक्खे और उसमे विचार-प्रश्रय का प्रयत्न करे। धीरे-धीरे लोग समझने लग गये हैं कि सामाजिक अथवा व्यक्ति गत दोष थोड़े समय में नहीं दूर हो सकते। उनको दूर करने के लिये वर्षों क्या पीढ़ियों का समय लग जाता है। हमारे ही समाज मे न तो अभी तक अछूत-समस्या ही सुधरी और न विधवा-विवाह की समस्या ही; हालाँकि इन दिशाओं में प्रयत्न होते पचासों वर्ष बीत गए। सुधार अवश्य होगा। बहुत कुछ हुआ है; किन्तु अभी सन्तोष जनक स्थिति पर पहुँचने मे शताब्दियाँ लगेगी। अस्तु, यर्थाथवादी लेखक आज-कल प्रायः समस्या का ही रूप चित्रित करते हैं।

इसके अतिरिक्त उन्हें यह आशा भी होती है कि पाठक एक सोचने-विचारने वाला प्राणी है। यदि उसका अन्तरतम प्रभावित हुआ और वह कुछ इन बातों पर सोचने लगा तो निश्चय ही उसका तथा समाज का कल्याण होगा। जान पड़ता है रत्नकुमारी जी ने भी अपनी रचनाओं में इसी उद्देश्य को अपने सामने रखा है ।

रत्नकुमारी जी एक उच्च आधुनिक शिक्षा-प्राप्त महिला ही नहीं हैं वरन् जीवन तथा उसकी समस्याओं के प्रति आप में आधुनिक महिला के प्रगतिशील विचार भी है। आप प्रोपेगैण्डा के पीछे दौड़ने वाली उन महिलाओ मे नहीं हैं जो केवल पुस्तकीय अध्ययंन की दृष्टि से संसार को देखती और उन्हीं के आधार पर उसको सुधारने मे भी विश्वास करती हैं। कुछ इसी तरह की भावनाओ के कारण लोगो में पूँजी-पतियों को स्वार्थ, अन्याय, चरित्र-हीनता, निर्दयता और शोषण के मूर्त रूप में तथा मजदूर को शील, न्याय-परायणता, मनुष्यता, बेबसी आदि के मूर्त रूप में देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई थी जो धीरे-धीरे अब तक प्रायः दूर हो चुकी है। रत्नकुमारी जी के साहित्य मे हमें इस प्रकार की पक्षपात-पूर्ण विचारधाराओं का दर्शन नहीं मिलता। आपको यथार्थता का ज्ञान रहता है और इसके विषय में आप काफी सोच-समझ कर कलम उठाती है। इसीसे आपकी कहानियाँ स्वाभाविक और सत्य-सी प्रतीत होती हैं जो आपकी कलात्मकता का सहारा पाकर पाठक की विचार-शक्ति को सीधे प्रभावित करती हैं ।

रत्नकुमारी जी की कहानियों का वातावरण, पात्र, सोचने-विचारने की प्रणाली तथा सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन-दृष्टि आदि सभी भारतीयता के रंग में रंजित हैं। इस दृष्टि

से आप प्रेमचन्द, प्रसाद, कौशिक और सुदर्शन आदि अन्य भारतीय दृष्टिकोण-युक्त कलाकारों की श्रेणी मे रक्खी जा सकती हैं।

आजकल कतिपय प्रगतशील लेखकों का साहित्य इस तत्व के अभाव के कारण अरण्य-रोदन ही प्रतीत होता है। भारत-जैसे औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े देश मे कृषकों की समस्या का चित्रांकण न कर मिल-मजदूरों का रोना लेकर बैठना वास्तविकता के प्रति कहाँ तक अपने दायित्व का निर्वाह समझा जा सकता है? ऐसे कलाकारों का साहित्य विदेशी प्रतीत होता है। उसमे हम अपनी समस्या का निराकरण या अपना यथार्थ रूप नहीं देख सकते। रत्नकुमारी जी की रचनाओं मे समाज तथा स्त्री-पुरुष के पारम्परिक सम्बन्ध आदि के विषय में नया दृष्टिकोण मिलता हैं और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। इन विषयों में हमारे पुराने विश्वास एवं मापदण्ड अब व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं। सन्तोष की बात यही है कि आप वास्तविकता का निर्वाह पूर्ण रूप से करती हैं। आपके पात्र तथा आपकी समस्यायें, वार्तालाप, रहन-सहन, विश्वास एवं विचार सभी भारतीय हैं। पाठक अपने को कभी अजनबी पात्रों या परिस्थितियों मे नही पा सकता जैसा वह किसी अङ्गरेजी या अन्य विदेशी साहित्यकार केगल्प-साहित्य में पाता है।

रत्नकुमारी जी की कहानियों में आई हुई समस्यायें काफी व्यापक होती हैं। वे सारे समाज के जीवन-मरण, तथा उन्नति-अवनति से सम्बन्ध रखती हैं। 'बीस वर्ष' नामक कहानी मे आप हिन्दू समाज की एक दाम्पत्य-समस्या का चित्रण करती हैं। पति महोदय एक शिक्षित विचारशील व्यक्ति हैं। वे अपनी स्त्री का त्याग उसके सुन्दरी न होने के कारण कर देते हैं और उसे विवश करते

हैं कि वह उनका विवाह अपनी छोटी बहिन से करवा दे जो अत्यं। रूपवती थी। किसी तरह यह भी हुआ किन्तु छोटी बहिन प्यार के स्थान पर पहले से ही उनसे घृणा करने लग गई थी क्योंकि एक स्त्री-त्यागी व्यक्ति से घृणा करना उसके लिए बिलकुल स्वाभाविक था। प्रेम पाने का उनका सारा प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुआ। बड़ी बहन का त्याग वे पहले से ही कर चुके थे। छोटी बहन कुछ समय के बाद मर गई और मरते समय उनसे वचन ले लिया कि वह उसकी बड़ी बहन को पुनः न अपनायेंगे। तब से २० वर्ष हो गये, वह अपने देवर के यहाँ देवरानी की एक प्रकार से दासी होकर अपमान, झिड़कियाँ, घृणा, उपेक्षा आदि सहन करती हुई अपना जीवन व्यतीत करती है। जब तक समाज में स्त्री को एक सम्मानपूर्ण स्थान न प्राप्त होगा तब तक उस पर ढाये जाने वाले अत्याचार भी समाप्त न होंगे। सौन्दर्य की कमी से स्त्रियाँ प्राचीन काल से अब तक घृणा और उपेक्षा सहती आ रही हैं। कारण यही है कि उन्हें अब तक पुरुषो की तरह सामाजिक एवं व्यक्तिगत मान्यता तथा प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हुई। भैंस का मूल्य उसका दूध है, स्त्री का मूल्य उसका सौन्दर्य और बाद मे उसका शील, किन्तु होता है उसका क्रय-विक्रय ही। यह घृणित स्थिति दूर होने के लिये आवश्यक है कि हम इस पर सोचें-विचारें। रत्नकुमारी जी का उद्देश्य भी यही है।

आपकी सभी कहानियाँ समस्य-प्रधान नही है। बहुतों मे आपने समस्या का सुलझाव उपस्थित किया है और कुछ में केवल यथार्थवादी चित्रण से सन्तोष किया है। ऐसी रचनाओं मे पात्रों का चरित्र-चित्रण काफी निखरा हुआ है। उनका अन्तर्द्वन्द्व हमारे आकर्षण का केन्द्र होता है और अन्त में उनसे उद्भूत होता है मानव-जीवन का कोई-न-कोई शाश्वत सत्य। ऐसी कहानियों में पात्रों का वार्तालाप, आचरण तथा उनके भीतर चालू भाव

एवं विचार-संघर्ष हमें नाटकीयता का आनन्द प्रदान करते हैं।

रत्न कुमारी जी की समस्या-प्रधान कहानियों में पात्र गौण हो गये हैं और साथ में उनके चारों ओर की परिस्थिति तथा वातावरण भी। अवश्य उनके वार्तालाप से तथा बीच-बीच में प्रस्फुटित भाव उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। 'बीस वर्ष' में हम पति-त्यक्ता रमणी मे सहन-शक्ति की असीम शक्ति पाते हैं। उसकी प्रतिरोध भावना ही लुप्त हो गई है। अपने हृदय में एक सती-साध्वी स्त्री के गुण एवं अभिलाषायें छिपाये हुए वह पूर्ण शिष्ट एवं सभ्य स्त्री अपनी उदर-पूर्ति के लिये बैल की तरह काम करती और सभी ज्यादतियों को सिर नवाकर सह लेती है। स्त्री के लिये इससे विवश दयनीय तथा कारुणिक परिस्थिति और क्या हो सकती है कि वह केवल अपने जीविका-निर्वाह के लिये अपनी छोटी बहिन का बिवाह अपने ही पति से कराये। पुरुष के लिये इससे बढ़ कर पशुत्व भी कुछ दूसरा न होगा। एक बात ऐसी कहानियों में अवश्य उल्लेखनीय है। इनमें ऐसी बातें जो मुख्य पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालती हैं, प्रस्तुत समस्या की गम्भीरता में भी वृद्धि करती हैं। इसी से पात्र और भी गौण हो जाते हैं। वे एक सामाजिक समस्या को व्यक्त करने के प्रमुख साधन हो जाते हैं। कहानी पढ़ने के बाद पाठक इन पात्रों को तो भूल जाता है, किन्तु समस्या को अपने मस्तिष्क मे चिर-काल के लिये स्थान दे देता और उसके विषय में सोचने-विचारने और अनुभव करने के लिये विवश हो जाता है। लेखिका की यह असीम सफलता मानी जा सकती है।

इस प्रकार इनमें आई हुई समस्यायें व्यक्तिगत नहीं रह जातीं। हम ऐसे पति को विशेष दोष भी नहीं दे सकते। क्योंकि वह उतना बुरा नहीं है जितना हम समझते हैं। समाज के

अन्य असंख्य सदस्यों की तरह वह भी एक शिक्षित समझदार और सभ्य मनुष्य है। इस प्रकार की भूलों तथा आचरणों का कारण परम्परागत एवं सामाजिक है। स्त्री के प्रति हमारे समाज में अभी तक ऐसे ही हेय और निम्न भावना चली आ रही है। अस्तु, यदि पुरुष इनका शिकार हो जाय तो आश्चर्य ही क्या? इसी प्रकार बिधवा-विवाह, अछूत, जात-पाँत आदि की समस्याओं को भी समझना चाहिये। इनमें सुधार हमारे सोचने-समझने से ही हो सकता है क्योंकि इनका कारण हमारी बौद्धिक दासता, अज्ञान एवं अन्ध विश्वास हैं। किसी भी प्रगतिशील बौद्धिक समाज मे ऐसी कलुषित बातें रह ही नहीं सकतीं।

रत्नकुमारी जी मे हमें एक हल्के व्यंग्य-विनोद एवं चरपरेपन का दर्शन होता है जो उनकी कहानियो में एक ज़िन्दा दिली एवं नवीन आकर्षण पैदा करता है। इससे विरोधाभास के आधार पर आपकी कहानियों में वर्णित करुणा, क्षोभ सन्ताप आदि अधिक गहन एवं प्रभावशाली हो जाते हैं। यह संसार का नियम है कि वह तुलना के कारण अपने सुख-दुख में वृद्धि कर लेता है। यदि सभी दुखी हों तो हमें अपना दुख इतना नहीं खलता अन्यथा हम अपने को विशेष अभागा समझने लगते हैं। आपकी कहानियो मे आया हुआ व्यंग्य-विनोद इसी नियम के आधार पर उनकी करुणा, व्यथा आदि को अधिक प्रभावशाली बनाता है। आपका विनोद बिलकुल सरल, सहानुभूतिपूर्ण एवं आपके स्वभाव का अंग प्रतीत होता है। उसके लिये आप भाषा में कुछ मुहावरों का प्रयोग करतीं और कभी-कभी कथन-शैली को ही कुछ परिवर्तित कर देती हैं।

आपकी भाषा सरल एवं साहित्यिक होती है। उसमें कठोर शब्दों अथवा मस्तिष्क साध्य दूरारूढ़ योजनाओं का नितान्त

अभाव है जो हमें महादेवी जी के गद्य में मिलती है। आपकी वर्णन-शैली भी महादेवी जी की शैली से कुछ-कुछ मिलती-जुलती है किन्तु आप में वह भाषागत कठोरता, एवं ऊपरी गूढ़ता आदि नहीं है, जिससे पाठक के लिये कहानी का आनन्द ही जाता रहे। आपकी भाषा मृदु, सरल और मधुर है। इतनी सरल, शिष्ट एवं सौजन्य-सूचक भाषा विरले ही लेखकों मे मिलती है। यह आपकी विचारशीलता, अनुशासन तथा भाव-नियन्त्रण का द्योतक है।

बीस वर्ष

आजकल के ज़माने में दो चीजें जिसे मिल जाय उसे बड़ा भाग्यवान् समझना चाहियें। एक तो लड़की के लिये वर और दूसरा रहने के लिये घर। घर के अच्छे बुरे का तो प्रश्न ही नहीं उठता! चार दीवारो पर एक छत हो, बस बहुत है। जिसे मिल जाय उसे भाग्य की सराहना करनी चाहिये। घरो के इस अकाल के युग में एक जगह से दूसरी जगह जो जाता है उस के सिर पर सनीचर सवार हुआ समझना चाहिये। ऐसा ही सनीचर की सवारी कदाचित् हम लोगो के सिर पर सवार हो गई थी जो हमें एक शहर से दूसरे शहर जाना पड़ा। राम राम करते पॉच बरस एक जगह रह लिये थे। बदली होना जरूरी था। बड़ी दौड़-धूप करने पर किसी तरह एक मकान का तिहाई भाग हम लोगों के हिस्से में पड़ा। भाग्य की सराहना करते हुए मैं गृहस्ती लेकर वहाँ जम गई। मकान बुरा नही था। दो तल्ले मकान में ऊपर का सब भाग हमें मिला था। नीचे के हिस्से में मकान-

मालिक और एक किरायेदार और रहते थे। मकान-मालिक सामने की ओर रहते थे, पीछे की ओर किरायेदार। ऊपर रहने के कारण नीचे वालों की बहुत सी बातें न देखना चाहते हुए भी दिखाई दे जाती थीं और न सुनना चाहते हुये भी सुनाई दे जाती थीं।

वह एक दिन मुझे आज भी याद है। बच्चे खा-पीकर स्कूल जा चुके थे, वे भी दफ़्तर चले गये थे। मैं अकेली बैठ कर बड़े मनोयोग से एक नये आये मासिक पत्र को पढ़ रही थी। सहसा नीचे के घर के आँगन में झन्न कर के बर्तनों के गिरने की बड़ी ज़ोर की आवाज़ आई। साथ ही कोई कर्कश कंठ से चिल्ला उठाः—

"मैंने कितनी दफ़ा कहा कि इसका बनाया खाना मैं छुऊँगा भी नहीं। फिर तुम लोग सुनते क्यों नहीं ? साफ़-साफ़ कह दो कि तुम नहीं चाहते कि मैं तुम्हारे घर आऊँ। मैं नहीं आया करूँगा।"

मैं जल्दी से उठ कर खिड़की से नीचे झाँकने लगी। वहाँ से आँगन और रसोई-घर का दालान। दीखता था। जहाँ से चिल्लाहट आई थी वह स्थान मेरे पैरों के नीचे था। मैंने देखा आँगन में खाना बिखरा पड़ा था। आस पास थाली, कटोरी भी पड़ी थीं। रसोई-घर के दालान मे खंभे के पीछे जो स्त्री सिटपिटाई-सी खड़ी थी, उसे मैं रोज़ ही सुबह से रात तक चर्खी की तरह घूमते और काम करते देखा करती थी। घर के निवासियों में एक ही पुरुष था। वह थे किसी कालिज के अध्यापक। मैं उन के स्वर से परिचित थी, परन्तु यह एक नया ही स्वर सुना। बड़ा कर्ण-कटु और भीषण स्वर था। मैं रोमाञ्चित हो गयी थी। रंग-ढंग से यह तो मैं समझ गई थी कि यह चिल्लाहट उस स्त्री से सम्बन्धित है,

जो बरामदे में अपराधिनी के समान छिपी खड़ी थी। कुछ ही क्षणों में गृहस्वामी आँगन में आये। उन्होंने उस स्त्री को संबोधित कर के अत्यन्त कोमल स्वर से कहा।

"भाभी! रम्मू की माँ कहाँ है ?'

घर में उठे इस बवंडर से शायद रम्मू की माँ अब तक परिचित हो चुकी थीं। वे उठ कर अब तक स्वामी के पीछे आ खड़ी हुई थी। चेहरे पर कुछ डर, कुछ उद्विग्नता वर्तमान थी वे बोलीं, तब जो स्वर निकला वह कुछ क्रोध से ही भरा था।

"क्यों, क्या है ? मै यहाँ हूँ।"

गृहस्वामी एक दम पलट गये और ज़ोर से चिल्लाकर बोले।

"मैं पूछता हूँ अब तक कहाँ थीं ? भाभी से आज क्यों खाना बनवाया ?"

"मैंने कब कहा था ?" एक सीधा झूठ बचाते हुये रम्मू की माँ बोलीं।

"इसका क्या मतलब ? तुम ने जरूर कहा होगा उन से खाना बनाने को। क्यों भाभी ! कहा था इन्होंने ?"

भाभी बेचारी सिर नीचा किये जो खड़ी थीं सो खड़ी ही रह गईं। उन में कुछ कहने का साहस ही नही था। मैं नित्य ही देख पाती थी उन्हे देवरानी के हुक्म पर नाचते और सुन पाती थी देवरानी की झिड़कियाँ; जिन्हें वे हँस कर सहा करती थी। खाना बनाने से लेकर बच्चो की देखभाल तक का सारा भार उन के सिर पर था। बर्तन माँज कर एक बार झाड़ू तो महरी अवश्य लगा जाती थी। फिर अगर कूड़ा-कचरा हो या बर्तन माँजने हों तो मैंने देवरानी को तो करते देखा नहीं था। गृहस्वामी समझ गये। अब देवरानी भी समझ गईं कि झूठ नहीं बोला जा सकेगा। वे झनक कर बोलीं:—

"सिर दर्द कर रहा था तो क्या करती, कैसे खाना बनाती ? भाभी जी से ही कह दिया था बनाने को। मुझे क्या मालूम था कि उन्हें मालूम हो जायगा। दुनिया से निराली बाते होती हैं तुम्हारे भाई की।"

"निराली तो हैं ही, कौन नहीं जानता इस बात को। लेकिन इस से फायदा ? अगर वे भाभी का बनाया खाना नहीं खाना चाहते तो तुम कौन हो उन्हें खिलाने वाली ? सिर दर्द कर रहा था तो मुझ से कह देतीं, मैं बना लेता। यह सब तुम्हारा बहाना है। मुझे क्या दिखाई नहीं देता कि एक मुफ्त की नौकरानी मिल गई है, उस से काम लेती हो और बैठी-बैठी आराम करती हो। भाभी से मना करता हूँ, 'इतना काम मत करो' पर वे भी नहीं सुनतीं। बच्चे अलग उन्हें खाये जाते है।"

अब भाभी बोलीं:—

"भैया काम करने को तो मुझ से बहूरानी कहती नहीं। मैं ही करती हूँ। बच्चे और काम ही तो मेरा समय काट देते हैं। नहीं तो मैं दिन कैसे बिताऊँ ?"

भाभी का आर्द्र कंठ-स्वर देवर के हृदय को छू गया। वे भरे कंठ से बोले :—

"अच्छा-अच्छा करो, जो तुम्हें अच्छा लगे।" और वे चले गये। रम्मू की माँ बड़बड़ाती रह गईं।

"बीस बरस हो गये। मुँह नहीं देखूँगा, कुछ मतलब नहीं रक्खूँगा कह कर कोई कायल भी तो नहीं करता उन्हें।"

भाभी ने मृदु कठ से केवल इतना ही कहा।

"जो कायल न होना चाहे तो उसे कायल कौन कर सकता है बहू" ?

मैं खिड़की पर से हट आई। दूसरों की बातें उसके अनजान में सुनना अच्छा नहीं होता परन्तु बात ही कुछ ऐसी थी कि चाह कर

भी मै उसके सुनने से अपने को रोक नहीं सकी। उस घर की भाभी का जीवन मुझे कुछ रहस्यमय-सा तो शुरू से ही लगा था। वे सधवा थीं, यह उनकी माँग का सिंदूर बताता था। वे मामूली रूप वाली, अत्यंत सरल और सीधे स्वभाव की भारतीय स्त्री थीं, परन्तु देवर के घर मे नौकरानी का सा जीवन क्यो बिता रही थीं? उस घर मे उनके देवर के अतिरिक्त अन्य कोई पुरुप मैंने आज तक न देखा। न जाने क्यों मेरे मन में भाभी के जीवन के प्रति एक जिज्ञासा शुरू से ही हो गई थी। किसी से उनके बारे मे कुछ पूछा नहीं, सो केवल भद्रता की रक्षा करने के लिये ही।

इसी तरह से कुछ दिन बीत गये। नीचे वालों के घर से मेरा मेल-जोल हो गया था। दिन के खाली समय में मै अक्सर नीचे चली जाती थी। कभी-कभी तो देवरानी भी मेरे पास आ बैठती थीं परन्तु ऐसा वे ज्यादा दिन तक न कर सकी। उनकी दिन निद्रा भंग होती थी। मै भाभी के पास ही बैठी रहती थी। उनकी कभी न समाप्त होने वाली सिलाई मे मैं भी हाथ बटा लिया करती थी। मेल-जोल हो जाने पर उनके जीवन का हाल जानने की उत्सुकता को मैंने कभी बेहाथ नहीं होने दिया। भाभी भी सब तरह की बात करती थीं पर पिछले जीवन के बारे में कभी कुछ नहीं कहती थीं। एक दिन जैसे ही बच्चे स्कूल चले गये और मै खा-पी कर नीचे जाने की तैयारी कर रही थी वैसे ही भाभी अपने देवर की छोटी लड़की का हाथ पकड़े सीढ़ी चढ़ कर ऊपर आ पहुँचीं। वे हाथ में सीने का कुछ सामान भी लिये थीं। मैं अचम्भे मे रह गई कि भाभी को इस समय छुट्टी कैसे मिल गई? मैने कहाः—

"आज इस समय यहाँ कैसे? खाना बना लिया?"

भाभी के उत्तर देने से पहले ही बच्चे बोल उठेः—

" ताऊ जी आये हैं। आज माँ ने खाना बनाया है।"

मैंने हँसी में कहा:—

" ताऊ जी आये है, तो ताई जी का निर्वासन हो गया।"

मैंने जब भाभी का स्वर सुना तब मैं चौक पड़ी। उस कंठ-स्वर की वेदना ने खट से जाकर मेरे मानस को छू लिया, वे बोलीं:—

" निर्वासन तो बीस बरस पहले ही हो गया था बहू।" और उनके नेत्र भर आये। उन्होने धीरे से उन्हें पोंछ डाला।

मै अपना परिहास भूल गई और क्षमा-याचना सी करते हुए बोली:—

"क्या हुआ भाभी जी! आज आप बहुत दुखी है।"

भाभी बैठ गईं। और बोलीं:—

" जीवन अब भार लगने लगा है बहू! दिन-दिन होने वाला अपमान सहना कठिन होता जाता है।"

"क्यो, बहू ने कुछ ज्यादा बक-बक की है?"

" उसकी बक-बक तो रोज़ की बात हो गई है। उस पर तो मैंने ध्यान देना छोड़ दिया है। अपमान उसका नहीं चुभता। चुभता है उसके जेठ का किया हुआ। पिछली बार जब वे आये थे, तब मैंने खाना बनाया था, कुछ बहू के ही कहने से नहीं। मेरी भी इच्छा हो आई थी, सो थाली उठा कर फेंक दी। भूखे चले गये। भैया ने जाकर बहुत मनाया तब आज आये हैं; यह शर्त कर के कि मैं उनके आने के वक्त घर में भी न रहूँ। खाना बनाना तो दूर की बात है।"

अब मुझ से नहीं रहा गया। मैंने पूछा;

"भाभी जी, आखिर बात क्या है?"

भाभी ने लंबी साँस ली और धीरे-धीरे बोलीं!

"मेरा भाग्य और क्या बहू ? वे मेरे पति हैं, उन की खुशी के लिये मैंने सब कुछ किया पर पाया क्या घृणा, निरादर और अपमान। बहू, आज तुम से सब बताऊँगी, शायद तुम छुटकारे का कुछ उपाय बता सको। अपने माँ-बाप के यहाँ हम दो बहनें जन्मीं। विधाता की बिडम्बना कहो या हमारा भाग्य, दोनों में इतना अंतर कि पास-पास खड़ी हो जाती थीं तो कोई यह नहीं कहता था कि हम बहने है। मैं जैसी ही मामूली रूप की हूँ वह वैसे ही ग़ैर मामूली रूप की थी। उसका रूप आँखो मे चकाचौध उत्पन्न कर देता था। बड़ी होने पर मेरा विवाह हुआ। बड़े अर-मान, आशा और प्रसन्नता के पलड़े में झूलते हुए मन को लेकर मैं इनके पास आई। यह तो मै जानती ही थी बहू ? कि मेरे पास रूप नहीं है, परन्तु यह विश्वास था कि मेरा मन और मेरी सेवा पति को मुझ से विमुख कभी नहीं होने देगी। पहले ही दिन मेरा मुँह देखकर ये चुप बैठे रह गये। बहू ? अपने मन का हाल तुम्हें क्या बताऊँ, जैसे किसी ने पहाड़ की चोटी से नीचे ढकेल दिया हो। मेरा मन छटपटा कर रह गया, उनकी प्यार की केवल एक बात सुनने के लिये। वे धीरे से उठे और चादर ओढ़ कर सो रहे। मैं रात भर जागती रही और आँसू गिराती, रही इसे केवल मैंने जाना और मेरे भगवान ने।"

भाभी का गला भर आया। उनके नेत्रों से आँसू गिरने लगे। मेरे नेत्र भी गीले हो आये। मैं भी स्त्री थी, स्वामी के अतुल स्नेह की अधिकारिणी थी। रूप तो मेरे पास भी मामूली ही सा था। मैंने भाभी की व्यथा समझी और बोली:—

"परन्तु भाभी ! तुम बदसूरत तो हो नहीं। तुम से भी बुरी-बुरी स्त्रियाँ हैं पर पति की उपेक्षा तो उन्हे नहीं मिली।"

भाभी स्थिर कंठ से बोली :—

"हाँ बहू ! ऐसी स्त्रियाँ हैं और मैं भी शायद उन्हीं भाग्यवतियों में से एक होती अगर मेरी बहन न होती।"

"तुम्हारी बहन ! क्या किया उसने ?"

"उस बेचारी ने कुछ नहीं किया। उस के रूप ने किया। विवाह के समय वह अपने जीजा का खूब सत्कार करती रही, उन से हँसती-बोलती रही, जीजा भी सहयोग देते रहे। और··· और··· सोचते रहे ऐसी रूपवती की बहन जो उनकी पत्नी हो रही है, ऐसी ही होगी। उनके मन को बड़ी ठेस लगी, जब मुझे देखा। बहू ! मैं उन्हे दोष नहीं देती और न कभी दिया। परन्तु सोचती हूँ दुनिया में क्या रूप ही सब कुछ है। प्यार और सेवा और हृदय के यत्न का क्या कोई भी मोल नहीं है ? मुझे तो इस का उत्तर आज तक मिला नहीं।"

भाभी चुप हो गईं। मेरी जागी हुई उत्सुकता दब नहीं रही थी। फिर भी मैं चुप ही रही। मेरे मन के कोने-कोने में भाभी का प्रश्न टकरा रहा था, क्या सच में रूप के आगे प्यार का कुछ भी मूल्य नहीं है। मेरे जीवन से तो इसका उत्तर मिलता नहीं। भाभी फिर बोलीं :—

"धीरे-धीरे करके मैंने जान पाया कि वे बहन के रूप पर मुग्ध हैं। उन्होने मुझसे कहा कि मैं अपनी बहन से उनका विवाह करा दूँ।"

मुझे बड़ा क्रोध आया। मैंने कहा:—

"ऐसी बेहूदी बात उन्होंने कही कैसे ? आप ने नहीं कराया इसी से वे आपसे विमुख हो गये।"

"नहीं बहू ! मैंने वह भी किया।"

"विवाह करवा दिया। बहन से ?"

"हाँ बहू ! पहले तो मैंने मना किया, वे कहते रहे और मैं मना करती रही। अंत में वे बोले मैं तुम्हें प्यार तो करता नहीं और न कर सकूँगा। घर में भी नहीं रक्खूँगा। अगर अपनी बहन से विवाह करवा दो तो घर मे रह सकोगी। बहू ! मैं आखिर में हार ही गई। मैंने अपना स्वार्थ इसी में देखा। घर में न रक्खेंगे तो जाऊँगी कहाँ ? यह सोच कर मैं अपने माँ-बाप की शरण में गई। पैरो पड़कर उन्हें विवाह के लिये राजी किया। बड़ी कठिनाई से मैं उन्हें राजी कर पाई। स्वयं मेरा मन बाधा देता था। बहन रोती थी कि वह मेरे सुख में बाधा बन गई। पीछे से मुझे जान पड़ा कि वह मेरे पति से विवाह नहीं करना चाहती थी। मैंने रोकर उसे मनाया कि मेरा घर बना रह जायगा अगर वह अपने जीजा से विवाह कर लेगी। माँ ने भी समझाया। आज मैं सोचती हूँ कि इतने लोगों को दुःख देकर मैंने पाया ही क्या, निर्वासिन जिस से मै डरती थी ?"

भाभी की आँखों से आँसू बहने लगे। कुछ क्षण बाद संयत हो कर वे बोलीं:—

"बड़े उत्साह से वे विवाह करने गये। तरह-तरह के उपहार इकट्ठे किये और शुभ या अशुभ मुहूर्त्त मे बहन को ब्याह कर ले आये। मैं विवाह में मायके नहीं गई। अपने स्वामी का विवाह देख सकूँ ऐसी हिम्मत नहीं हुई। बहू को उतार कर सबने मेरे कमरे में बैठा दिया। वह रो रही थी। मैंने पास जाकर कहा बहन रोती क्यों है ? तेरी जीजी का ही घर तो है। उस ने जो उत्तर दिया उसे सुन कर मेरे ऊपर तो जैसे बिजली गिरी। वह बोली, "तुम मेरी जीजी नहीं हो, सौत हो।"

मैंने कहा:—

"भाभी, वह अगर ऐसा कह सकी तो उसने विवाह होने ही क्यों दिया था ?"

"बहू ! आज से बीस बरस पहले की लड़की जोर देकर अपने व्याह के बारे में तो कुछ कह नहीं सकती थी। मैंने कहा मैं सौत नहीं हूँ। इस पर वह बोली, सौत नही तो क्या हो ! अपने स्वार्थ के लिये तुमने मेरी बलि दे दी। मैंने हिम्मत करके कहा, बलि क्यों दे दी? तेरे जीजा न तो बूढ़े हैं, न निर्धन हैं और न मूर्ख हैं। उसने तीव्र स्वर से उत्तर दिया, पत्नी-त्यागी तो हैं। तुम जानती थीं कि स्त्री को त्यागने वाले पुरुष को मै नहीं देख सकती थी फिर भी तुमने पत्नी-त्यागी से मेरा व्याह करवाया, केवल अपने स्वाथ के लिये। मैं उन्हे जीवन भर घृणा करती रहूँगी, प्यार कभी भी न कर सकूँगी। मेरे मन में आग जलती रहेगी। तुम सौत नहीं हो, तो क्या हो ?"

मैं चुप होकर सोचती रही। ठीक तो था, अपने असीम रूप को लेकर वह जहाँ जाती वहीं उसका पति उसकी पूजा करता। पूजा करने वाला तो यहाँ भी मिला था परन्तु उसके मन ने तो उसे घृणा की दृष्टि से ही देखा था। मन का स्निग्ध प्यार जिसे पति को देने के लिये उसने रख छोड़ा था, व्यर्थ ही तो गया ! उसे केवल वैवाहिक जीवन का भार ढोना था, वह भी बहन के कारण। बेचारी उसे सौत न कहती तो क्या कहती ? भाभी बोलीं :—

"उस दिन से मेरी ज़िन्दगी नरक हो गई, बहन और पति की खींच-तान की मैं शिकार हो गई। मेरे पति के यत्न और प्यार का अन्त नहीं था। वह बेचारी चाह कर भी उन्हें प्यार न कर पाई। अक्सर मेरे पति का प्यार और आदर उसे छू लेता था परन्तु वह उसका बदला जिस भाव से देती थी वह प्यार नहीं था, केवल सद्भावना थी। दोनों की कुढ़न आकर पड़ती थी मेरे ऊपर। पति सोचते थे कि यदि मैं घर में न रहूँ तो कदाचित् बहन उन्हें अच्छी दृष्टि से देखने लगे, इसलिए वे अत्याचार करते। बहन अपने

वैवाहिक जीवन की व्यर्थता देखकर कुढ़ती रहती, घर-गृहस्थी का काम रत्ती भर भी न देखती। मैं ही सब करती रहती थी, ज़रा सी भी त्रुटि उसे सहन नही होती थी। मेरे मन का रुदन मन में ही घुमड़ता रहता था। ज़रा भी रोती देख लेती तो बिगड़ उठती थी। उसने पूरी तरह से सौत का धर्म निबाहा। अन्त मे मुझसे सहा नहीं गया, मै देवर के पास चली आई। अपमान वहाँ भी था, बाँदीपन वहाँ भी था, यहाँ भी है पर यहां देवर बहुत ख्याल रखते है, इससे सह लेती हूँ। बहू! छोटी बहिन का किया हुआ अपमान असह्य हा गया था। एक दिन बुलावा आया कि बहन बीमार है। सेवा करने वाला कोई नहीं है। मै नहीं गई सोचा मामूली बीमारी होगी, दो दिन में अच्छी हो जायगी। कुछ अभिमान भी था कि केवल सेवा करने के लिये मैं हूँ, वैसे सब कुछ वह है। मैं प्यार कर के भी बदला नहीं पा सकी, वह घृणा कर के भी प्यार पाती है। उस बीमारी से फिर वह नहीं उठी।''

मैने पूछा :—"

"मर गई; अच्छी नहीं हुई ? "

"हाँ मर गई।''

"फिर आप को पति ने ग्रहण क्यो नहीं किया ? आपने तो अपना कर्त्तव्य कर दिया था। बहन का ब्याह अपने पति से उन के सुख के लिये करवा दिया था। "

"हाँ ! परन्तु मेरा दुर्भाग्य जो आगे-आगे चलता है। बहन ने मरते समय मेरे पति से वचन ले लिया था कि इस जीवन में वे मेरा मुख नहीं देखेगे और न मेरी सेवा ही ग्रहण करेंगे।

''क्यो ? ऐसा वचन उस ने क्यों लिया ?"

"क्योंकि मै उसकी बीमारी मे सेवा करने नहीं पहुँची थी।"

केतकी देवी गौड़ 'रश्मि'

श्रीमती केतकी देवी गौड़ का जन्म सन् १९१७ ई० में (लच्छागिरि) हँडिया, प्रयाग में एक सम्भ्रान्त सुसम्पन्न परिवार में हुआ। आपके परिवार में शिक्षा का प्रचार एक पैतृक परम्परा के रूप में चला आ रहा था। आपके पिता, प्रपिता आदि सभी श्रेष्ठ शिक्षा के अधिकारी व्यक्ति थे। अस्तु, शिक्षा-दीक्षा के लिये आपका वातावरण यथेष्ट प्रभावशाली था। आप में बाल्यावस्था से ही काफी लगन तथा उत्साह के भाव मिलते हैं। स्कूली पाठ्य-पुस्तकों के बाहर की पुस्तकों का आपने सर्वदा पर्याप्त अध्ययन किया। संसार को भी आपने एक जिज्ञासु के आश्चर्य-भरे नेत्रों से देखा और उसमें आपने आकर्षण, प्रेम, आश्चर्य, सहानुभूति तथा प्रशंसा आदि के लिये बहुत-कुछ पाया। आपकी रचनायें आशावादिता, उत्साह, संसार-प्रेम एवं सहानुभूति के भावों से परिपूर्ण हैं। हलका और गम्भीर विनोद आपकी प्रकृति का अंग है जो दुख में भी एक हलका और सुनहला आवरण डालकर आपको उसकी अनुभूति से बचा सकता है।

उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद आपने स्कूली जीवन से विराम लेकर गृहस्थ्य-जीवन मे प्रवेश किया। भाग्य कहिये या सुसंयोग कहिये आपको जीवन-संगी भी साहित्य-सेवी ही मिला। आपके पति पं० पुरुषोत्तमदास जी गौड़ 'कोमल' हिन्दी साहित्य के एक श्रेष्ठ लेखक हैं। आपका विवाह 'कोमल' जी से होना आपके साहित्यिक विकास के लिये अत्यन्त हितकर सिद्ध हुआ। कोमल जी की रचनाएँ जीवन के विविध भावों एवं



सुश्री केतकी देवी गौड़

समस्याओं को आवृत्त किये हुए हैं। उनमें से कुछ के नाम ये हैं:–'अश्रु कण' 'अछूत के पत्र' 'एक रात' 'वे चारो' 'प्रणय' (खण्ड-काव्य). 'गीली आँखे' 'परी रानी' 'स्वर्ग की सीढ़ी' 'लीडरों की धूम' 'काठ का पुतला' इत्यादि। आपकी रचनाओं में राष्ट्रीयता का तत्व काफी प्रबल है। राष्ट्रीय कॉंग्रेस के विभिन्न संघर्षों में आपने यथेष्ट सक्रिय भाग भी लिया है और चार-पॉच बार जेल-यात्रा भी कर चुके है।

हम यह तो नहीं कह सकते कि केतकी जी की रचनाओं पर पति की साहित्य-सेवा का कितना और किस रूप मे प्रभाव पड़ा है, किन्तु यह तो निश्चित प्रतीत होता है कि आपकी राष्ट्रीयता पर अवश्य ही कोमल जी की छाप है। साथ ही यह भी मान लेने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि आपकी साहित्यिक प्रतिभा को उनकी संगति, प्रेरणा एवं सहानुभूति से विशेष बल मिला, है जो हिन्दी-जगत के लिए एक सौभाग्य की ही बात समझी जायगी। यद्यपि आप में पहले से ही बहुमुखी साहित्य-रचना की शक्ति भरी पड़ी थी, किन्तु सम्भवतः अनुकूल वातावरण के अभाव मे उसका विकास न हो पाता। आप कहानी तथा कविता दोनों मे उच्चकोटि की सफल रचनाये करती हैं। आपकी रचनाये 'जागृति' 'सुधा' 'सरस्वती' 'भारत' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। आपका साहित्यिक प्रयत्न अविराम गति से चालू है जिसमें शनैः-शनैः जीवन-अनुभवों की प्रौढ़ता तथा गम्भीरता आती जा रही है।

केतकी जी की जीवन-दृष्टि अत्यन्त व्यापक है तथा कल्पना-शक्ति प्रचण्ड एवं सर्वग्राही। संसार के ऐसे व्यापार तथा दृश्य आपके मन मे भव्य प्रभावशाली कल्पित-मूर्तियॉ उत्पन्न करते है जिनसे साधारण मनुष्य अछूते ही रह जाते हैं। रेलगाड़ी, उसके

इंजिन का धुआँ, प्लेटफार्म की भीड़ आदि सभी आपके मन को आकर्षित करते और तदनुकूल कल्पनाचित्र उत्पन्न करते हैं। मनुष्य की इस शक्ति को Sensibility या प्रभाव-ग्रहण-शीलता कहते हैं। ऐसे व्यक्तियो मे संसार की सभी छोटी-बड़ी वस्तुओं के प्रति दिलचस्पी होती है। इनका मन उनके अनजान मे ही संसार का गहन अनुभव प्राप्त करता रहता है और आवश्यकता आ पड़ने पर असंख्य कल्पना-चित्रों को मूर्त रूप दे सकता है क्योंकि उसने पहले से ही ये चित्र शयन करते हैं।

केतकी जी की कल्पनाशक्ति हमारे समक्ष ऐसे रमणीक चित्र उपस्थित करती है जो हममे भी वैसे ही चित्र उत्पन्न कर हमारे आनन्द मे वृद्धि करते है। संसार के ऐसे दृश्य जो शक्ति, गति, सौंदर्य आदि बातो को प्रकट करते है, आपकी कल्पना पर विशेष प्रभाव डालते हैं। अपनी एक कहानी में तूफान मेल से कानपुर से इलाहाबाद यात्रा करती हुई आप ट्रेन की गति तथा इञ्जिन का धुआँ–वर्षा आदि का ऐसा मनोरम वर्णन करती हैं, जिससे आप की कल्पना की द्रुतगामी, एवं रमणीयता का निर्माण करने वाली शक्ति का पता चलता है। आप लिखती हैं :—"धड़धड़ाती हुई तूफान मेल आकर प्लेटफार्म पर खड़ी हो गई। सभी डिब्बे यात्रियो से ठसाठस भरे हुए थे। ....
बाहर विशाल अंधकार फैला हुआ था। आँखें बाहर के अंधकार से टकरा कर लौट आती थीं।......बाहर से इञ्जिन की आत्मा धू–धू कर के धुआँ बाहर फेक रही थी।" इस प्रकार केतकी जी की कल्पना निर्जीव वस्तुओं को भी मानवी शक्ति एवं क्रिया से अभिभूत कर देती है। सचमुच आपने, एक क्षण के लिये ही सही इन निर्जीवों से तादात्म्य स्थापित किया है और आपकी कल्पना की प्रचंड अग्नि मे तपकर ये निर्जीव पदार्थ भी एक नवीन सौन्दर्य लेकर हमारे सामने आते हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि केतकी जी में आशावादिता, उत्साह और संसार की क्रियाओं तथा व्यापार में यथेष्ट दिलचस्पी मिलती है। चाहे जिस दृश्य या वस्तु का वर्णन आप करने लगती हैं, उसी में एक नवीन आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। जिन वस्तुओं, दृश्यों या परिस्थितियों का वर्णन कितने ही अन्य गल्पकार अपनी रचनाओं में करके पाठक के मन मे केवल ऊब, तथा विरक्ति पैदा कर देते हैं, उन्हीं में आप नवीन अकर्षण उत्पन्न कर देती है। यह आकर्षण वास्तव में उन वस्तुओ का नहीं हो सकता। यह है आप ही के भीतर छिपे हुए आपकी आशावादिता, उत्साह विनोद तथा जीवन और जगत से प्रेम एवं दिलचस्पी। इन्हीं गुणों के कारण संसार के दृश्यो के वर्णन में आपकी कल्पना इन दृश्यों के ऐसे रूपों या सम्बन्ध-सूत्रों पर दौड़ जाती है जिन पर इन गुणों से रिक्त व्यक्ति की कल्पना नहीं दौड़ सकती।

अपने-अपने स्वभाव के अनुसार हम इस संसार को देखते हैं। किसी बात को लेकर एक विनोद-शील मनुष्य जो वर्णन करेगा, वह एक गम्भीर प्रकृति के मनुष्य के वर्णन से काफी भिन्न होगा। विनोद-शील मनुष्य अपने वर्णन में वर्ण्य विषय के ऐसे विषम पहलुओं पर दृष्टि ले जायगा जिनको सामने पाकर या स्मरण कर हमें अवश्य हँसी आती है, इसके विपरीत गम्भीर स्वभाव का मनुष्य अपने वर्णन मे एक-एक बात सार्थक, नपी-तुली और तर्क-पूर्ण रखने का प्रयत्न करेगा; उसमे बुद्धि पक्ष-या गहन भाव-पक्ष की प्रधानता होगी; व्यंग्य-विनोद आदि को स्थान न मिलेगा।

इस प्रकार केतकी जी की कल्पना-शक्ति एवं जिन्दादिली पाकर साधारण वस्तुये भी आकर्षक बन जाती है। आपकी जिन्दादिली वस्तुओ के वर्णन तथा पात्रो के वार्तालाप आदि सब में दिखाई पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपको कहानी कहने से बड़ा प्रेम है। आप संसार में बहुत-कुछ देखना

और कहना चाहती हैं। छोटे छोटे विषयों को लेकर आपने सर्वांगीण कहानियो की रचना की । यह आपकी श्रेष्ठ कला-शक्ति की द्योतक है । आपकी कहानियो से मनुष्य के प्रति आपकी सहानुभूति, प्रेम तथा ऐक्य का भाव व्यंजित होता है। आप उनमे विश्वास रखतीं और उससे सम्पर्क रखना चाहती हैं। आपने अवश्य संसार की बुराइयो, मनुष्य की दुर्बलताओं, कपटाचारो तथा पापों को देखा होगा और इनसे आपका पाला भी पड़ा होगा। कितने ही सुकुमार, सुन्दर और कोमल भावो से युक्त उन्नतिशील महत्वाकांक्षी नवयुवक संसार की स्वार्थपरता, शोषण एवं गन्दगी को देखकर घृणा, निराशा तथा अविश्वास आदि से भर जाते हैं।

ऐसे लेखको की भी संख्या कम नहीं है जो संसार की बुराइयो एव दोषों का अति रंजित चित्र हमारे सामने उपस्थित करते हैं। वे उसकी अच्छाइयो, प्रेम, सहानु-भूतियों तथा त्याग आदि की ओर कोई ध्यान नहीं देते। उनका विश्वास ही इन श्रेष्ठ भावो में नहीं होता। उनके निकट ये भाव अस्थायी, क्षणिक और कष्ट से परिपूर्ण होते हैं। भारत में ऐसे लेखको की कमी नहीं रही क्योंकि यहाँ पर साहित्य धर्म के अनुशासन में विशेष रूप से रहा है जो संसार के प्रति एक श्रेष्ठ नैतिक धारणा रखता है और मनुष्य के दिव्य गुणों में विश्वास रखते हुए उनकी ओर हमें प्रेरित करता है। किन्तु अँग्रेजी साहित्य में ऐसे लेखको का अभाव नहीं है जिनकी कृतियों में मनुष्य के प्रति अपरिमित घृणा, तज्जन्य कटु भयानकतापूर्ण व्यंग्य तथा क्रोध, क्षोभ एवं शत्रुता आदि के भाव मिलते हैं। प्रायः जीवन की दौड़ में असफल होने या विपत्ति-काल में सहायता तथा सहानुभूति न पा सकने पर हम संसार तथा मनुष्य जाति से प्रेम और सहानुभूति की आशा छोड़ देते हैं और उसमें केवल स्वार्थ-परता, आडम्बर, कपट, मिथ्याचार, आदि ही देखते हैं।

हमें यह देखकर आश्चर्य तथा हर्ष होता है कि केतकी जी की रचनायें जीवन तथा जगत के प्रति ऐसे घृणा, क्रोध, वैर, क्षोभ, भय एवं निराशा मय दृष्टि कोण से सर्वथा मुक्त हैं। निश्चय ही आपका व्यक्तित्व काफी ऊँचा होगा जिसने संसार की बुराइयों को ग्रहण न कर अपने श्रेष्ठ गुणों जिज्ञासा, प्रेम, सहानुभूति सौन्दर्य-प्रेम आदि को पूर्ण रूप से जीवित रखा। इन्हीं गुणों की छाप हम आप की कहानियों पर भी पाते है। उनमे हम ऐसे पात्र नही पाते जो मनुष्य से घृणा करते हो या या उसके सुख-दुख के प्रति प्रस्तस्वत् भाव रखते हो। आप की कहानियो के नायक-नायिका प्रायः नवयुवक, नवयुवतियाँ होती हैं। उनमें नयी उमंग नई आशा, मेल-जोल बढ़ाने की इच्छा एवं कर्तृत्व शक्ति मिलती है। उनके आकार-प्रकार वेश-भूषा, रहन-सहन आदि का भव्य वर्णन आप करती है।

अपने स्त्री-पात्रो के सौन्दर्य-चित्रण में आप सचमुच आशातीत सफलता प्राप्त करती हैं। इतनी मनोहर भव्य मूर्ति को केवल थोड़ी सी पंक्तियो मे ही चित्रित करना आपकी कल्पना की अनोखी शक्ति का परिचायक है। इसमे आपको विशेष सोचना-समझना नहीं पड़ता और सोच-समझ कर सौन्दर्य-चित्र खींचे भी नही जा सकते। यदि सौन्दर्य-विधायिनी कल्पना है तो लेखक बिना प्रयास के ही भव्य दृश्यों एवं पात्रों की अवतारणा कर सकेगा। आवश्यकता केवल इस बात की होगी कि वह अपनी कल्पना मे उत्पन्न होने वाले चित्रो का निरीक्षण ध्यान से करे और उन्हें व्यवस्थित रूप दे। इस नव निर्माणकारी कल्पना के अभाव मे मौलिक साहित्य की रचना का प्रयास व्यर्थ है। व्यर्थ सिर खरोचने से गणित के प्रश्न भले ही हल हो जाँय या कोई भूली बात भले ही याद हो जाय किन्तु सच्ची साहित्यिक सृष्टि नहीं खड़ी की जा सकती।

केतकी जी में यह नव निर्माणकारी कल्पना स्पृहणीय मात्रा में भरी पड़ी है। आप निश्चिन्त होकर उसका अनुगमन करती हैं और उसी प्रकार अपने कलात्मक गन्तव्य पर पहुँच जाती हैं जैसे नदी के बहाव के साथ चलने वाली नौका। इस कल्पना की यह विशेषता है कि वह वर्ण्य-विषय के प्रत्येक पहलू का वर्णन नहीं करने जाती, बस उनके कुछ प्रमुख अंगो की ओर संकेत मात्र कर देती है। उसका काम उनकी वाह्य रूप-रेखा को कुछ प्रमुख गुणो तथा विशेषताओ के आधार पर प्रस्तुत करना होता है। पाठक लेखक से दृश्य-विधान के सम्बन्ध में केवल इतना ही चाहता भी है। वह वर्ण्य-विषय की कुछ प्रमुख रूप रेखा पाकर उसके शेष अंगों की पूर्ति अपनी ही कल्पना द्वारा कर लेता है। अंग्रेजी के महाकवि मिल्टन की कल्पना में यही विशेषता मिलती है। वह वर्णित विषय के केवल कुछ प्रमुख अंगो तथा गुणों को लेकर एक लहलहाता हुआ चित्र हमारे सामने रख देता है जिसकी केवल सीमा-रेखाओ एवं मुख्य पंक्तियों को ही हम देख पाते हैं और शेष को हमारी कल्पना अपनी ओर से पूरा कर लेती है।

किसी दृश्य का वर्णन पढ़ते समय हमारा उद्देश्य यह नहीं होता कि लेखक उस दृश्य या स्थान आदि के एक छोटे-बड़े अंग या पहलू का वर्णन करे। यह साहित्य-रचना नहीं हुई। हम उस दृश्य को लेकर रचनाकार के चित्र में उत्पन्न हुए भावों तथा कल्पना–चित्रों को देखना चाहते हैं। यह कल्पना–चित्र सर्वदा किसी वस्तु के दो –चार गुणों को लेकर अपने आप निर्मित हो जाते हैं। इसके लिये उक्त विषय के प्रत्येक पहलू या अंग का जानना आवश्यक नहीं है। अपनी कल्पना मे जो चित्र हम राणा प्रताप, शिवाजी और अकबर आदि के देखते हैं क्या वे इन ऐतिहासिक

विभूतियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के चित्र होते हैं ? कभी नहीं, ऐसा होना सम्भव भी नहीं है। यह दृश्य-विधान चेतन-मस्तिष्क की कोई रचना नहीं होती, बल्कि इसका निर्माण हमारी कल्पना करती है जो चेतन-बुद्धि से बिलकुल भिन्न होती है। चेतन-बुद्धि का काम केवल इसका निरीक्षण कर इसे साहित्यिक रूप दे देना है।

केतकी जी मे हमे ऐसी ही कल्पना का दर्शन होता है। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर, एक विषय या वस्तु से दूसरे विषय या वस्तु पर उड़ती हुई तथा उनको एक पारस्परिक सम्बन्ध-सूत्र में बाँधती हुई आगे बढ़ती हैं। उनका उद्देश्य किसी दृश्य की सभी छोटी-बड़ी बातों का वर्णन कर पाठक को कष्ट पहुँचाना नहीं होता। मानों हमें यह ज्ञात हो नहीं है कि रेल के प्लेटफार्म पर कैसी भीड़, चिल्ल-पों, दौड़-धूप, प्रतीक्षा आदि मचती है। यह तो नित्य देखते-देखते तबियत ऊब सी गई है। फिर साहित्यकार को क्या अधिकार है कि हमारे मनोरंजन के बहाने वह इन्हीं बातों की उद्धरणी कर दे ?

आपकी इस कल्पना का दर्शन हमें आपके वर्णनों के अतिरिक्त पात्रो के वार्तालाप मे भी भली भाँति मिलता है। उसमें हमें सोचने-विचारने के लिये पर्याप्त सामग्री मिलती है। उनके व्यंग्य, कटाक्ष तथा बुद्धिमत्ता-पूर्ण भाव-भरी बातें पाठक के चित्त को रस-प्लावित कर देती हैं। उनमे ऐसी नाटकीयता की सृष्टि होती है कि पाठक ऐसा अनुभव करता है कि मानो यह सब उसकी आँखो के सामने ही हो रहा है। आपके वर्णन तथा कथनोपकथन सर्वदा बौद्धिक तत्वो से परिपूर्ण होने के कारण हमें साधारण दैनिक जीवन से ऊपर उठाकर एक ऊँचे संसार तथा जीवन-स्तर

पर रख देते है। पात्रो के वार्तालाप मे सहानुभूति, प्रेम, विनोद, हल्का शिष्ट आक्षेप, हास्य तथा तर्क-पूर्ण विरोध आदि के तत्व इतने मिले-जुले होते हैं कि उनकी प्रतिमूर्ति हमें वास्तविक जीवन में ही मिल सकती है। थोड़े में ही किसी बात का सम्यक् प्रयोज्य चित्र हमारे सामने रख देना आप के वर्णन तथा वार्तालाप दोनो की प्रमुख विशेषता है।

केतकी जी मे मनुष्य के भावो को अत्यन्त गहराई तक पहचानने की शक्ति है। इस क्षेत्र मे आपका अनुभव तथा निरीक्षण विशेष रूप से देखने को मिलता है। रेल की यात्रा में सुन्दरी नव-युवती से मेल-जोल बढ़ाने तथा वार्तालाप के लिये उत्सुक नवयुवक के मानसिक भावो का कितना सुन्दर वर्णन उसी के मुँह से कराया गया है। स्त्री होकर आपने पुरुष के भाव-जगत का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह आपकी रचना को चिर स्थायित्व प्रदान करेगा और हमारी प्रशंसा तथा आश्चर्य का केन्द्र रहेगा। 'चूड़ियाँ' नामक कहानी में आपने विश्व-विद्यालय में एक साथ पढ़नेवाले सुरेश और शीला के अनन्य प्रेम का प्रदर्शन किया है जिसमे एक दूसरे को आत्मसात कर लेने की शक्ति भरी हुई है। अन्य पुरुष से विवाहित होने पर भी शीला, अपने हृदय-मन्दिर में सुरेश की आराधना करती है। बाद में पतिगृह की परिस्थिति. चहल-पहल, सुख-सम्पदा आदि मे अवश्य सुरेश को भूल जाती है किन्तु पुनः 'चूड़ीवाले' के रूप में उसका दर्शन पाकर प्रेम-विह्वल हो जाती है। कहानी दुखान्त है; किन्तु सुरेश की मृत्यु कुछ अस्वाभाविक लगती है। कहानी को दुखान्त बना कर प्रभावशाली बनाने के लिये आपने सुरेश को उसी दिन शीला की ही मोटर से दबा कर मार डाला। यहाँ स्वाभाविकता की रक्षा नहीं हो पाती। यों इस प्रकार की घटना

का घटित होना प्रेम में दीवाने सुरेश के लिये कुछ असंभव नहीं है।

केतकी जी ने अपनी कहानियों मे जीवन की अनेक समस्याओं तथा व्यक्तिगत उलझनो को चित्रित किया है। प्रेम को लेकर रची गई आपकी कहानियाँ अत्यंत सफल हैं। उनसे मनुष्य के इस प्रमुख अंग के विविध रूपों का प्रत्यक्षीकरण होता है। जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी आपको एक श्रेष्ठ साहित्यकार की सी सफलता मिली है। मानव-हृदय का जो ज्ञान आपकी रचनाओं से प्रकट होता है वह विरले ही साहित्यकारो मे मिलता है।

आपकी भाषा सरल, लोचपूर्ण, हल्का व्यंग्य-विनोद एवं हल्की चटपटी अर्थ-वक्रता लिये हुए भावों तथा विचारों की अभिव्यंजना में पूर्ण समर्थ है। आपमें भाव या विचारों को प्रकट करने के लिये उचित शब्दो के चुनाव का स्वाभाविक गुण है। शनैः शनैः आपकी भाषा पहले से अधिक आधिकारिक एवं अर्थव्यंजक हो गई है। उसमे दिखावट का नाम भी नहीं है; उसमें सर्वत्र भावानुसार चलने की शक्ति रहती है। आप विदेशी शब्दो के प्रयोग मे कोई हिचक नहीं रखती। शर्त यही है कि वे खूब प्रचलित हो तथा अर्थ-व्यञ्जना मे अपने पर्यायवाची हिन्दी शब्दों से अधिक सहायक हों। उर्दू, फारसी तथा इंगलिश के ऐसे शब्दों का प्रयोग काफी सफाई के साथ करती हैं जो भाषा की आत्मा में घुल-मिल गये हैं। यदि उन पर ध्यान न दिया जाय तो हमारे भावो तथा विचारो के पूर्ण वाहक होने के कारण उनके विदेशी पन को भी नहीं पहचाना जा सकता। आपकी भाषा शैली चुस्त, संक्षिप्त और चुलबुली बौद्धिकता लिये होती है जो आपकी कहानियों मे यथेष्ट नाटकीयता, गति एवं मार्मिकता उत्पन्न करती है। आप व्यर्थ के कठोर शब्दों का प्रयोग

नहीं करतीं। आपकी भाषा पर आपके काव्यत्व का प्रभाव विशेष रूप से नहीं परिलक्षित होता यह आपके विशद भाषा-पांडित्य का द्योतक समझा जायगा। आपका कवि-हृदय सर्वदा जीवन के गहन अनुभवों तथा मानव-मानस में छिपे हुए भावों की खोज में दिखाई पड़ता है।

केतकी जी की कहानियों मे पात्रों का चरित्र-चित्रण सर्वत्र प्रधान रूप से मिलता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक शैली के अनुसार आप पात्रो के स्वभाव तथा मानसिक संघर्ष का जीता-जागता चित्र हमारे सामने रखती हैं। कानपुर से इलाहाबाद तक यात्रा करते हुए नवयुवक के भावों का चरित्र-चित्रण आपके विशद मानव-ज्ञान, तथा जीवन-निरीक्षण का परिचायक है। इसमें उक्त नवयुवक की इच्छा, विवशता, यौनगत आकर्षण, आत्म-पश्चात्ताप, इच्छा के अनुसार नवयुवती से वार्तालाप आदि करने का प्रयत्न, झेंप, लज्जा आदि सभी साकार रूप से चित्रित हो गये हैं।

अभी आप हिन्दीजगत की एक नवोत्थित कलाकार हैं; किन्तु इतनी ही अवस्था मे आपने कला परिपक्वता भाषा-अधिकार तथा जीवन-अनुभव का यथेष्ट परिचय दिया है। प्रकृति ने आपको विशेष साहित्यिक क्षमताओं का वरदान देकर भेजा है। भविष्य में हम आपसे प्रौढ़तर रचनाओं की आशा करते हैं। खेद है हमारे देश ने अभी तक साहित्यकार का समुचित सम्मान करना नहीं सीखा। कीर्ति, सम्मान, पुरस्कार और पारितोषिक आदि से साहित्यकार को नवनिर्माण की प्रेरणा मिलती है।

—::०::—

आकर्षण

कानपुर जंकशन; प्लेटफार्म नम्बर वन। रात साढ़े आठ बज रहे थे। उस दिन दिनभर कुछ बदली थी, आसमान में बादल छाये हुए थे इसलिये गर्मी भी अधिक थी। लखनऊ से आने वाली ट्रेन आकर खड़ी हो गई। मैं बर्थ के कोने दुबका हुआ बैठा था। थोड़ा सा मुँह खिड़की से निकाल कर बाहर देखना ही चाहा कि बगल में बैठे हुए महाशय एक झटके से उठ खड़े हुए। निराश होकर खिड़की से मुँह हटा लेना पड़ा। यात्रियों को जाने क्या जल्दी पड़ी है कि उतरने के लिये एक-पर-एक चढ़े जा रहे हैं। उधर चढ़ने वाले भी एक सेकेन्ड के लिये भी रुकना नहीं चाहते। मुझे भी उतरना है; गाड़ी बदलनी होगी। जानता हूँ, पर इसका यह अर्थ तो नहीं है कि इस प्रकार परेशान होऊँ। अन्त में बाध्य होकर मुझे भी उठना पड़ा। ऊपर से खींच कर सूट-केस नीचे उतारा, बिस्तर ठीक किया और खड़ा हो गया।

इसी समय खिड़की से एक कुली की सूरत दिखाई दी। बेचारा कुछ निराश-सा, पराजित-सा खड़ा था। किसी यात्री का सामान उतारने के लिये उसे न मिला था। मुझे खड़ा देखकर एक बार आशा से उसका मुख-मण्डल चमक उठा; बड़े उत्साह से पूछा—'बाबू साहब, सामान उतारूँ।'

मुझे उस बेचारे की सूरत पर बड़ी दया आई। बिना कुछ कहे हुए ही मैंने बिस्तर और फिर सूट-केस उठा कर खिड़की की

राह उसे पकड़ा दिया और हाथ में एक छोटा सा ट्वायलेट बाक्स लटकाये हुए मैं उतर पड़ा।

'बाहर चलूँ सरकार !'

'नहीं, हमें इलाहाबाद जाना है।'

'अच्छा सरकार' कहकर उसने सामान उठाया।

'तूफान कहाँ खड़ी होती है जी !'

'यही साहब, पाँच नम्बर के प्लेट फार्म पर !'

'अच्छा।'

प्लेटफार्म पर अच्छी खासी भीड़ जमा थी। स्टेशन का प्लेटफार्म भी गाड़ी आने के पहले एक प्रदर्शनी-सा ही प्रतीत होता है। तूफान मेल के आने मे अभी काफी देर थी; कुली ने सामान उतार कर रख दिया। कुली को सामान देखने के लिये कह कर मैं प्लेटफार्म पर घूमने लगा। यात्रा में जल्द ही थकान अनुभव होना मेरे लिये स्वाभाविक है। लखनऊ से कानपुर तक का सफर कुछ अधिक लम्बा नही है पर दो-तीन दिन से बराबर मुझे जगते ही बीता था। किसी की बारात जाना मेरे लिये सदैव ही जहमत मोल लेना है पर गौतम की शादी थी, जाता न तो क्या करता ? गौतम है मेरा बचपन का साथी। कितने ही वर्ष हम लोगो ने एक साथ व्यतीत किये हैं।

हाँ, तो थकावट के मारे बदन चूर-चूर-सा हुआ जा रहा था। सोचा, चलो चाय पी आऊँ। घूमता-घामता टी-स्टाल पहुँचा, एक प्याला चाय पी और दाम चुका कर सिगरेट सुलगा। प्लेटफार्म पर टहलने लगा तभी मालूम हुआ कि तूफान मेल बीस मिनट लेट है।

प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े ट्रेन की प्रतीक्षा करना कोई आसान काम नहीं है। एक-एक क्षण युग-युग-सा कटता है। इसी लिये

ह्वीलर के स्टाल पर बैठ कर कुछ समय काट दिया ।

जब मैं प्लेटफार्म पर वापस आया तो देखा अपार जनसमूह उसपर बिखरा हुआ है। ट्रेन आने ही वाली थी; लोग अपना-अपना सामान बटोर रहे थे, जैसे चला-चली की वेला हो। खोमचे वाले प्लेट फार्म के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम-घूमकर आवाजें लगा रहे थे।

धड़धड़ाती हुई तूफान मेल आकर प्लेटफार्म पर खड़ी हो गई। सभी डिब्बे यात्रियों से ठसाठस भरे हुए थे। हारकर एक डिब्बे मे बैठने के लिये मुझे भी वाध्य होना पड़ा। पर अन्दर कोई भी वर्थ खाली न थी। यद्यपि यात्री कम थे पर सभी वर्थ पर बिस्तर लगाये इस प्रकार नींद मे खर्राटे भर रहे थे मानो यह उनका घर ही हो। किसी को जगाना व्यर्थ समझ कर मैंने सामान नीचे ही रख दिया और दरवाजा बन्द करके खिड़की से मुँह बाहर निकाल कर ट्रेन चलने की प्रतीक्षा करने लगा।

गार्ड ने सीटी दी और ट्रेन डोल चली। स्टेशन से ट्रेन के बाहर निकल आने पर मैंने भी सिर भीतर कर लिया। एक बार सम्पूर्ण डिब्बे पर दृष्टि डाली; सभी लेटे हुए सो रहे थे, कई स्त्रियाँ तथा पुरुष थे। सूट-केस पर बैठ कर मैंने एक सिगरेट जलाई और पीने लगा। धुयें की वक्र रेखायें उठकर खिड़की के बाहर जाने का प्रयत्न करने लगीं। बाहर विशाल अन्धकार फैला हुआ था। आखें बाहर के अन्धकार से टकरा कर वापस लौट आती थीं।

सिगरेट का धुआँ फेंकते हुए मैंने जो अपने सामने वाली वर्थ के कोने में देखा तो कुछ हिलता-डुलता हुआ दिखाई पड़ा। गोरीसी पतली उङ्गलियों ने मुँह पर आये हुए बालों को हटाया और करवट ले ली। आँखे दूर पर दो अधखुली आँखो से टकरा

गईं। क्षण भर मैं देखता ही रह गया पर बाद में मुझे स्वयं ही अपनी हरकत पर खेद हुआ और मैंने आँखे नीचे कर लीं।

अब तक वे आँखे पूरी तौर पर खुल गई थी। क्षण भर मैं नीचे आँखें किये बैठा रहा फिर खिड़की के बाहर देखने के बहाने दृष्टि उठाई, उड़ती हुई नज़र उधर भी डाली। एक टक देख रही थी मुझे। बाहर के अन्धकार में कुछ ढूँढ़ता हुआ मै सोच रहा था कि कितनी सुन्दर लड़की है। वयस यही कोई सोलह-सत्तरह की होगी। गोरा रंग, पतले होठ, बड़ी-बड़ी मतवाली आँखे मानो राहगीरों को आमंत्रित कर रही हों! गज़ब का सौन्दर्य था और उस पर वह धानी साड़ी और नीला ब्लाउज़ उसके सौंदर्य को और भी द्विगुण बना रहा था।

मन मे आया फिर एक बार देखूँ पर यह सोच कर कि वह सोचेगी कि कितना असभ्य हूँ मैं, साहस न होता था पर मन न माना आखिरकार उठा, अधजली सिगरेट फेंकने के लिये; उठ कर खिड़की पर आया, क्षण भर रुका रहा फिर आकर अपनी जगह पर बैठ गया। इस बार जी भर कर देखने के इरादे से आँख उठाई, अब भी वह उसी प्रकार देख रही थी। मुझे अपनी ओर देखते हुए देखकर आँखें उसने खिड़की के बाहर फेंक दी।

बीच वाली वर्थ पर वह लेटी थी और सामने ट्रंक या कुछ अन्य सामान खिड़की के पास वाली वर्थ पर रखा था। काश! वह सामान हट जाता तो मैं भी वहाँ—उसी के सामने—बैठ सकता था, पर भला यह सम्भव कैसे हो सकता था?

दूसरी सिगरेट निकाली। वह अब भी बाहर देख रही थी। अपनी ओर आकर्षित करने के लिये मैं उठ खड़ा हुआ। दियास-

लाई की डिबिया हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़ी। साधारण-सी एक खड़खड़ाहट हुई और वे आखें मेरी ओर फिरीं।

आखिर यह राह कैसे कटेगी, बातचीत करने के लिये भी तो कोई नहीं है। समय काटने के लिये साधन तो अच्छा है पर यदि परिचय हो जाय तो। बड़ी ही नम्रता से पूछा—'यह सामने रखा हुआ सामान आप ही का है क्या ?

धीरे से उसने सिर उठाया।' हाॅ' कह कर मेरी ओर देखने लगी।

मैंने और अधिक साहस बटोर कर कहा—'यदि आप कहें तो इसे नीचे उतार कर रख दूॅ तो मुझे भी बैठने की जगह मिल जाय।'

उसने कुछ उत्तर न दिया। स्वयं उठी और कोने में रखे हुए सूट-केस को उतार कर नीचे रख दिया और चुपचाप फिर लेट गई। मेरे लिये इतनी कृपा ही बहुत अधिक थी। चुपचाप जा कर कोने मे बैठ गया। बार-बार देखने का प्रयत्न करता पर आॅखे वापस ही लौट आतीं।

ट्वायलेट बाकस खोला। इसमें अन्य आवश्यक सामानो के साथ-ही-साथ मैं सदैव ही एक-आध किताब भी सफर मे रख लेता हूँ ताकि आवयश्कता आ पड़ने पर उनका उपयोग कर सकूँ। मैं एक पुस्तक निकाल कर पढ़ने का बहाना करने लगा पर आँखे बार-बार सामने की सीट से जा टकरातीं।

एक बार जो मेरी आँखे पुस्तक के अक्षरों से हट कर सामने की वर्थ पर पहुँची तो मैंने देखा दो पतले अधर मुस्कान के बीच हिलडुल-से रह थे। झेंप मालूम हुई। शायद यह सोचती है कि मैं पढ़ने के बहाने बार-बार उसे देख रहा हूँ!—हाँ यदि सोचती है

तो ठीक भी तो है। मैं कर भी तो यही रहा हूँ। आँखें मैंने हटा लीं और खिड़की पर सिर रख कर सोने का प्रयत्न करने लगा। पर आँखो मे नींद कहाँ ? बार-बार खुल जातीं और बार-बार उसकी आखों से टकरा जातीं। यह भी कोई बात मे बात है। मैं सोचने लगा आखिर यह मेरी कितनी बड़ी बेवकूफी है! सोचा, अगले स्टेशन पर उतर कर डिब्बा अवश्य बदल दूँगा पर अभी तो अगला स्टेशन बड़ी दूर है।

पुस्तक पढ़ कर समय काटने का विचार मैंने छोड़ दिया। किताब बन्द कर के एक तरफ रख दिया। बाहर से इंजिन की आत्मा धू-धू करके धुआँ बाहर फेंक रही थी। कोयले के छोटे-छोटे कण अन्दर आ कर कपड़ों पर गिर रहे थे। मेरी पतलून पर कोयले के कणो का ढेर-सा लग रहा था। मैंने उन्हें झाड़ते हुए कहा—'यदि आप को कष्ट न हो तो खिड़की उठा दूँ। बड़ा कोयला आ रहा है।'

'जैसी आपकी इच्छा!' उसने धीरे से उत्तर दिया।

मैंने खिड़की का शीशा ऊपर उठा दिया और सोचने लगा कि कितनी मधुर आवाज़ है। इच्छा हुई थोड़ी देर बातचीत ही करूँ पर बात न सूझ रही थी। अन्त में पूछा—'आप कहाँ जा रहीं हैं?'

'इलाहाबाद!'

'अच्छा, बड़ी अच्छी बात है मैं भी वहीं जा रहा हूँ।'

उसने कुछ उत्तर न दिया। मैंने सोचा था वह पूछेगी कि मैं इलाहाबाद में कहाँ रहता हूँ क्या करता हूँ और इस प्रकार बात-चीत का सिलसिला बनाये रखने का एक साधन मिल जायगा

पर यह न हुआ। उसने कुछ भी उत्तर न दिया। क्षण भर रुक कर मैंने फिर पूछा– आप वहीं रहती हैं ?'

'जी नहीं।'

'तो किसी सम्बन्धी के यहाँ जा रही हैं ?'

'जी हाँ।'

'आ कहाँ से रही हैं ?'

'बहुत दूर से !'

'आखिर ?'

उसने मुस्करा कर मुँह फेर लिया। क्षण भर बाद फिर मेरी ओर देख कर बोली—'आप सी० आई० डी० हैं क्या ?'

'यह आपने कैसे समझा ?'

'फिर किसी के सम्बन्ध में इतना जानने के लिए क्यों उत्सुक हैं ?'

मैं झेंप गया। कुछ उत्तर देते न बन पड़ा। चुप रह गया। पर बातचीत का सिलसिला जो कायम रखना था, उसके लिये कोई रास्ता न मिल रहा था। बड़ी देर तक मैं कोई उपाय खोजता रहा पर कुछ भी उपाय न मिला। क्या बात करूँ, यह समझ न पड़ रहा था।

थोड़ी देर बाद वह उठी। नीचे रखी हुई सुराही से गिलास में पानी उड़ेला, पीने ही जा रही थी कि मेरे मुँह से निकल पड़ा—तूफान के यात्री को सुराही साथ रखना जरूरी मालूम पड़ता है।

उसने मेरी ओर देखा। शायद मेरी बातों का कुछ अर्थ भी उसकी समझ में आ गया और उसने पूछा—'पानी पियेंगे क्या आप ?'

'पीता तो अवश्य पर जब स्टेशन आवे तब तो।'

उसने गिलास मेरी ओर बढ़ा दी।

'आप पियें, मैं स्टेशन पर पी लूँगा। फतेहपुर नज़दीक ही है।' मैंने कहा।

उसने कोई उत्तर न दिया। चुपचाप पानी पिया और फिर लेट गई। जी मे मैं सोचने लगा कि गिलास न लेकर मैंने पूरी मूर्खता की पर अब हो ही क्या सकता था।

बगल में रखे हुए ट्रंक पर सिर रख कर मैंने भी सोने का प्रयत्न किया, पर नींद न आ रही थी।

उसकी आँखें बन्द थीं। हाथ सीट के नीचे लटक रहा था। साँप के शक्ल की एक अंगूठी चौथी उँगली मे पड़ी थी। साँप के फण पर दो लाल-लाल आँखे बनी थीं जो बिजली के प्रकाश में चमक रही थी।

जेब से सिगरट-केस और दियासलाई निकाल कर फिर एक सिगरेट निकाली। जलाकर पीने ही लगा था कि उसने फिर आँखें खोल दीं। बोली—'आप सिगरट बहुत पीते हैं क्या ?'

'जी नहीं, पर सफर मे अकेले बैठे-बैठे समय भी तो नही कटता, कोई बोलने-चालने वाला भी तो नही है।'

'तो सो जायें, रात में तो लोग सोते हैं।'

'जी, पर जब आपकी भाँति ट्रेन पर मुझे भी नींद आये !' इस बार मैंने कुछ चिढ़कर उत्तर दिया।

वह मुस्कराकर बोली—'आप को मेरे ही सोने से ईर्ष्या है क्या ? डिब्बे में तो सभी सो रहे है।'

'हाँ, पर शायद यदि वे यह जानते कि कोई जाग रहा है और उसके साथ बात कर के समय कट सकता है तो वे न सोते।'

वह हँस पड़ी—'पर आपसे बात करने के लिये यदि कोई न मिले तो आप सिगरेट पी कर ही समय काट देंगे।'

'और रास्ता ही क्या है ?'

'अच्छा तो अब फेंक दें सिगरेट।'

मैंने सिगरेट बाहर फेंक दी।

उसने फिर आँखें मूंद लीं। अजीब लड़की है—मैंने सोचा। बोला, 'आपने मुझे सिगरेट फेंकने को कहा था।'

'जी हाँ, और धन्यवाद देना भूल गई क्षमा करें।'

'धन्यवाद देने की जरूरत नहीं है, पर आप जानती हैं कि मै सिगरट समय काटने के लि ग पी रहा था।'

'जी हाँ।'

'फिर जब आपको सोना ही थ। तब आप ने मेरा सिगरेट क्यों फिकवा दिया ?'

'सिगरेट नुकसान करता है। कह कर उसने करवट ले ली। मै खीझ उठा। अजीब लड़की है। यह अपने को क्या समझती है ? मैं फिर सिगरेट का धुआँ उसकी ओर फेंकने लगा। थोड़ी देर बाद उसने फिर करवट ले ली, मेरी ओर देख कर बोली—'सिगरेट बाहर फेंक दें।'

मैंने जैसे उसकी बात सुनी ही न हो। बिना उसकी ओर देखे हुए ही मैं सिगरेट पीता बैठा रहा। उसने फिर कहा— सिगरेट फेंक दीजिये।'

इस बार मैंने उसकी ओर देखा; उत्तर दिया—'आप मुझे 'सिगरेट क्यों नहीं पीने देंती ?'

'और आप मुझे सोने क्यो नहीं देते ?'

'मैं कब कहता हूँ कि आप जगें ?'

'जब आप कमरे भर में सिगरेट का धुआँ भर देंगे तो भला कौन सो सकता है ?'

मैंने सिगरेट फेंकते हुए कहा—अच्छी बात है, आप सोवें, मैं अब सिगरट न पियूँगा।

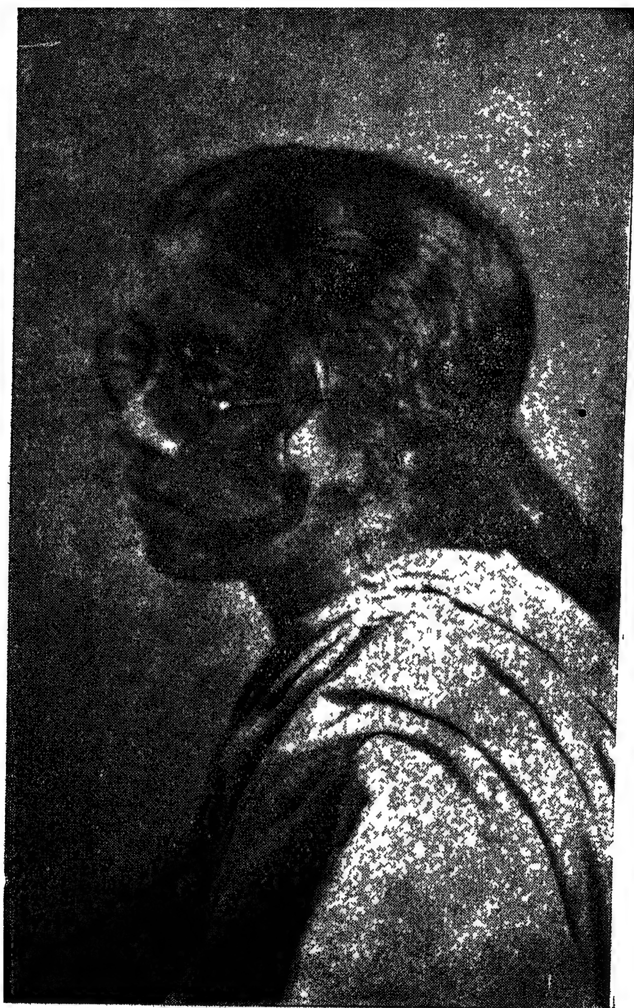
उसने फिर करवट ले ली और मैं उसके सोते सौन्दर्य को आँखो द्वारा चट कर जाने का प्रयत्न करता रहा।

इलाहाबाद स्टेशन निकट आते-आते मुझे भी नींद आ गई। बगल में रखे ट्रंक पर सिर रख कर सो गया। जैसे ही ट्रेन ने इलाहाबाद स्टेशन के यार्ड मे प्रवेश किया वैसे ही किसी ने जैसे मेरे हाथो को छू दिया। मै जाग कर उठ बैठा। देखा तो कम्पार्टमेंट के बहुत से लोग जग कर बैठे हुए अपना सामान ठीक कर रहे थे। उसने भी अपना सामान ठीक कर लिया था। मैंने देखा वह बैठी हुई मुस्करा रही थी। उसके निकट ही एक और स्त्री बैठी थी। कुछ प्रौढ़ सी थी।

मेरी ओर देखती हुई मेरी पूर्व परिचिता ने अपनी साथ वाली स्त्री से कहा—भाभी जी, बहुत से लोग ट्रेन पर नहीं सोते।

भाभी ने कुछ उत्तर न दिया। पर मैं समझ गया कि यह कटाक्ष मुझ पर ही किया गया है। कुछ कह न सका।

वे लोग उतर गए। कुली को बुला कर मैंने भी सामान उतरवाया और स्टेशन के बाहर आकर ताँगा करके चल पड़ा अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर !



कुमारी लावण्य बोस एम० ए०, एल० टी

कुमारी लावण्य बोस एम. ए., एल. टी.

कुमारी लावण्य जी का जन्म ७ मार्च सन् १९२६ ई० को प्रयाग मे एक सुशिक्षित भद्र परिवार मे हुआ। आपके पिता स्वर्गीय श्री निमाई चरण बोस एक सफल ऐडवोकेट थे। आपके चारो ओर का वातावरण आपकी शिक्षा-दीक्षा तथा मानसिक विकास के लिये यथेष्ट अनुकूल था। आपकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया। आपके घर में हिन्दी, बंगला तथा उर्दू आदि भाषाओ का प्रचार था। संयोगवश आपने अपना अध्ययन सर्व-प्रथम उर्दू से ही प्रारम्भ किया। उस समय देश में विशेष कर उत्तर-प्रदेश में उर्दू का विशेष प्रचार था। कचहरियों तथा अन्य सरकारी कार्यों मे उर्दू का विशेष बोल-बाला था। अस्तु, इस पर आश्चर्य न करना चाहिये।

आपने बी० ए० तक उर्दू का अध्ययन किया। आपने सन् १९४७ में बी० ए० तथा सन् १९४९ में इतिहास ले कर प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद ही सन् १९५० ई० में आपने गवर्नमेण्ट ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद से एल० टी० भी पास कर लिया। सम्प्रति आप गौरी पाठशाला इण्टर कालेज में इतिहास की लेक्चरार हैं।

लावण्य जी के दो भाई तथा दो बहिनें और हैं। आपकी बड़ी बहिन श्रीमती बीरा सरन एम० ए०, एम० एड० गवर्नमेण्ट होम साइंस कालेज प्रयाग में लेक्चरार हैं। मँझली बहन कुमारी लावण्य बोस जी स्वयं हैं। आपकी छोटी बहिन

कुमारी स्वर्णलता बोस ने प्रयाग विश्व-विद्यालय से एम० ए० किया है और आज-कल एल० टी० कर रही है। आपके दो भाइयो मे श्री सन्तोष कुमार एम० ए०, एम० एस० सी०, एल० टी, फैजाबाद गवर्नमेण्ट कालेज में साइंस के लेक्चरार है। दूसरे भाई श्री शैलनाथ बोस एम० ए० कर चुके हैं। शिक्षा के ऐसे श्रेष्ठ वातावरण में पलने का सौभाग्य थोड़े ही व्यक्तियों को मिलता है।

आपने स्कूल तथा कालेज मे हिन्दी का अध्ययन कभी पाठ्य-विषय के रूप में नहीं किया। किन्तु हिन्दी साहित्य में आपकी दिलचस्पी इतनो बढ़ी कि आपने उसका यथेष्ट अध्ययन किया और बाद में उसमें मौलिक साहित्यिक रचनाये भी करने लगीं। जहाँ तक कहानी-निर्माण का प्रश्न है आप छात्र-जीवन में ही सुन्दर रचनायें करती थी और विश्व-विद्यालय की कहानी प्रतियोगिताओ में भाग लेती थीं। प्रयाग विश्व-विद्यालय में इण्टर-युनिवर्सीटो कहानो—प्रतियोगिता मे हिन्दू बोर्डिंग-लिटेरेरा यूनियन की ओर से आपको एक रजत पदक प्राप्त हुआ था। आप अंग्रेजी साहित्य से भी यथेष्ट प्रेम रखती हैं।

विश्व-विद्यालय छोड़ने के बाद भी आपकी साहित्यिक साधना अनवरत जारी है। अध्यापन-वृत्ति भी आपकी साहित्यिक महत्वाकांक्षाओं के अनुकूल ही है। सन् १९४० ई. के आस-पास के पत्र-पत्रिकाओ मे भी आपकी कहानियाँ पढ़ी जा सकती है। स्मरण रखना चाहिये कि उस समय आपकी अवस्था केवल १३-१४ वर्ष की ही थी। अस्तु, केवल उन कहानियों के आधार पर आपकी साहित्यिक प्रतिभा का निर्णय करना आपके साथ अन्याय होगा।

आपकी मौलिक प्रतिभा, जीवन और जगत के प्रति आपका दृष्टि-विकास तथा दृष्टि-परिवर्तन एव साहित्यिक विकास और भाषा-परिवर्तन आदि को समझने के लिये उनका अध्ययन अवश्य जरूरी है। अवस्था की वृद्धि तथा जीवन और जगत के साथ अधिक गहरा, व्यवहारिक एवं विविध अनुभवो के साथ-साथ आपकी रचनाओ ने भी रुख बदला है। इधर प्रकाशित होने वाली आपकी रचनाओं में यथेष्ट प्रौढ़ता, गम्भीरता यथार्थवादिता तथा कलात्मकता मिलती है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

लावण्य जी की प्रारम्भिक रचनाये आपकी तत्कालीन अल्प अवस्था सें परिचय न रखने वाले के निकट यह प्रकट भी कर देती हैं कि ये किसी कम अवस्था के व्यक्ति की रचनायें हैं। उनमे हमे कल्पना तथा सरलता आदि के साथ जीवन के गम्भीर पहलुओं के प्रति कुछ अनभिज्ञता मिलती है। किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचने के लिये इन कहानियों में उतावलापन-सा दिखलाई पड़ता है। घटना तथा परिस्थिति का आप इतना विस्तार नहीं दिखातीं कि आपका निर्णय या अन्त उनमे से स्वभावतः निकलता हुआ प्रतीत हो। अवश्य यह कहा जा सकता है कि इतनी छोटी या कम परिस्थितियों से भी ऐसे भीषण या मार्मिक अन्त उद्भूत हो सकते हैं; किन्तु लेखिका भली भाँति कार्य-कारण-परम्परा का निर्वाह नहीं कर पाती। वह अपने पात्रों को ऐसा व्यक्तित्व, ऐसे भाव तथा विचार नहीं प्रदान करतीं जिनके बीच संघर्ष करते हुए तत्पर मन के आवेगो में बहते हुए वे उसी अन्त पर पहुँचें जिस पर लेखिका उन्हें पहुँचाना चाहती है।

कहानी में किसी की आत्महत्या या किसी शुभचिन्तक की मृत्यु

आदि ही कला की सृष्टि नहीं कही जायगी, वरन् मुख्य दायित्व तो उन दृश्यों, मानसिक द्वन्द्वों, वार्तालापो तथा वर्णनों आदि पर होता है जिनके बीच से गुजरता हुआ पात्र आत्महत्या या मृत्यु आदि जैसे भयानक अन्त पर पहुँचता है। रचनाकार की मुख्य समस्या यह होती है कि वह अन्तिम तथा पूर्व परिस्थितियों एवं घटनाओं आदि को, भावो का चढ़ाव-उतार दिखाते हुए कार्य-कारण से भली भाँति जोड़ सके ताकि पाठक उन पर विश्वास कर सके। सभी प्रेमिकाये प्रेमी के विश्वासघात पर आत्महत्या नहीं कर लेती। साथ ही प्रेम में निराश पुरुष या स्त्री के लिये आत्महत्या या विष-पान आदि अस्वाभाविक भी नहीं है। वास्तविक जीवन में कभी-कभी ही ऐसी घटनायें सुनाई पड़ती हैं; किन्तु क्या इस बात को कह भर देना कि अमुक स्त्री ने प्रेम मे निराश होने के बाद विष-पान कर लिया कहानी हो जायगी? फिर साहित्य-सृजन और सामयिक समाचार-पत्रो के समाचारो में क्या अन्तर होगा?

हमारा अभिप्राय यह नही है कि लावण्य जी केवल घटनात्मक वर्णन ही किया करती हैं। अवश्य आप नारी-हृदय को भी दिखाने का प्रयत्न करती हैं और उचित भावगत कारण दिखाने का प्रयास करती है, किन्तु इस विषय में उन्हें यथेष्ट सफलता नहीं मिल पाती। पाठक यही सोचता है कि आपको एक बात या समस्या उसके समक्ष रखनी है। उदाहरण के लिये प्रेम के क्षेत्र मे पुरुष की हृदय-हीनता, कठोरता और उपेक्षा तथा रमणी का निस्वार्थ त्यागमय, सर्वस्व बलि देने के लिये प्रस्तुत प्रेम पर्याप्त है जिसमें कि वह अपने अस्तित्व को मिटाकर पति मे मिला देने का प्रयत्न करती है। ऐसी अवस्था में निराश होने पर वह आत्म-हत्या आदि करने पर तुल जाती है। इस प्रकार आप अपने विचारों को कहानी के आवरण में हमारे समक्ष रखती हैं।

हम वास्तव में कहानी पढ़ते भी हैं लेखक के भावों तथा निर्णयों को जानने के लिये, इससे हमारी जीवन-दृष्टि व्यापक तथा पक्षपात से रहित हो जाती हैं; किन्तु आवश्यकता यह होती है क जो बात कही जाय वह स्वाभाविक हो; उसका निर्वाह कहानी के पात्र तथा घटनायें ठीक से कर सकें और हमें उनके बीच में कारण-सूत्र दौड़ता हुआ दिखाई पड़े।

अस्वाभाविकता, या कलात्मक निर्वाह का अभाव आपकी केवल प्रारम्भिक रचनाओ मे ही मिलता है बाद में आपकी कृतियो मे यथेष्ट कलात्मकता, जीवन-अनुभूति तथा संसार का ज्ञान आ जाता है। वास्तव में हमें उनका साहित्यिक मूल्यांकन उनकी प्रारम्भिक रचनाओं के आधार पर न करना चाहिए क्योंकि बड़े-से-बड़े कलाकारो को प्रारम्भिक रचनाओं में, विशेष कर यदि वे अत्यत अल्प वयस में जैसे १३-१४ वर्ष की आयु में लिखी गई हों, भाव-अपरिपक्वता, एवं जीवन तथा जगत से घनिष्ट परिचय का अभाव मिलता है। इस प्रकार की आलोचना केवल उनकी प्रारम्भिक रचनाओ को समझने भर के लिये ही की गई है।

लावण्य जी की अधिकांश कहानियाँ दुःखान्त है। उनमें या तो कोई निराशा और दैन्य आदि में रोग-ग्रस्त होकर आत्महत्या करता है, या अन्त में किसी की निराशा, वेदना, पश्चात्ताप अथवा आँसू आदि दिखाये जाते हैं। आप प्रायः शृंगार-क्षेत्र तक ही अपनी रचनाओं को सीमित रखती हैं। इसमें भी वियोग के पहलू या प्रेमी द्वारा प्रेमिका के प्रति किये गये विश्वासघात, त्याग, स्वार्थ-परता एवं पशुत्व-पूर्ण विलास-प्रियता आदि के कारण पहले प्रेमिका को आन्तरिक वेदना, निराशा और बाद में आत्म-हत्या दिखाई जाती है। ऐसी कहानियों में एक विशेष

अधूरापन रह जाता है।

आप अपनी नायिकाओ की वेदना, निराशा, और प्रेम मे सतीत्व या एक-निष्ठा आदि को तो दिखाती है किन्तु इनके कारण-रूप परिस्थितियो का चित्रण नही करती। यहाँ यह आवश्यक प्रतीत होता है कि संक्षेप मे प्रेम के उदय तथा विकास आदि को दिखाया जाय। यद्यपि यह बात सभी कहानियों में नही मिलती किन्तु 'भूल' नामक कहानी मे यह त्रुटि अवश्य खटकती है। प्रेमी से परित्यक्ता निराश 'संध्या' भरी-भराई बस मरने के लिये तैयार बैठी है। उसके भावो का संघर्ष दिखाने का कोई प्रयत्न ही नहीं किया जाता; संघर्ष चाहे भावगत हो या बुद्धिगत अथवा बाहरी दुनियाँ में परिस्थितिमय एवं कर्मगत; उसका दिग्दर्शन अत्यन्त आवश्यक है। जासूसी उपन्यासों तथा कहानियो का आकर्षण उनके परिस्थितिगत संघर्ष से ही उत्पन्न होता है, हाँ यदि उसमे कोई प्रेम-कहानी भी जोड़ दी जाय तो मजा जरा और भी गहरा हो जाता है। पात्रो का आन्तरिक संघर्ष आधुनिक कहानी का प्राण है।

यह संघर्ष थोड़ा-बहुत आपकी 'अभिलाषा' और 'हृदयहीन' आदि रचनाओ मे अवश्य मिलता है; फिर भी वर्णन का अंग उसमे अधिक है। 'हृदयहीन' एक सफल कहानी है जिसमें एक व्यक्ति अधिक पढ़-लिख जाने पर अपनी पूर्व-निश्चित स्त्री से, जिससे उसका प्रेम भी हो गया था, केवल इसलिये विवाह नहीं करता कि वह अधिक सुन्दर नहीं है। उक्त रमणी बाद मे निराश होकर आत्म हत्या कर लेती है।

इस प्रकार लावण्य जी की नायिकाये प्रेम मे असफल होकर पुरुष की हृदय-हीनता, स्वार्थ-परता एवं कठोरता आदि का प्रतिकार केवल आत्महत्या द्वारा कर पाती हैं। क्या उनके लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है ? हमें इस बात पर विवाद नहीं

कि पुरुष स्वार्थी, कामुक, विश्वासघाती और चरित्रहीन होते हैं। हालाँकि ऐसा नहीं माना जा सकता कि सभी पुरुष ऐसे ही होते हैं। फिर भी प्रेम में निराश रमणियाँ जीवन से समझौता कर कालक्षेप कर सकती हैं या पुरुषों के चरित्र एवं मूल्य को समझ लेने के बाद उनके दिखावटी प्रेम के प्रति उपेक्षा एवं व्यंग्य का भाव धारण कर अपनी शक्ति एवं दृढ़ता का परिचय दे सकती हैं। सभी का आत्म-हत्या कर लेना तो समुचित नहीं प्रतीत होता। कहानी की कला भी उनकी हत्या की माँग नहीं करती। उसकी माँग तो केवल प्रेम में पुरुष की स्वार्थ-परता, तथा हृदय हीनता और रमणी के आत्म-बलिदान और अन्त में निराशा और वेदना को चित्रित करने तक है। अब इसके बाद रमणी चाहे हत्या करे या न करे पाठक को इससे कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि प्रथम तो वह यह जानता है कि वास्तविक जीवन में सैकड़ों निराश स्त्रियों में से केवल दो-एक ही अपने जीवन का अन्त करती हैं; दूसरे वह मनुष्य के भीतर छिपे हुए भाव-संघर्ष, वेदना और निराशा आदि के हाहाकार तथा इनसे होकर मनुष्य के चरित्र-विकास एवं परिवर्तन आदि को देखना चाहता है। प्रमुख पात्र की हत्या से अवश्य पाठक थोड़ी देर के लिये स्तब्ध, चकित तथा वेदनामय हो सकता है किन्तु पात्रों को संघर्षशील दिखाकर और भी भव्य कहानी का निर्माण किया जा सकता है।

लावण्य जी की अधिकांश रचनायें असफल प्रेम एवं तज्जन्य निराशा, क्षोभ आदि को लेकर लिखी गई हैं। उनकी दृष्टि जीवन के इसी अंग पर लगभग पूर्ण तथा केन्द्रित रहती है। वे मानव-जीवन के अन्य भावों तथा समस्याओं आदि की ओर अधिक ध्यान नहीं देतीं। प्रेम के क्षेत्र में भी आप प्रायः स्त्री

की एकांगिता तथा उस पर होने वाले व्यक्तिगत तथा सामाजिक अत्याचार आदि को ही चित्रित करतीं हैं। 'सुहाग की प्रेतात्मा' में एक बाल-विधवा का चित्रण मिलता है जो अभी विवाह तथा वैधव्य आदि जैसी वस्तुओं से पूर्ण रूप से परिचित नहीं है। बिधवा हो जाने के बाद भी वह कई सप्ताह तक अपनी प्रिय आसमानी चूड़ियो को पहने रही। उसकी आत्मा 'विधवा' और 'दासी' आदि जैसे जीवन-सत्यों से कोई समझौता नहीं कर पाती। कहानी करुणा, विषाद आदि भावों का मूर्त रूप हमारे सामने उपस्थित करती है।

लावण्य जी की रचनाओं मे जीवन के विषाद, निराशा, क्षोभ आदि भावों को प्रबलता मिली है। खेद यही होता है कि अभी आपने जीवन के केवल एक पहलू पर ध्यान दिया है। इधर आपकी दृष्टि में व्यापकता उत्पन्न हो रही है। आपकी 'उस पार' नामक रचना में एक शराबी सम्भ्रान्त वृद्ध एक मजदूरिन की इस बात को सुनकर कि 'मुझे अभी उस पार जाना है' झिझक कर शराब के नशे में सन्ध्या के बाद 'उस पार' जाने के लिये उठता है और फिर लौटकर घर नहीं आता। यह कहानी वास्तव मे अपने अतीन्द्रिय संकेत, रहस्यवादी विचार-धारा तथा संक्षिप्त स्थान में जीवन का एक जीता-जागता मार्मिक चित्र उपस्थित करने में अद्वितीय समझी जा सकती है।

यह अतीन्द्रिय रहस्यवादी तत्व लावण्य जी की अन्य रचनाओं में भी मिलता है। 'उस पार' में वृद्ध नशे के झोंक में कहता है—'सभी को उस पार जाना है- मुझे तो और जल्दी है क्योंकि मै किनारे पर खड़ा हूँ।' 'सुहाग की प्रेतात्मा' में आप बाल-बिधवा नीला के मस्तिष्क में उठने वाले सुहाग के परिवर्तन-शील ऊहापोह का वर्णन करती हैं, जो अतीन्द्रियता, धुंधलापन,

और कुछ वैचित्र्य लिये हुए हैं। आपकी आत्महत्या करने वाली नायिकाये 'सन्ध्या' तथा 'निशा' मरकर अपर लोक में सुख-शान्ति की आशा करती हैं। अवश्य यह उनका धार्मिक विश्वास नही कहा जा सकता, किन्तु कहती हैं ऐसा वे अवश्य, कदाचित उत्तेजना में, या वार्तालाप के लहजे मे अथवा स्वभाव की दुर्बलता से विवश होकर।

लावण्य जी की वर्णन-शैली भी कुछ दूसरे प्रकार की है। आपकी कहानियो में वर्तमान मे सर्व-प्रथम कहानी के अन्त को अन्त के ठीक निकट की परिस्थिति द्वारा बतला दिया जाता है और इसके बाद भूत काल में घटित तमाम बातो का एक सिलसिले से वर्णन मिलता है। 'सुहाग की प्रेतात्मा' मे 'नीला' का विधवा-रूप, पहले ही दिखा दिया जाता है और बाद में उसके विवाह आदि का वर्णन किया जाता है। इसी प्रकार 'संध्या' भी प्रेम से निराश हो कर आत्म हत्या करने का निश्चय कर चुकी है। सर्वप्रथम उसका यही स्वरूप हमारे सामने आता है। आपकी कुछ कहानियाँ पत्र-व्यवहार के रूप में भी हैं। ये कहानियाँ अन्य वर्णन-प्रधान एक सूत्र में चलने वाली कहानियो की भाँति ही सुन्दर हैं। इनमें पात्रों को अपने भावों को प्रकट करने के लिये अधिक अवसर मिला है, जिसका उन्होंने समुचित उपयोग भी किया है।

आपकी कहानियाँ छोटी होती है। 'इस पार' 'और भूल' आदि तो बिलकुल ही छोटी हैं। अस्तु, एक कहानी में जीवन का केवल एक ही भाव अंकित हो सका है। उसमें गहराई अवश्य मिलती है किन्तु पात्रों के चरित्र-चित्रण या चरित्र-विकास के लिये स्थान कम मिला है। इसी से उनके जीवन के अन्य पहलू हमारे सामने नहीं आ पाते। परिणामतः जीवन

की जो विविधता लम्बी कहानी मे सम्भव है, वह आपकी छोटी कहानी में नहीं है। छोटी होने से आपकी कहानियाँ स्पष्ट सीधे ढंग से जीवन के किसी एक भाव, घटना या परिस्थिति आदि का चित्रण करती हैं और वे पाठक के समक्ष उसी प्रकार स्पष्ट हो जाती है जैसे अंधकार मे अकेला दीपक।

आपके पात्रो का वार्तालाप काफी स्पष्ट तथा भाव-पूर्ण होता है। उसमे वे अपने हृदय के भावो को खोलकर रख देते है। वार्तालाप का ढंग स्पष्ट, सरल, सीधा और प्रयोजन को दृष्टि मे रखकर निर्धारित मिलता है। उसमे पात्रो की वर्णनात्मकता झलकती है। आपके पात्रों के भाव सामान्य मानव के भाव होने की क्षमता रखते है। उनके सुख-दुख के साथ हमारी पूरी सहानुभूति स्थापित हो जाती है। साथ ही उनके भावो एवं विचारों से हम उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हैं। उनका चरित्र हमारे मन में उनका निश्चित आकार-प्रकार छोड़ जाता है। जहाँ भाव की गहराई दिखानी होती है वहाँ आप पात्रो की वेश-भूषा आदि का वर्णन नहीं करतीं; किन्तु अन्य स्थलो पर आप वेश-भूषा तथा वातावरण आदि का सुन्दर वर्णन करती हैं जो कहानो में पूर्णता तथा विविधता उत्पन्न करते हैं। आपकी कहानियो मे पात्रो की संख्या बिल्कुल आवश्यकतानुसार प्रायः केवल दो या तीन तक ही सीमित रहती है।

लावण्य जी की भाषा सरल तथा भाव के अनुसार बदलती रहती है। शनैः-शनैः आप का भाषाधिकार बढ़ता जा रहा है। आप में सांकेतिक भाषा लिखने की विशेष शक्ति है। भाषा में माधुर्य तथा प्रसाद गुण विशेष रूप से मिलता है। कहीं-कहीं आप काव्यात्मक-विश्लेषण-प्रधान भाषा लिखती हैं। ऐसे स्थल

आपकी रचनाओं मे काफी सुन्दर बन पड़े है। भाषा की कोमलता तथा काल्पनिकता आपके कवित्व-गुण की परिचायक हैं।

"दीदी"

आज उसे किसी प्रकार भी नीद नही आई। इधर-उधर करवट बदलने पर भी जब वह सो न सका तो वह उठ खड़ा हुआ। उसने एक सिगरेट जलाई। कश फेंकते हुए खिड़की पर एक पैर रखकर वह बाहर शून्य-अन्धकार की ओर खोई दृष्टि से देखने लगा। गम्भीर, अर्द्ध-निशीथ के पूर्ण-उज्ज्वल नक्षत्र को देखते ही कितनी ही स्मृतियाँ मानस-पटल पर चमक उठीं। अनन्त आकाश में जैसे अतीत की घटनायें रजताक्षरों से लिखी हुई उसे दिखाई पड़ने लगी।

'दीदी···दीदी' शून्य अन्धकार मे भी दीदी मानों दौड़ी हुई उसकी ओर चली आ रही थीं। अरे···दीदी क्यों आज उसे यों बार-बार याद आ रही हैं? दीदी की उदास दो आँखें, उनका गम्भीर बदन, जिनको एक दिन वह उपेक्षा करके चला आया था, आज कई वर्ष पश्चात् वह क्यो उसे उपेक्षा नहीं कर पा रहा है? कभी उसे ऐसा प्रतीत होता था मानो दीदी सामने खड़ी हुई उसे अपलक नेत्रों से निहार रही है। आज अब उससे दीदी का इस प्रकार निहारना सहा नहीं जाता था। वह बरबस कह पड़ा—'दीदी, अब इस प्रकार न निहारो।' किन्तु स्मृति-पटल से वह दो आँखें किसी प्रकार भी न हटतीं थीं। इन आँखो को उसने कितने ही प्रकार से देखा था—कभी इनमें मादकता भरी होती थी,—कभी इन्हीं आँखो में वह कसक का अनुभव करता था—कितना दर्द बिखर पड़ता था। सुख और

दुख, उल्लास और आशा का वह अद्भुत सम्मिश्रण। कभी-कभी कितनी निराशा झलक पड़ती थी इन आँखों से। कभी हँसने पर दीदी की आँखें भर आतीं थीं—वह मजाक करके कहता था—'अरे आप तो हँसती, रोती साथ ही हैं।' मुस्कुरा कर वह कहतीं थीं—'न जाने यह आँसू कभी-कभी असमय क्यों निकल पड़ते हैं?' उस दिन वह समझ न सका था, किन्तु आज समझ रहा है कि दीदी के हृदय में एक टीस थी जो हँसी के झटके में भी कुछ दुख जाती थी और उनकी आँखों में आँसू आ जाता था।

उसे याद आया कि एम० ए० परीक्षा के बाद जिस दिन उसने उसके यहाँ जाकर सब को दूसरे ही दिन अपने लखनऊ जाने की सूचना सुना दी तो किसी ने भी उसे विशेष कुछ नहीं कहा—कहने के लिये कुछ विशेष हो ही क्या सकता था? सब जानते थे कि छुट्टी हो गई है और अब वह घर अवश्य ही जायेगा। दीदी अन्दर थीं; थोड़ी देर बाद संध्या-समीर के झोंके की भाँति वह उसके सामने आकर खड़ी हो गईं।

"क्या बात है?" कह कर उसने दीदी की ओर देखा।

"कुछ नहीं—तुम कल जा रहे हो न?"

"हाँ।" उसने यह 'हाँ' इस प्रकार कहा मानों वह नहीं चाहता था कि दीदी अधिक समय तक उसके सामने रहें।

"इतना क्यों मुँह छिपा रहे हो? तुम्हें मैं अधिक देर परेशान न करूँगी। बस एक बार आँखें भर कर तुम्हें देख लेने आई हूँ—तुम्हें अपने हृदय का शुभ आशीर्वाद देने आई हूँ—तुम चिर सुखी हो, सदैव फूलो-फलो।"

उस दिन उसकी खुली आँखें भी सम्भव है कि बन्द थीं; उसे दिखाई न पड़ा कि उस दिन दीदी कितनीं उदास थीं। किन्तु आज उसे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि दीदी उस समय फूट-फूट कर रो रहीं

उस दिन वह सोचता था कि यह भी कैसी विचित्र बात है। एक बार स्नेह, प्यार हो जाने के बाद भूलने, भुलाने का प्रश्न ही कहाँ उठ सकता है। एक बार किसी के पास जाकर कोई दूर जाये ही क्यों? तब बड़े दावे से वह कहता था—'नौकरी के लिये मैं भले ही बाहर चला जाऊँ। किन्तु इससे क्या? क्या भूमि की दूरी ही दूरी होती है? दूर रह कर भी मैं आप के पास ही रहूँगा। अवसर मिलते ही मैं सब से पहले आपके पास आऊँगा।' सुनकर वह हँस पड़ती थीं—मानों कह रही हो कि ऐसा नही होता विजय—सब एक दिन दावा करते हैं, बड़ी-बड़ी प्रतिज्ञाये करते हैं किन्तु भूल भी जाते हैं। कभी वह कहती थीं—"नहीं विजय, जिसका आदि होता है उसका अन्त भी होता है। तुम्हारे हमारे और प्यार का भी एक दिन अन्त हो ही जायेगा। इसके लिये दुख नहीं है। यदि जरा रुक कर हुआ, थोड़े दिन पश्चात् हुआ तब तो ठीक है; किन्तु यदि शीघ्र ही इसका अन्त हो गया तो बड़ा ही दुख होगा—अभी मैं इसके लिये बिलकुल तैयार नहीं हूँ न?"

और सच-मुच विजय का दावा दो दिन बाद ही खतम हो गया। जिस सादगी ने एक दिन विजय को आकर्षित किया था, आज वही सादगी उसे नीरस लगने लगी। जिस अपनेपन को विजय एक दिन उनका सौन्दर्य समझता था आज उसी अपनेपन से उसका जी भर गया था। वे एक दूसरे से दूर होने लगे। पन्द्रह दिन में ही उनके सम्बन्ध ने केवल परिचय का रूप ले लिया। क्यों ऐसा हुआ, किसने ऐसा किया?

वह जानता था कि वह स्वयं दूर जाने लगा था। वह दूर जाना चाहता है—यह समझ कर दीदी बड़ी चेष्टा से पीछे जाने लगीं थीं। उन्हें अपना पैर पीछे रखते हुए बड़ा कष्ट हो

रहा था और यह कष्ट कभी-कभी उनके मुख पर झलक भी पड़ता था। किन्तु फिर भी विजय ने राह बदल दी थी और उन्होंने भी पीछे लौट जाना ही ठीक समझा।

उसका दूसरा सिगरट आप-ही-आप जल कर खतम हो गया। एक, दो नहीं कितनी ही स्मृतियाँ एक साथ जाग पड़ी थी। वह उन स्मृतियों में ऐसा उलझ रहा था कि उसे सिगरेट की ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिला। उसने अब सिगरेट फिर नहीं जलाई।

अपने अनजाने मे ही वह पुकार उठा—"दीदी···दीदी।" उसे लगा कि वह उसके पास आकर खड़ी हो गई हैं। उसने आँखे खोल कर देखा कि उसके बुलाने पर भी दीदी उसके पास नहीं आई।

स्मृता के सामने उसने किसी दिन भी उन्हे दीदी' कह कर नही बुलाया था। वह प्रायः कहती थी—"तुम मुझे नामसे क्यो नहीं बुलाते ? यदि नाम नहीं लेना चाहते तो कोई नाम अपनी ओर से ही बनालो।" वह हँसकर कहता था—'मैं केवल एक नाम के मन्दिर मे आपको सीमित नहीं करना चाहता।" और वह हँस देती थी।

समय बीत चला। स्मृता की ओर से वह अधिकाधिक उदासीन हो चला। प्यार का बन्धन ढीला पड़ता गया, और उसमें नित्य नई-नई गाँठें पड़ने लगीं। स्मृता अब भी उन गाँठों को सुलझाने की चेष्टा करती थी, किन्तु विजय अपने उदासीन व्यवहार से नयी-नयी गाँठ बना देता था। एक दिन जब स्मृता उसके सामने आई तो विजय अपने अनजाने में ही कह गया—"स्मृता जी बैठ जाइये।" स्मृता चौंक पड़ी—क्षण भर वह विजय की ओर इस प्रकार निहार रही थी मानों उसका हृदय

उसकी आँखों से पूछ रहा है कि तनिक ठीक से देख कर बताना कि क्या यह वही विजय है जिसको मैंने अपना सारा स्नेह दे डाला। आँखों ने उसके हृदय को क्या कहा, नहीं मालूम, किन्तु एक क्षण पश्चात् ही वह बिना कुछ कहे लौट कर चली गई।

थोड़े दिन ऐसे ही बीत गये। उस घर मे नित्य जाते हुए भी उसकी और स्मृता की मुलाकात बहुत दिनो तक नहीं हुई। इन दिनों विजय ने स्मृता से मिलने की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी फिर स्मृता कैसे मिलने के लिये ड्राइंग-रूम में आती? —यह विजय तो उसका विजय नहीं है? उसका विजय तो एक दिन न मिलने पर अधीर हो जाता था। यदि कभी संध्या समय स्मृता कहीं चली जाती तो दूसरे ही दिन बड़े अधिकार के भाव से आकर विजय उससे पूछता था—"कल आप कहाँ गई थीं?" और फिर रूठ कर कहता—"आप तो आनन्द करने चली गईं और मैं यहाँ देर तक पथ देख रहा था कि शायद आप आ जायें; किन्तु आप को मेरी क्या चिन्ता?" वह हँसती हुई हाथ जोड़ कर कहती थी—"अच्छा अब क्षमा कर दो—भूल हो ही गई।" किन्तु अब क्या विजय तो एक दिन भी उसके सामने आकर नाराज़ नहीं हुआ—उसके कमरे में आकर नहीं मिला।

फिर एक दिन उसने सुना कि स्मृता अस्वस्थ है। लौकिकता निभाने के लिये वह उसके पास जाकर बैठ गया। स्मृता बहुत देर तक चुपचाप पड़ी थी। फिर सहसा उसने पूछा—"विजय यदि आवश्यकता पड़े तो तुम मुझे क्या कह कर बुलाओगे?"

"बुलाने की मुझे कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।" उसने उत्तर दिया।

"यह तो ठीक है, किन्तु मान लो कि मैं रास्ते पर आगे चली जा रही हूँ और तुम मुझे पीछे से बुलाना चाहो तब?"

"दौड़ कर आप तक पहुँच जाऊँगा।" उसने कहा।

"किन्तु यदि दौड़ कर जाना सम्भव न हुआ और बुलाना भी बहुत ज़रूरी हुआ तो?" स्मृता ने पूछा।

"पता नहीं" विजय ने बड़े रूखे भाव से कहा।

"मैं बता दूँ?" स्मृता ने अपनी स्वाभाविक सरलता से कहा।

"हाँ।" उसने कहा।

"दीदी।"

विजय ने उत्तर में केवल 'अच्छा' भर कहा था।

न उस दिन इसके अतिरिक्त और कोई बात हुई और न फिर किसी दूसरे ही दिन। इसके थोड़े ही दिनो बाद विजय प्रयाग से चला भी आया था।

फिर प्रायः दो महीने बाद विजय एक दिन के लिये प्रयाग गया था। सदा की भाँति संध्या समय वह दीदी के यहाँ भी गया। दीदी उसके पास आकर खड़ी हो गईं। विजय को दीदी उस दिन कुछ अस्वस्थ सी लगी—"दीदी आप बीमार हैं क्या?" हँसने की चेष्टा करते हुए उसने कहा—"नहीं तो" और वह पास ही एक कुर्सी पर बैठ गईं। एक क्षण बाद ही वह उठ खड़ी हुईं—"विजय, शर्बत पियोगे?" और बिना हाँ, या ना सुने ही दीदी उठ कर अन्दर चली गईं। फिर थोड़ी देर बाद शर्बत का गिलास लेकर वह बाहर आईं और बिना कुछ कहे उसे मेज़ पर रख दिया। विजय ने आँख उठा कर दीदी की ओर देखा। वह आज सिहर उठा—दीदी उस समय बड़ी ही थकी लग रहीं थीं। वह सदा से ही दुबली-पतली रही हैं किन्तु ऐसी थकी हुई वह इससे पहले कभी नहीं लगी।

दीदी बिना कहे अन्दर चली गईं। सबो से मिलने के पश्चात् विजय दीदी के कमरे में गया। दीदी अपने पलँग पर थकी-हारी

पड़ीं थीं। उस दिन विजय पहली बार समझ रहा था कि अपनी भावनाओं से लड़ते-लड़ते दीदी थक गई हैं।

उसे देखते ही वह उठ बैठी, और बड़े आदर-भाव से कहा---"आओ विजय।"

वह उनके पास पलंग पर ही जाकर बैठ गया।

दीदी ने पूछा—"घर कब जा रहे हो?"

"आज ही रात की गाड़ी से" विजय ने उत्तर दिया।

फिर दोनो कुछ देर तक मौन रहे। थोड़ी देर बाद दीदी ने मानो बहुत सोच कर कहा—"बड़ी गर्मी हैं—मौसम बहुत खराब हो रहा है।"

वह चौंक पड़ा—अरे दीदी इस समय मौसम की बात करने लगीं। क्या उसका और दीदी का सम्बन्ध अब इतना कृत्रिम हो गया कि अब बात करने के लिये केवल एक मौसम का ही विषय रह गया?

वह कह उठा—"दीदी, अब रहने दो—मौसम की बात अब न करो।"

दीदी चुप हो गईं। थोड़ी देर पश्चात विजय उठ खड़ा हुआऔर बोला—"दीदी"

दीदी ने अपनी बोझिल आँखें उठा कर कहा—"विजय।"

विजय ने कुछ नहीं पूछा और दीदी ने कुछ नहीं कहा। किन्तु दीदी के सजल नेत्रो ने दीदी के मौन रहने पर भी उनकी विवशता प्रकट कर दी।—उनके नेत्र मानों कह रहे थे—'स्नेह का बन्धन टूट गया विजय, और अब हम बहुत दूर आ गये।'

विजय को लगा कि अब वह वहाँ दीदी के आगे खड़ा नहीं रह सकता। वह शीघ्र ही कमरे से बाहर चला आया।

फिर बहुत दिनो बाद लखनऊ के एक दूकान के सामने उसने दीदी को देखा। वह पहले उन्हें पहचान न सका। पहचानने

मे इस कारण कठिनाई नही हुई कि इन कई वर्षों मे दीदी बदल गई थी—वरन् इसलिए कि उनके मुख का भाव एक-दम बदल गया था—स्नेह-भरे उन नयनो मे अब शून्यता भर आई थी; हँसते हुए मुख पर दुख के बादल घिरे थे। दीदी ने पास आकर उसे गौर से देखा, फिर, सम्भव है पहचान कर, एक-दम शीघ्रता से आगे बढ़ गई।

विजय को लगा कि यह मुख देखा हुआ है—पहचाना हुआ है। फिर सहसा किसी ने उससे एक-दम से कहा—"दीदी" वह और भी आगे बढ़ा। किन्तु दीदी न जाने किस मार्ग से मुड़ कर चली गई थी।

कभी-कभी उसकी बड़ी इच्छा होती है कि वह दीदी की खबर ले, कि वह कहाँ हैं, क्या कर रही हैं, और कैसी हैं। किन्तु कोई मानो उससे कहता है—'उसकी दीदी अब कहाँ है ? वह तो मर गई, संसार से मिट गई'। उसी ने अपनी दीदी का अस्तित्व अपने लिये मिटा दिया। अब जो दीदी की रूप-रेखा की एक स्त्री, कभी इधर-उधर दिखाई पड़ती है, वह तो संसार की साधारण स्त्रियो मे एक हैं। उनके पास जाने की उसकी इच्छा नहीं होती डर भी लगता है उसे कि कहीं मिलने से उसकी स्नेहमयी दीदी का जो ममतामय चित्र उसके हृदय-पटल पर अंकित है—वह भी धूमिल न पड़ जाये।

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। रात भर के जागे हुए नक्षत्र थक कर झीमने लगे थे। वह भी सोचते-सोचते थक गया था, पैर खड़े-खड़े भारी हो रहे थे और आँखें भी कुछ अलसाने लगी थीं—वह जा कर पलँग पर लेट गया।

—:०:—

सुदक्षिणा वर्मा एम० ए०

सुदक्षिणा जी का जन्म १ मार्च सन् १६१० को जिला बाराबंकी मे हुआ। आपके पिता श्री गंगा प्रसाद जी उपाध्याय ने आपकी शिक्षा-दीक्षा मे कोई कसर नहीं उठा रखी। सुदक्षिणा जी ने हाई स्कूल तथा इन्टरमीजियेट परीक्षा क्रास्थवेट महा विद्यालय से उत्तीर्ण की। सन् १६३२ मे आपने प्रयाग विश्व-विद्यालय से एम० ए० की परीक्षा हिन्दी लेकर उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् आपने एल० टी० पास किया। सुदक्षिणा जी का विवाह दिसम्बर सन् १६२८ ई० में श्री प्रेम बहादुर जी एम० एस० सी०, बी० टी० के साथ सम्पन्न हुआ। प्रेम बहादुर काटा स्टेट (राजपूताना) कोटा इण्टर कालेज के स्थानापन्न प्रिन्सिपल रह चुके हैं। सम्प्रति वे राजेन्द्र कालेज झालावाड़ में फिजिक्स के प्रोफेसर हैं। वर्मा जी की दो सन्तानों मे एक कन्या है जिसकी अवस्था १६ वर्ष एवं नाम 'ज्योत्सना' है तथा 'प्रमोद' नामक एक पुत्र है, जिसकी अवस्था ६-७ वर्ष के लगभग है। वर्मा जी का दाम्पत्य जीवन अत्यन्त शान्त एवं सुखमय है।

विद्यार्थी-जीवन से ही सुदक्षिणा जी ने सहित्य-सेवा की ओर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया। हिन्दी साहित्य का आपका अध्ययन विस्तृत एवं गहरा है। साहित्य-सृजन में बहुमुखी प्रतिभा रखते हुए भी आपने कहानी-कला को विशेष प्रेम एवं आग्रह से अपनाया। कहानी-सृजन का प्रारम्भ यों तो आपने इण्टरमीजियेट से ही कर दिया था किन्तु विश्व-विद्यालय में पहुँच कर आपने उनके

प्रकाशन पर भी ध्यान दिया। १६३० ई० की पत्र-पत्रिकाओं में आपकी अनेक सुन्दर कहानियाँ देखी जा सकती हैं।

सुदक्षिणा जी कहानी-कला से भली-भाँति परिचित दिखाई पड़ती हैं। आपकी कहानियो में पात्रो की संख्या आवश्यकतानुसार ही होती है, जो कहानी-कला की माँग को सुन्दर ढंग से पूरी करती है। दो या तीन प्रमुख पात्रो के अतिरिक्त दो-एक गौण पात्र भी घटना एवं परिस्थिति को सम्पूर्ण बनाने के निमित्त आते हैं। आपकी कृतियों में सूच्य अंग कम रहता है। सूच्य अंग को कलात्मक दृष्टि से रुचिकर एवं सफल बनाने में काफी सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। जब तक इसका सम्बन्ध किसी मार्मिक तथा आकर्षक घटना या रहस्य-प्रस्फुटन अथवा चरित्र-अभिव्यंजना से न होगा, तब तक वह कलात्मक दृष्टि से सफल नहीं हो सकता।

जासूसी गल्प-साहित्य में सूच्य अंग प्रायः सफल होते हैं क्योंकि वे किसी रहस्य को प्रकाश में लाकर पाठक की जिज्ञासा को शान्त करते हैं। यदि यह सूच्य अंग किसी साधारण परिस्थिति, परिचय आदि के निमित्त आता है, तो पाठक उसमें दत्तचित्त नहीं हो पाता। यह उसके दैनिक जीवन में नित्य घटित होने वाली परिस्थितियों एवं परिचयों अथवा आकर्षण-शून्य वार्तालापों से बिल्कुल मिलता-जुलता है। सुदक्षिणा जी मे सूच्य अंग अवश्य आये हैं, किन्तु वे प्रायः लेखिका की ओर से ऐसे स्थलों पर लिखे गये हैं जहाँ पात्रों की नाटकीयता अर्थात् वास्तविक वार्तालाप-मिश्रित घटना, गति एवं कर्म-प्रवाह से काम नहीं चल पाता। उनके पात्र, इस प्रकार सूच्य पात्र नहीं हैं जो स्वभावतः निर्जीव अथवा संदेश ढोने की मशीन समझे जा सकें।

सुदक्षिणा जी के पात्र विशेष रूप से जीवित एवं चैतन्य हैं घटना तथा परिस्थिति से संगति रखते हुए उन में परिवर्तन

परिलक्षित होता है। कभी यह परिवर्तन मंगल की ओर और कभी अमंगल की ओर होता है, किन्तु होता है घटना तथा परिस्थिति की पूर्ण संगति में। अस्तु, पाठक उनके परिवर्तन में कार्य-कारण-परम्परा को बिना किसी उलझन के समझ लेता है। कोई मनुष्य अनाथ होकर, संसार की ठोकर खाकर, जीवन से निराश होकर आत्महत्या कर लेता है। यह कारण-संगत है और इसीलिये मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित भी है।

इसी तथ्य का चित्रण लेखिका ने 'गोपाल' नामक कहानी में किया है। बाल्यावस्था में सुख एवं प्यार के साथ जीवन व्यतीत करने वाला गोपाल एक दिन अनाथ हो जाता है। पहले भाई सन्देह मात्र में निरपराध काले पानी का दण्ड पाता है। मुकदमे की पैरवी में आधी ज़मीन रेहन हो जाती है। बाद में पश्चात्ताप एवं कष्ट से घुल-घुलकर पिता मरता है। ज़मीदार कानूनन शेष भूमि को बेदख़ल कर माता तथा पुत्र को भिक्षुक बना देता है। दोनों शहर आते हैं, मजदूरी करते हैं, किन्तु माता भी कुछ दिन के बाद चल बसती है। लाश तक उठाने मे कोई गोपाल को सहायता नहीं करता। अनाथ के प्रति समाज मे भर्त्सना, व्यंग्य, दुत्कार, डाँट-फटकार, घृणा आदि के अतिरिक्त है ही क्या? एक आदमी लाश ढोने में सहायता करता है, चिता जलते समय वह गोपाल से कहता है कि यह सब गुलामी का ही फल है। गोपाल यह कहते हुए कि 'अब वह स्वतंत्र देश मे ही जन्म लेगा', चिता में कूद कर जल जाता है।

पात्रों का यह चरित्र-विकास सुदक्षिणा जी की सभी कहानियों में मिलता है। परिवर्तन का आधार प्रेम, विवेक एवं चिन्तन तथा बदलती हुई परिस्थितियाँ होती हैं। 'कर्तव्य' नामक कहानी में एक पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब अपनी पत्नी के राष्ट्रीय

कांग्रेस मे स्वयसेविका बन कर पुलिस की लाठियाँ खाने के बाद, स्वयं सच्चे देशभक्त बनकर जेल-यात्रा करते हैं। आपके पात्र प्रायः काफी शिक्षित एवं सोचने-समझने वाले होते है। आप उनकी भूलो एवं भ्रान्त विचारो तथा धारणाओं को पाठक के सामने रखतीं और परिस्थिति-परिवर्तन द्वारा उनमें उचित विवेक-शीलता को जन्म देती है।

अस्तु, आपकी कहानियों में घटनाओं एवं परिस्थिति-परिवर्तनो की बहुलता है। इस दृष्टि से हमें स्थिरता नहीं मिलती। यदि पिरिस्थति में स्थिरता है तो भी उसका विरोधी पात्र अपनी उत्तेजना एवं क्षोभ में बदलता रहता है। 'पश्चात्ताप' मे एक सम्भ्रान्त शिक्षित व्यक्ति अपनी अपढ़ स्त्री से प्रेम नहीं करता। उसकी घृणा एवं कटुता दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती है। अन्त मे वह विष द्वारा पत्नी की हत्या का उपक्रम करता है। इस प्रकार परिस्थिति सर्वदा आपकी कहानियों के पात्रों में आन्तरिक परिवर्तन उत्पन्न करती है। स्त्री के स्वयं-सेविका बनने की बात न जानते हुए भी 'कर्त्तव्य' नामक कहानी के पुलिस-सुपरिटेण्डेण्ट देश-सेवा तथा पुलिस-अफसरी के बीच डावाँडोल स्थिति में दिखाई पड़ते हैं।

घटनाओं तथा परिस्थितियों के आधार पर पात्रों का चरित्र-परिवर्तन कुछ अतिरंजित-सा हो गया है। अवश्य यह बात सत्य है कि जिन परिस्थितियों में परिवर्तन दिखाये गये हैं; उनमें ऐसा परिवर्तन होना कारण-संगत है; फिर भी मनुष्य में कुछ अपना व्यक्तित्व भी होता है, वह परिस्थितियों के हाथ का एकदम कठपुतला नहीं है। भले ही उसके विचार गलत हों; किन्तु वह सही विचारों को एकदम बिना सोचे-समझे नहीं स्वीकार कर लेता वरन् पहले उनका विरोध करता है। धीरे-धीरे उसमें अपने विचारों

एवं धारणाओं के प्रति अविश्वास उत्पन्न होता जाता है। शनैः शनैः यह अविश्वास दृढ़तर होता जाता है। इस प्रकार परि-स्थिति बदल जाने पर भी उसके अनुसार चरित्र-परिवर्तन मे विलम्ब होता है। चरित्र की दोनों स्थितियो के बीच की यह द्वन्द्वात्मक स्थिति एवं ऊहापोह स्पष्टतया आपकी कहानियो मे कहीं नहीं दृष्टिगोचर होता।

इसका एक प्रमुख कारण भी है। सुदक्षिणा जी का उद्देश्य आदर्शवादी है। कला मे केवल सौन्दर्य-अभिव्यंजना से आप सन्तुष्ट नहीं हो सकतीं। इसीलिये आपके पात्रों मे प्राय. उचित परिवर्तन होता है पर उचित की अनुचित पर विजय दिखाई जाती है। अवश्य इस नैतिक दृष्टिकोण की रक्षा लेखिका कहानी-कला के क्रोड में करती है। वह स्वयं अपनी ओर से पात्रों का गुण-दोष विवेचन कम ही करती है तथा खुल्लमखुल्ला अपने विचारों का प्रचार भी नहीं करती। साहित्य के माध्यम से राज-नीति एवं चरित्र आदि का प्रचार सर्वदा होता आया है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। इसलिये नहीं कि साहित्य के अस्तित्व अथवा विकास के लिये यह आवश्यक है ; वरन इसलिये कि साहित्यकार साहित्य-सृजन के समय अपने को अपने धार्मिक राजनीतिक, नैतिक आदि विचारों से अलग नहीं रख सकता। ये सब उसके जीवन के उसी प्रकार अविभाज्य और आवश्यक अंग हैं जैसे सौन्दर्य-दर्शन की इच्छा।

इसके अतिरिक्त सौन्दर्य की अनुभूति एवं साक्षात्कार केवल भौतिक वस्तुओ के आकार-प्रकार एवं संगठन में ही नहीं होता। धर्म, कर्म एवं चरित्र में भी श्रेष्ठ कलाकार सौन्दर्य का दर्शन करते हैं। यदि उन्होंने इन विषयो में पाठक को सौन्दर्य का साक्षात्कार कराने में सफलता प्राप्त करली तो

निश्चय ही उन्हें श्रेष्ठ साहित्यकार कहा जा सकता है। राम का सौन्दर्य केवल शारीरिक नहीं है। उसमे उनके महान शील एवं शक्ति का अपरिमित योग है। इन दोनों तत्वों को निकाल दीजिये, वहाँ क्या शेष बचेगा ? अस्तु, दर्शन तथा धर्म आदि के तत्वो की अवतारणा साहित्य में सौन्दर्य-दर्शन के माध्यम से उसी प्रकार सम्भव एवं वांछित है जैसे शारीरिक सौन्दर्य की। इस दृष्टि से सुदक्षिणा जी को सफलता अवश्य मिली है, फिर भी उनका प्रचारक रूप कही-कहीं कला की चादर फाड़कर बाहर झाँकता हुआ दिखाई पड़ता है। 'गोपाल' नामक कहानी में गोपाल अपनी माता की चिता जलते समय अपने अचानक मिले हुए साथी से यह सुनकर कि दुख और कष्ट आदि देश की गुलामी के फल हैं, यह कहते हुए कि अब वह स्वतन्त्र देश में ही जन्म लेगा, चिता में कूद पड़ता है। पाठक को आश्चर्य होता है कि जीवन की आर्थिक, तथा सामाजिक कठिनाइयो से सम्बन्धित इस कहानी के बिल्कुल अन्त मे यह राष्ट्रीयता कहाँ से फट पड़ी। इसके पूर्व देश की परिस्थिति एवं राष्ट्रीय सेवा तथा विचारो आदि के विषय में कहीं पर एक शब्द भी नही कहा गया। ऐसे स्थल पर हम लेखिका को केवल राष्ट्रीयता-प्रचारक ही कहेगे।

राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति 'कर्त्तव्य' नामक कहानी में अधिक समीचीन शैली में उत्तरोत्तर मनोवैज्ञानिक परिवर्तन एवं घटना-संघात द्वारा की गयी है, जो पाठक की जिज्ञासा को अवश्य शान्त करती है। यही बात 'पश्चात्ताप' नामक कहानी में भी मिलती है। अपनी प्रथम अशिक्षित किन्तु पति-परायणा साध्वी, शिक्षित स्त्री को विष-प्रयोग से मार डालने वाला व्यक्ति एक रंगीन, फैशनेबिल शिक्षित महिला से विवाह कर अपनी भूल का अनुभव तब करता है, जब उक्त महिला उसके प्रथम स्त्री से उत्पन्न बच्चे

के रोग-ग्रस्त होने पर भी उसकी देख-भाल नहीं करती और न, उसी के सुख-दुख भोजन आदि की परवाह करती है। साथ ही दूसरी ओर अपने अतिशय खर्च से उसे आर्थिक दृष्टि-कोण से भी तबाह कर देती है।

इस कहानी में एक बात अलौकिक एवं असाधारण है। पश्चत्ताप एवं क्षोभ से पीड़ित उस व्यक्ति को पुनः एक आदमी उसकी प्रथम स्त्री को दे जाता है जिसको एक महात्मा विष-प्रभाव से मुक्त कर सुरक्षित रखते है। उक्त स्त्री की मृत्यु के निकट यही व्यक्ति आया था और उसे उठा ले गया था। यहाँ लेखिका का उद्देश्य कहानी को सुखमय बनाने का है। पाठकों पर यह व्यर्थ की कृपा क्यों ? बच्चे भले इस प्रकार की सुखात्मकता से परिचित हो जायँ किन्तु जीवन की वास्तविकता को समझने वाले लोग इस पर केवल मुस्करा देंगे या व्यंग्य कसेंगे। किन्तु इस प्रकार का प्रयत्न आपमें बहुत कम मिलता है। 'गोपाल' नामक कहानी मे संसार से ठुकराया हुआ, पेट की अग्नि से पीड़ित निराश एवं अनाथ नवयुवक गोपाल यदि चिता में कूद पड़ता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

सुदक्षिणा जी की कहानियो मे कभी-कभी एकाध ऐसे गौण पात्र भी आ जाते है जो रहस्यमय होते हैं। उनके विषय में पाठक की जिज्ञासा जागृत होकर शान्त नहीं हो पाती। 'पशचत्ताप' में पता नहीं चलता कि यह व्यक्ति कौन है जो मृत्यु-मुख में जाने वाली रमणी के पास आता है। पति उसको चिल्लाकर 'दुष्ट', 'चांडाल' आदि शब्दों से सम्बोधित करता है। इसके बाद यह नहीं लिखा जाता कि वह व्यक्ति इस स्त्री को उठा ले जाता है या नहीं। तत्पश्चात् नया दृश्य सामने रख दिया जाता है। कहानी के अन्त मे वह व्यक्ति पुनः पश्चात्तापशील पति के पास आता

है जो उसे पुनः ऐसे ही कटु एवं अभद्र शब्दों से सम्बोधित करता है। यह रहस्यमय औघड़-सा प्रतीत होने वाला व्यक्ति कौन है और उक्त शिक्षित पुरुष से उसका कैसा सम्बन्ध है? क्या वह उसके लिये बिल्कुल अपरिचित है? किन्तु अपरिचित के लिये सहसा ऐसे कटु एव अशिष्ट शब्दों का प्रयोग क्यों और इसके बाद भी उसके विषय में यह चुप्पी क्यो? उसके विषय में दो-तीन पंक्तियाँ पाठक क कौतूहल को शान्त करने में यथेष्ट सफल होतीं। इसी प्रकार गोपाल को एक अपरिचित व्यक्ति माता की लाश ढोने में सहायता करने के लिये मिल जाता है। चिता जलाते समय वह यह कह कर कि 'तमाम कष्टों का कारण केवल देश की गुलामी है,' अपनी राष्ट्रीयता का परिचय देता है, किन्तु लेखिका उसके विषय मे भी मौन रह जाती है।

सुदक्षिणा जी का दृष्टिकोण काफी व्यापक, मार्मिक एवं गहन अनुभूतियों से पूर्ण है। आप की कहानियो मे अनेक भाव अपनी प्रबलता के साथ चित्रित मिलते हैं। निश्चय ही मानव-हृदय के विषय मे आपका ज्ञान एवं अनुभव काफी गहरा तथा विस्तृत है। आपने जीवन की शाश्वत समस्याओं को भी लिया है और अस्थायी वाह्य समस्याओ को भी। दोनो स्थितियों मे आपने बाहरी परिस्थितियों से मनुष्य के मानसिक विचारों पर पड़ने वाले प्रभावो एवं परिवर्तनों को सफलता-पूर्वक चित्रित किया है। इस चित्रण मे हमे आपकी गहन अनुभूतियो का मधुर परिचय मिलता है। मनुष्य के भीतर होने वाले द्वन्द्वों का सुन्दर तथा निखरा हुआ चित्र देखकर हमे प्रसन्नता होती है।

वर्मा जी की कहानियो में सभी प्रकार के भाव, उदाहरणार्थ प्रेम, क्षोभ ईर्ष्या, निराशा, दैन्य, राष्ट्र-प्रेम, पश्चात्ताप, और कपट आदि पाए जाते है। वास्तव मे आपने अपने को एक छोटे से

जीवन-वृत्त में संकुचित न रखकर समस्त जीवन को अपनाया है। इसमे आपने जीवन के आध्यात्मिक या मानसिक पहलू पर विशेष बल दिया है। आपकी कहानियो में इसीलिये बाह्य परिस्थितियां अथवा घटनाओ की प्रधानता नहीं है, बल्कि इनसे मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभावो की है। जिस प्रकार आर्थिक कष्टो एवं संसार की कठोरताओ तथा उपेक्षाओं से पीड़ित गोपाल का जीवन हमारे आकर्षण का केन्द्र बनता है, उसी प्रकार साध्वी पत्नी-हत्या का दोषी व्यक्ति अपने धारणा-परिवर्तन एवं पश्चात्ताप द्वारा हमे अपनी ओर बरबस आकर्षित करता है।

दूसरा स्थान बाह्य समस्याओ को मिला है। राष्ट्रीयता, देश की दरिद्रता तथा आधुनिक दाम्पत्य जीवन एवं अन्य सामाजिक समस्याओं को लेखिका ने मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। जीवन के सुख-दुख एवं चरित्र के उत्थान-पतन से इनका घनिष्ट सम्बन्ध दिखला कर इन्हे जीवित रूप प्रदान किया गया है।

सुदक्षिणा जी मे पीड़ित के प्रति अपार सहानुभूति एवं करुणा दिखाई पड़ती है। इन भावो का चित्रण सफलता के साथ 'गोपाल' और 'कर्त्तव्य' आदि कहानियो में भली भांति मिलता है। 'पश्चात्ताप' मे भीषण पश्चात्ताप, क्षोभ तथा अपने द्वारा किये गये अमानुषिक अत्याचार एवं हत्या की तीव्र अनुभूति दिखाई गई है। पाठक इन भावो में स्वयं सहयोग देता है। गोपाल सब की सहानुभूति का पात्र बन कर सबों में करुणा का उद्रेक करता है। पुलिस-इंसपेक्टर की स्त्री के प्रति पाठक सम्मान तथा सहानुभूति का अनुभव करता है।

प्रेम का विलासमय उन्मादकारी चित्र सुदक्षिणा जी ने न खींचना ही ठीक समझा। इस क्षोभ में उन्होंने दाम्पत्य जीवन अथवा यौन समस्याओ को उसी रूप में अपनाया है जिसमें वे

किसी भी विचारशील व्यक्ति के सोचने-समझने का साधन बन सकती हैं। आपकी कहानियों से पाठक में भावों की उत्पत्ति के साथ विचारों को भी उत्तेजना मिलती है। वह इन समस्याओं के विषय में सोचने का प्रयत्न करता है जैसे किसी ने उसकी आँखें खोल दी हों। प्रेम तथा पर-स्त्री-पुरुष यौन-सम्बन्ध आपकी रचनाओं में समस्या के रूप में तथा जीवन की अखिलता के साथ आया है। वह आर्थिक, पारिवारिक, नैतिक आदि अनेक समस्याओं के बीच अंकित मिलता है। इसी से पाठक उसकी एकाङ्गिता का अनुभव न कर जीवन की सर्वांगता का अनुभव करता है। जहाँ आपको शारीरिक आकर्षण तथा भोग-विलास के चित्रण का अवसर मिला भी है, वहाँ भी आपने उसका समुचित उपयोग नहीं किया है या उसमे बिल्कुल संयम तथा अनासक्ति का परिचय दिया है। वास्तव मे आपका उद्देश्य नवयुवकों के प्रेम-प्रलाप को पूर्णतया चित्रित न कर केवल इनसे उत्पन्न होने वाली समस्याओं का स्पष्टतया निरूपण करना होता है।

आपके पात्रों का वर्तालाप प्रभावशाली, स्वाभाविक और आवश्यक होता है। उससे उनके चरित्र के विषय में भी काफी जाना जा सकता है! घटनाओं तथा कार्यों की बहुलता से आपकी कहानियों मे नाटकीय आनन्द मिलता है। पात्रों का कथनोपकथन एवं भावो का उत्थान पतन इस नाटकीयता के उपयुक्त ही होता है।

आपकी भाषा साहित्यिक एवं सरल होती है। उसमें काफी शक्ति परिलक्षित होती है। फिर भी उसमें उनकी भावनाओं तथा अनुभूतियों को पूर्णरूप से चित्रित करने की शक्ति की कुछ कमी दिखाई देती है। कहीं-कहीं प्रवाह में कमी एवं कुछ रूखापन या नीरसता भी प्रतीत होती है।

—:o:—

पश्चाताप

योगेन्द्र बाबू अपने कमरे में चिन्तित बैठे हुए थे। सामने मेज़ पर आज सुबह की आई हुई डाक पड़ी थी। बराबर पत्रों को उलटते-पलटते थे परन्तु जिस पत्र की उनको आशा थी वही नहीं दिखाई देता था। वे व्याकुल-से कभी कमरे में घूमने लगते और कभी बाहर आकर सड़क पर किसी की खोज के लिए आँखें दौड़ाते थे। फिर निराश होकर कमरे मे कुर्सी पर बैठ जाते थे, ऐसा ही वे अनेक बार कर चुके। जब हताश हो गए तभी यकायक डाकिये की आवाज़ आई—'बाबू जी चिट्ठी ले जाओ'

योगेन्द्र लपके हुए गए और एकदम पत्र ले लिया। अपनी सफलता पर प्रसन्न हुए। जिसके पत्र की प्रतीक्षा थी, उसी का पत्र था। किन्तु पत्र पढ़ कर वे एक लम्बी साँस लेकर फिर कुर्सी पर बैठ गए। तब दुःख से अपने-ही-आप कहने लगे—हाय! रमला, मुझको कितना दुःख दे रही है, यह शायद वह नहीं जानती। पहले विवाह करने का वचन देकर अब मना करती है। मैंने उसको अनेक बार समझाया कि वह मेरे अपयश को न डरे। जनता तो सदा दूसरों को दोष ही देती रहती है। कहाँ तक उसकी चिन्ता की जाय। पर रमला, तुम क्यों मुझे अस्वीकार करती हो? अब तक आशा लगाए हुए किसी प्रकार दिन-रात बिता रहा हूँ। अब तुम्हारे बिना कदापि नहीं रह सकता। तुम्हारे

साथ न रहने से मेरा जीवन निस्सार है। यदि मेरी कोई इच्छा है तो तुम को पाने की, चाहे उसके लिए मुझे घोर-से-घोर पाप ही क्यों न करना पड़े। यदि राधिका के रहते हुए तुम मेरी नहीं हो सकती और यदि ऐसा करने में लोग भी मुझे गालियाँ देंगे तो लो आज ही मैं इसका प्रबन्ध कर दूँगा। विघ्न के हटाने का यत्न करूँगा। पर तुम्हे कदापि किसी दशा मे नहीं छोड़ सकता। यह कहते हुए वे उदास मन से घर से बाहर हो गए और पार्क का रास्ता पकड़ा।

× × ×

दो साल हुए योगेन्द्रकुमार विलायत से बैरिस्टरी पास करके यहाँ आए है। नगर मे उनका एक निज का मकान है। पिता ने जो कुछ संपत्ति छोड़ी थी, उसे उन्होंने कुछ तो यहाँ और कुछ विलायत जा कर समाप्त कर दी। केवल यही मकान शेष रह गया है।

विवाह उनका १४-१५ वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। इस समय घर में उनकी स्त्री राधिका तथा एक साल के पुत्र रमेश के अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। यों तो वे पहले से ही पाश्चात्य सभ्यता के अनुगामी थे तथापि इगलैण्ड से लौटने पर क्या पूछना? जिसको वे प्रथम कानो से ही सुना करते थे वह सब प्रत्यक्ष देख आए है। अब हिन्दुस्तान आ जाने पर भी इंगलिस्तान के ही ढंग के वस्त्र प्रति समय पहने रहते हैं। उनको देख कर सहसा एक अँगरेज ही समझा जावे—यहीं उनकी इच्छा जान पड़ती है।

उनकी स्त्री राधिका देखने में सुन्दरी थी। हिन्दी पढ़ी-लिखी भी थी। गृह-कार्यों की भी उसको उचित शिक्षा दी गई थी, परन्तु योगेन्द्र की दृष्टि में वह एक ग्रामीण तथा असभ्य लड़की

थी। वे एक अच्छी अँगरेजी पढ़ी-लिखी अप-टू-डेट महिला से विवाह करना चाहते थे।

एक बार उन्होंने रमला को नाट्य-गृह में देखा। उसके वेशभूषा पर और बोल-चाल के ढंग पर उसी क्षण लट्टू हो गए। किसी बहाने उससे मिले। थोड़े ही दिनों में उनकी घनिष्टता सीमा तक पहुँच गई। एक दूसरे के बिना देखे दोनों को अपना जीवन हीन-सा प्रतीत होने लगा। यह घनिष्टता कुछ ही दिनों पश्चात् स्नेह में परिणत हो गई और दोनों परस्पर विवाह के लिए भी सहमत हो गए।

रमला को किसी आवश्यक कार्य से दूसरे नगर में जाना पड़ा। वह योगेन्द्र को प्रतिदिन पत्र लिखा करती थी। धीरे-धीरे उसको यह पता चला कि योगेन्द्र का तो विवाह हो गया है और उसके एक पुत्र भी है। यह जान कर उसको अत्यन्त दुःख हुआ। सोचा कि यदि अब वह भी उनसे विवाह करेगी तो उसका बहुत अपयश होगा। जनता उसको ही धिक्कारेगी। यही विचार कर उसने योगेन्द्र को लिख दिया कि राधका जी की जीवितावस्था में वह विवाह करने को कदापि सहमत नहीं है। यद्यपि योगेन्द्र ने उसको नाना प्रकार से समझाया, उसको अनुनय-विनय तक की पर रमला सदा यही लिख देती थी। आज भी उसने यही लिख भेजा था। अब योगेन्द्र दुःखी होकर अपने विघ्न को शीघ्र ही दूर करने के लिये तत्पर हैं।

× × ×

राधिका को इस घर में आये हुए इतने साल हो गए परन्तु एक दिन भी सुख से नहीं व्यतीत कर सकी। वह पति-प्रेम से वञ्चिता थी। योगेन्द्र उसकी हर बात में दोष ही निकालते थे।

विशेषतः जब से वे विलायत से लौटे हैं और रमला से मिलन हुआ है तब से तो प्रतिक्षण उठते-बैठते, खाते-पीते अपना क्रोध ही दिखाया करते। बेचारी राधिका अब उनकी आँखों की काँटा बन गई। उसको धैर्य्य देने वाला इस संसार में कोई नहीं था। घण्टों रोने में ही बिता देती। उसका बच्चा रमेश ही उसको कभी-कभी अपने खेल से हँसा देता। कभी तो वह सोचती कि आत्म हत्या कर ले। परन्तु पुत्र का मोह ऐसा करने से रोक देता था।

आज चार-पाँच दिनों से उसको ज्वर आ रहा है। न तो उसके लिये कोई दवा ही लाने वाला है और न सेवा ही करने वाला है। बेचारी यों ही पड़ी रहती है। योगेन्द्र को अपनी ही चिन्ता लगी है, वे भला उसको क्यों पूछने लगे? चार दिन हो गए। उसके पास गए भी नहीं। आज उसने उनको बुलाने को सोचा है।

रात के आठ बज गए। राधिका पलंग पर पड़ी हुई अपने दुर्भाग्य पर रो रही थी, बच्चा पास ही में सो रहा था। इतने में ही योगेन्द्र ने हाथ में गिलास लिए हुए प्रवेश किया और कहने लगे लो यह दवा पी लो। कब से डाक्टर साहब के यहाँ बैठा था, अब दवा दी है। बिना कुछ उत्तर की प्रतीक्षा किए हुए उन्होंने शीघ्र ही उसको वह दवा पिला दी और कमरे से बाहर चले गये।

भोली-भाली स्त्री गद्‌गद्‌ हो गई। वह उनसे कुछ कहना चाहती थी पर कहने न पाई। दवा देख कर उसको कुछ आश्चर्य तो हुआ था पर उसने सोचा—ये मनुष्य ही तो हैं। मुझे कष्ट में देखकर दवा ले आए हैं। संभव है, मन-ही-मन मुझे चाहते हों—जरूर चाहते हैं। मेरी भलाई के लिए ही मुझे डाटा-डपटा करते हैं। मैं मूर्ख हूँ—अगर अँग्रेज़ी पढ़ी-लिखी होती......

एकाएक रात्रि के ११ बजे उसकी आँख खुल गई। उस समय उसकी दशा सोचनीय थी। सिर घूमने और जी मचलाने लगा, पेट मे असह्य पीड़ा होने लगी, आँखो के सामने अँधेरा छा गया।

राधिका ने समझ लिया कि उसको विष दिया गया है। बच्चे की याद करके रोने लगी। उस बच्चे को क्या मालूम कि उसकी प्यारी माँ आज चली जा रही है। वह गहरी नींद मे पड़ा हुआ था।

राधिका का दिल व्याकुल होने लगा। मृत्युकाल समीप जान कर योगेन्द्र को पुकारा। वे एक अपराधी की भाँति आ कर कुर्सी पर बैठ गए। कुछ पूछने का साहस ही न हुआ। राधिका ने हँस कर कहा—"मै अब सदा के लिये बिदा हो रही हूँ। मुझे प्रसन्नता भी है कि आपके सुख के लिये मेरे प्राण जा रहे हैं। मुझे क्षमा कर दीजिए, जिससे मेरी आत्मा को शान्ति मिले।" फिर उसने रमेश की ओर देख कर कहा—"इसको न भूल जाइयेगा। जहाँ तक हो सके इसको दुःख न होने पावे।" इतना ही कहने पाई थी कि उसका गला भर्राने लगा। बोल बन्द हो गया। आँखे पथरा गईं। राधिका ने उस समय भी अन्तिम बार पति के चरण छूना चाहा।

उसी समय कोई उस कमरे में घुस आया।

योगेन्द्र चिल्ला उठा—"ऐं! तुम कौन हो? तुम यहाँ इस समय कैसे आए?"

× × ×

तीन मास व्यतीत हो गए। अब इस घर में न राधिका है और न उसके समय का सामान। योगेन्द्र ने रमला से विवाह कर लिया है। अब तो घर की आभा ही निराली हो गई है। पाश्चात्य सभ्यता स्थान-स्थान पर अपना रंग दिखा रही है। ड्राइङ्ग-रूम सजाने के लिये बड़े-बड़े नगरों से सामान मँगवाया

गया है। बहुत बढ़िया नई मोटर मोल ली गई है। मकान मे रेडियो भी मौजूद है। बम्बई, कलकत्ते के गाने सुने बिना रमला का मन ही ठीक नहीं रहता। अनेक दास-दासियाँ हैं, क्योंकि रमला अपने-आप कुछ कार्य्य करना असभ्यता समझती है। वह एक उच्चशिक्षिता महिला है। सदा से पाश्चात्य सभ्यता के वायु-मण्डल में ही उसका पालन-पोषण हुआ है। बड़े-बड़े उच्च पदाधिकारी सज्जनों तथा महिलाओं से उसका परिचय है। घर के कार्यों के निरीक्षण के लिए उसको तनिक भी अवकाश नहीं मिलता। कभी वह किसी मित्र को निमंत्रण देती, और कभी स्वयं उनके यहाँ जाती है। रात्रि को सिनेमा या नाटक देखने भी जाया करती है। प्रातःकाल चाय आदि का सेवन कर दो-तीन घण्टे घूमने में व्यतीत कर देती है। दोपहर को भोजन करके समाचार-पत्र आदि पढ़ती है। यही उसकी दिन-चर्य्या है।

× × ×

पहले-पहल तो चार-पाँच महीने योगेन्द्र को कुछ न मालूम पड़ा। उनको रमला मे गुण-ही-गुण दिखलाई देते थे। परन्तु जब चारो तरफ से रुपया की माँगे आने लगीं, बिल-पर-बिल दिखाई देने लगे, घरके नौकरों के भी तकाजे-पर-तकाजे होने लगे, तब बैरिस्टर साहब की आँखे खुलीं।

रमला को तो इसके लिये तनिक भी चिन्ता नही है। उसने साफ़-साफ़ कह दिया कि वह अपना खर्च किसी प्रकार कम नहीं कर सकती। जब वे उसको इधर-उधर जाने के लिये मना करते, तो वह रुष्ट हो जाती है।

एक दिन योगेन्द्र बाबू कार्यों में फसे रहने के कारण रात के १२ बजे घर पर आये। उस समय रमला सो रही थी। उन्होंने उसको जगा कर भोजन माँगा। पहले तो वह जागी ही नहीं, फिर

करवट बदलते हुए कहा—रात के बारह बजे तक कहीं भोजन रक्खा रहता है ?

योगे०—अति आवश्यक कार्य था। यदि आज न करता तो बड़ी आपत्ति मे फँस जाता। इसीलिये इतनी देर हो गई। भोजन तो अवश्य रखना था। बताओ, अब क्या खाऊँ ?

रमला—तो मैं क्या बता दूँ ? मै कुछ नहीं जानती। आप उस समय नहीं थे—कह भी नहीं गए थे, इसलिए भोजन भी नहीं रक्खा गया।

योगे०—अच्छा यदि नहीं है तो अब बना दो।

रम०—मैं ! और अब भोजन बना दूँ ?

योगे०—हाँ, तुम बना दोगी तो क्या होगा ? तुमको मेरी भी तो कुछ चिन्ता होनी चाहिए।

रम०—लज्जा भी तो नहीं लगती ! क्या इसीलिये विवाह किया था कि मैं सभा से थकी हुई आऊँ और रात को १२ बजे तुम्हारे लिए खाना बनाऊँ ? नहीं, मैं कदापि ऐसा नहीं कर सकती।

बेचारे योगेन्द्र बाबू विष का घूँट पी कर रह गए। उन्हें स्मरण आया कि किस तरह राधिका बारह-बारह बजे रात तक बिना स्वयं खाए-पिए, उनके लिए खाना बनाए हुए, उनकी प्रतीक्षा में बैठी रहती थी। चुपचाप रामायण, महाभारत आदि पढ़ा करती थी। वे इन सब बातों को जंगलीपन समझते थे। कभी उससे प्रसन्न नहीं हुए। जान पड़ता है उन्हें यह स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि रमला उनको इस प्रकार उत्तर देगी। भूखे ही पलँग पर लेट गए। फिर सिसक-सिसक कर रोने लगे, 'हाय ! उसने मुझे कभी उत्तर तक न दिया। मै ही उसको सदा फटकारा करता था।'

पश्चात्ताप का प्रारम्भ हो गया।

जबसे राधिका नहीं रही रमेश दासी के ही पास रहता था। ठीक तरह उसकी परवा करने वाला अब कोई नहीं था। रमला तो भूल कर भी उसको गोद मे नहीं लेती थी। दासी भी उसको अच्छी तरह नहीं रखती थी। एक मास से सर्दी और खाँसी हो रही है। किसी ने सावधानी नहीं की। ज्वर आ गया। तीन दिन तक उतरा नहीं!

आज इसी समय योगेन्द्र ने जाकर अपने बच्चे को देखा। अपने को बार-बार धिक्कारा। प्रातः काल डाक्टर सेन को बुला लाए। देखते ही उन्होने कहा—"इसको निमोनिया हो गया है। यदि भली भाँति सेवा की जाय तो अवश्य अच्छा हो जायगा।" अब योगेन्द्र को होश हुआ। सोचने लगे, क्या करूँ मैं तो आज इसके पास नहीं रह सकता। कचहरी जाना आवश्यक है। चलूँ रमला से देखने के लिए कह दूँ।

रमला के कमरे में जा कर उन्होंने देखा कि वह कहीं जाने को तैय्यार है। पूछा—कहाँ जा रही हो?

रम०—क्यों? एक कार्य से जा रही हूँ।

योगे०—क्या वहाँ जाना अत्यन्त आवश्यक है?

रम०—हाँ।

योगे०—डाक्टर ने रमेश को निमोनिया बतलाया है।

रम०—तो मैं क्या करूँ?

योगे०—तुम वहाँ न जाओ। उसकी देख-रेख करो। दासी तो गँवार है। कहीं कुछ-का-कुछ न हो जाय।

रम०—वाह! तुमने यह तो अच्छा कहा। यदिमैं वहाँ न जाँऊ तो मेरी हँसी न होगी?

योगे०—वहाँ तो केवल हँसी ही होगी। यहाँ तो बहुत कुछ हो रहा है।

रम०—मैं इसके लिए नहीं रुक सकती। मैं कोई डाक्टर नहीं हूँ। तुम किसी नर्स को बुलाओ।

योगे०—बस, जब देखो तब खर्च की बात बताया करती हो। नर्स १०) रु० रोज़ लेगी। इतना रुपया व्यर्थ खर्च होता जाता है। कई हज़ार का ऋण हो गया है। तुमको इसकी भी कुछ चिन्ता है या बस इधर-उधर घूमना ही अच्छा लगता है?

रम०—जब देखो तब मेरे घूमने की ही बात कहा करते हो! क्या मैं यों ही जाती हूँ? कार्य से जाती हूँ। मैं तुम्हारे बच्चे की धाय बन कर तो नहीं आई हूँ। यदि तुम मेरा खर्च नहीं सँभाल सकते थे तो मुझसे विवाह ही क्यों किया? किसी गँवार स्त्री से विवाह किये होते।

यह सुन कर योगेन्द्र के क्रोध की सीमा न रही। सहन-शक्ति की भी सीमा है। वे कड़क कर बोले—तुम इस प्रकार क्यों कह रही हो? मैं स्वयं तुमसे विवाह करके पश्चात्ताप कर रहा हूँ। तुम तो रुपये और ऐश-आराम की भूखी हो। भारतीय स्त्री कैसी होती है, उसका जीवन कितना उच्च और त्यागपूर्ण होता है, यह सब तुम्हारी समझ के भी बाहर है।

रमला ने क्रोध के स्वर में कहा—मुझे तुम्हारे रुपयों की तनिक भी चिन्ता नहीं है।

योगे०—तुम आज कहीं न जाने पाओगी। तुमको मेरी आज्ञा माननी ही पड़ेगी। अब तुम मेरे प्रतिकूल नहीं जा सकतीं। जाओ, बच्चे को देखो; मैं तुमसे बिनती करता हूँ।

रमला—नहीं, कदापि नहीं। मैं रमेश के पास नहीं जा सकती। क्या

तुमने मुझे भी राधिका समझ लिया है ? देखें ! मुझे जाने से कौन रोकता है ?

यह कहते हुए एक क्षण मे रमला घर से बाहर हो गई। योगेन्द्र ने पहले चाहा कि पकड़ ले, परन्तु फिर न जाने क्या सोचकर रमेश को दवा देने चले आए । खाना खाकर १० बजे दासी को सावधानी से रहने के लिये कह कर कचहरी चले गए।

× × ×

चार बजे संध्या समय थके हुए योगेन्द्र घर लौटे। आकर देखा रमला नहीं है। बच्चा रो रहा है। उसको गोद में लेते हुए दासी से पूछा—रमला कहाँ है।

उसने बताया कि वे १२ बजे घर आई थीं। भोजन करके अपने कपड़े आदि ले कर स्टेशन चली गईं।

योगेन्द्र यह सुन कर अवाक् रह गए। वे यह न जानते थे कि रमला यहाँ तक कर डालेगी। उसके कमरे मे गए। देखा उसके सन्दूक, बिस्तर आदि कुछ नहीं हैं। मेज़ के ऊपर एक पत्र मिला, उसमें लिखा था —

"......मैं अब यहाँ नहीं रहना चाहती। आप मेरा खर्चा नहीं चला सकते। रात-दिन की कलह मुझे अच्छी नहीं लगती। आज तक मैं स्वतंत्र रही हूँ और अब मैं परतन्त्र नहीं रह सकती। किसी ने मेरे कार्य्यों मे कभी कोई अड़चन नहीं डाली। आप मेरी स्वतन्त्रता छीनना चाहते हैं, इसलिये मैं जाती हूँ।

दूसरा कारण मेरे जाने का यह है कि पापी मनुष्य क्या नहीं कर सकता। जब एक बार उसने पाप किया है तो वह फिर भी कर सकता है। मैंने सुना है कि आपने राधिका को विष देकर मार डाला। मुझे भय है कहीं मेरे साथ भी ऐसा न करें। मुझे अपनी जान प्यारी है। बस बिदा।

पत्र पढ़ कर योगेन्द्र को अपने पैर तले की भूमि खिसकती हुई मालूम पड़ने लगी। धम से आराम-कुर्सी पर बैठ गए।

राधिका की याद करके घण्टों रोये। 'रमला के लिये ही मैंने तुम्हारा प्राण ले लिया। आज बदले में मैं अपना प्राण भी दे दूँगा।'

वे दूसरे कमरे मे चले गये। फौरन रिवाल्वर ठीक किया और अपने ऊपर चलाने ही वाले थे कि किसी ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया—'दुष्ट! तुम आज फिर आ गये! जहाँ मेरी स्त्री को ले गये हो, वहीं आज मुझे भी ले जाओ।'

'आप की स्त्री जीवित है। मैंने झूठ कहा था कि मैं उसकी लाश गंगा जी में फेंक दूँगा। असल में मेरे गुरूजी ऐसी जड़ी-बूटी जानते हैं जिससे प्रत्येक प्रकार के बिष का प्रभाव हटाया जा सके। आज आपकी स्त्री आपके पास, अपने पति के पास, आवेगी। प्रायश्चित्त पूरा हो गया।'

उसी समय बालक चिल्लाया—'अम्माँ, अम्माँ!'



सुश्री शान्ति मेहरोत्रा एम०ए०



सुश्री करुणा वर्मा, विदुषी आनर्स

करुणा वर्मा, विदुषी आनर्स

सुश्री करुणा वर्मा का जन्म जनवरी सन् १९२४ ई० में प्रयाग मे एक भद्र सुशिक्षित परिवार में हुआ। आपके पिता श्री श्रीचरण वर्मा एम० ए० प्रयाग विश्व विद्यालय के रीडर और प्रयाग के एक प्रतिष्ठित नागरिक हैं। करुणा जी की तीन बहनें और हैं। १—मोहिनी देवी सक्सेना, बिलासपुर में रहती हैं। २—शान्ति देवी, कटक में तथा ३—शकुन्तला देवी, मेरठ में रहती हैं। आपके दो भाइयों में श्री मनोहर सरन कमथान एम० ए० इलाहाबाद विश्व-विद्यालय में राजनीति के लेक्चरार हैं। तथा श्री शंकर सरन जो प्रयाग विश्व विद्यालय में एम० ए० के छात्र हैं। शिक्षा का प्रचार आपके परिवार मे विशेष रूप से रहा है। आप का परिवार अपनी प्रगतिशील विचारधारा तथा उदार दृष्टिकोण के लिये उल्लेखनीय है। आपकी सभी बहनें सुशिक्षित हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा का शैशव में उचित प्रबन्ध किया गया। किन्तु स्कूली शिक्षा आपको केवल हाई स्कूल तक ही प्राप्त हो सकी। बाद मे आपने विदुषी आनर्स घर पर स्वाध्याय के बल पर किया।

पढ़ने-लिखने में करुणा जी का मन बाल्यावस्था से ही खूब लगता था। आप स्कूली कोर्स के बाहर की पुस्तकें अधिक पढ़ा करती थी। आपकी दिलचस्पी भी अनेक विषयो मे रहती है। मनोविज्ञान मे आपका मन खूब रमता है। इस विषय का

अध्ययन भी आपने गम्भीर रूप से किया है। साहित्य-निर्माण की रुचि आपमें बाल्यावस्था में ही उत्पन्न हुई। शैशव में ही आपने 'उस पार' नामक कहानी की रचना कर अपने उत्साह, तथा साहित्य-निर्माण की अभिलाषा का परिचय दिया। १६४० ई० के बाद आपकी सुमधुर रचनाये 'विद्यार्थी' और 'मनोहर कहानियाँ' में प्रकाशित होती रही।

करुणा जी की रचनाये आकार में छोटी होती है। उनमें आवश्यकतानुसार दो-तीन पात्र होते हैं, किन्तु प्रायः एक ही पात्र कहानी का केन्द्र होता है। कहानी का मुख्य व्यापार उसके भावों, समस्याओं एवं व्यापारों का वर्णन करना तथा उसके माध्यम से मानव-जीवन के किसी चिर शाश्वत सत्य की अभि-व्यंजना करना या किसी सामाजिक समस्या का निरूपण करना होता है। कहानी आद्यन्त उसी एक पात्र से सम्बन्ध रखती हुई चलती है और अपनी घटना तथा वातावरण की पूर्ति के लिये अन्य पात्रों का भी समावेश कर लेती है। इस प्रकार 'पागल' तथा 'अनन्त के पथ पर' कहानियों मे एक पात्र की प्रधानता है। 'पागल' में एक एम० ए० पास अरविन्द नामक विद्यार्थी संसार से बिल्कुल विरक्त, उदासीन पागलों की तरह इधर-उधर फिरता है और दुनियाँ उसे पागल समझती है। एक अन्य व्यक्ति उसके आचरण का वर्णन करते हुए कहता है कि वह कविता लिखता और उन्हें जलाकर हँसता है तथा सिगरेट वगैरह पीता है। 'अनन्त के पथ पर' मे एक विधवा सदाचारिणी स्त्री का चरित्र-चित्रण मिलता है जो समाज के परिहास तथा व्यंग्य से पीड़ित होकर अन्तर्दाह एवं क्षोभ के कारण बीमार पड़ती और मर जाती है।

आपकी अन्य कई कहानियों में एक पात्र की प्रधानता होते हुए भी दूसरे प्रभावशाली महत्वपूर्ण पात्रों की अवतारणा हुई

है। जहाँ तक कहानी-कला का सम्बन्ध है, उसमे एक ही या अधिक-से-अधिक दो पात्र प्रायः महत्वपूर्ण पद के अधिकारी होते हैं। आपकी ऐसी कहानियों मे वार्तालाप को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। वास्तव में वार्तालाप पात्रों के चरित्र-चित्रण में विशेष सहायक होता है। सफल कलाकार पात्रों को एक दूसरे से वार्तालाप करते हुए दिखाकर उनके विरोधी गुणो को अधिक गहराई एवं स्पष्टता के साथ अंकिन कर सकते हैं। साधु तथा दुष्ट का चरित्र उनके पारस्परिक वार्तालाप तथा एक-दूसरे के प्रति आचरण से बड़ी आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है। आप अपनी अपेक्षाकृत लम्बी कहानियो मे इसी शैली का अनुगमन करती हैं। विरोधी पात्रों के वार्तालाप से पाठक की कल्पना में दो विरोधी गुण परिस्थिति एवं वातावरण आकर चित्रित होते और कहानी का महत्व बढ़ा देते हैं।

करुणा जी की छोटी कहानियों में वर्णन की प्रधानता है; यो वार्तालाप भी संक्षेप मे आवश्यकतानुसार दिखा दिया जाता है। आप के पात्र प्रायः गम्भीर स्वभाव के होते हैं जो अपने कष्टो को स्वयं झेलते हैं। दूसरों से अपने कष्टों या समस्याओ का वर्णन करना उनके स्वभाव के विपरीत होता है। कम-से-कम अपने मानसिक सुख-दुख के दर्शक, भोक्ता एवं ज्ञाता वे ही होते हैं। बाहरी दुनिया उनकी मानसिक स्थिति से भली भाँति परिचित नही हो पाती। इसलिये उनके विषय में उसकी धारणायें भी गलत होती हैं। ऐसे पात्र अपनी बात-चीत में केवल ऐसी बातो के विषय मे, कुछ कहते-सुनते हैं जिनका स्वरूप वाह्य होता है जैसे भोजन, खान-पान, जलवायु, धूप, और गर्मी तथा सर्दी आदि।

अस्तु, स्वभावतः पाठकों को ऐसे पात्रों के मनोगत भावों से परिचित कराने के लिये ही लेखिका को कलम उठानी पड़ती

है। इनके मानसिक सुख-दुख के वर्णन मे लेखिका को सफलता भी यथेष्ट रूप से मिलती है। वर्णन की शक्ति वास्तव मे पात्रों को मूर्तमान रूप देती है। आपका वर्णन सर्वांग-संतुलित, आवश्यकता के अनुकूल और निरीक्षण तथा अनुभव से परिपूर्ण होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपने काफी समय से उनका निरीक्षण तथा अध्ययन किया है। आपके वर्णन किसी सडक के किनारे खड़े चारो ओर से संतुलित एक वृत्ताकार आम के वृक्ष की स्मृति दिलाते है।

पात्रो के सुख-दुख वर्णन मे अपने सर्वदा आप संतुलन का ध्यान रखती है। न तो हमे यह अनुभव होता है कि व्यर्थ की बाते लिख दी गई हैं और न यही कि आवश्यकता से कम। इन वर्णनो का महत्व प्रायः मनोवैज्ञानिक होता है। इन से हम पात्रों की अन्तर्दशाओ से परिचित हो जाते है। इनसे आप उनके आचरणो तथा उनके प्रति समाज की धारणाओ, व्यग्यों, सम्मानो आदि का भी वर्णन करती है। इस प्रकार व्यक्ति तथा समाज का मनोमालिन्य एवं संघर्ष आपकी रचनाओं में प्रदर्शित मिलता है। आपके पात्र प्रायः इन सामाजिक विरोधों आक्षेपो आदि को सहते या उनकी उपेक्षा करते हैं। इसी से सामाजिक अत्याचार अधिक भयंकर से-दिखाई पडते हैं। सामाजिक विरोध के अन्तर्गत हम पारिवारिक परिस्थिति को भी ले लेते हैं। 'अनन्त के पथ पर' में गम्भीर, लज्जाशील निर्बल हृदय की श्यामा वैधव्य के दुख कोभी तरही भीतर सहती है। मायकेमे वह जीवन-यापन करती है। कभी-कभी अपने बाल्य-साथीआशुतोष से बात-चीत कर लेने के लिये उस पर समाज की व्यंग्योक्तियाँ पड़ती है तथा उसके बड़े भाई उसको आशुतोष से बात-चीत करने के लिये मना कर देते हैं। आत्म सम्मान प्रिय

श्यामा इस आघात को सहन नहीं कर सकती और आत्म-ग्लानि से पीड़ित होकर बीमार पड़ती तथा स्वर्ग सिधार जाती है। 'पागल' का प्रमुख पात्र संसार की अपने प्रति धारणाओं एवं उपहासों की उपेक्षा करता है।

पात्रों के भाव-प्रदर्शन मे आपको विशेष सहायता मिली है। करुणा जी में चुनाव की प्रतिभा विशेष रूप से पाई जाती हैं। वर्णन में यह उपयोगी तथा अनुपयोगी बातों का चुनाव तो है ही, यही सफलता हमें घटना, परिस्थिति तथा वार्तालाप में भी दिखाई पडती है। आप घटना-सूत्र का निर्वाह काल क्रमानुसार देना व्यर्थ समझती हैं। एक मार्मिक घटना तथा उस समय की पात्र की मनः-स्थिति का वर्णन कर चुकने के बाद आप दृश्य- परिवर्तन कर देती हैं क्योंकि इसके बाद काल क्रम का अनुसरण करना कहानी-कला की दृष्टि से आपको उचित नहीं प्रतीत होता; फिर पाठक एक अन्य मार्मिक परिस्थिति तथा घटना के मध्य में पात्र को देखता और उसके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का निरीक्षण करता है। इसी प्रकार का अचानक काल-क्रम-अवरोध आपकी बहुत सी कहानियों में मिलता है। इससे पाठक को किसीप्रकार की असुविधानहींहोती,

बात यह है कि समय का ध्यान इतिहास–अध्ययन के समय होता है; कहानी या उपन्यास अथवा भावों नाटक आदि के पढ़ने के समय नहीं। साहित्य में हम तथा कल्पनाओं की सफलता देखना चाहते हैं। एक घटना का दूसरी घटना से भावगत एवं कल्पनागत सम्बन्ध होना आवश्यक है। पाठक यह नहीं पूछने जाता कि अमुक दो घटनाओं के बीच के समय में क्या हुआ। दोनो घटनायें यदि भावना एवं कल्पना से ठीक-ठीक सम्बद्ध हैं तो पाठक को कृति मे कोई असंगति न दिखाई देगी। शेक्सपियर अपने नाटकों में दर्जनो वर्षों के समय का २-४ माह के व्यवधान से वर्णन कर देता है किन्तु

भावना-एवं कल्पना की दृष्टि से घटनायें एक दूसरे से जुड़ी हुई चलती हैं।

इस प्रकार श्रेष्ठ साहित्य की रचना मे हम समय का क्रम नहीं वरन् भाव तथा कल्पना का क्रम देखना चाहते हैं। लेखक की कल्पना अपने ढंग सेपरिस्थितियो एवं घटनाओ की ऐसी योजना करती है जो सर्व-प्रथम उसके कल्पना जगत से होकर गुजर चुकी होती है। अस्तु, उनकी सत्यता, उनके जीवन तथा पारस्परिक कारण-सूत्र के लिये रचनाकार का आन्तरिक प्रदेश उत्तरदायी होता है, न कि संसार का वास्तविक घटना-क्रम। निश्चय ही साहित्य में वर्णित पात्रो, घटनाओं आदि को भावना तथा कल्पना की दृष्टि से सही होना चाहिये, संसार की वास्तविक घटनावली से नहीं, जिसका यदि उदाहरण देने की भूल कर दी जाय तो पाठक अवश्य ऊब जाय।

करुणा जी मे भावनाओं का यही आन्तरिक सत्य रचना को एक सूत्रीय स्वरूप प्रदान करता है। उसमें घटनायें भावना के माध्यम से जुड़ी है। भावनाओं के संघर्ष तथा चढ़ाव-उतार के साथ हम घटनाओ का अविभाज्य सम्बन्ध पाते हैं। अस्तु, आपकी रचनाओं को कथावस्तु पूर्ण रूप से सफल दिखाई पड़ती है। उसमें कभी भी अस्वाभाविकता जैसी वस्तु नहीं मिलती। हम कहानी की सत्यता में विश्वास करते हैं। जिन कारणों से जो भाव उत्पन्न हुए दिखाये जाते हैं वे स्वाभाविक या सत्य प्रतीत होते हैं। उसी प्रकार पात्रों के आचरण तथा उनके भाव एवं विचार में एक ओर और उनके आचरण तथा परिस्थिति में दूसरी ओर कार्य-कारण-सम्बन्ध का निर्वाह किया जाता है। 'अनन्त के पथ पर' मे श्यामा ग्लानि, शोक, क्षोभ आदि से पीड़ित होती है, कुछ दिन के बाद बीमार पड़ती है और मृत

पति का नाम स्मरण करती हुई स्वर्ग सिधार जाती है। पाठक इस घटना पर विश्वास कर सकता है क्योंकि इसमें श्यामा के मानसिक भावों तथा उनके आचरणो आदि में सत्य का निर्वाह मिलता है। कथावस्तु की यह ठोस रचना सर्वत्र आपकी रचनाओं में मिलती है। कहानियो के छोटे होने से कदाचित इसमे कुछ सरलता भी होती है।

आपकी कहानियाँ होती हैं छोटी अवश्य; किन्तु उनमें काफी ठोस विषय भरे मिलते हैं। उनमे सांकेतिक शक्ति विशेष होती है। कुछ आप कहती हैं और कुछ उससे कई गुना पाठक को अनुभव करने या सोचने-विचारने के लिये छोड़ जाती हैं। एक समस्या या मानसिक द्वन्द्व पर कुछ प्रकाश डालने के बाद आप अन्य समस्या या भाव-गुत्थी उठा लेती हैं। इस प्रकार एक छोटी सी कहानी में ही आप का विषय-विस्तार काफी लम्बा-चौड़ा हो जाता है। 'अनन्त के पथ पर, में पाठक श्यामा के वैधव्य-रूप, उसके प्रति उसके नन्हें से बच्चे अरुण की सहानुभूति (उसको रोता देखकर रोना आदि), मायके में भाइयों तथा परिवार के अन्य सदस्यों का व्यवहार, बचपन के घनिष्ट साथी आशुतोष के प्रति श्यामा का व्यवहार जिसमें कुछ खिंचाव की भी गन्ध मिलती हैं; श्यामा के प्रति समाज का निर्दय उपहास, भाई द्वारा आशुतोष से बात-चीत करने के लिये मना किये जाने के बाद श्यामा की मानसिक ग्लानि एवं क्षोभ बीमारी, मृत्यु के निकट स्वप्न मे पति-दर्शन तथा 'हा नाथ' 'उमानाथ' आदि कहते प्राण-त्याग आदि। इन घटनाओं के बीच श्यामा के सलज्ज, कोमल, निर्बल और हँसमुख चरित्र पर भी यथेष्ट प्रकाश डाल दिया जाता है।

कतिपय स्त्री-कहानीकारों में घटना तथा भाव के मार्मिक सम्बन्ध को समझने की शक्ति नहीं होती। एक हल्की घटना

को लेकर पात्र में भावो का बवंडर खड़ा करना, जैसे साधारण अपमान या दुख मे आत्म-हत्या आदि करवाना हास्यास्पद होना है। घटना तथा भाव का सम्बन्ध आपकी रचनाओ में सर्वदा ठीक उतरता है। आप घटनाओं से उत्पन्न पात्रो के मानसिक भावो का दूर तक वर्णन करती है और उनके आचरण में भी सत्य को दृष्टि मे रखते हुए उन भावों पूर्णतयाको प्रतिबिम्बित करवाती हैं।

आपकी कहानियो मे भाव-गम्भीरता तथा घटनाओ की गति विशेष रूप से परिलक्षित होती है। आप जीवन के गम्भीर अथवा दुखद भावों का चित्रण विशेष रूप से करती हैं। पात्रों के दुख-पूर्ण–उच्छ्वासो, आँसुओं एवं भाव-गम्भीरता से आपकी कथा वस्तु बोझिल दिखाई पड़ती है। जीवन के हल्के भावो-हास्य, व्यंग्य, विनोद, सुखानुभूति आदि का चित्रण आपने कम किया है। इससे भाव-दृष्टि से आपकी रचनाओं में एकांगिता आ गई है। किन्तु जीवन के दुखमय और गम्भीर पहलू का चित्रण करने में आप को यथेष्ट सफलता मिली है। श्यामा का हृदय हमें वेदना एवं क्लेश का एक गहरा तालाब प्रतीत होता है जिसकी गहराई की थाह पाना कठिन ज्ञात होता है। पाठक पर आपके इस भाव-चित्रण का बहुत गंभीर प्रभाव पड़ता है। एक सौजन्य-पूर्ण सरल पति-परायणा तरुण स्त्री विधवा होकर मानसिक वेदना में घुल-घुल कर मर जाती है। इसके लिये समाज भी कम उत्तरदायी नही है। ऐसी घटना पत्थर तक को भी पसीजने के लिये विवश कर सकती है।

इस प्रकार करुणा जी की कहानियो में करुणा, सहानुभूति और वेदना आदि को जागृत करने की विशेष शक्ति दृष्टि गोचर होती है। आप अपने पात्रो के सुख-दुख में स्वयंभाग लेती हुई प्रतीत होती हैं आप उनमें यथेष्ट भाव-गहराई दिखलाने में सफल हो जाती

बाह्य वस्तु का हो या भावना अथवा कर्म का। इससे आगे बढ़ कर उपदेश देना और कर्त्तव्य-निर्धारण कला का नहीं वरन् नीति-शास्त्र का कार्य है। इस भूल से दूर रह कर आप उचित ही करती है।

पात्रों के आन्तरिक भावों के चित्रण के साथ ही उनके बाहरी सौन्दर्य का भी चित्रण आपकी रचनाओं मे पर्याप्त रूप से मिलता है। किन्तु इसकी उतनी प्रधानता नही है, जितनी भावों के चित्रण की। पात्रों के बाहरी सौन्दर्य, चाल-ढाल या वेश भूषा का चित्रण उनके चरित्र को समझने में काफ़ी सहायता पहुँचाता है। 'पागल' नामक कहानी मे यह बात विशेष रूप से दिखाई पड़ती है।

आप की भाषा परिमार्जित एवं उच्च साहित्यिक कोटि की होती है। उसमे कड़े शब्दों का प्रयोग नहीं होता किन्तु आवश्यक शब्दों का प्रयोग अवश्य मिलता है। भाषा-भावों की अनुवर्तिनी होकर चलती है और उसमे यथेष्ट स्निग्धता, कोमलता तथा प्रसाद गुण मिलता है। आपकी भाषा में हल्का प्रवाह मिलता है क्योंकि आप वर्णन करते समय किसी विषय का एक गुम्फित संतुलित रूप प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न करती हैं। भावों की गम्भीरता आप की भाषा में विशेष उल्लेखनीय है

'किसको सुनाऊँ जी की व्यथा' करुणा जी की निर्मम समाज को एक करुण देन है। कहानी पढ़ते समय पाठक यह न भूलें कि यह करुणा जी की अत्यन्त प्रारंभिक रचना है।

किसको सुनाऊँ जी की व्यथा ?

सुहावनी संध्या में हास-प्रिय मधु मुस्करा रहा था। अकस्मात् आया सुमनों की भीनी-भीनी सुरभि लिये मलयानिल का एक झोंका और आईं उसके तालों पर नृत्य करती हुई मधुर, किन्तु दर्द-भरी स्वर-लहरियाँ। उन स्वरों मे एक सम्मोहक शक्ति थी, और था एक निराला जादू।

मैं एक बहुत ही मनोरञ्जक आख्यायिका पढ़ने में निमग्न था; विक्षोभ-उद्विग्न हो उठा रस-पान को। पहिले मन्द-मन्द तान सुनाई पड़ी—आभास हुआ, कोई वियोग-विधुरा अपने हृदय के उद्‌गारों को प्रकट कर रही है–फिर स्वरों ने जोर पकड़ा और वीणा की झंकार-सी अनन्त माधुर्य से सिक्त अभ्र तक गूँज उठीं स्वर-लहरियाँ। गीत के शब्द स्पष्ट हुए—'किसको सुनाऊँ जी की व्यथा ?'

मृदु-मधुर गान मुझे विचलित कर चुम्बक की भाँति अपनी ओर खींचने लगा। अनायास ही मैं—विमुग्ध-सा-बढ़ गया उस ओर। पास पहुँचकर एक रुपया बढ़ा दिया, परन्तु वह मुझे निरखता रहा, मैंने समझा, कदाचित् भिक्षा में इतनी लक्ष्मी हाथ न आई हो, और इसी कारण वह स्तम्भित–सा देख रहा है मेरी ओर! मैंने कहा—'साधु इसे ले लो।'

उत्तर मिला—'मैं इसे न लूँगा।'

'क्यों ?' मैंने चकित होकर पूछा।

'मुझे पैसों की आवश्यकता नहीं है। मैं तो अपने मन्दिर में दीपक अँजोरने जा रहा हूँ।'

यह सुनकर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। मैने पूछा--'ऐसे करुण गान क्यों गाते हो गायक? आन्तरिक सुख-दुःख की कथा दूसरों से कहने मे एक सुख होता है, संतोष मिलता है, तथा मन का भार हलका पड़ जाता है। क्या मुझसे कुछ कह सकोगे?'

'तुम मेरे अतीत की बातें जान कर क्या करोगे? तुम्हें दुःख ही होगा। परिचय के लिये केवल इतना ही यथेष्ट है कि मै अपने कर्मों का फल भोग रहा हूँ।' और उसके नेत्रों में अश्रु-विन्दु झलकने लगे।

मेरे पुनः अनुरोध करने पर वह आँखे पोछ कर बोला--'भैया, मुझे कोई आपत्ति नहीं। तुम्हारी अभिलाषा है, तो अवश्य सुनाऊँगा। लेकिन इस समय दीपक अँजोरने मे देर हो रही है, फिर किसी दिन सुन लेना, मै तो बहुधा इसी मार्ग से जाता हूँ।' और इसके पहले कि मैं कुछ कहूँ, वह गाता हुआ चल दिया। ध्वनि मन्द होती-होती तिरोहित हो गई ध्वान्त के गर्भ में। मैं लौट पड़ा। उसके गीत के शब्द गूंज रहे थे मेरे कानों में—'किसको सुनाऊँ जी की व्यथा?'

अध्ययन में मन न लगा। शयन भी कठिन सिद्ध हुआ। बड़ी देर तक मैं साधु के विषय मे सोचता रहा—

एक सप्ताह से इन्द्र का प्रकोप था। वृष्टि रुकने का नाम न लेती थी। आज ही बादल खुला था।

गोधूलि के धूमिल आँचल को सरकाकर झीनी-सी शुभ्र शाटिका पहिन अनुराग-रञ्जित रजनी ने ज्योंही प्रवेश किया, नीरवता को भेदती हुई, अनिल पर तैरती हुई, सुमधुर स्वर-लहरियाँ फूट पड़ीं—'किसको सुनाऊँ जी की व्यथा?'

उस सुपरिचित संगीत को सुनकर मैंने तुरन्त ही उसका पीछा किया। वाटिका के एक निर्जन स्थान मे प्रवेश कर गायक मौन हो गया। उसमे निर्मित दोनों समाधियों को स्वच्छ करके उसने उन पर पुष्प चढ़ाया और फिर दो दीपक जलाकर रक्खा। उसका भग्न हृदय तड़प उठा। वाष्पाकुलित लोचनों से अश्रु-धारें बह निकलीं। मेरी आँखों मे भी समवेदना के अश्रु उमड़ आये।

गायक ने आँखे खोलीं, हाथ जोड़े और फिर आर्द्र हृदय से निकले हुए अस्फुट शब्द सुनाई पड़े—'भगवन्! मैं महा पापी हूँ। आह! इस बधिक ने दो हृदयों की कितनी मृदुल आकाँक्षाओं का बध किया! हे नाथ, अब तो मेरे लिये मर जाना ही अच्छा है, क्योंकि जीते जी मेरे हृदय को शान्ति नही मिल सकती, सम्भव है, मरने पर मुझे कुछ शान्ति मिल सके।'

'मेरे आदर्श, तुम कहाँ हो? वास्तव मे तुम आदर्श थे, पर मैं सामाजिक शृंखलाओं में जकड़ा रहा और जब मेरी आँखें खुलीं, तब इस नश्वर और छलनामय विश्व से तुम बिदा हो चुके थे। आदर्श, अचला! यदि तुम दोनो मुझे क्षमा कर सको, तो क्षमा कर देना।'

जब उसने विनय करली, तो मेरी ओर मुड़कर देखा। अगाध अनुकम्पा से परिपूर्ण थी उसकी दृष्टि! उसने अपनी झोली में से एक डायरी निकाल कर मेरे हाथ में दे दी। अपनी दर्द-भरी कहानी स्वयं कहने में कदाचित् वह असमर्थ था।

मुँह-माँगी मुराद पाकर मैं अपने घर लौट आया, और पढ़ने लगा उसे उत्सुकतापूर्वक। मोती-से अक्षरों में लिखी थी युवक ने अपनी राम-कहानी।

क्या वह अभागा था?

परिस्थितियाँ व्यक्ति को क्या से क्या बना देती है। मानव जान नहीं सकता कि जीवन मे कब कौन और कैसी घटना घटेगी, तथा उसका प्रभाव उस पर अथवा उस समय के वातावरण पर कैसा पड़ेगा।

आदर्श उसे तभी से जानता था जब से उसने अपने को जाना। जिस पर उसका विश्वास था, जिसके स्नेह तथा भोली और मधुर बातों मे वह सुध-बुध खो बैठता था, वह थी उसकी पड़ोसिन—'अचला'। उनका बाल-सुलभ स्नेह निर्मल और उज्जवल था, उसमे स्वार्थ की गंध तक न थो। मधुर, आनन्द दायक शैशव हसते-खेलते व्यतीत हो गया। कितना स्नेह, कितनी ममता, कितना सहानुभूति थी उनमें!

होश सँभालते ही आदर्श ने एक ऐसा काल्पनिक संसार निर्मित किया, जिसमें द्वेष न था, घृणा न थी, दुःख न था, उस छोटे से संसार मे अपार शान्ति थी। उसमे वह था, उसकी अचला था और था सर्वत्र शुद्ध स्नेह। ऐसा था, उसका संसार! माँ बाल्य-काल में ही चल बसी थीं, घर में पिता के अतिरिक्त और कोई न था। पिता ने कुछ उठा न रक्खा था; अपना सारा वात्सल्य उँडेल दिया था उन्होने उसके अंक में। वे सम्पन्न थे, सुखी थे!

आदर्श का गठीला शरीर, चाँद-सा रंग और अंग-अंग से फूटता हुआ सौन्दर्य, अचला का चन्द्रिका की भाँति निर्मल और प्रकृति की तरह अकृत्रिम जीवन, हठात् ही प्रत्येक व्यक्ति को आकर्षित करता था।

आदर्श और अचला क्रमशः इण्टर व मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण होकर भविष्य का कार्य-क्रम निश्चित करने में लीन थे। किन्तु निष्ठुर समाज उनका सुख न देख सका। नवयुग

है तो क्या हुआ, आज भी ऐसे निकृष्ट व्यक्तियो की न्यूनता नहीं; जिनका मुख्य उद्देश्य दूसरे पर कलक लगाकर परिहास के अतिरिक्त और कुछ नहीं। प्रतिवासियो को इनका स्वच्छन्द मिलन फूटी आँखो न सुहाया।

एक अभिन्न मित्र ने आदर्श के पिता को भडकाया, और तिल का ताड बनाकर कहा—'आपको समाज का कुछ भी ध्यान नहीं। आदर्श को आपने सिर चढ़ा रक्खा है। अचला के साथ वह दिन भर घूमा करता है……यह मैं आपकी भलाई के लिये ही कह रहा हूँ, अन्यथा उसके विपथगामी होने पर राह पर लाने की चेष्टा व्यर्थ सिद्ध होगी… ..।'

श्रीयुत् तिमिर कुमार अचला पर पुत्रीवत् स्नेह रखते थे, पर समाज मे अपनी निन्दा सुनकर विचलित हो उठे। बड़ी देर तक माथा-पच्ची करने के बाद न जाने क्या सोचकर बोल उठे—'हॉ, यह निश्चय बिलकुल ठीक है। न रहेगा बॉस न बजेगी बॉसुरी, और फिर आदर्श भी तो ऑख से ओझल न होगा।'

अचला अपने पलॅग पर चित्र-लिखित-सी पड़ी भावनाओं की समीक्षा मे विभोर थी। वेदनाओ और चिन्ताओ से आहत आदर्श सहसा अचला के सामने आ उपस्थित हुआ। वह चौंक पड़ी। उसने देखा, मुख-मुद्रा समुद्र को भॉति गम्भीर है, जिससे गम्भीर विषाद की नीरव यातना टपक रही है। अचला ने उसके अन्तस्तल में उठने वाली भावनाओ की थाह लेने का निष्फल पयास किया।

विह्वल होकर वह उठ बैठी, और बोली—'आदर्श' आज तुमने यह कैसी सूरत बना रक्खा है? आखिर आज ऐसी कौन सी घटना हो गई?' आत्मीयता से भरे स्नेह-सिक्त थे उसके ये शब्द?

मनोव्यथा को दबाते हुए आदर्श ने कहा—'अचला…'वह बोल न सका, कंठ अवरुद्ध हो गया, आँखें छलछला पड़ीं। पर शीघ्र ही अपने को सँभाल कर बोला—'पिता जी की यहाँ से बदली हो गई।……परसों ही लखनऊ जाना होगा।'

अचला पर वज्रपात हुआ। 'क्या परसों ही जाना होगा?' उखड़ी हुई आवाज में वह केवल इतना ही कह पाई थी कि उसका हृदय दुःख से फटने लगा। विरह-सिन्धु उसके हृदय में इस तरह उमड़ पड़ा कि वह संज्ञा-हीन हो गई। आदर्श की सुकुमार भुजाओं ने उसे आश्रय दिया। आँखें चार होते ही कपोलों पर लाज-भरी लालिमा दौड़ गई, वह सिहर उठी। भीगी पलकों को उसने मुख फेर कर पोंछ लिया।

आदर्श के पुरुष-हृदय ने आश्वासन दिया—अचले! स्थिर हो, अभी न.जाने तुम्हें क्या-क्या सहना होगा। पथिक बन कर जीवन की धूप-छाँह से घबड़ाना क्या? जीवन की महत्ता वेदनाओं, पीड़ाओं को उपेक्षा के साथ हँसते-हँसते सह लेने मेंही है। भगवान् तुम्हे सहन-शक्ति प्रदान करें! मुझे स्वयम् इस बात का दुःख है कि आज इस तरह हमारा साथ छूट रहा है। शुभे, जीवन की सब बातें भुलाई जा सकती हैं किन्तु…'

अचला बीच ही में बोल उठी—'तुम जा रहे हो, तो जाओ। भला मैं तुम्हे रोकने वाली कौन हूँ? फिर भी…फिर भी क्या मैं आशा करूँ कि तुमसे कभी भेंट हो सकेगी?' कितनी पीड़ा थी उसकी वाणी में?

'अचला, क्या कह रही हो? भगवान के लिये ऐसी बातें मत कहो! यह बन्धन चिरकाल तक अटूट रहेगा! जब भी तुम बुलाओगी, मैं सहर्ष आऊँगा?'

'क्या, तुम दर्शन दोगे ? सच कहो ?'

'सच।'

'प्रतिज्ञा करो !'

'प्रतिज्ञा करता हूँ, अचले, आऊँगा और अवश्य आऊँगा।' आदर्श के शीतल शब्दों ने अचला के आँसू पोंछ दिये।

निसर्ग शान्त था, आदर्श अशान्त ! वह पलँग पर पड़ा छटपटा रहा था। नींद किसी तरह न आती थी। धीरे-धीरे करके दस- ग्यारह, बारह, एक, दो, तीन, चार-पाँच भी बज गये—वह अपार व्यथा से तड़प रहा था। आँखों में रात कट गई।

अखिल लोक निस्तब्ध, मौन था; निशा तन्द्रालस्य थी, किन्तु विरहणी के जीवन मे एक पल को भी विश्राम कहाँ ? अचला का नन्हा सा उर तीव्र वेदना से खिला जा रहा था। संतोष का बाँध टूट गया, बरसाती लोचनों से सावन भादों की सरिता-सी बह निकली।

आदर्श चला ही गया। उनकी पुनीत स्नेह-सरिता सागर तक पहुँचने के पूर्व ही शुष्क हो गई। वियोगाग्नि की चिनगारियो से उनका हृदय-उपवन प्रज्वलित हो गया। स्वप्नो का संसार उजड़ गया।

दारुण स्मृति—लता मुरझाने की अपेक्षा विरह सिंचन से पल्लवित हो गई। पिता का असीम वात्सल्य भी आदर्श को शान्ति प्रदान न कर सका। अचला की स्मृति उसे हर समय घेरे रहती। सब कुछ शून्य-सा लगता उसे।

सुदूर अतीत के चित्र कल्पना के चित्रपट पर एक-एक कर बिखर जाते। स्मरण आता था वह प्रथम मिलन। बाल्यकाल व्यतीत हो रहा था। वह एक चित्रपट के विज्ञापन के लिये उस ताँगे के पीछे तेजी से भागा जा रहा था। एकाएक ठोकर लगी, वह

धड़ाम से मुँह के बल गिर पड़ा। एक हलकी चीख मुख से बरबस निकल गई। अचला जो निकट ही खेल रही थी, यह देख कर सकम्पित चीख उठी। इसके पूर्व कि अन्य कोई सहायता के लिये आये, उसने दौड़ कर उसे उठाया ? फूटे हुए घुटनों से रक्त बह रहा था। अचला ने उसी पल अपनी सुन्दर साड़ी का आँचल फाड़कर थोड़े से वस्त्र से रुधिर पोंछा। वह अवाक् था 'रहने दो ! रहने दो !' उसने विरोध किया किन्तु उसने स्यात् सुना ही नहीं। 'ओफ ! बहुत चोट लगी है। कितना दुखता होगा !' कहकर शेष वस्त्र से पट्टी बाँध दी। फिर सहारा देकर वह उसे अपने घर ले आई, जो निकट ही था। वहाँ बड़ी सहृदयता से उसने घाव धोया एक हाथ से टिंक्चर आयडिन लगाया और दूसरे से विजन हिलाया, तत्पश्चात् पुनः स्वच्छ वस्त्र की पट्टी बाँध दी। वह बोला—'तुम्हारी इस असीम अनुकम्पा का मैं आजीवन आभारी रहूँगा—।' कुछ समय पश्चात् वह उसे स्वयम् उसके घर तक पहुँचा गई।

फिर उसे स्मरण हो आया विदा के समय का आर्द्र नेत्रों से युक्त पीला मुखड़ा। उसका हृदय इसी समय मूक स्वर में रो उठा।

अचला की दशा भी कुछ कम शोचनीय न थी। उसे चारों ओर अन्धकार-ही अन्धकार दीखता। स्मरण होता रह-रहकर आदर्श का स्नेह, उसकी प्यारी-प्यारी बातें। लालसा होती, किसी प्रकार आदर्श के पास पहुँच जाय। पर जाय कैसे ? पिञ्जर-बद्ध पक्षी की भाँति वह फड़फड़ा कर रह जाती, वह अबला है न। उसका विद्रोही हृदय समाज को कोसने लगता—'हाय रे, हिन्दू समाज ! नारी ने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो तू ने उससे इतनी शत्रुता ठान रक्खी है ? क्या अपराध है हमारा ? जिन

शृंखलाओं से पुरुष कभी नहीं बँध सकते, उनसे नारियाँ ही क्यों बँधी रहें? क्या नारियों को किसी प्रकार का कोई भी अधिकार न मिलना चाहिए? नारी को इस प्रकार प्रताड़ित करने का किसी को क्या अधिकार है? कहाँ तक सहन करूँ? सहन-शक्ति की भी तो कोई सीमा होती है? इस जगत में नारी कभी भी अपन तृषा की तृप्ति नहीं कर सकी। क्या उसकी लालसाओं की सृष्टि इसलिए हुई है कि वे जल कर भस्म हो जायँ?'

अचला घंटों उपवन में लताओं के झुरमुट में खोई हुई सी बैठी रहती। जब जीवन की श्मशान-सी शून्यता असह्य हो उठती, तो उससे शान्ति पाने के लिए, अपने को भुलाने के लिए, वह गुनगुना उठती —।'

'दरस बिन दूखन लागे नैन।
जब ते बिछुड़े मेरे प्रभुजी, कबहुँ न पायो चैन।'

पवन काप उठता। पुष्प, लता, वृक्ष सिसकियाँ भरने लगते और अचला……।

\+ × +

चार वर्ष पश्चात्—

आदर्श एम० ए० पास कर अब थीसिस लिख रहा था। अपने जीवन के प्रति अब न उसे मोह था, न ममता थी, और न था उत्साह! किसी प्रकार की आशा भी न थी। देखते-ही-देखते निष्ठुर यंत्रणा की कठोरता से विल-बिलाकर उसके अन्दर की घनीभूत पीड़ा ऊपर उभर आई, वह अचला के वियोग में घुला जा रहा था।

आदर्श के पिता पश्चिमी सभ्यता के पुजारी होते हुए भी सामाजिक रूढ़िवादिता के कट्टर पक्षपाती और अर्थ तथा वैभव के

अनन्य उपासक थे। आदर्श की उदासीनता, एकान्त-प्रियता और शिथिलता देखकर उनके हृदय मे खलबली मच रही थी। सोचा था कि वह धीरे-धीरे ठीक हो जायगा, परन्तु जब कोई परिवर्तन न दीखा तो उन्होने आदर्श के लिये एक ऐसी धनी-मानी, सौन्दर्य की प्रतिमा चुनी, जो उनकी दृष्टि मे सर्वथा उसके उपयुक्त थी। जब आदर्श को मालूम हुआ कि वह उसका विवाह उसी से करने पर तुले हैं, तो उसने स्पष्ट शब्दों में उसका विरोध किया। पर सहानुभूति के स्थान पर मिली फटकार—'तुम्हें लज्जा नहीं आई यह कहते हुए? चिल्लू भर पानी में डूब मरो। आदर्श अपनी और अपने समाज की भलाई के लिए पुरखों का भी ध्यान करो। मेरे जीते-जी अचला के साथ तुम्हारा विवाह कदापि नहीं हो सकता। स्वप्नों के स्वर्ग को छोड़कर वास्तविकता के संसार मे आओ, और समाज का आह्वान सुनो। यह तो तुम जानते ही हो कि तुम एक वैभव-सम्पन्न ब्राह्मण हो, और वह है क्षत्री कुल की एक दीन कन्या; फिर उसके साथ तुम्हारा विवाह कैसे हो सकता है?'

आधुनिकता के वातारण मे पला हुआ आदर्श यह सुन न सका, उसने अपना हृदय उनके सामने खोल कर रख दिया—'पिता जी जागृति के इस युग मे भी आप चाहते है कि हम अपने मुख में ताला लगा लें, और आप हमारे भविष्य का निर्णय जिस तरह चाहे, कर दें। मनुष्य अपनी रूढ़ियों के विषय में गम्भीरतापूर्वक विचार करके यह नहीं देखता कि ये अच्छी हैं अथवा बुरी, चूँकि ये वर्षों से चली आई है, अतः आज भी उनके अनुसरण में मर मिटना ही कर्त्तव्य और धर्म समझा जाता है। किन्तु यह अपने ही हाथों मे अपने पैरों मे कुल्हाड़ी मारना है। हमे स्वयं उचित-अनुचित का निर्णय करना चाहिए।

'यह बात कि वह सजातीय नहीं है दीन है, मेरे लिये कोइ महत्व नहीं रखती। जाति-उपजाति, धनाढ्य और दीन का प्रश्न उठाकर, आप हमें सामाजिक अत्याचारों के भँवर में फँसा कर सदैव के लिये हमारा गला घोट देना चाहते हैं, किन्तु मैं अपने जीवन के आदर्शों और आकांक्षाओं को पूर्ण किये बिना नहीं रह सकता। आधुनिक युग मे विवाह का मुख्य आदर्श विचारों की समानता, प्रकृति और मन का मिलन है। यहाँ जाति-भेद तथा सम्पन्नता-दीनता का कोई प्रश्न ही नही।' वह उमंग की भाँति उठा तथा आँधी की तरह बाहर चला गया।

तिमिर कुमार आश्चर्य से चकित रह गये। उनका खून खौल उठा, लेकिन यह सोचकर कि प्रेम की नवीन उमंग शांत हो जाने के बाद अवश्य सँभल जायगा वह, खून का घूँट पीकर रह गये।

पुर्नमिलन से आदर्श और अचला की जीवन-लता में फिर सरसता आने लगी बुझने के पूर्व दीपक एक बार फिर भभक कर जल उठे। मुर्झाते हुए प्रसून फिर खिल गये।

शर्वरी दुग्ध-स्नान कर रही थी। सुमन-सौरभ-सिक्त समीरण चित्त को पुलकित कर रहा था। सुरा-झाग-सी शतदल-शस्य-शैय्या पर बैठे दोनों वार्तालाप कर रहे थे। आदर्श ने अपलक नेत्रों से अचला की ओर देखते हुए धीरे से उसका हाथ अपने हाथों में लेकर कहा—'अचले, क्या मै तुमसे कुछ पूछ सकता हूँ ?'

अचला ने उत्साहपूर्वक उत्तर दिया—'क्यों नही ?

'सत्य कह सकोगी ?'

अचला चुप रही। उसने स्निग्ध चितवन से उसकी ओर देखा, मानो पूछ रही हो—'आदर्श, क्या आज भी तुमको मुझ पर विश्वास नहीं है ?'

स्नेह के आवेश में आदर्श ने अचला का चिबुक पकड़ कर हिलाते हुए पूछा—'अचला, क्या......अब भी तुम मुझसे प्रेम करती हो ?'

अचला के कपोल अरुण हो गये। उसने कम्पित स्वर में कहा—'विचित्र प्रश्न है तुम्हारा। स्वयं सोचो, यदि प्रेम न करती होती, तो इस तरह तुम्हारे साथ......'

आदर्श ने फिर अचला के हृदय की थाह ली—'परन्तु अचला, क्या यह सम्भव है कि मैं तुम्हें हस्तगत कर सकूँ? मैं ठहरा ब्राह्मण, और तुम हो क्षत्राणी; क्या हमारा समाज और हमारे सम्बन्धी इसे स्वीकार कर सकेंगे ?'

'आदर्श! विश्व के सभी प्राणी प्रभु की संतति हैं, फिर यह भेद-भाव कैसा ? मानव-धर्म का एक मात्र उद्देश्य विश्व में एकता, समानता और पारस्परिक ममता-भाव फैलाना है। फिर तुमने एक दीन-हीन बालिका को वसुन्धरा से उठा कर व्योम पर चढ़ा दिया......मैं आजीवन तुम्हारे प्रणय के दीपक को रक्त, मांस और हड्डियों से प्रज्वलित करूँगी, अनिल के झोंकों से उसे बुझने न दूँगी! नारी-हृदय एक बार अर्पित करके फिर वापस नहीं लिया जाता। आदर्श, हमारा प्रेम पवित्र है। यदि हम इस जीवन में न मिल सके, तो मुझे विश्वास है कि अगले जीवन में अवश्य मिलेंगे!'

'धन्य, अचले! हम इस समाज की पैनी कुदृष्टि के सम्मुख अपने चिर प्रेम की घोषणा करके अनन्त काल तक स्थिर रहने वाले सूत्र में बँधेंगे, जिससे कोई हमें विलग न कर सकेगा!' आदर्श के स्वर में प्रशान्त दृढ़ता थी। उसके हृदय का उल्लास लोचनों से बह निकला।

इच्छा होती थी कि सारी रात्रि यों ही बैठे वार्तालाप करते रहें किन्तु सहसा टन-टन करके टावर-क्लॉक ने ग्यारह घंटे बजा दिये। वे चौक पड़े और उठकर घर की ओर चल दिये।

× — +

अचला के विवाह की सूचना जब उन्हें मिली, तो वे अवाक रह गये। उनके हृदयों पर भारी आघात हुआ, चेहरो पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

अचला के हृदय में विद्रोह की ज्वाला भभक उठी। वह सोच रही थी—'कितने विचित्र है हमारे सामाजिक नियम ? मेरा विवाह निश्चय होगा और मुझे मालूम तक नहीं। विवाह मुझे करना है या मेरे सम्बन्धियों को ? मेरी अनुमति के बिना मेरा विवाह कोई कदापि नहीं कर सकता। भगवन्, पुरुष क्यो सब बातो मे श्रेष्ठ और महिलाएँ सब बातो में क्यो हीन समझी जाती हैं ? हम क्या उसी समाज के अंग नहीं हैं, जिसके पुरुष हैं ? फिर महिलाओं को वे सब अधिकार क्यों नही दिये जाते, जो पुरुष को मिले हैं ? हम भी तो मनुष्य ही है। अब हम पशुओ का-सा व्यवहार और अधिक न सह सकेंगी।'

उधर अदर्श जलविहीन मीन की भाँति तड़प रहा था।

विवाह का दिन आ गया। अतिथियो और समारोह से गृह उमड़ रहा था, शहनाई की मधुर ध्वनि गूँज रही थी। अचला के माता-पिता का सब-कुछ अचला तक ही सीमित था। यह अवसर उनके जीवन का सर्व-श्रेष्ठ अवसर था।

संध्या को द्वाराचार के समय इन्द्र-धनुष की भाँति रँगीली तितलियाँ आँगन में मँडराने लगीं, और करने लगीं प्रतीक्षा बरात के आगमन की। बाजों की तीव्र ध्वनियो के बीच वर-यात्रा द्वार पर आ लगी। उसे देखने के लिये नारियाँ ऊपर और बाहर दौड़ पड़ीं...।

ग्यारह बजे के लगभग जब पाणि-ग्रहण की तैयारी के लिये अचला बुलाई गई, तो वह अपने कमरे मे न मिली। सारा घर छान डाला गया, लेकिन कहीं उसका पता न लगा। अभी-अभी जहाँ आनन्द का आलोक छाया हुआ था, वहाँ विषाद का अन्धकार फैल गया।

अचला के पिता निराश होकर उसके कमरे में बैठ गये। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने पर मेज़ पर एक लिफ़ाफ़ा दिखाई दिया। हस्तलिपि देखते ही वह जान गये कि यह अचला का ही है। पत्र पढ़ कर उन्होंने दीर्घ निःश्वास खींचा और उसे अचला की माँ के हाथ मे देकर चुपचाप बाहर चले गये। वह पढ़ने लगी उसे;

श्रद्धेय माता जी,

आपने और पूज्य पिताजी ने अपने कर्त्तव्यानुसार मेरा सम्बन्ध निश्चित कर दिया था, परन्तु मुझ अभागिन को वह न भाया। मैं इस सम्बन्ध से...,क्योंकि मैं आदर्श की हो चुकी हूँ। धृष्टता के लिये क्षमा चाहती हूँ। मेरी खोज करने की चेष्टा व्यर्थ होगी। अन्तिम बिदा।

आपकी पुत्री—
अचला

माँ सिर पीट-पीट कर रोने लगी।

खोज होने लगी, अन्त में ऐलफ्रेड पार्क के एक वृक्ष के नीचे, जहाँ अचला और आदर्श बहुधा मिलते थे, दो मृत शरीर मिले। उनके मुखड़ों पर शान्ति और रहस्यमयी मुस्कान थिरक रही थी। युवक आदर्श के निकट एक कागज़ मिला। लिखा था उस में:—

अपने जीवन से निराश होकर हम समाज की बलि-वेदी पर अपनी आहुतियाँ चढ़ा रहे है। यह क्रान्ति का युग है,

जिसका काम पहिले ध्वंस और पीछे निर्माण है। आशा है, दो प्रेमियो की यह आत्महत्या समाज की रूढ़िवादिता को नष्ट करने में सहायक होगी।

—आदर्श

(यहाँ से डायरी की लेखनी मे अन्तर था। लगता था, जैसे किसी वृद्ध ने लिखा हो।)

तिमिर कुमार उन लाशो पर गिरकर फूट-फूट कर रोने लगे।

समाज ने इस घटना पर दुःख प्रकट किया, और उनके विशुद्ध प्रेम की सराहना की। पर कब? जब वे इस जगत से उठ चुके थे!

दोनो प्रेमियो का अन्तिम संस्कार किया गया, और वाटिका मे वहीं पर उनकी समाधियाँ बना दी गईं। आदर्श के पिता पागल हो गये। अचला के माता-पिता आठ-आठ आँसू बहा कर परलोक सिधार गये।

नित्य निशा-मुख तिमिर कुमार समाधियों पर जाकर उन्हें झाड़ते-बुहारते, पुष्प चढ़ाते, और दीपक जलाते है।

मेरे मुँह से एक आह निकल गई। जिन अश्रुओं को बलात् रोक रक्खा था वे अब मोती-से ढुलकने लगे।

इधर साल भर से साधु कही दृष्टिगोचर न हुआ, किन्तु उसकी आकृति बहुधा दामिनि की भाँति दमक उठती है, और विस्मृति के आँचल में सरकता हुआ कराह उठता है वह करुण गान—'किसको सुनाऊँ जो की व्यथा?'

—:०:—

होमवती देवी

आधुनिक हिन्दी गल्प साहित्य मे होमवती जी का अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान है। आप आधुनिक हिन्दी स्त्री-कहानीकारों में ही नहीं अपितु हिन्दी के सभी श्रेष्ठ कहानीकारो मे महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी हैं। आपका निवास-स्थान मेरठ है। 'धरोहर' तथा 'निसग' आपके दो श्रेष्ठ कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

जीवन की जो व्यापकता, मनुष्य-स्वभाव का जो ज्ञान, वर्णन का जो सफल ढंग तथा वार्तालाप का जो सहज अभिप्राय-पूर्ण रूप हम होमवती जी में पाते हैं, वह विरले ही कलाकारों में मिलती है। आपकी कहानियो में जीवन की विविध समस्यायें चित्रित मिलती है। उनका आप विशद अध्ययन पहले से ही कर चुकी है। उनकी उलझन आपके निकट पूर्ण रूप से सुलझ चुकी होती हैं। अस्तु, आपकी रचनाओं में पाठक के सम्मुख आकर वे उसे भी बिलकुल स्पष्ट-सी प्रतीत होती हैं।

होमवती जी की कहानियो में मानव-स्वभाव अपनी असंख्य प्रवृत्तियो, विशेषताओं एवं अनेक रूपताओं के साथ आता है। आपके इस मानव-स्वभाव के ज्ञान को देख कर आश्चर्य होता है। आप मनुष्य के विषय में पहले से ही कोई धारणा नहीं बना लेतीं क्योंकि काफी अनुभव तथा निरीक्षण के पश्चात् आप मनुष्य-चरित्र की अनेकरूपता, एवं परिवर्तनशीलता को समझ चुकी हैं। अस्तु, आपके साहित्य में हम जीवन के किसी एक पहलू को न पाकर मानव-जीवन को ही अपनी असीमित अनेकरूपता एवं श्रेणीगत विविधता में पाते हैं। निश्चय ही आप में श्रेष्ठ नाटककार की प्रतिभा छिपी हुई दीखती है। इस दिशा में आपका प्रयत्न अवश्य सराहनीय और श्लाघ्य है।

होमवती जी की कहानियों में मनुष्य का अन्तरंग एवं बहिरंग दोनों आश्चर्यजनक सत्य के साथ झलकते है। फिर भी उनमें कहीं-कहीं पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रधान हो गया है। यों कतिपय कहानियों मे बाह्य परिस्थितियों एवं समस्याओं का चित्रण विशेष रूप से पाया जाता है। कहानी की गति के साथ-साथ पात्र का चरित्र भी अधिक प्रकाश में आता जाता है। धीरे-धीरे उसके चरित्र के अनेक पहलू हमारे सामने आते जाते हैं। परिणामतः शनैः-शनैः चरित्र-चित्रण की गति के साथ हमें पात्र के विषय मे अपनी धारणा भी बदलनी पडती है और आश्चर्य के भाव भी उत्पन्न होते है। पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक, मार्मिक तथा मानव-स्वभाव के सम्बन्ध में आपके गहन-ज्ञान एवं अनुभूति का परिचायक है। आपकी कहानियों में एक या दो प्रकार के पात्र या भाव नहीं आते; वरन् प्रत्येक कहानी में एक दूसरे से भिन्न पात्र अपनी सत्ता मे सम्पूर्ण दिखाई पड़ते हैं जो हमारी ही तरह हाड़-मॉस, इच्छा, अहंकार, दिखावा, ढोंग, दया एवं श्रेष्ठता आदि गुण रखते हैं। इनके चरित्र-प्रस्फुटन में आप मानव-मनोविज्ञान के गहन उद्गमों की अनुभूति प्राप्त कर लेती हैं।

चरित्र-चित्रण मे आपका ध्यान स्वाभाविकता पर ही अधिक रहता है। आप पात्रों के चरित्र-उदाहरण के द्वारा उपदेश देने का प्रयास बिल्कुल नहीं करतीं। पात्रों के विभिन्न स्वरूप का चित्रण तथा समस्याओं का निरूपण कर आप निर्णय निकालने के लिये पाठक को उसकी इच्छा पर छोड़ देती हैं। पाठक ऐसा अनुभव करता है मानों वास्तविक संसार के एक पहलू या दृश्य का पर्दा उठा लिया गया था, जिसे कुछ देर तक देखने के बाद वह पर्दा पुनः गिरा दिया गया। उसे नया अनुभव

होता है। तथा नवीन दृश्यावलोकन का अवसर मिलता है। वह मानव-चरित्र के नवीन रूपों को देखता है या उसमें छिपे हुए भावों एवं प्रवृत्तियों को उनके आचरण में देखता है। ऐसे मनुष्य हमें प्रायः नित्य दैनिक जीवन में मिलते हैं, किन्तु क्या हम उनके अन्तराल मे इस प्रकार से प्रवेश कर पाते हैं ? ऐसा होना अत्यन्त कठिन भी है। मनुष्य के बाह्य आकार-प्रकार से उसके स्वभाव को गहराई तक पहचानना अत्यन्त कठिन है। साथ ही उसमे गुणों तथा दोषों का इतना विविध श्रेणीगत सम्मिश्रण होता है कि उसके व्यक्तित्व के विषय में कोई निश्चित निर्णय करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

श्रेष्ठ कलाकार मनुष्य-स्वभाव को इन्हीं विशेषताओं का सम्यक चित्रण अपनी अनुभूति तथा कल्पना के बल पर करने का प्रयत्न करते हैं और अपनी सफलता से हमें आश्चर्य मे डाल देते है। निश्चय ही होमवती जी के समान कलाकारों से ही हिन्दी-कहानी-कला को सम्मान एवं विकास प्राप्त होगा। आपकी कहानियो मे दो पात्रों में पूर्ण समानता पाना प्रायः कठिन होता है। सब अपनी अलग-अलग विशेषता रखते हैं। कोई हँसमुख, वार्तालाप-प्रिय, सरल नैतिक दृष्टि से ऊँचे, कोई गम्भीर, विनोदशील, आदर्शवादी एवं बात के धनी, कोई धार्मिक, शीघ्र पिघलने वाले, फिर भी कुछ अहम्मन्यता लिये हुए, कोई ऊपर से देवता परन्तु भीतर से दानव, कोई असामाजिक उदासीन, चिन्तायुक्त तथा मनुष्य के विषय में बुरे विचार रखने वाले आदि-आदि। उदाहरण के लियेकेवल दो-चार पात्र यथेष्ट होंगे:—

'नई बहू' मे सेठ भोलानाथ का लड़का बिहारीमल पत्नी तथा चार सन्तानों के होते हुए भी एक सुशिक्षित, सुसभ्य पंजाबिन बालिका से उचित धार्मिक रीति से विवाह कर लेता

है। इसमें वह किसी की राय आदि नहीं लेता; दहेज़ भी यथेष्ट पाता है। बालिका अत्यन्त सुन्दर, कोमल तथा सभ्य स्वभाव की है। बिहारीमल उसे लेकर एक किराये के मकान में रहता है और धीरे-धीरे उसके तमाम रुपये तथा पंजाबी माता-पिता से मिले बहुमूल्य आभूषण अपने घर उठा लाता है और फिर उसकी छोटी से-छोटी वस्तुये भी ले लेने के पश्चात् उसे एक दम छोड़कर घर बैठ जाता है। लड़की माता-पिता को तार देती है, वे सब आते है और निराश होकर लड़की को लिये-दिये चले जाते हैं, जो गर्भिणी भी हो चुकी है।

पाठक इस कहानी को पढ़कर हक्का-बक्का हो जाता है। उसे ऐसा लगता है, मानो सचमुच ऐसी घटना हो गई है। लेखिका अपनी ओर से इसकी घटना अथवा इसके लिये उत्तरदायी बिहारी-मल के स्वभाव की कोई टीका-टिप्पणी नहीं करती, मानो उसका कार्य केवल घटना तथा पात्रो के आचरण का वर्णन ही रहा हो। कहानी का विकास शनैः-शनैः होता है। पाठक उसके अन्त के विषय में कुछ भी ठीक अनुमान नहीं लगा पाता, उसके सारे अनुमान ग़लत सिद्ध हो जाते हैं। अन्त के विषय में वह आशा कुछ करता है और होता है कुछ। इसका कारण यह है कि आप स्वयं पात्रों के प्रयोजन अथवा स्वभाव के विषय में, जिससे उसके उद्देश्य पर प्रकाश पड़े, कुछ भी नही कहतीं। 'नई बहू' में पंजाबिन लड़की से विवाह करने में बिहारीमल के उद्देश्य के विषय मे कुछ भी नहीं कहा जाता, केवल घटना का चित्रण होता है कि उसको कई हज़ार दहेज़ तथा बालिका को अनेक बहुमूल्य आभूषण आदि मिलते हैं। कहानी के अन्त में हमें विदित होता है कि केवल उसका धन प्राप्त करने के लिये बिहारीमल ने इस प्रकार का जघन्य और अमानवीय विश्वासघात किया। ऐसे मनुष्य कितने हृदय-हीन

स्वार्थी, कपटी तथा नीच प्रकृति के हो सकते है। इसके स्मरण मात्र से हृदय कॉप उठता है।

'आधार' मे डाक्टर कासलीवाल का चरित्र उदार, शान्ति-प्रिय, निर्भीक आदर्शवादी तथा कुछ रहस्यवादी और उज्जवल प्रेममय दिखाया गया है। वे अपने मित्र की स्त्री तथा बच्चे को मित्र की मृत्यु के समय अपने साथ रखने तथा उनकालालन-पालन करने का बचन देते हैं और उसका निवाह आजीवन करते है। समाज की लांछनाओ की उन्हें पर्वाह ही नहीं रहती, वरन् उसे चिढ़ाने के लिये वे मित्र की स्त्री से विवाह का एक स्वॉग भी रचते हैं। दोनो में दिव्य उज्जवल प्रेम का चित्रण किया गया है, जहॉ शारीरिक वासना का नाम तक नहीं है। दोनो मित्र के पुत्र अनिल के आधार पर जीवन चलाते हुए दिखाई पड़ते हैं। लेखिका यहॉ भी अपनी ओर से उनके चरित्र के विषय मे कुछ स्पष्ट निर्देश नहीं करती, वरन् उनके वार्तालाप तथा आचरण आदि के माध्यम से उनके चरित्र को हमारे सामने रखती है।

पात्रों के चरित्र एवं उद्देश्य के विषय मे निर्णय पर पहुॅचने के लिये हम स्वतन्त्र छोड़ दिये जाते हैं। प्रमुख पात्रों के विषय में प्रायः ऐसा ही होता है। घटनाये, उसके कार्य एवं वार्तालाप अवश्य इतनी अधिक मात्रा में हमारे सामने रख दिये जाते हैं कि हम उनके माध्यम से पात्रों के उद्देश्य तथा चरित्र के सम्बन्ध में स्वयं अपना निर्णय कर सके। फिर भी कभी-कभी कुछ सन्देह या दुविधा उत्पन्न हो सकती है। ऐसा यदि पात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विषय में नहीं तो उसके स्वभाव के दो-एक पहलू के विषय मे अवश्य होता है। 'आधार' में डाक्टर कासलीवाल के मित्र को स्त्री के प्रति प्रेम के विषय में ठीक निर्णय करना

कठिन हो जाता है । अवश्य उसमें शारीरिक भोग की गन्ध नहीं है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि यदि उक्त रमणी उनकी धर्मपत्नी होने के लिये सहर्ष तैयार हो जाय तो उन्हे इस बात से भी कोई इन्कार न होगा, तो फिर क्या उनका सारा त्याग एवं प्रेम केवल दिखावा नहीं है ? उसके प्रति उनके चित्त में अगाध प्रेम एवं श्रद्धा दिखाई गई है । वे दोनों एक दूसरे से बात-चीत करने आदि मे कोई झिझक नही रखते । डाक्टर साहब उसके कुंचित केशों को सहलाते हुये भी दिखाये जाते हैं, फिर भी उनके वार्तालाप से तथा मित्र की स्त्री के आत्म-विश्वास से यही प्रकट होता है कि उनके प्रेम मे शारीरिक भोग-विलास की गन्ध-भी नही है। कठिनाई तो यह है कि लेखिका स्वयं कुछ भी नहीं कहती, मानो वह स्वयं कुछ नही कह सकती, वह केवल हमारी तरह से दर्शक मात्र है ।

डाक्टर कासलीवाल के चरित्र-चित्रण मे अतीन्द्रियता से से काम लिया गया है । किसी सुन्दरी स्त्री के प्रति प्रेम रखना और फिर भी वासना से ऊपर उठा रहना एक आदर्शवादी प्रेम कहा जायगा । वैसे होमवती जो यथार्थवादी चित्रण से आगे नहीं जातीं, किन्तु डाक्टर कासलीवाल जैसे पात्रों के चरित्र-चित्रण मे वे आदर्शवाद तथा यथार्थवाद का एक विचित्र सम्मिश्रण करती है । डाक्टर साहब के चरित्रमें काफी धुँधलापन, अस्पष्टता तथा साथ ही महानता, गरिमा, निर्भयता, उदारता, एवं आत्म-बलिदान के तत्व उपलब्ध हैं; जैसे हम दूर आकाश में ओझल बर्फधारी, कुहरे से आच्छादित किसी पर्वत शृङ्ग का दर्शन कर रहे हों जिसमें महानता, भव्यता और मनोहरता आदि के साथ धुँधलापन भी मिश्रित हो गया है ।

पात्रों के चरित्र-चित्रण मे यह आदर्शवादी धुँधलापन एक दो उदाहरणों को छोड कर अन्यत्र कहीं नह मिलता ।

आपके पात्रो का आचरण, वार्तालाप आदि स्पष्ट होते हैं जिससे उनके चरित्र आदि के सम्बन्ध में सहज ही निर्णय किया जा सकता है। 'नई बहू' में बिहारीमल के चरित्र के सम्बन्ध मे किसी को भ्रम होने का कोई कारण नहीं है।

आपकी छोटी-बड़ी सभी कहानियो मे कई पात्र होते हैं। उनमे कम-से-कम दो पात्र प्रधान और अनेक अन्य सहायक पात्र भी होते हैं जो जिस समय हमारे सामने आते हैं, उस समय वे अपनी कोई-न-कोई विशेषता और आकर्षण लिये हुए ही आते हैं। भले ही वे कहानी में थोड़ा कार्य करें किन्तु जितनी देर तक वे हमारे सामने रहते हैं; जीवित रहते हैं। उनके आचरण तथा स्वभाव आदि के द्वारा लेखिका मानव-स्वभाव के विविध पहलुओ पर प्रकाश डालती है।'आधार' मे अनिल के बाल-सुलभ स्वभाव का चित्रण अत्यन्त मार्मिक, मनोवैज्ञानिक तथा सहानुभूति पूर्ण है। उसका एक हँसता- खेलता, कुछ हठीला,सुन्दर, विश्वासी व्यक्तित्व हमारी कल्पना में आ बसता है। मित्र की स्त्री के चरित्र-चित्रण की अपेक्षा डाक्टर कासलीवाल का चरित्र-चित्रण कहीं अधिक महत्व रखता है।

'नई बहू' मे पंजाबिन लड़की का चरित्र अत्यन्त सफलता के साथ अंकित किया गया हैं। पाठक उसको भूल नहीं सकता। उसके पिता के चरित्र का एक प्रमुख अंग हमारे सामने नाच उठता है। जब बहुत अनुनय-विनय करने के बाद भी अपनी लड़की को आश्रय दिला सकने में असफल होने पर वह कहता है:—'मरेगी क्यो, तेरे साथ तो इस जायदाद का हिस्सेदार हैं, क्या पता? .....यदि लड़का हुआ तो दिखा दूँगा लाला को और मार जूती तेरा खर्चा निकाल लूँगा इनके गले से...हैं किस हवा में...उस मरदूद को नहीं देखा, नही तो अभी सिर तोड़ देता'।

इस प्रकार होमवती जी की कहानियों में हमें घटनाओं, चरित्रों और वार्तालापों के बीच मानव-स्वभाव के विविध पहलू भरे हुए मिलते हैं। घटनाओं के साथ आचरण द्वारा आप सर्वत्र मनुष्य स्वभाव को विशेषताओं पर विविधताओं आदि का निरूपण करती चलती हैं। 'नई बहू' में माँ अपमानिता और परित्यक्ता कन्या को गले से लगा लेती है, पिता सेठ जी आदि पर बिगड़ता है, भाई जल्दी चलने की राय देता है, तथा बिहारीमल की माता (सेठानी साहबा) अँगुली नचाकर, आँखें मटकाकर अपने बच्चे को 'दूध का धोया' कहती और इस तरह की लड़कियों की भर्त्सना करती हुई कहती हैं "ऐसी ठगिनी तो तीन सौ साठ फिरती है"। यदि इसी दृश्य को रंगमंच पर खेला जाय तो सचमुच एक सुन्दर हास्ययुक्त नाटक हो सकता है। जिसमें जीवन के विरोधी भाव मिले हुए दिखाई पड़ेंगे।

आपकी कहानियों में जीवन के विरोधी भाव एक दूसरे से मिश्रित दिखाई देते हैं। सब मिलकर जीवन के वास्तविक स्वरूप की अभिव्यंजना करते हैं। 'नई बहू' में पाठक एक साथ ही उस छली हुई बालिका शांति के प्रति करुणा एवं सहानुभूति, बिहारी के प्रति क्रोध, घृणा एवं प्रतिशोध, बिहारी के पिता की अनुत्तरदायित्वपूर्ण हृदय-हीनता पर अश्चर्य और क्षोभ, सेठानी जी की बातों पर हास्य और घृणा तथा लड़की के पिता की बातों के प्रति संतोष और आनन्द का अनुभव करता हैं। इतने श्रेष्ठ जीवन-दृश्यों का चित्रण जिनमें अनेकानेक भावों को अनुभूति पाठक कर सके, महान-कलाकार का ही कार्य हो सकता है। ऐसी कला-शक्ति नाटकीयता के लिये काफी उपयुक्त है।

होमवती जी की कहानियों में पात्रों के चरित्र मे विकास नहीं होता। दो-एक उदाहरणों को छोड़कर आप के सभी पात्रों का चरित्र पूर्व-निश्चित होता है। आप उनके चरित्र के विविध

अंगों का प्रस्फुटन शनैः-शनैः करती हैं; एक ही बार में सब-कुछ न कह कर आप पाठक की रुचि एवं कुतूहल को जागृत रखती हैं। उसका आश्चर्य कहानी की गति के साथ, पात्रो के चरित्र के अन्य अंगो को देखकर, जिनकी उसे आशा नहीं रहती, बढ़ता जाता है। चरित्र-विकास में पात्र के चरित्र मे आत्म-चिंतन तथा परिस्थिति आदि के परिवर्तन के अनुसार परिवर्तन होता है। पहले उसके चरित्र के विषय मे पाठक को परिचित करा दिया जाता है, बाद में उचित परिस्थितियों आदि को कारण-रूप दिखाते हुए उनके चरित्र मे परिवर्तन दिखाया जाता है। इस प्रकार निर्दय मनुष्य दयावान, स्वार्थी आत्म-त्यागी, अहंकारी निरहंकार तथा असामाजिक सामाजिक बन जाता है। होमवती जी के पात्रों में इस प्रकार का परिवर्तन नहीं परिलक्षित होता।

चरित्र-परिवर्तन अथवा विकास के लिये यथेष्ट समय, एवं परिस्थिति-परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। आपकी कहानियों में समय का व्यवधान थोड़ा होता है; जिसमें पात्रों का एक सुनिश्चित चरित्र ही दिखाया जा सकता है। जिन कहानियों में समय का लम्बा व्यवधान होता है; उनमें भी पात्रों का चरित्र विशेष रूप से बदलता नहीं दीखता। उनके स्वभाव के ही पूर्व पहलू अधिक गहरे, स्पष्ट या विकसित हो जाते हैं, उनमें विरोधी परिवर्तन नही दिखाई पड़ता। इस प्रकार 'आधार' में डाक्टर कासलीवाल का चरित्र पूर्व-निश्चित स्वभाव के अनुकूल ही है। उसमे उदारता तथा त्याग आदि के अंग सम्भवतः जहाँ तक डाक्टर साहब के कथन से प्रतीत होता है, अधिक प्रबल दीखते हैं किन्तु इनका चित्रण पहले न होने से इनमे विशेष विकास का आभास नहीं पाया जा सकता।

मानव-चरित्र की अनेकरूपता के साथ होमवती जी की कहानियों में आवश्यतानुसार बाह्य समस्याओं की भी अनेक रूपता मिलती है। इस क्षेत्र में आपकी दृष्टि सामाजिक विषयों पर विशेष रूप से जाती है। 'कान का बुन्दा' में आप एक सर्वांङ्ग अप्रतिम सुन्दरी हिन्दू नवयुवती को जबरदस्ती कपटाचरण द्वारा मुस्लिम धर्म में दीक्षित दिखलाती हैं। वह मुसलमान होना नहीं चाहती; किन्तु विवश है। 'नई बहू' में शान्ति बिहारीमल के द्वारा छली जाती है; विवाह के बाद रुपया-पैसा लेकर उसका परित्याग कर दिया जाता है। लेखिका उसके भविष्य के विषय मे मौन रहती है और यह उचित ही है। यथार्थ-वादी कलाकार पाठक को सुख और संतोष देने का व्यर्थ प्रयत्न नहीं करता।

आप इन समस्याओं का स्वयं कोई समाधान नहीं देतीं। अस्तु, ये समस्यायें पूर्ण रूप से समाज की समस्याये बन जाती हैं। यदि लेखिका इन समस्याओं में पड़े हुए व्यक्तियों को किसी सुख-शान्ति युक्त अन्त पर पहुँचा देती तो ये समस्यायें सामाजिक न होकर व्यक्तिगत हो जातीं और उसके व्यापक स्वरूप पर आघात पहुँचता। कितनी यथार्थवादी कठोर दृष्टि है आपकी? इस प्रकार हम 'कान का बुन्दा' में मुस्लिम धर्म में दीक्षित मृणालिनी तथा 'नई बहू' में शान्ति को उसकी कष्टमय नैराश्यपूर्ण समस्याओ से छुटकारा पाती हुई नही देखते हैं। हमारा मन चीत्कार कर उठता है कि भविष्य में इन नारी-रत्नों का क्या हुआ, किन्तु कलाकार चुपचाप कहानी के पर्दे को गिराता हुआ हमारे प्रश्न का कोई उत्तर नहीं देता। उत्तर देना भी व्यर्थ है; उसके उत्तर देने से ये सामाजिक समस्यायें हल थोड़े ही हो जायँगी।

अस्तु, चरित्र-प्रधान होते हुए भी आप की कहानियों के पात्र सामाजिक समस्याओं के निरूपण एवं दिग्दर्शन के निमित्त प्रतीक का कार्य करते हैं। एक प्रकार से उनके चरित्र तथा समस्यायें एक दूसरे से घुल-मिल कर चलती है; दोनो मे कोई असंगति नहीं दिखाई पड़ती। कही पात्र सामाजिक विचार-घृणा, निन्दा एवं नियम आदि को सिर झुकाकर सहते हैं और कहीं उनका विरोध कर अपने श्रेष्ठ व्यक्तित्व का परिचय देते है। 'आधार' में डाक्टर कासलीवाल सामाजिक निन्दा एवं लांछन की उपेक्षा ही नहीं करते वरन् समाज को चिढ़ाने तथा अपनी ढिठाई दिखाने मात्र के लिये मित्र की स्त्री से विवाह का स्वाँग करते हैं। वास्तव में यह कहानी आकार में लम्बी तथा मानव-स्वभाव के अनेक पहलुओं की विशद व्याख्या करती या उनकी ओर केवल संकेत करती है।

होमवती जी वाह्य परिस्थितियो; वातावरण तथा पात्रो के शारीरिक सौन्दर्य एवं वेश-भूषा आदि का भी सफल वर्णन करती हैं। 'कान का बुन्दा' में मृणालिनी के अनुपम सौन्दर्य का मानों मूर्तरूप उपस्थित हो जाता है; साथ ही नैनीताल की रात्रि का भी सुन्दर वर्णन मिलता है। 'आधार' और 'नई बहू' में भी स्त्री-पात्रों के शारीरिक सौन्दर्य का समुचित वर्णन आपने किया है। आप प्रायः केवल नारी-पात्रों के सौन्दर्य का वर्णन करती है; ऐसा कोई निश्चित नियम आपके सौन्दर्य-वर्णन के सम्बन्ध में नहीं स्थापित किया जा सकता। सौन्दयशाली पात्रो में आप सुन्दर शील-स्वभाव का भी वर्णन कर उनकी मार्मिकता तथा महत्व को बढ़ा देती हैं। शारीरिक सौन्दर्य तभी यथेष्ट प्रभावशाली होता है जब उसके साथ शील तथा आचरण का भी सौन्दर्य दिखाया जाय। दोनों का संयोग उत्पन्न कर आप पाठक को मनोविज्ञान के अनुभव का यथेष्ट परिचय देतीं हैं। अस्तु, मृणालिनी

तथा शान्ति में शारीरिक सौन्दर्य के साथ सुन्दर शील-स्वभाव भी दिखाया गया है।

आपके पात्रों का वार्तालाप भी जीवन की विविधता, स्वाभाविकता एवं चरित्र का वैषम्य प्रकट करता है। उनका वार्तालाप उनके स्वभाव के ही अनुकूल होता है। जिससे हम पात्रों के शील-स्वभाव का दर्शन कर सकते हैं। 'नई बहू' में सेठानी अपने लड़के विहारीमल को 'दूध का धोया' कहती हैं। यह उनके मातृत्व का ही द्योतक है, जो अपने अधम से अधम बच्चे को भी निष्पाप देखता है। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते है।

होमवती जी की भाषा उच्च साहित्यिक कोटि की होती है। उसमें दिखावट या पांडित्य आदि वस्तुओं के प्रदर्शन की भद्दी प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती। आप कहानी की आत्मा की पर्वाह करती हैं, भाषा स्वयं अपने को उसके अनुकूल बना लेती हैं। पाठक कहानी पढ़ने में इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे भाषा के अस्तित्व का ज्ञान ही नहीं रहता। सरल भाषा के होते हुए भी कहीं असाहित्यिकता या ग्रामीणता आदि नहीं मिलती। आप अपनी रचनाओं में आवश्यकतानुसार उर्दू, तथा अंग्रेज़ी के शब्दों का भी प्रयोग करती हैं।

—::०::—

आधार

रोगी की आँखों मे आँसू भर आए। उसने बहुत ही क्षीण स्वर में कहा—'तुम दोनों का क्या होगा प्रतिभा! मैं इसी चिन्ता मे शान्ति से मर भी तो नहीं सकूँगा?' और फिर पलँग की पाटी से टिकी हुई, जमीन मे बैठी पत्नी का कोमल हाथ अपने दुर्बल हाथो मे थाम लिया। युवती ने घुटनों में अपना मुँह छिपा लिया, उसकी आँखो से अविरल अश्रुधार बह चली। यही तो बस एक सहारा है दुर्बल का।

पास ही कुर्सी पर मेजर मोहन कासलीवाल इस करुण दृश्य को अपनी छाती पर पत्थर रक्खे देख रहे थे। यदि वह प्राण देकर भी अपने इस परम प्रिय मित्र को बचा सकते तो ऐसा ही करते, इसमे रत्ती भर भी संदेह नहीं। किन्तु विधि के विधान को टाल देने की शक्ति स्वयं विधाता में भी नहीं रहती। जो होना है अवश्य होगा, वह जैसे पत्थर की लकीर के समान अमिट है, अडिग है।

कैप्टेन कुमार पलभर मौन रह कर बोले—'तुम्हें एक ऐसे संरक्षक की आवश्यकता है प्रतिभा! जो मेरा अभाव पूरा कर सके और तुम्हारा तथा इस नन्हें से शिशु अनिल का उचित ध्यान रख सके, जिसे मैं केवल दो ही वर्ष की उम्र में छोड़े जा रहा हूँ।......हाँ, ऐसा ही अभिभावक चाहिए।' कहते हुए उन्होंने पत्नी का हाथ थोड़ा ऊपर उठाया और एक बार बड़ी ही मर्म-भेदी दृष्टि से अपने मित्र कासलीवाल की ओर देखा। डाक्टर कासलीवाल ने कुछ समझा और कुछ नहीं। कुर्सी से उठ कर वह रोगी की शैया पर झुक आए, और रोगी ने दूसरे हाथ से उनका हाथ थाम कर प्रतिभा के हाथ की ओर बढ़ाना चाहा। तभी युवक मेजर ने तुरन्त कैप्टन कुमार का हाथ कस कर पकड़ लिया, जिस हाथ में युवती का हाथ दबा था!

वे तीनों ही उस समय जैसे घोर अन्धकार में खोये से जा रहे थे। ऐसा मालूम हो रहा था, मानो उस सूने कक्ष और स्तब्ध वातावरण की लाचारी में, मृत्यु मुँह फाड़े द्वार पर खड़ी अट्टहास कर रही है, पर सब विवश हैं, किसी का कोई चारा नहीं।

रोगी को जैसे अभी भी बहुत-कुछ कहना शेष था, किन्तु समय कम और कहानी लम्बी थी। ज़बान पर भी जैसे किसी ने हाथ रख दिया था, कहे तो किस मुँह से कहें, और क्या कहें ?

बड़ा साहस समेट कर, डाक्टर कुमार ने नत सिर बैठी, सर्वाङ्ग सुन्दरी प्रतिभा की ओर देख कर मित्र से कहा—'तुम इन लोगों को अपने साथ रख सकोगे मोहन ?'

'हाँ, ज़रूर रख सकूँगा, जीवन भर, ठीक इसी प्रकार, तुमसे वायदा करता हूँ कुमार......।' और कासलीवाल की बात अभी पूरी भी नहीं हो पाई थी कि कुमार फिर कहने लगे—'दोस्त! मैं इस समय मर तो रहा ही हूँ, किन्तु इससे पहले अपना कलेजा अपने हाथ से निकाल कर तुम्हारी हथेली पर रखता जा रहा हूँ, और साथ ही प्रतिभा की भी हत्या किये जा रहा हूँ। यह मुझे बहुत प्यार करती है......।' कहते-कहते रोगी फफक-फफक कर रोने लगा, साँस की गति तीव्र हो गई, दिल बैठने-सा लगा।

कासलीवाल ने तुरन्त दवा पिलाई, और उन्हें धैर्य देते हुए कहा—'तुम बड़ी ही नासमझी की बातें कर रहे हो कुमार! ठीक हो जाओगे, एक दम, हज़ार दम। दुख-सुख क्या होते नहीं, घबराओ नहीं। यह जो कुछ तुम्हारा है, हमेशा तुम्हारा ही रहेगा, और मैं क्या तुम्हारा नहीं हूँ? मैं सिर आँखों पर तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा।'

'यह मैं जानता हूँ, और इसलिये अपना सब-कुछ तुम्हें दिये जा रहा हूँ। मेरी आत्मा को इससे ही शान्ति मिलेगी। तुम इसे स्वीकार करो। मैं तभी सुख से मर सकूँगा......। यह सब सँभाल कर यत्न से रखना मोहन! प्रतिभा-जैसी स्त्री चिराग़ लेकर खोजने पर भी संसार में दूसरी नहीं मिलेगी। शिक्षित ही नहीं, बड़ी बुद्धिमती और सेवामयी भी।' रोगी ने बड़ी कठिनाई से यह सब कह डाला,, जैसे जो कुछ कहना है तुरन्त कह डालना चाहिए, और जो कुछ करना है उसके लिए फिर की गुंजाइश नहीं है अब!

'अच्छा अब बहुत मत बोलो।' कहते हुए डाक्टर मोहन ने रोगी के माथे का पसीना रूमाल से पोंछ दिया, और फिर नब्ज़ देखने लगे।

कुमार ने फिर हाँफते-हाँफते कहा...'तुम मुझे बहलाओ मत डाक्टर! यह रात नहीं कटने की। तुमने और मैंने साथ ही सब पढ़ा-लिखा है। मैं सब जानता हूँ।......जो कुछ कहना है, कहने दो। जो कुछ करना है, करने दो। फिर कुछ कहना-सुनना नहीं होगा। थोड़ी सी बात और बाकी है। और समय भी बहुत कम है अब। सुनो, बैंक मे और इन्शोरेंस का जो कुछ रुपया है, उसके तमाम काग़ज़ इस आलमारी में रक्खे हैं, उन्हें सँभाल लो। औ‹ प्रतिभा का बहुत सा जेवर इम्पीरियल बैंक में पड़ा है। उसे जहाँ ठीक समझो, रखना। मैंने अपने सब भाइयों को अच्छी तरह देख लिया है। अपनी इस लम्बी बीमारी में कुछ भी देखना और समझना बाकी नहीं रहा। उन्हें इज्जत चाहिए, पैसा चाहिए, और उनके बस का कुछ नहीं है......। उठो, यह सब सँभालो, और......और इसे भी सँभालो अब। अनिल को भी बुलाओ। आज से तुम्हीं उसके पापा हो। उठो......उठो......। देखो यह कब से ऐसी ही बैठी है। बेहोश तो नहीं हो गई......?'

कहते-कहते कुमार का दम घुटने सा-लगा, दिल डूबने लगा और आँखों के आगे अँधेरा छा गया।

कासलीवाल ने चुप-चाप उनकी आज्ञा का पालन किया; और जैसे ही वह प्रतिभा के पास पहुँचे, देखा उसके मुँह से झाग आ रहा है, नब्ज़ की गति बहुत मन्द है, और पलकें झँपी हुई हैं। बिना कुछ सोचे उन्होंने अपनी बलिष्ठ भुजाओं से युवती को उठा कर दूसरे कमरे में पलँग पर जा लिटाया। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि कैसे पल भर मे इसे होश में ले आयें। घंटी बजाई, बाहर से कम्पाउंडर और नर्स दौड़ आए,। डाक्टर ने हुक्म दिया—'स्लाइन तैयार रक्खो······।' और फिर तुरन्त 'इंजेक्शन' देकर वह एक टक उसे देखने लगे। थोड़ी देर बाद उन्हें ऐसा लगा जैसे उसकी संज्ञा लौट रही है, स्टैथेसकोप हृदय पर रख कर उन्होने अनुभव किया; दिल की धड़कन भी कुछ तेज़ हो चली है, स्वॉस की गति भी व्यवस्थित सी ज्ञान पड़ी। उनका चेहरा दीप्त हो उठा। मनुष्य का स्वभाव है कि वह आशा के क्षीण-से-क्षीण तंतु से भी तब तक अटका रहता है जब तक कि वह बिल्कुल ही टूट न जाये। डाक्टर ने अपने दोनो हाथ जोड़ कर किसी अज्ञात शक्ति को नमस्कार किया—'और किसी के लिए नही, केवल उस अबोध बालक के लिए यह बच जाए बस। मै उसे कैसे समझा सकूँगा ···· ? और······ और फिर रह ही क्या जाएगा ?'

वह तन, मन से युवती के उपचार में जुट गए और वह भयानक विपत्ति को रात इसी प्रकार बीतने पर, जब उषा ने प्राची मे अनुराग बिछाया—तब प्रतिभा ने करवट ली। उसके थोड़ी देर बाद कैप्टेन कुमार के शव को शोलन के श्मशान घाट पर ले जाकर रख दिया गया। मेजर कासलीवाल ने अपना

सिर पीट डाला, और फिर कलेजे पर शिला रख कर उन्होंने अपने अनेक परिचितों और मित्रों को देखते-देखते ही कैप्टेन कुमार का अंतिम संस्कार भी अपने ही हाथों कर डाला। थोड़ी देर में चिता की लपटें आकाश को छूने का यत्न करने लगीं। और फिर सब-कुछ फुंक कर केवल भस्म का ढेर मात्र रह गया। घर लौट कर जब वह रोगिणी के कमरे में गए, तो नर्स ने संकेत से उन्हे बताया—'सो रही है।' जीवन और मरण, दुख और सुख, सब साथ ही तो रहते है, यही संसार क नियम है।

... ...

'अब उनकी तबियत कैसी है?' रोगिणी ने मेजर के मुँह पर अपनी जिज्ञासा-भरी दृष्टि गड़ाते हुए पूछा?

डाक्टर कासलीवाल को ऐसा लगा, यदि इस समय उनकी जबान कट कर गिर पड़ती तो अच्छा होता। क्या उत्तर दें? वहाँ वाणी तो थी पर शब्द कहाँ से लाएँ?

सिर झुकाए वे बाहर चले गए, और अनिल को लाकर चुपचाप युवती के पास बैठा दिया। प्रतिभा की आँखें फटी-सी जा रही थीं, जैसे आँसू भी आज बिलकुल सूख गए, उसका जी बैठने-सा लगा। अब और क्या समझने को शेष था? प्रतिभा की आँखों के सामने सारा विश्व घूम गया। उसने पलँग की पट्टी से अपना सिर दे मारा।

डाक्टर ने जबरन उसका मुँह खोलते हुए, एक खुराक दवा उसके गले के नीचे उतारते हुए कहा—'जो होना होता है, होकर रहता है...... । जो बादल वर्ष भर से मँडरा रहे थे वे कभी तो फटते ही, प्रतिभा! हम तुम क्या, कोई भी उस घड़ी को टाल

नही सकता । पढ़ी-लिखी हो, सब जानती हो, तुम्हे क्या कह कर समझाऊँ ? और किस मुख से कुछ कहूँ ? मैं अपने प्राणो के बदले मे भी यदि उसे बचा सकता......।' कहते-कहते डाक्टर का गला भर आया । उन्होने बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'अनिल उसकी थाती है। इसे सँभाल कर रखने का भार हम दोनो के ऊपर छोड़ा है उन्होने । हमे जो करना है, इसी के लिए तो ···। आज सप्ताह, कल महीना और फिर वर्ष, इसी प्रकार अनन्त काल बीत जाने पर भी जाने वाला नहीं लौटता, फिर हम सभी को तो एक दिन वहीं जाना है ।'

बालक की समझ मे कुछ भी नही आ रहा था । उसने माँ की छाती पर अपना छोटा सा मस्तक डाल दिया । मानो यही वह कर सकता था । बीता हुआ नही, वर्त्तमान भी शायद नहीं, पर भविष्य का सन्देश जैसे इस युक्ति मे निहित था, और वही मूर्तिमान होकर अबला के हृदय के घाव को सेकने-सा लगा ।

प्रतिभा की छाती मे पहले ज्वाला-सी धधक उठी, फिर वह फटने-सी लगी । और··· 'और वह सहसा चीत्कार करके रो पड़ी । मेजर ने संतोष की साँस लेते हुए सोचा—'ठीक ····अब कोई खतरा नहीं ।'

दिन और सप्ताह, मास और वर्ष बीतते गए, और अब पूरा डेढ़ वर्ष हो गया । प्रतिभा को इस पराये घर मे रहते-रहते । वह बीस वर्ष की युवती असमय मे ही जैसे बूढ़ी हो चली । कोई कष्ट न होते हुए भी—मानसिक शांति का अभाव उसे खाए जा रहा था ।

मैके मे कोई होता तो वहीं जा बसती । माँ-बाप थे, विवाह करते ही परलोक सिधार गए । ससुराल वाले तो जो चाहते थे वह हो गया, अब और क्या चाहेगे ? अनिल बचा है बस······ ।

नहीं, वह वहाँ जाकर नहीं बसेगी। वहाँ कौन अपना है, सब को वह पूरे वर्ष भर की बीमारी में खूब देख चुकी है। आज तक किसी ने खबर नहीं ली, रुपये-पैसे का हिसाब माँगने लगे बस। वह तो यही अच्छा हुआ जो उसके पास उन्होंने पेट भरने लायक पैसा छोड़ा है, वह खुद भी पैसा पैदा कर सकती है, इतनी पढ़ी-लिखी है वह। किन्तु······किन्तु फिर भी तो दुख-सुख का साथी चाहिए कोई······? तब ···· तब क्या बहिन के घर चली जाए ? पर वहाँ भी क्या है उसका ? और ·· ··और न जाने कैसा रहे ? यह जाने दें कहीं तब तो ? परन्तु ऐसे कब तक चलेगा ? इनका विवाह आज नहीं तो कल होगा। सुना था, सविता एम० ए० से तय हो चुका है। न जाने वह कैसी लड़की हो, मेरा रहना पसन्द करे या न करे। तब क्या वह गृह-स्वामिनी की दासी बन कर रहेगी ? नहीं ·····उसे ऐसे रहने की आदत नहीं है। तब वह अलग घर में रहेगी। अनिल अभी बहुत ही छोटा है पर······? और उसकी भी उम्र छोटी है, और फिर··· फिर विधवा जो है वह ?

सोचते-सोचते युवती का सिर घूमने लगा। उसे ऐसा लगा, जैसे यह सारा संसार अंधकार से घिरा है, कहीं भी कोई प्रकाश की क्षीण-सी रेखा भी नहीं दीख रही थी उसे। वह वहीं फर्श पर बिछी चटाई पर पड़ गई। देखा सामने से अनिल भागा आ रहा है—'मम्मी ! मम्मी ! बताओ पापा कहाँ हैं ? हम भी मोटर में घूमने जायेंगे ? पपी जा रहा है, नीना भी जा रही है······।'

'पड़ोसियों की हिरस करेगा तो कुछ भी मँगा कर नहीं दूँगी, न बिस्कुट, न चाकलेट, न हवाई जहाज़, समझा ?' प्रतिभा ने बालक को डाँट दिया। और वह और भी मचल उठा— बताओ पापा कहाँ हैं ? तुम मत मँगाना। वह मँगा देंगे······।'

'पापा मर गए, तुझे नहीं मालूम ?' युवती झल्ला कर रो पड़ी। बालक भी रो पड़ा। आया बाहर खड़ी सब देख-सुन रही थी। उसकी भी आँखे भर आई। तभी बराबर वाले कमरे से आवाज आई—'अनिल ! इधर आओ, मोटर मे घूमने चलेंगे, और बहुत से बिस्कुट, चाकलेट और हवाई जहाज, खरीद कर लायेंगे•••।'

बालक उधर ही भाग गया, यह कहता हुआ—'पापा तो यह रहे, वैसे ही कह रही थी—मर गए••••••मर गए ?' युवती को ऐसा लगा, मानो किसी ने मुँह पर ही उसको गाली दे दी हो, जैसे बड़ा अपराध किया है उसने, न इसका कोई प्रायश्चित्त है, और न कोई प्रतिकार ही है उसके पास। और तुरन्त ही जैसे वह सँभल कर सोचने लगी—'छिः ! क्या सोचने लगी थी वह ? ठीक ही तो कहा था उसने।'

'पापा ?' बराबर वाले कमरे से सुनाई पड़ा।

'बेटा ! राजा ! मुन्ना ! कहो क्या कहते हो ?'

'नीनी अपनी साइकिल पर नहीं बैठाती हमें••••••।'

'हम तुम्हे नई मँगा कर देंगे। जरा बड़े हो जाओ। उसकी तो पुरानी है, टूटी हुई, गंदी।' डाक्टर कासलीवाल ने बालक को गोदी में उठाते हुए कहा। और बराबर वाले कमरे मे बैठी प्रतिभा जैसे लाज से गड़ी जा रही थी।

'चलिए घूमने ?' वह फिर बोला।

'अच्छा अभी चलते हैं, जाओ ममी के पास, मुँह धुलवाओ, कपड़े बदलो, आया से कहो, जूते साफ करके पहना दे। तभी तो चलेंगे ? तब तक हम भी कपड़े बदल लें, बस।'

मेजर साहब ने बच्चे को लिए-लिए ही बराबर वाले कमरे की चौखट पर खड़े होकर कहा—'इसे ठीक कर दो, घूमने जायगा; चलो तुम भी चलो। कम्पनी बाग तक चलेंगे, बस।'

युवती का मन कटने-सा लगा—'यह पुरुष मनुष्य है या देवता? कितने दिनों से यह हमारे दुर्भाग्य से अपने को बाँधे हुए हैं · ···, मानों जैसे कुछ हुआ ही नहीं··· · कितने शांत और उदार?'

इसी समय नौकर ने दरवाज़े के पीछे खड़े होकर कर कहा—'हुज़ूर आई है, सरकार।'

'कौन हुजूर' और साथ ही वह प्रतिभा से कहते गए—'तुम्हें मेरे सर की कसम, जल्दी तैयार हो जाओ, तुम्हें जरा भी बच्चे का मन रखना नहीं आता?'

आया बच्चे को लेकर 'ड्रेसिंग रूम' मे चली गई। और युवती बिलकुल निश्चल भाव से जड़वत् वहीं बैठी-की-बैठी रह गई।

ड्राइङ्गरूम में बैठी मिस सविता को मेजर कामलीवाल ने नमस्ते करते हुए कहा—'आप इस समय कहाँ से आ रहीं हैं?'

'आ तो घर से ही रही हूँ। तबियत नहीं लग रही थी, सोचा, आपको फुरसत होगी तो सिनेमा ही चले चलेंगे। लेकिन देखती हूँ कि आप खुद ही कहीं जाने की तैयारी में हैं। कहाँ जा रहे हैं? क्या कोई मोटा असामी आ फँसा है? कौन बीमार है?' सविता ने एक साथ इतने प्रश्न कर डाला।'

'तो क्या आप समझती हैं कि मैं हमेशा मरीज़ ही देखने जाता हूँ बस। अस्पताल; क्लब, मित्रों में, और······और भी बहुत से काम रह सकते हैं। और इस वक्त तो वह काम करने

जा रहा हूँ जो कभी नहीं किया। सिनेमा देखने का शौक अब नहीं रहा।' डाक्टर साहब ने कहा।

'मतलब ?'

'मतलब, यही कि पड़ोसियों के बच्चों को देख कर, बच्चा हठ पकड़ गया है, उसे घुमाने जा रहा हूँ।'

'बच्चा ? कौन बच्चा, किसका बच्चा ? क्या कोई मेहमान आये हुए है आज-कल ?' सविता ने पूछा।

'नहीं, मेहमानो के बच्चो को घुमाने की फुरसत नहीं रहती मुझे। अपना ही बच्चा है‥‥ ‥।' डाक्टर ने कहा।

'अपना। मतलब‥‥‥?' मिस सविता जैसे आकाश से गिर पड़ी।

'हाँ, अपना। मतलब तो साफ है ?' डाक्टर ने उत्तर दे दिया।

युवती कुछ खीझ कर, दूसरी ओर गर्दन फेर कर बोली—'समझा दीजिये ठीक-ठीक, जिससे यह रोज-रोज का झंझट छूटे। कुछ दिनों से आप के रंग-ढंग बदले हुए दीख रहे हैं। किसी को धोखा देने से क्या लाभ ! और भी बहुत से लोगो से बहुत तरह की बातें सुनाई पड़ रही है। आपके कोई मित्र थे, जो पिछले साल सोलन मे ही आपकी कोठी मे मर गये है। उन्हीं के साथ शायद आप तीन महीने की छुट्टी लेकर रहे। अब सुना है कि उनकी मिसेज और बच्चा आप ही के साथ रहते हैं। क्या ठीक है न ?' मिस सविता की गर्दन में कुछ तनाव आ गया और वाणी मे कम्पन स्पष्ट था ही।

डाक्टर साहब ने सहज शांत स्वर मे, संक्षेप में, उत्तर दिया—'हाँ, जो कुछ आप लोगो ने सुना है वह ठीक ही है। और आगे भी जो कुछ अनुमान लगायेंगे आप लोग, वह भी शायद ठीक ही होगा। मै सोलन से उन्हे यहाँ ले आया हूँ।'

'तो क्या वह यहीं रहेगी हमेशा?' मिस सविता का स्वर कठोर था।

'क्यों, आपको इसकी चिन्ता क्यो आ पड़ी?' डाक्टर ने गम्भीरता पूर्वक पूछा।

'और किसे चिन्ता होगी? क्या आप मुझे साफ़ जवाब दे रहें हैं? मेरा अपमान करने पर तुले हैं आप? अगर मैं ऐसा जानती तो……। अच्छा मैं मिसेज़ से मिलना चाहती हूँ ज़रा……।' वह बोली।

डाक्टर ने अपनी स्थिर और गम्भीर दृष्टि युवती के चेहरे पर जमाते हुए कहा—'मैंने कभी किसी से कोई वायदा नहीं किया। फिर साफ जवाब का सवाल ही नहीं उठता। मै जो कहता हूँ उसे करता हूँ. और न आज तक मैंने किसी भद्र महिला का अपमान ही जान-बूझ कर किया है। आप आगे से जो जी में आये, जानने की कोशिश करती रहें, और जो मन मे आये कहती रहें। मुझे ज्यादा अवकाश नही है, और न उन्हीं को फुरसत मिलती है। घर की देख-भाल, बच्चे का काम और……और फिर मेरी झंझट से जब छुटकारा पाती हैं, तब पूजा-पाठ, पढ़ना-लिखना, यही सब चलता रहता है। इस समय तो वह स्नानागार में होंगी।'

मिस सविता जैसे आग-बबूला हो गई—'तो यह क्यों नहीं कहते कि……किस्र ब दाशी की जरूरत ही नहीं रही?'

'यह क्या आप से कहना होगा, सविता देवी। यह तो मेरे सोचने की बात है। आप मर्यादा से इतनी दूर चली जा सकती है, यह मैंने कभी नहीं सोचा था। माफ कीजिये, मैंने आपको कभी कोई वचन नहीं दिया था और न आज मैं वचन-बद्ध हूँ। मेरे पास कुछ

नहीं है—किसी को देने-लेने के लिये, और न मुझ जैसे गवार के साथ आप जैसी 'अपटुडेट' युवती का कोई मेल ही हो सकता है। मैं तो सोच रहा हूँ कि शहर के इस गन्दे वातावरण से दूर, कहीं जाकर रहेंगे हम-लोग। नौकरी से भी छुट्टी और इस बड़े शहर से भी। इस कोठी को किराये पर देंगे, और सोलन की कोठी बेच कर और कहीं खरीदेंगे अब ?' डाक्टर मोहन ने सीधे खड़े होकर कहा, जैसे आज यह अंतिम निर्णय कर डाला था उन्होंने।

सविता को ऐसा लगा मानो उसके पैरों के नीचे की धरती खिसकनी जा रही है, और आकाश जैसे फट पड़ेगा। ओह इतना पैसा, मान और इज्जत, जमीन और जायदाद, कोठी बँगले, नौकर-चाकर, और यह चमचमाती बीस हजार से अधिक मूल्य की कार……। यह सब एक ही झोंके में उसकी आँखों से ओझल होने लगे। युवती का रोम-रोम जलने लगा। और तेज़ी से कमरे के बाहर निकलती हुई आखिरी वाण छोड़ गई—'इस मय बच्चे वाली बीबी से शादी की दावत कब होगी ? निमन्त्रण तो हमें भी देंगे न आप ?'

डाक्टर ने सहज स्वभाव से कह दिया—'ज़रूर ……ज़रूर।'

और फिर उन्होने जैसे पास वाले कमरे में पैर रक्खा, देखा, प्रतिभा वहीं-की-वहीं पत्थर की प्रतिमा बनी बैठी है ?

डाक्टर ने बिना किसी भूमिका के कह डाला—'भाभी ! उठो। बिलकुल शाम हो गई। अनिल कार मे बैठा-बैठा शोर मचा रहा है। कहीं रोने न लगे।

युवती ने अपनी बड़ी-बड़ी तरल आँखो से उस बलिष्ठ और सुन्दर ही नहीं, देवता-समान उज्जवल पुरुष को आज जी-भर

कर देखा, और फिर न जाने क्या सोच कर उसके पैरा पर अपना सिर रख दिया—'इसकी लाज तुम्हारे ही हाथ है। बस··· ··।'

युवक ने और भी एक दिन की तरह अपने दोनों हाथों से उसे उठाते हुए कहा—'लाज तो अब आपको मेरी रखनी होगी। वचन दो कि ठुकराओगी नहीं। संसार को दिखाने के लिये ही सही—चार जनों के सामने मेरी हँसी न करा देना··· ··। लोग कहते और हैं, और वास्तव मे करते हैं कुछ और। किन्तु इसे मैं कायरता समझता हूँ। तुम्हारे सामने आज शपथ लेकर वायदा करता हूँ कि तुम्हारी हर एक बात को सिर झुका कर स्वीकार करूँगा······। यद्यपि मुझमे अब कुछ भी शेष नही रह गया हैं, फिर भी मैं वैसा दुर्बल नहीं हूँ। मैं तुम्हे कभी भी यह विश्वास दिला सकता हूँ कि अब किसी प्रकार का भी आडम्बर या ढोंग रचने की सामर्थ मुझमे नहीं है। मरने के बाद एक ऐसे की आवश्यकता होती है, जो दो आँसू डाल दे, और जो कुछ भी हो उसे सहेज बैठे। सो उसका प्रबन्ध कुमार ने कर दिया है। मैं उसका, तुम्हारा और अनिल का भी बहुत कृतज्ञ हूँ ··।'

युवती के रोम-रोम में विद्युत-सी फैल गई। उसने पुनः डाक्टर के पैरों को छूते हुए कहा—'आपकी एक-एक आज्ञा, मेरे लिये देवता के सहस्रों आशीर्वाद और वरदानों के सदृश होगी, इस पर विश्वास रक्खें। मेरे ही पास अब क्या बचा है? किन्तु······किन्तु ऐसा कोई काम न कर बैठना, जिसमें मैं दुनिया में मुँह दिखाने योग्य भी न रहूँ······।'

युवक ने तुरन्त उत्तर दिया—'दुनिया किसका मुँह देखना चाहती है, और किसका नहीं, इसकी बात छोड़ो, प्रतिभा! दुनिया अंधी है। उसका काम है दूसरो पर कीचड़ उछालना।

उसे किसी के दुख-सुख से क्या लेना देना है ? मैं ऐसी दुनिया में पल भर भी रहना नहीं चाहता । मैं चाहता हूँ दुनिया की आँखें खोलना, और······और ऐसी दुनिया में रहना, जहाँ शांति हो, धैर्य हो, और······और अनिल हो, और भी······और तुम हो······।' डाक्टर का कंठ गद्‌गद् होने पर भी, उसमें दृढ़ता का अभाव नही था । वह विद्रोही के समान इधर-से-उधर अपने निश्चय को दोहराते हुए, कमरे में टहलने लगे ।

प्रतिभा कुछ शंकित और घबराई हुई-सी उन्हे देखती रही । उन्होंने बहुत शांत और संयत स्वर मे फिर कहा—'मैंने तुम्हारी और अनिल की इच्छाओं पर अपना बलिदान कर डाला है, प्रतिभा ! इसे कभी भूल न जाना ।'

युवती ने अपनी आँखों को आँचल के छोर से मसलते हुए कहा—'कहाँ भूल सकी हूँ, कैसे भूलूँ ? यही तो लाचारी है । अपनों को कोई कैसे भूल सकता है डाक्टर साहब ?'

डाक्टर ने उसी प्रकार गम्भीर और कोमल स्वर से कहा—'मैं उसे भूल जाने को थोड़े ही कहता हूँ प्रतिभा ! मै ही क्या उसे भूल गया हूँ । तुमसे ज्यादा दिन और उसका हमारा साथ रहा है । पर इतना तो स्वीकार करोगी न कि जो आज जीवित है, उनके प्रति भी हमारा कोई कर्तव्य है ? क्या तुम उनकी उपेक्षा करके शांत से रह सकोगी ? बिना किसी उद्देश्य और लक्ष्य के कोई जीवित रह सका है कभी ? तुम्हारे जीवन का मूल्य दूसरे ही आँक सकते हैं ? यदि अनिल इतना समझदार होता तो आज उसी से पुछवा देता······। फिर मेरा ही कौन है ? माँ काशीवास करने चली गईं । भाई साहब अपने ही स्त्री-बच्चों से विरक्त रह कर कभी कलकत्ता और कभी बम्बइ घूमते रहते है, दो बार विदेश हो

आये। इसीलिये तो माँ, सारी ज़मींदारी का भार उनके सिर पर पटक कर काशी चली गईं और मैं भी उनके हित में यही ठीक समझता हूँ कि वह घर के काम मे इतने व्यस्त रहें कि कहीं निकल न सकें। मनुष्य का स्वभाव चंचल तो होता ही है। पर उसकी भी कोई सीमा होनी चाहिये·····।'

प्रतिभा कुछ कहना चाहती थी कि अनिल कूदता हुआ आ गया और उन दोनों के हाथ अपने नन्हें-नन्हे हाथों में थाम कर घसीटता हुआ बाहर ले गया। प्रतिभा और डाक्टर मोहन बिलकुल मौन, निस्तब्ध और जड़वत् कार में जा बैठे। अनिल ने शोफर से कहा—'चलो कम्पनीबाग।'

··· ··· ···

उस दिन की सारी रात आँखो में ही बीत गई। प्रतिभा को एक पल के लिये भी नींद नहीं आई। रात भर उसके मन मे अनेक प्रकार के विचार उठते रहे। संघर्ष की कोई सीमा नहीं। वह क्या करे और क्या न करे? अनिल, हाँ अनिल ही उसके जीवन का एक मात्र सहारा है। वह अभी कितना नासमझ है? उसे वह क्या कह कर समझाए? वह पापा-पापा की रट लगाए रहता है, एक क्षण भी पापा को नही भूलता। उसने जो कुछ स्वयं जोड़ा है, उसे वह कैसे तोड़ डाले? फिर उसे क्या कह कर सांत्वना देगी वह? उनके अभाव को कैसे दूर करेगी? किसके सहारे जिएगा वह? और······और उनका अपराध? वह कहते हैं कि उन्होंने बलिदान किया है? मैं भी बलिदान करूँ क्या? किन्तु मुझसे तो वह कुछ भी नहीं कहते। सभी कुछ तो हम लोगों के लिये मिटा डाला है उन्होंने अपना। परन्तु सविता······। उससे कही गई बातें! विवाह······? कैसा विवाह?

किससे विवाह ? क्या मुझे अनिल के लिये यह भी करना होगा……? संसार को दिखावे की जरूरत है। क्या मैं दिखावा करूँ ? वह यही चाहते है क्या ? प्रतिभा का मन जैसे आत्मग्लानि से भर गया, और तभी अनिल सहसा पलँग से उतर कर नीचे खड़ा हो गया। आँखों मे अभी नींद भरी थी। बदन में था आलस्य। प्रतिभा सहसा सचेत होकर बोली—'कहाँ जा रहे हो अनिल ?' और बालक ने सहसा उत्तर दिया—'नीचे, पापा के पास…… ।'

युवती ने उसे छाती से लगा लिया—'तू पापा के बिना नहीं रह सकता, क्यो ? चल मैं भी चल रही हूँ। आज बहुत दिन चढ़ आया। चाय का समय हो गया……।' और जैसे आज जीवन और मृत्यु के संघर्ष में वह नीचे उतर आई।

प्रतिभा ने डाक्टर साहब के प्याले में चम्मच भर चीनी डालते हुए कहा—'बस या और भी एक चम्मच ?'

'बस नहीं, और भी कई चम्मच। आज मैं खूब गहरी और मीठी चाय पीना चाहता हूँ।' उन्होंने उत्तर दिया। और कुर्सी की पीठ कर अपना सिर डाल दिया, मानो केवल शरीर ही नहीं, आज वह मन से भी हार मानें बैठे हैं।

युवती ने एक……दो……तीन करके बहुत सी चीनी चाय में भोंक दी। फिर कहा—'इतनी तो बहुत नुकसान करेगी। न जाने कई दिन से आपको क्या हो रहा है ? दूसरो को उपदेश देना सरल है बस।'

'तुम सब जानती हो। लाओ एक चम्मच और डाल दो बस……।' वह बोले।

'क्या जानती हूँ, और क्या नहीं, मुझे अपनी बुद्धि पर ज़रा भी तो भरोसा नहीं रहा अब। हाँ, रात-दिन यही सोचा करती हूँ कि दुनिया कैसे जीने देगी……? मुर्दों को घसीटने भर का ही काम रह गया है जैसे सबको।' प्रतिभा ने सेव तराशते हुए कहा।

'हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ कई दिन से। जिसे देखो, पत्र लिख रहा है तो यही एक बात लेकर, बात करता है तो व्यंग कस कर। दूर-दूर के रिश्तेदारों को पत्र लिखने को भी खूब फुरसत मिली है अब। इसी का उपाय सोच रहा हूँ। इतना तो तुम भी जानती हो कि दुनिया चाहे या न चाहे, पर जिन्हें जीना है वह अवश्य ही जियेंगे, और जीना चाहिये। लोग जीने के लिये न जाने कितने पाप करते हैं और झूठ बोलते है, फिर भी जीते ही हैं। मरते भी है, मरना है ही सबको, पर अपनी इच्छा से कौन मरना पसन्द करता है? हमारी तरह बहुत कम लोग ऐसे होते है, जो जीकर भी मृत्युवत् रहते है। मैं अपनी और तुम्हारी बात नहीं सोचता, दुनिया की ही सोच रहा हूँ। उसे कैसे संतोष हो? कई एक से वायदा भी कर चुका हूँ। मेरे वायदे झूठे नहीं होते। और इसी लिये दावत देने की बात सोची है। चाहे हमें हो या न हो, पर दुनिया को तो इसी की जरूरत है। यहाँ सब काम डंके की चोट पर ही सफल होते हैं प्रतिभा रानी……! तुम्हें कुछ करना न होगा, सब काम होटल-वाला कर देगा। तुम्हें तो केवल उतना ही करना होगा, जितना रोज़ करती हो।' डाक्टर ने स्नेह-पूर्वक युवती से कहा।

'दावत से क्या होता है? किस उद्देश्य को लेकर यह आयोजन करने को ठानी है आपने?' प्रतिभा ने डाक्टर साहब की सहज-गम्भीर आँखों में अपनी आँखें डालते हुए पूछा।

'सब साफ हो जायेगा, यहीन चाहती है दुनिया ? और उद्देश्य, उद्देश्य तो यही है केवल कि जीवन का कोई उद्देश्य होना ही चाहिए, जिसके आधार पर बिना किसी की टीका-टिप्पणी के जीवन कटता चला जाये।' उन्होंने कहा।

'स्पष्ट कीजिये, थोड़ा, साफ शब्दों मे कहिये, पहेली बना कर नहीं।' युवती ने दृढ़ता से कहा।

'साफ तो यही है कि अनिल के पापा की शादी की दावत दी जायगी, लोगों को ···। उसे पापा की ज़रूरत है, मुझे है केवल उसकी ज़रूरत, और बाकी घर-द्वार तो तुम आज भी सँभाल बैठी ही हो न ?' डाक्टर ने शांत भाव से कह दिया।

युवती जैसे किसी असमंजस मे पड़कर बोली—'बड़ा तमाशा-सा कर रहे है आप, कोई क्या कहेगा ? और······और फिर उसके बाद ?'

डाक्टर ने बिलकुल निर्विकार भाव से उत्तर दिया—उसके बाद की बात मैं नही जानता। कई बार कह चुका हूँ कि तुम्हारी इच्छा पर सभी कुछ निर्भर है। मैं तुम्हारे विरुद्ध एक भी शब्द कहने तक का साहस अपने मे नही पाता। इसमे तनिक भी अन्यथा नही होगा। विश्वास न छोड़ो प्रतिभा! मनुष्य-मनुष्य और पशु-पशु है। और तुम कितना जलील बनाना चाहती हो ? निःसन्देह यह केवल तमाशा ही सही, पर शादी-विवाहो मे क्या, मरना, जीना, हँसी और रंज, सभी मे तो तमाशा ही होता है। और तमाशा न हो तभी लोग बकते हैं, तमाशा देखकर सब चुप हो जाते है। यह सारी दुनिया ही एक तमाशा है। जो अस्थिर है, क्षणिक है, सीमित है, वह तमाशा नही तो और क्या है ? अच्छा अम्माँ के बारे मे तुम्हारी क्या राय है ? उन्हें मैं जरूर बुलाना चाहता

हूँ। मै उन्हें स्वयं लेने जाऊँगा। अनेक बाते कहनी-सुननी होगी उनसे। उनके आशीर्वाद से यह तमाशा अन्त तक सफल हो सके, केवल इसलिये उनका आना आवश्यक है।'

प्रतिभा ने यद्यपि इस अद्भुत, और अपार ज्ञान के भंडार पुरुष को मन-ही-मन प्रणाम किया, फिर भी जैसे पिंजरे मे बन्द पत्ती के समान उसकी आत्मा अन्दर-ही-अन्दर छटपटा कर रह गई। डाक्टर के अकाट्य तर्को का उत्तर देना उसकी बुद्धि से परे की बात होगी। उसे डाक्टर पर अटल विश्वास था। स्वयं से भी वह संतुष्ट नहीं थी, पर अनिल! उससे जैसे पार पाना उसके वश की बात नहीं रह गई थी! उससे तो वह बिलकुल ही परास्त हो गई, ऐसा उसने कभी सोचा भी नही था!

डाक्टर साहब ने उसे सचेत करते हुए कहा—'मेरी बुद्धि के ऊपर विश्वास करो प्रतिभा। और माँ के विषय में तो तुमने कुछ भी नही बताया।'

युवती ने अपराधिनी की भाँति डाक्टर की ओर देखते हुए कहा—'उन्हे अवश्य बुला लीजिये। मेरा मन भी लग जायेगा? थोड़ा नाराज़ हो लेगा तो क्या है? थोड़ी भर्त्सना भी कर लेगी तो क्या है? आखिर तो माँ ही है······फिर······फिर भला-बुरा निर्णय करने की बुद्धि उनमें अधिक ही होगी। वह जिसे बुरा समझेंगी, वह तो बुरा होगा ही······। तभी तो नाराज़ होंगी?'

'नहीं, ऐसा मत समझो। माँ को देखकर तुम्हे अवश्य ही अपनी धारणा बदल देनी होगी। वह बड़ी दयामयी और दूरदर्शी है, प्रतिभा! उनके दर्शन मात्र से मन शुद्ध हो जाता है। उनकी बड़ी इच्छा थी कि भाई साहब की शादी जिस लड़की से हो······। पर जाने दो वह पुरानी बात है। यदि तुम-जैसी स्त्री उन्हें मिली होती तो धन्य हो जातीं। नही, सविता-जैसी उद्दंड और उच्छृंखल

नारी की जरूरत थी उन्हे तो, तुम्हारी तुलना तो मैं किसी से भी नही कर सकता प्रतिभा ! अच्छा तो माँ का आना निश्चय हुआ। वह आयेगी जरूर। उन्हे मैं अवश्य लेकर आऊँगा, केवल दिन भर लगेगा बस। फिर वह चाहे जितने दिन रहें। किन्तु यह तो निश्चित है कि वह किसी का जी लगाने के लिये नही रहेगी। ऐसा होता तो काशी जाने की जल्दी ही क्या थी उन्हे ! इतना सब कह कर डाक्टर मोहन ने फलों और मेवे से भरी प्लेटें प्रतिभा के सामने करते हुए कहा—'बातों-बातो में मुझे खिला दिया सब, लो अब तुम खाओ। और खा-पीकर दावत होगी परसों, हाँ परसो रविवार है—उसके पहिले तुम्हे सब सफाई करानी है। समझ गईं न ? एक बात और है, उस समय सैकड़ों आदमियो के बीच, मुझे बेवकूफ न बनवा देना। बाहर चाहे न भी बैठो, पर मुँह लपेट कर चटाई पर न पड़ जाना······ अच्छा···?'

प्रतिभा ने स्वीकृति में सिर झुका दिया, और उसकी आँखों से झर झर आँसू बह चले। युवक ने उसकी पीठ को सहलाते हुए कहा—'पगली कही की, रोने से क्या बनना है ? दुनिया में रहना चाहिये हँसकर, और मरना भी चाहिये हँसते-हँसते। अगर तुम इस वक्त मेरा कलेजा चीर कर देख पातीं, प्रतिभा ! तो देखती कि वहाँ अब शून्य के अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं रह गया है। मै बहुत थकता जा रहा हूँ······। 'कहते हुए डाक्टर की छाती फटने लगी और पल भर पहिले का हँसता हुआ युवक, बच्चो की तरह फूट-फूट कर रोने लगा।

प्रतिभा अपने को सँभाल न सकी, और उसने अपने काँपते हुए हाथो से युवक का माथा थाम कर उसे अपनी धड़कती हुई छाती मे छिपा लिया। डाक्टर को ऐसा लगा, मानो माँ की ममता, बहिन का स्नेह और नारी का प्रेम, सभी कुछ वहाँ अथाह रूप में दबा पड़ा है। उन्हे अब जीवन मे कुछ भी लेना-देना शेष नहीं

है। जैसे समस्त विकार और मन का मैल धुल गया है, और रह गया है केवल कंचन मात्र। यही अनन्त विश्राम है और यही अमर शांति. चिर शांति······।

और ·····और युवती को ऐसा, लगा मानो समस्त संसार को आज उसने अनिल के रूप में पाया है, जैसे अपने अंतःकरण का सब कुछ टूटता-सा अनुभव करते हुए भी, उसने कुछ जोड़ धरा है। महान तृप्ति, सांत्वना और बड़ी साधना के साथ बड़ा भारी दायित्व ग्रहण किया है उसने।

··· ··· ··

दावत का सारा प्रबन्ध बडा शानदार था। प्रत्येक की ज़बान पर प्रशंमा थी। बढ़िया-से-बढ़िया फज़, मिठाई और नमकीन, देशी और विदेशी ढंग की अनेक प्रकार की चीज़े, प्लेटों मे सजा कर रक्खी गई थीं। ऐसी कोई वस्तु न थी, जो न हो, या कम हो। मेजर कासलीवाल की शानदार कोठी के हरे-भरे और पुष्पित उद्यान में बढ़िया-से-बढ़िया शोफे, मेज़ और कुर्सियाँ सजा कर बिछाई गई थीं। हर एक मेज़ पर सुगंधित पुष्पो से भरे फूलदान और हर एक कुर्सी के साथ के गिलासों मे, फूल के आकार से बनाये गये स्वच्छ श्वेत रूमाल सजाए गये थे। उनके मित्रों और प्रशंसकों की आँखें अपरमित उल्लास भरे उन्हें देख रही थीं। वह भी सब के स्वागत मे जैसे अपना हृदय ही विछाये दे रहे थे।

थोड़ी देर तक परस्पर परिचय की क्रिया होती रही। और तभी मिस सविता ने समस्त मंडली पर विष छिड़कते हुए कहा—'मिसेज़ कासलीवाल क्या इस समय भी पर्दे मे छिपी रहेंगी, यह नियम पार्टी के बिलकुल विरुद्ध है।'

और उनके कहने के साथ ही, जैसे सैकड़ों आँखें एक साथ ही इधर-उधर कुछ खोजने लगीं। स्त्रियाँ और पुरुष; बूढ़े और

जवान, सब के हाथ रुक गये। सब सामान ज्यों-का त्यों सामने पड़ा था। जैसे एक साथ ही सब को साँप सूँघ गया। सारा आमोद-प्रमोद पल भर मे फीका पड़ने लगा। तभी डाक्टर कासलीवाल ने खड़े होकर अपने मित्रों को सम्बोधन करते हुए कहा—'बन्धुओं! मेरे कुल की प्रथा के अनुसार, मेरी पूज्य माता जी को इसमें आपत्ति है कि मिसेज़ प्रतिभा इस समय अतिथियो का स्वागत करे। ऐसे अनेक अवसर आयेंगे और अभी थोड़ी देर में कुल-देवता को नमस्कार करने के उपरांत आप देखेंगे कि माँ के साथ मिसेज़ प्रतिभा आप सबको धन्यवाद देने आयेंगी। आप बिलम्ब न करें, इस शुभ कार्य मे सहायक हों।' क्षण भर रुक कर फिर उन्होने कहा—'मैं मिस सविता से भी प्रार्थना करता हूँ कि मेरे कुल की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए वह सहयोग प्रदान करेंगी'।

जब सब लोग खा-पी चुके, तो डाक्टर कासलीवाल ने अतिथियों को बड़े सत्कार के साथ उस बड़े 'ड्राइङ्ग रूम' में लाकर बैठा दिया जिसकी सजावट स्वयं प्रतिभा ने अपनी देख-भाल में कराई थी।

और साथ ही सब ने देखा की असीम रूप के भार से लदी हुई प्रतिभा, बड़े से चाँदी के थाल में सोने-चाँदी के वर्कों में लिपटे हुए पान और इलायची लिए सास के साथ हाल मे उपस्थित हुईं। न कोई साज न शृङ्गार, न पैरो में मेंहदी और न माँग में सिंदूर, माथा भी सूना ही पड़ा था। अंग पर केवल शांतिपुरी श्वच्छ श्वेत साड़ी, और वैसा ही सादा ब्लाउज़, हाथों में केवल दो-दो सोने की चूड़ियाँ पड़ी थीं। पर इतने मे ही उसका रूप फटा सा पड़ रहा था। और उधर फटी जा रही थी माँ की वात्सल्य-परिपूर्ण छाती, उसका यह सूना सुहाग देख-देख कर। बहुत हठ

करने पर भी वह प्रतिभा के अंग पर इस समय एक रंगीन वस्त्र तक नहीं डाल सकी थीं।

प्रतिभा ने पृथ्वी में दृष्टि गड़ाये पान का थाल बीच में ला धरा, और हाथ जोड़ कर नमस्कार किया सबको। साथ ही अनेक आँखे उसके अनिद्य और पवित्र सौंदर्य पर टिकी-की-टिकी रह गईं। अनेक अतिथियों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया और भाति-भाँति के अमूल्य उपहार भेंट किए।

सविता ने थोड़ा व्यंग करते हुए कहा—'तुम्हारा बच्चा कहाँ है जो······मैं उसके लिये यह विलायती गुड्डा लाई थी·····।'

प्रतिभा ने केवल एक तीव्र दृष्टि इस वाचाल लड़की पर डाली, और मेजर कासलीवाल ने एक बार उपेत्ता से उसकी ओर देख कर अपना मुँह फेर लिया। कामलीवाल की माँ ने तुरन्त उत्तर दिया—उसे तो केवल देशी गुड़िया चाहिये, यह तुम वापस लेती जाओ, वह खेल रहाहै······।'

अतिथिगण शुभ कामनाओं सहित विदा हुए। माँ भी काशी जाने को हठ करने लगीं। बहुत विरोध करने पर भी, वह फिर आने का वचन देकर अपना सामान ठीक करने लगीं। जब प्रतिभा और मोहन उनकी चीजें रखने में जुटे थे, तब अनिल उनका बक्स खखोड़ने में व्यस्त था। माँ ने उसके गले में सोने की कंठी डाल दी, और प्रतिभा के गले मे मोतियो का कोमती हार डालते हुए कहा—'जब-जब याद करोगी, यहीं दीखूँगी,घबराना नहीं।'

प्रतिभा ने उनके चरणों में अपना माथा टेक कर कहा—'और चाहे जो समझे कोई, पर आप कुछ अन्यथा न समझें माँ! आश्रय-

हीनों को आश्रय दिया है आपने, आर्शीवाद दीजिये कि मैं अपने धर्म का पालन करती हुई, आपके चरणों मे स्थान पा सकूँ।'

माँ की आँखो में आँसू भर आए, न जाने वह कैसे थे ? उन्होंने कहा—'गृहस्थी में रहकर भी धर्म का पालन हो सकता है बेटी ! अभी तुम्हार उमर ही क्या है ?'

वातावरण कुछ भारी और गम्भीर-सा हो चला। तभी डाक्टर ने माँ से कहा—'तुम्हारे इन आभूषणो मे मेरा कुछ भी साझा नहीं है क्या अम्मा ! कंठी और हार के अलावा मेरे लायक कोई चीज़ हो तो देता जाओ न ? फिर कौन जाने, नाती-पोतो को दे-ले कर कुछ बचे या न भी बचे।'

माँ ने पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'तुझे सारे घर की शोभा दिये जा रही हूँ, यत्न से रखना। संसार मे कंकड़-पत्थरों की कमी नहीं है मोहन ? कमी है तो केवल मणियों की ही।'

पर इस बात का उत्तर जैसे शून्य में खो गया। माँ ने जिज्ञासा-भरी दृष्टि से पुत्र की ओर देखा। और वैसे ही पुत्र ने उत्तर दिया—"अभी तो आपने सुना था कि 'आप कुछ अन्यथा न समझें।' मैं कुछ नहीं जानता कि मैं क्या पा रहा हूँ, और क्या खो रहा हूँ। अब तक तो बहुत-कुछ खो ही चुका हूँ माँ! यहाँ तक कि तुम्हे भी .....?"

माँ का हृदय युवा पुत्र की बात से तिलमला-सा उठा। उन्होने सहसा उन दोनों के हाथ अपने हाथो में लेकर, परस्पर मिलाते हुए कहा—'इसमें अब किसी 'अन्यथा' की गुंजाइस नही है, मैंने सब कुछ देख-सुन लिया है। इसी मे मरने वाले की आत्मा की शान्ति मिलेगी, और इसी से जीवित रहने वालों

की आत्मा को संतोष होगा। गाँठ का धन गँवा कर पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता, बेटी।'

माँ चली गई। सब लोग साथ जाकर उन्हें गाड़ी में चढ़ा आये। पुराना ब्राह्मण गुमाश्ता भी साथ गया। जब माँ के चरण छूकर तीनों ने उन्हें नमस्कार किया, तो सहसा वृद्धा की आँखें बरस पड़ीं। फिर सभी रो पड़े। प्रतिभा मन पर अतुल भार धरे, सोचती चली आई—कितने सहृदय और बुद्धिमान हैं ये लोग!

घर आकर फिर सब ज्यों-का-त्यों-सूना-सा अनुभव होने लगा। डोक्टर साहब ने अपने थके-से मन और शरीर को पलंग पर डालते हुए प्रतिभा से कहा—'मन नहीं लग रहा……।'

'कैसे लगाऊँ मन? माँ और दो-चार दिन रह जाती तो……?' युवती ने युवक की पलंग की पाटी पर हाथ टेक कर वहीं चटाई पर बैठते हुए कहा।

और उसी समय ठीक अब से दो वर्ष पहिले की एक दुखद घटना, शायद उन दोनों को ही याद हो आई, वह दोनों एक साथ ही सिसक-सिसक कर रोने लगे।

डाक्टर साहब ने शायद अनजाने ही युवती का हाथ अपने हाथ में थाम कर कहा—'उस दिन ठीक इसी तरह उसने तुम्हारा हाथ अपने हाथ में थाम कर, मुझे थमा देने की चेष्टा की थी प्रतिभा! और आज……? तुम मेरी ओर से आज भी कुछ अन्यथा न समझ लेना प्रतिभा रानी? तुम जानो, और माँ जाने, मेरा मन तो ऐसे ही लग जायेगा। अनिल कहाँ है? वह ड्राइवर के पास होगा। उसे बुलाओ। उसी से मन लगाऊँगा अब……।'

युवती जड़वत् बैठी रही, और शायद स्वतः ही उसका सिर पलंग की पट्टी पर जा टिका और डाक्टर कासलीवाल की

उङ्गलियाँ अनायास ही उसके कुँचित केशों पर फिरने लगीं, मानो वह दोनों ही उस समय एक आधार की खोज में थे।

कुछ देर बाद, डाक्टर ने ही मौन भंग करते हुए कहा—'प्रतिभा! मनुष्य के जीवन का कोई भरोसा नहीं। फिर भी वह जितने दिन जीता है, उसे एक लक्ष्य, एक आधार की आवश्यकता सदा महसूस होती रहती है। हम दोनों के जीवन का लक्ष्य है अनिल, उसे मनुष्य बनाना····· फिर अधीर होने का कारण?'

युवती ने अपनी गीली और कमल-जैसी विकसित आँखें, युवक के मुँह पर स्थिर करते हुए उत्तर दिया—'मैंने आज तक देवता का बरदान अभिशाप के रूप में ही पाया है। अब यह वरदान-वरदान होकर ही मिले बस······!'

डाक्टर ने उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में थामते हुए कहा—'यही बरदान मुझे भी दे डालो देवि······!'

और तभी अनिल मुँह और हाथ-पैरों पर बहुत-सा दही-भात लपेटे हुए, बगल में बिल्ली का बच्चा दबाये, उन दोनों के सामने आकर कहने लगा—'ममी! पापा! देखिये, ये नीना की पूसी मुझे खाना भी नहीं खाने देती अब······?'

सहसा सचेत होकर उन दोनों ने बालक की ओर जैसे ही देखा वसे ही वे उसका यह रूप देख कर खिलखिला कर हँस पड़े। सारा कक्ष वात्सल्यपूर्ण प्रेम की अबाध धारा से भर गया।

—:०:—

डा० सुशीला वर्मा एम० एड०

सुशीला जी का जन्म गाज़ीपुर मे २६ अक्टूबर सन् १६१८ ई० को एक सुशिक्षित भद्र परिवार में हुआ। आपके पिता स्वर्गीय श्री श्यामा प्रसाद जी गवर्नमेण्ट प्लीडर थे। आपके तीन भाई है :—प्रथम श्री सुरेन्द्र नाथ जी वर्मा प्रयाग मे एडवोकेट हैं, द्वितीय भाई डाक्टर देवेन्द्र नाथ वर्मा एम० बी० बी० यस० गाज़ीपुर मे रहते है तथा तीसरे भाई श्री नरेन्द्रनाथ वर्मा ऐण्टी स्मग्लिग आफिसर के पद पर मिर्जापुर मे काम करते है। सुशीला जी की शिक्षा-दीक्षा पर बाल्यावस्था से ही विशेष ध्यान दिया गया। पढ़ने में आपकी रुचि सर्वदा संतोष-जनक रही। शनैः-शनैः विभिन्न कक्षायें पास करती हुई आप ने एम० एड० की उच्च परीक्षा उत्तीर्ण की। आपका विवाह ३० अप्रैल सन् १६३६ ई० को बाबू जगदीश नारायण जी बी० एस० सी०, एल० एल० बी० के साथ सम्पन्न हुआ। सम्प्रति सुशीला जी कायस्थ पाठशाला ट्रेनिग कालेज प्रयाग में मनोविज्ञान विषय की लेक्चरार है। आप की दो सन्तानो मे पुत्री शोभा वर्मा की अवस्था १५ वर्ष तथा पुत्र ललितकुमार की अवस्था १३ वर्ष है। आपका दाम्पत्य-जीवन सुख एवं शान्ति-पूर्ण है।

सुशीला जी मे कहानी लिखने की प्रवृत्ति उच्च कक्षाओ में पहुँच कर उत्पन्न हुई। शनैः-शनैः आपने अभ्यास के द्वारा इस क्षेत्र मे यथेष्ट सफलता भी प्राप्त कर ली है। फिर भी अभी आपको कहानी-कला का बहुत-कुछ सीखना है। भाषा की दृष्टि से वह अवश्य परिपक्व प्रतीत होती है; किन्तु मानव-जीवन के

अनुभव एवं विवेचन के क्षेत्र मे अभी आपको यथेष्ट प्रगति करनी है। कहने का तात्पर्य यह नही है कि भाषा के क्षेत्र में अब आप अपनी योग्यता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है तथा मानव-जीवन के अनुभव के विषय मे बिल्कुल पीछे है। साहित्यकार विशेषकर गल्प का लेखक काफी समय तक अपनी साहित्यिक कला मे विकास करता जाता है। ज्यो-ज्यो उसकी जीवन-अनुभूति विशद एवं बहुमुखी होती जाती है तथा भाषा-शैली अधिक परिष्कृत एवं अर्थ-व्यंजक होती जाती है, त्यो-त्यों वह अपनी सृजन-शक्ति का विकास करता जाता है। प्रौढ़ावस्था के पश्चात् प्रायः उसकी कलात्मक शक्ति क्षीण होने लगती है। उसके बाद उसका मस्तिष्क पहले की तरह कार्य नहीं कर पाता तथा जीवन एवं जगत् के प्रति कुतूहल, जिज्ञासा या सीखने अथवा जानने की उसकी प्रवृत्ति क्षीण पड़ने लगती है। शेक्सपियर, डिकेन्स, फील्डिग, कालिदास, गोस्वामी तुलसीदास, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पन्त, निराला और प्रसाद आदि सभी के विषय मे यह निर्णय-न्यूनाधिक मात्रा मे लागू होता है।

५० वर्ष के लगभग की अवस्था जीवन-अनुभूतियो, विचार एवं भाषा-प्रौढ़ता के लिये सर्वश्रेष्ठ होती है। कल्पना का वेग ३०-३५ वर्ष की अवस्था तक प्रायः भाव-गाम्भीर्य एवं स्थिरता से अधिक होता है। गल्पकार निबन्ध-लेखक, महाकाव्यकार आदि के लिये जीवन की विविध अनुभूतियों का होना परमावश्यक होता है। तुलसी का रामचरित-मानस, इन्हीं विशद अनुभूतियो या भावो की गहराई के कारण इतनी अनुपम कृति बन सका, अर्थ-शिथिल द्रुत गामी कल्पना के बल पर नही। अस्तु, सुशीला जी के लिये भविष्य मे अभी कला-विकास के लिये यथेष्ट समय एवं अवसर है। अब भी आपकी कहानी-कला भाषा तथा भाव, कथावस्तु एवं रचना की दृष्टि से उत्तरोत्तर सम्पन्न ही होती जा रही है।

सुशीला जी की कहानियों में वर्णनात्मकता अधिक मिलती है, जिससे आपकी निरीक्षण-शक्ति का यथेष्ट परिचय मिलता है। किन्तु आप व्यर्थ की बातें भर कर कभी अपनी कहानी को नीरस एवं बोझिल नहीं बनातीं। कहानी की रचना आप किसी-न-किसी उद्देश्य को लेकर करती हैं, किन्तु यह उद्देश्य शिक्षावादिता का रूप नहीं धारण करने पाता। आपकी कहानियों में उसका उचित कलात्मक निर्वाह होता है। जिन चीजों का वर्णन होता है वे प्रायः इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त में होते हैं। अस्तु, वे एक प्रकार से उद्देश्य की प्राण-शक्ति से अनुप्राणित होने के कारण पाठक को सार्थक प्रतीत होते हैं। इसी से वह उनकी बहुलता पर खीझ या ऊब का अनुभव नहीं करता। सच तो यह है कि आपकी कहानियों में उद्देश्यवादिता इतनी तगड़ी हो जाती है कि कहानी उसी के पीछे दौड़ती-सी प्रतीत होती है।

आपकी कहानियों में प्रायः सम्पूर्णता का अभाव सा पाया जाता है। एक या अधिक-से-अधिक दो पात्र चरित्र-चित्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो पाते हैं, शेष पात्र नाम-लेवा मात्र होते हैं। आपकी कहानियों में ऐसे कई पात्र आ जाते हैं जो कहानी की पूर्णता के लिये आवश्यक होते हैं न कि स्वयं अपने व्यक्तित्व अथवा मानव-जीवन से सम्बन्धित किसी चिर सत्य के प्रदर्शन के लिये। वर्णन की धुन से परिपूर्ण होने के कारण कहानी अविराम तीव्रता से आगे बढ़ती चलती है। ऐसे स्थल अपेक्षा-कृत कम होते है, जहाँ लेखिका सुस्थिरचित्त हो पात्र के चरित्र का निरूपण करे या जीवन अथवा जगत् के किसी सामान्य अथवा विशेष पहलू पर अपने सैद्धान्तिक विचार प्रकट करे, किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि आपकी कहानियाँ सामान्य सिद्धान्त-गवेषणा अथवा चिर सत्य-प्रदर्शन आदि से शून्य हैं।

वास्तव मे आप अपने बहुल वर्णनो के बीच-बीच मे प्रायः यथेष्ट वर्णन कर चुकने के बाद सामान्य सत्य का कथन करती हैं। वर्णन स्वयं इसी सामान्य सत्य की ओर इंगित करते हैं। उनको पढ़ते हुए पाठक आपके मन्तव्य का आभास पाने लगता है, तब तक आप स्वयं उसको चर्चा करने लगती है। यदि आप प्रत्यक्ष रूप से अपने उद्देश्य का प्रस्फुटन न करें तो भी पाठक उन्हें आपकी कहानी में खोज ही निकालेगा। उदाहरणार्थ 'शिव कामना' नामक कहानी मे एक लड़की अचानक शिव जी से शिव के सदृश वर पाने की कामना कर बैठती है, बाद मे उसे अपनी इस अचानक उत्पन्न और क्षण भर बाद विलीन होने वाली इच्छा पर आश्चर्य होता तथा हँसी आती है। उसे सचमुच शिव-जैसा ही वर मिलता है जो काफ़ी शिक्षित है, किन्तु रुपये-पैसे, समाज-उत्सव, नाच-रंग आदि दौड़-धूप से बिल्कुल उदासीन रह कर अपने मे ही मस्त रहता है। वह स्त्री काफ़ी कुढ़ती और चिन्तित रहती है।

एक दिन मस्त मौला पति महोदय उसे बारी-बारी से इंजीनियर, डाक्टर, वकील तथा विश्व-विद्यालय के अध्यापक के पास ले जाते हैं। सर्वत्र वार्तालाप आदि से बधू जी को यही ज्ञात हुआ कि रुपया-पैसा पैदा करने के लिये पूरा पाखण्ड, ढोंग और बेईमानी करनी पड़ती है। इसके बाद वह अपने पति के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखने लगी। संक्षेप में उसे जीवन एवं समाज मे व्याप्त पाखण्ड, दिखावा, छल-प्रपंच, धोखा, विश्वासघात आदि का ज्ञान हो गया और उसकी समझ में आ गया कि इस भड़कीली किन्तु खोखली दुनिया से दूर रहने वाले उसके पति सचमुच पूज्य, श्लाघ्य एवं श्रद्धेय हैं; वह उनकी पैनी बुद्धि, प्रकृति एवं जीवन के अन्तराल को चीर कर शाश्वत सत्य का आलिंगन कर चुकी है और इसी

लिये उसके सन्देहों का भी निवारण हो चुका है, अब उसे किसी बात की चिन्ता नहीं है।

इस कहानी मे पाठक दो-एक आपत्तियाँ कर सकता है। आखिर लडकी के माता-पिता उसका विवाह ऐसे व्यक्ति के साथ क्यो करते है, जो जीवन तथा जगत् से बिल्कुल उदासीन, आत्म-तल्लीन रहने के साथ जीविका के निमित्त धनोपार्जन से भी विमुख दिखाई पडता है। हो सकता है, उस समय वर महोदय किसी उच्च कक्षा के विद्यार्थी रहे हों, जिससे जीवन और जगत् के प्रति उनकी इस उदासीनता का समझना असम्भव रहा हो, किन्तु लेखिका स्वयं इस प्रश्न पर कोई प्रकाश नहीं डालती। वह केवल इतना कह कर संतोष कर लेती है कि लड़की को ठीक शिव-जैसा ही वर मिला। उसका विवाह कर उसके माता-पिता सुख की नींद सोने लगे। इसके बाद आप शिव-तुल्य वर महोदय की तुलना कैलाशपुरी-निवासी शिव जी के साथ करना प्रारम्भ कर देती हैं।

दूसरी बात यह कि ऐसे मनुष्य की जीविका कैसे चल सकती है, जो धनोपार्जन से बिलकुल उदासीन है। लेखिका इस समस्या पर भी ध्यान नहीं देती। उसे एक तथ्य प्रकट करना था, यदि कहानी मे कुछ असम्भाव्यता आ गई तो उसको इसकी पर्वाह नहीं।

एकाध स्थल पर शिथिलता छोड़ कर आपकी कहानियों की वर्णन की गति पूर्ण रूप से जुड़ी हुई चलती है, भाव तथा विचार-धारा विशृंखलित नहीं होने पाती। वर्णन-प्रधान होने से वे किसी नदी के समान प्रतीत होती हैं जिसमें कहीं धारा तीव्र और कहीं मन्द पड़ जाती है किन्तु गति अनवरत रहती है। बीच-बीच में पात्रों के

चरित्र का स्पष्टीकरण होता चलता है या किसी सामाजिक-पारिवारिक समस्या का निरूपण सामने आता है। सुशीला जी की कहानियो मे मध्यम तथा निम्न वर्ग की पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं का विशेष रूप से निरूपण एवं स्पष्टीकरण मिलता है। पारिवारिक स्थिति, क्रिया-व्यापार तथा घटना आदि के विषय में आपका ज्ञान इतना सूक्ष्म एव विशद है कि आप अपने वर्णनो द्वारा पारिवारिक स्थिति, विशेषकर घर के भीतर के वातावरण का पूर्ण सजीव चित्र हमारी आँखो के सामने प्रस्तुत कर देती हैं। घर के भीतर की चहल-पहल, नौकर को एक साथ लगभग आधे दर्जन व्यक्तियो से विभिन्न कार्यों को करने का आदेश, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों, विशेषकर स्त्रियों की कृपणता, सन्तान-प्रेम, छुआछूत, अविश्वास, पारस्परिक डाह, अधिक वार्तालाप की प्रवृत्ति, धर्म-विश्वास, नैतिक भय, हृदय-दुर्बलता, नौकर से अधिकाधिक काम लेने की प्रवृत्ति आदि का चित्रण काफी स्पष्टता के साथ आपकी रचनाओं में मिलता है।

'कलाकन्द' में हम घर के भीतर की स्थिति का चित्र विशेष सफल रूप मे पाते है। मालकिन स्वामी-भक्त नौकर से अधिकतम काम लेने का प्रयत्न करती है। सर्वदा उसके देर से आने, या अधिक समय लगा देने की शिकायत करती और डॉटती-झिडकती रहती हैं। उसके लाये हुए सामान को पुनः तौलती है और नौकर भी ऐसा कि जिसने उक्त परिवार की सेवा मे अपना सारा जीवन व्यतीत कर दिया। प्रातः काल से १० बजे रात तक वह मशीन की तरह काम करता, भूख-प्यास झेलता और चतुराई तथा सफाई से काम करने पर भी झिड़कियाँ पाता है। महँगी आने पर अन्य सभी नौकर अधिक रुपया पाने वाले कामों पर चले गये, किन्तु यह नमक खाने के नाते चिपका हुआ है और बदले

में पाता क्या है:— सूखी रोटियाँ, थोड़ी सी दाल और केवल ४ रु० मासिक वेतन। वास्तविकता का इससे बढ़कर सुन्दर चित्र पाना कठिन ही समझना चाहिये। अब भी ऐसे नौकर वर्तमान है। लेखिका ने उसके भावों एवं विचारों का अत्यंत सुन्दर विश्लेषण किया है।

आपकी वर्णन-प्रणाली में गद्यात्मकता अधिक मिलती है। उसमें हम विशेष भावुकता या तीव्र उड़ान भरने वाली कल्पना का अभाव पाते है। यह वर्णन-प्रणाली प्राचीन गद्यात्मक कथा-शैली से मिलती-जुलती है, जिसमें घटनाओं की प्रचुरता तथा शृंखला-बद्ध वर्णनात्मकता की प्रधानता रहती थी; किन्तु आपको अपने वर्ण्य-विषय का ज्ञान भली भाँति रहता है। आपके वर्णनों में वे ही बाते आती हैं जो पात्रों के भाव संघटन एवं प्रवृत्तियों आदि से सम्बन्ध रखती हैं। इस प्रकार वे पात्रों के भावों का ही स्पष्टी-करण करती है। पात्रों की उन क्रियाओं मे उनके भाव झाँकते हुए दिखाई पड़ते है। इस प्रकार घर की मालकिन जी का नौकर द्वारा लाया हुआ सामान तौलना, उसके प्रति उनके तुच्छ सन्देह-भाव का तथा समय के पहले भी आ जाने या काम कर डालने पर झिड़कियाँ देना या देरी का आरोप लगाना, उससे अधिक से अधिक असीमित रूप तक काम लेने की प्रवृत्ति का परिचायक है। इसी प्रकार नई आई हुई महराजिन तथा नौकर के कार्य एवं वार्तालाप भी उनके चरित्रों की ओर संकेत करते हैं। शेष तीन-चार पात्र कहानी की पूर्ति-मात्र के लिये आये हैं। वे केन्द्रीय भाव या उद्देश्य की पूर्ति अपने व्यवहार 'हाँ' या 'नहीं' आदि के द्वारा करते और पाठक के स्मृति-पटल से आपने-आप ही मिट जाते हैं।

चरित्र-निर्देशक कार्यों के अतिरिक्त पात्र अन्य कार्य भी करते

हैं जो उनके चरित्र के द्योतक न होकर या तो चरित्र-निर्देशक कार्यों के वर्णन के लिये पृष्ठ भूमि के रूप में प्रयुक्त होते या कहानी की अन्य प्रकार की आवश्यकता पूरी करते हैं। ऐसे कार्यों मे हम नौकर का विभिन्न वस्तुओ को खरीदने के लिये बाज़ार आदि जाने तथा मालकिन के भोजन आदि बनाने को ले सकते हैं। पाठक के लिये विशेष महत्व चरित्र-निर्देशक कार्यों का होता है, जिनके भीतर से वह पात्र की विविध भाव एवं प्रवृत्ति-शीला मानसिक जगत् का दर्शन करता है।

सुशीला जी की वर्णन-प्रणाली सरल, प्रवाहपूर्ण, एवं स्पष्ट होती है। उनमे हमें विशेष गम्भीरता या काव्यात्मक भावुकता तथा तज्जन्य गूढ़ता के दर्शन नहीं होते। सामान्य दैनिक जीवन तथा संसार के सामान्य प्राणी आपकी कहानियों के पात्र होते हैं, जिनसे होकर हम एक विशिष्ट समाज या वर्ग की विचार-धारा तथा वाह्य दशा का परिचय पाते हैं। अस्तु, आपकी कृतियों से ऐसा प्रतीत होता है मानों समय शनैः-शनैः बीतता चला जा रहा है। आप कहानियों की कथावस्तु जीवन की किसी विशेष गम्भीर, भयानक, हास्यपूर्ण अथवा मार्मिक घटना का चुनाव नहीं करती हैं जो अपने-आप पाठक के चित्त को आकर्षित एवं प्रभावित कर सके। यों कहानियो में आई हुई सामान्य दैनिक घटनाओं में भाव या मार्मिकता की दृष्टि से अन्तर देखा जा सकता है। कोई घटना पात्र को अधिक प्रभावित करती है तो कोई कम। उदाहरणार्थ नित्य-प्रति मालकिन के पक्षपातों को सहने वाले वृद्ध नौकर का अपनी अपेक्षा महराजिन का अधिक आदर-सत्कार तथा उसके हाथ में कलाकन्द और अपने लिये केवल झिड़कियाँ देख कर दशाब्दियों से सोया हुआ आत्म सम्मान जागृत हो उठता है और वह महराजिन से बिना पूछे उसका गंगाजल से

भरा लोटा लेकर अपनी सूखी रोटियाँ खाने चला जाता है और महराजिन पानी के अभाव में छटपटाती हुई किसी तरह ठूँस-ठूँस कर कलाकन्द गले के नीचे उतारती हैं।

यहाँ लेखिका ने एक सरल हास्य का आरोप किया है जो कठोरता या भयानकता से बिल्कुल दूर है। पाठक का चित्त तो वास्तव में मालकिन से प्रतिशोध लेना चाहता है। उसे हास्य का पात्र बनाकर पाठक को अधिक आत्म संतोष प्रदान किया जा सकता था।

सुशीला जी ने समाज के उस दलित वर्ग का बाह्य एवं आन्तरिक चित्र सफलता के साथ खींचा है, जो इस मशीन-युग में सचमुच मशीन बनकर दूसरों की सेवा कर रहा है और इस बीसवीं शताब्दी में भी अत्याचार सह रहा है। उसकी आत्मा कुंठित हो चुकी है। दिन-रात दौड़-दौड़कर डॉट-फटकार, आदि सहते हुए उसके विचार बिल्कुल गुलामों-जैसे हो गये हैं। देश का विधान लाख व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात करे किन्तु शताब्दियों से पीड़ित इस वर्ग के अन्तस में तो परतन्त्रता, परसेवा, अपने प्रति क्षुद्रता आदि की भावनायें ही भरी हुई हैं। आपकी कहानियाँ मनुष्य-जीवन के इस उत्पीड़न, क्रमिक सड़ाव-गलाव तथा अपमान की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती हैं। इस दृष्टि से हम आपको प्रगतिशील कलाकारों में भी स्थान दे सकते हैं किन्तु आप में क्रान्ति की चिनगारियाँ नहीं हैं यदि कुछ है भी तो उनका प्रयोग आप शीघ्रता से नहीं करना चाहतीं।

—::०::—

शिव-कामना

'हे मंगल मय शिव, मैं तुम-सा ही पति पाऊँ' वाक्य समाप्त होते-न-होते सुमुखि ने अकचका कर आँखे खोल दीं. वही नीरव शान्ति, वही अज्ञेय सुख की अनुभूति, मन और बुद्धि के तर्क का स्थान नहीं था वह मन्दिर। शिव के प्रति अपार श्रद्धा लिये वह मन्दिर से बाहर आई।

उसे आश्चर्य था अपने अन्तःकरण की ध्वनि पर। वह सोचने लगी, 'हे भगवन् ? क्या यह मेरी ही विनती थी। ऐसी कल्पना तो मैंने कभी स्वप्न मे भी नहीं की थी, न जाने हृदय के किस कोने से उस समय ऐसी अभिलाषा तड़ित-वेग से उठी और वहीं विलीन हो गई।' उसे संतोष था कि उसकी प्रार्थना मूक थी—कोई जान न पाया अन्यथा वह सब के बीच कितनी हास्य की पात्री होती, उसने स्वयं अनुभव किया—अब उसके मन की गति स्वाभाविक थी—अब फिर उसके हृदय मे पति पाने की कोई इच्छा नहीं थी।

मेघ को आकाशाछन्न देख कर अनुमान हो जाता है कि बिजली चमकने वाली है। पर सुमुखि के अन्तः करण मे ऐसी भावनायें उठेंगी, इसका किसी को तो क्या सुमुखि को स्वयं भी विश्वास न था।

सुमुखि स्वतंन्त्र विचार वाली लड़की थी। बुद्धि तीव्र थी या नहीं, इसका तो अनुमान नही, पर थी वह मननशीला तथा

अनुभव शीला—बचपन में ही उसकी अनुभवी दृष्टि ने सामाजिक कुरीतियो को भाँप लिया था। स्त्रियो के पतन का कारण वह पुरुषों को ही समझा करती थीं। उसे दुख होता, तथा क्रोध आता समाज को उन रीतियो पर—जहाँ पहिले तो स्त्री-जाति को अपंग बनाया जाता उनकी उचित शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध न करके, फिर उनके ऊपर दहेज़ रूपी टैक्स लगा कर जो अत्याचार किया जाता वह सुमुखि को असहनीय था। सुमुखि ने मन में ही नहीं पर ज़ोर-शोर से एलान के साथ यह प्रण किया था कि वह आजन्म अविवाहिता रह कर स्त्री जाति का उद्धार तथा कल्याण करेगी।

उसी सुमुखि ने उस निर्जन-स्थान में गंगा के तट से कुछ दूरी पर तपस्विनी-सी, उस टूटे शिव के मन्दिर में ताजे गेंदे और बेले के फूलों के ढेर के बीच में झाँकते हुए एक पत्थर की बटिया के सामने श्रद्धा से सिर नवा कर मन-ही-मन वर माँगा—वह वर भी न स्त्री-जाति के कल्याण के लिये और न स्वार्थी समाज के उद्धार तथा सद्‌बुद्धि के लिये। वर माँगा 'पति' के लिये और वह भी शिव-सरीखा। न राम सा और न कृष्ण सा, जिनकी महिमा गा-गा कर तुलसी और सूर अमरत्व पा गये हैं। दीवार पर टँगे शिव की विचित्र वेष-भूषा देख कर तो वह हँसते-हँसते लेट गई। ऐसे शिव के लिये कामना करना निरा पागलपन नहीं तो क्या है? मन-ही-मन सुमुखि खूब हँसी। इस मूर्ति-पूजा की ओर अचानक श्रद्धा कैसी? और यह अद्‌भुत-सा वरदान कैसा? मानसिक प्रलाप के क्षणिक आवेग को वह शीघ्र ही पूर्णतया भूल कर अपने दैनिक कार्यों में लग गई।

समय जाते देर नहीं लगती। परिस्थितियों के वश सुमुखि को भी विवाह-मंडप मे जाना ही पड़ा। माता-पिता ने बुढ़ापे मे सुमुखि

के हाथ पीले कर संतोष की साँस ली। अब उन्हे मृत्यु का भय न था।

पति से प्रथम भेंट के अवसर पर ही उसने जान लिया कि पति तो साक्षात् शिव ही नही किन्तु सवा सोलह आने शिव के अनुरूप है। पार्वती के शिव चाहे जैसा रूप रखते हो पर वह रहते थे कैलाश पुरी में--सभ्य देवताओ के समूह से बडी दूर--वहाँ चाहे व साँप लपेटें या बैल की सवारी करें, कोई कुछ कहने वाला न था, परन्तु सुमुखि के शिव रहते थे सभ्य कहे जाने वालों के बीच। पार्वती का कष्ट ही क्या था ? कैलाशपुरी-सा मनोरम स्थान था, शिव न सही शिव के गण पार्वती को किसी बात का अभाव तो न होने देते—आज्ञा पाते ही वे इन्द्र सहित इन्द्रपुरी को कैलाश पर उड़ा लाते--पर बेचारी सुमुखि को तो हर प्रकार का अभाव ही था--यथार्थ जीवन का कठोर सत्य सामने था। न आगे बढ़ने की हिम्मत थी न पीछे लौटने का दुःसाहस। आँखों मे आत्माभिमान आँसू बन कर छलछला आया। सोचा था स्त्री-सुधार, समाज-सुधार और न जाने कौन-कौन से सुधार पर यहाँ तो अपना ही उबारना कठिन था। विवाह के लिये तो उसने सोचा भी न था; फिर यदि विवाह भी तो क्या ऐसा ? सुमुखि प्रायः पति के सम्मुख अपनी सहेलियों के उच्च पदासीन पतियों का जिक्र करती पर शिव को महत्वाकांक्षाओं से क्या तात्पर्य ? उनके ऐश्वर्य तथा वैभव से सुमुखि का शिव सदा उदासीन रहता। कभी इन बातों पर विचार करने का भी उसने प्रयत्न नहीं किया। सुमुखि मन-ही-मन उदास रहती पर संसार की सभी वस्तुओं से उदासीन रहनेवाले बेचारे शिव उसकी उदासी किस प्रकार देखते ?

दिन व्यतीत होते गये, सुमुखि के शिव में कोई अन्तर न

आया पर आश्चर्य कि अब उदास रहने वाली सुमुखि उदासीन शिव में एक विचित्र आर्कषण का अनुभव करने लगी थी। वैभव का अभाव, जो सुमुखि की उदासी का मुख्य कारण था, उसी वैभव से सुमुखि को अरुचि होने लगी। माँ के वैभव-शाली घर में जा कर उसका जी शीघ्र ही उचाट हो जाता, और शिव का अभाव उसे खटकता, वह शीघ्र ही अपना वैभव-हीन कुटिया में लौट आती।

पार्वती के मन-बहलाव के लिये कैलाश पुरी के शिव प्रायः सैर-सपाटे को निकलते और उसी दिन किसी-न-किसी दुखिया का भला हो कर ही रहता। सुमुखि के शिव को भी सैर-सपाटे का बड़ा शौक था और वह प्रायः सुमुखि को भी साथ ले जाया करता। दुखियों का तो आधुनिक शिव क्या उपकार कर पाता पर हाँ, बेचारी सुमुखि का दुःख कुछ अवश्य दूर हो जाता। एक दिन शिव ने सुमुखि के साथ लम्बी यात्रा की ठानी।

सर्व प्रथम अपने मित्र एक इंजीनियर के यहाँ पहुँचे। उनका लकदक महल, फर्नीचर तथा ऐश्वर्य के अन्य सामान देखकर बेचारी सुमुखि तो ठिठक कर बाहर ही खड़ी रह गई। उसे आशंका थी कि कमरे में उसके पैर धरने से ही वहाँ के फर्नीचर कहीं मैले न हो जायँ। मन-ही-मन शिव की कुबुद्धि तथा अपनी दुर्दशा पर रो पड़ी। इस शिव के साथ तो हमेशा ही प्राण संकट मे रहते हैं।

शिव की ओर आँख उठाई तो देखा कि वह तो पूरे सोफे पर पैर फैलाये बैठा है। उसे इंजीनियर के बढ़िया फरनीचर का जरा भी मोह न था। ऐसी वस्तुओं का तो वह कभी भी मूल्य न आँकता था, सुमुखि से आँख मिलते ही चट बोल उठा। 'आ जाओ तुम भी, खड़ी क्यो हो?' इतने में इंजीनियर और उनकी पत्नी ने सुमुखि को

आदर से बिठाया। बात तो कुछ शुरू करनी ही थी। अटकते-अटकते सुमुखि ने कहा, "हम लोगो ने आ कर आप का अमूल्य समय नष्ट किया, क्या कर रहीं थां—?

"अजी, कुछ न पूछिये इन नौकरों का हाल, आज-कल तो ये सर पर चढ़ गये है। आज महराज की ही शैतानी देखिये, घर पर तो मेहमान आये हैं और यह अपना रोना ले कर आ गया कि अभी छुट्टी दे दीजिये, घर से समाचार आया है कि दामाद का खून हो गया।" इंजीनियर की पत्नी ने उत्तर दिया।

खून का नाम सुन कर तो सुमुखि का खून ही जम गया। बोली,—"कैसे खून हुआ? क्या छूटा पर गया वह बेचारा?"

"अजी कैसा खून? सब नकल हैं—और है छुट्टी माँगने का तरीका, मैं इसको छुट्टी दूँगी? आप ही सोचिये, घर पर मेहमान जो आये हैं।" इजीनियर की पत्नी ने कहा।

सुमुखि ठहरी शिव की पत्नी, इन वैभवशीला गृहणियों को सम्मति ही क्या दे? मन की सारी घृणा दबा कर बोली, "जी हाँ, आप ठीक कहती है।"

शिव की आँखो मे एक चमक आ गई। बोला, चलो सुमुखि! अभी दूसरी जगह भी तो चलना हैं। इंजीनियर और उनकी पत्नी के आग्रह करने पर भी दोनो उठ गये।

अब शिव शहर के सब से बड़े डाक्टर अरुण के द्वार पर खड़ा था। शिव को देखकर डाक्टर ने लपक कर उससे हाथ मिलाया। शिव के पूछने पर कि सीज़न का क्या हाल है, डाक्टर ने बताया कि जब तक शहर में झक्की अमीर रहेंगे, तब तक डाक्टरों को किसी बात की

कमी नहीं। अमीरों के निरोग रहने पर भी यदि आप उन्हे निरोग कहेंगे तो चल चुकी आप की डाक्टरी। हाथ-पर-हाथ रक्खे मक्खी मारिये। यदि आप विख्यात डाक्टर बनना चाहें तो अन्धाधुन्ध इन्जेक्शन और टानिक सजेस्ट कीजिए-पौ बारह-हॉ, यदि और प्रसिद्धि प्राप्त करनी हो तो कुछ एलेक्ट्रिक और रेडियम के यन्त्र मॅगा लीजिये। भले-चंगों को अच्छा कीजिये और यश लूटिये। जो सचमुच रोगी है, उनके पास पैसा ही कहॉ जो वे आप के पास आवें ?

सुमुखि ऑख फाड़े, जैसे कोई भूत देख रही हो, डाक्टर की बाते सुनती रही, पर शिव ने आगे बढ़ कर डाक्टर की पीठ ठोक कर उसे शाबाशी दी और आगे बढ़ा।

अब दोनो वकील साहब के घर के करीब आ गये थे। वकील साहब भी फाटक पर ही टहलते मिल गये। शायद कोई मुकद्मा हार कर बड़बड़ा रहे थे जज के ऊपर। 'आज-कल बस रुपया लेकर सब मुकद्मा बिगाड़ देते हैं। इतनी लम्बी-लम्बी तनख्वाह पाते हैं पर बिना ऊपर से लिये कुछ चलता ही नहीं। हम लोगों की तो रोटी ही छीन लेगें इधर से ये घूमखोर और उधर से वह पंचायत के पंच। अब तक जो कर लिया सो कर लिया, अब क्या रक्खा है इस पेशे में ?'

शिव ने शीघ्र ही वकील साहब से जान छुड़ाई और अब वह पहुँचा युनिवर्सिटी के बड़े भारी पंडित के घर। घर क्या था आज कल के शब्दों मे बङ्गला था। लम्बा-चौड़ा-प्राकृतिक तथा कृत्रिम, दोनो ही रूपों से सजा हुआ। शिव को देखते ही बोल उठे, "ओह, बहुत दिनो बाद दिखाई पड़े। कहो, अच्छे हो न ?"

"धन्यवाद डाकटर साहब, सोचा था कि आप अध्यापन तथा अध्ययन मे व्यस्त होगे। समय का तो मूल्यांकन करना ही पड़ता है; इसीलिये नही आया"-डाक्टर साहब खिलखिला कर हँस पड़े। "रहे शिव बौड़म ही—अरे मैं क्या नया पढ़ाने वाला हूँ—अरे भाई, यूनिवर्सिटी की नौकरी का भी क्या पूछना ? छः महीने छुट्टी और छः महीने पढ़ाना—सिर्फ दो घंटे के लिये जाना पडता है—जी चाहे तो पढ़ाओ और नहीं तो क्लास छोड़ दो—लड़के तो क्लास छोड़ने से बड़े ही प्रसन्न होते हैं—Popular बनने का सब से बढ़िया तरीका—हाँ समय का सदुपयोग कुछ किताबे वगैरह लिखकर कर अवश्य लेता हूँ—इससे जेब भी खूब गरम हो जाती है।"

अब सुमुखि को चक्कर आने लगा था—उसकी यह दशा देखकर शिव अपनी कुटिया की ओर चल पड़ा—कुटी में पहुँच कर सुमुखि ने शिव से प्रश्न किया, "क्या धनी और बुद्धिमान बनने के लिये छली तथा स्वार्थी बनना अत्यन्त आवश्यक है ?" 'बहुत अंशो में शिव का छोटा सा उत्तर था—'क्या सभी ऐसे होते है ?' सुमुखि ने उत्सुकता पूर्वक कहा—'सभी को तो ऐसा नहीं कह सकते ।' अब शिव बैठ गया था--"एक को तो मैं ही जानता हूँ, मनुष्य की सेवा करना तथा उसे सुखी बनाना यही उसके जीवन का कार्य-क्रम था। यदि वह जीवित रहता तो सम्भवतः मनुष्य का बड़ा उपकार होता, पर बेचारा स्वयं ही सात छोटे-छोटे बच्चों को निस्सहाय और दुखी बना कर इस संसार से चल बसा। क्या कोई भी इस रहस्य को भेद सकता है सुमुखि ?" कहते-कहते शिव की पलके आर्द्र हो उठीं।

सुमुखि की पलकें भी भीग चली थी। उसने आज शिव के सत्य रूप को देखा। उसने दार्शनिकों का दर्शन पढ़ा था, पर आज

उसे प्रतीत हुआ कि शिव तो उस दर्शन का मर्मस्थल है। वह असीम को चीर कर अनन्त को पा चुका था, तभी तो संसारिक वस्तुओं से वह इतना उदासीन था—सुमुखि का मन अपने प्रति ग्लानि से भर उठा—आज तक वह शिव को पहिचान न सकी थी अतः क्षमा माँगने की भावना तीव्र ही उठी। बोली—"क्षमा करो शिव, आज तक मैंने तुम्हें अवज्ञा और उपेक्षा की दृष्टि से देखा था, अब मैंने तुम्हारा महान रूप देखा है। वह आगे बढ़ी पर शिव की बलिष्ट बाहुओं ने उसे पहले ही सहारा दे दिया था। थके हुए पक्षी की भाँति सुमुखि ने आश्रय ग्रहण किया और आँखें बन्द कर लीं।

शिव के अंक मे सुमुखि को आज उसी सुख की अनुभूति हुई, उसी सत्य का दर्शन हुआ, जिसका आभास वह उस टूटे मन्दिर में पा चुकी थी, आज उसने जाना उस सुदूर-पाखंडी भक्तों की कोलाहल से परे उस मन्दिर के आकर्षण को—उसकी विमोहनी शक्ति को जिसने उसके मन मे शिव-सरीखा वर माँगने का लोभ उत्पन्न किया वहाँ न शिव का दृष्य था, न आकार-भक्तो की भीड़ थी और न शिव की स्तुति करने वाले पुजारी ही दृष्टिगोचर होते थे।—वहाँ तो केवल एक मधुर सत्य था जिसने बालिका सुमुखि को प्रभावित किया था, और आज भी वही सत्य युवती सुमुखि के द्वारो ओर मन्द मधुर गीत से हिलोरें ले रहा था। उसने आँखें मूँद कर फिर एक बार मौन प्रार्थना की 'हे भगवन्! मुझे यही बरदान दीजिये कि जन्माजन्म मैं ऐसा ही शिव पाऊँ'।

:—:

श्री मती एम० के० शंकर

श्रीमती एम० के० शंकर हिन्दी की उदीयमान लेखिकाओं में धीरे-धीरे अपने गौरव को बढ़ा रही है। आपका जन्म १० अगस्त सन् १९२७ ई० को प्रयाग में एक श्रेष्ठ, शिक्षित तथा उच्च कोटि के परिवार मे हुआ। आपके पिता डाक्टर गोरख प्रसाद जी प्रयाग विश्वविद्यालय मे मैथम्याटिक्स के रीडर हैं। डाक्टर साहब विज्ञान के क्षेत्र मे एक श्रेष्ठ ख्याति-लब्ध व्यक्ति हैं। विवाह के पहले आपकी कहानियाँ माधुरी देवी के नाम से प्रकाशित होती थी। माधुरी जी की शिक्षा-दीक्षा आधुनिक शैली पर हुई। आपने प्रयाग विश्व-विद्यालय से बी० ए० पास किया। हिन्दी बाल्यावस्था से ही आपका प्रिय विषय रहा है।

माधुरी जी का विवाह मई सन् १९४४ मे १७ वर्ष की अवस्था मे हुआ। आपके पति श्री कृपाशंकर जी जायसवाल आज कल भोपाल मे शिक्षा-विभाग मे डिप्टी इंसपेक्टर है। आपके श्वशुर श्री गंगा प्रसाद जी जायसवाल एक सुशिक्षित एवं अनुभवशील व्यक्ति हैं। आपका परिवार काफी श्री-सम्पन्न है। माधुरी जी के भाई का नाम डा० चन्द्रिका प्रसाद है जा आज-कल रुड़की इंजीनियरिंग कालेज मे मैथम्याटिक्स के रीडर है।

माधुरी जी मे साहित्यिक अभिरुचि बाल्यावस्था से ही उत्पन्न हुई। आप १५-१६ वर्ष की अवस्था से ही कहानी तथा कविता की रचना की ओर अग्रसर हुई; किन्तु आपका विशेष क्षेत्र कहानी ही है। सन् १९४५ के लगभग आपकी कहानियाँ 'विद्यार्थी'



श्रीमती एम० के० शंकर बी० ए०

आदि मासिक पत्रिकाओ में निकलनी आरम्भ हुईं। तब से आप अनवरत हिन्दी-सेवा-पथ पर बराबर अग्रसर रही, वैसे यह बात दूसरी है कि घर-गृहस्थी की परिस्थितियों आदि के कारण बीच-बीच में कुछ समय के लिये आपको इस क्षेत्र से विराम भी लेना पड़ा।

प्रारम्भ से ही आप की कहानियो मे आकर्षक मानवी तत्व मिलते हैं, जिनका उद्गम स्थल हमारे मानसिक द्वन्द्व होते हैं। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण आप की रचनाओं मे मिलता है। आप ने जीवन की वाह्य समस्याओं पर विशेष ध्यान न देकर मानव-जीवन की चिर शाश्वत समस्याओ पर अधिक ध्यान दिया है और इस क्षेत्र में प्रेम की समस्याओं पर अधिक प्रकाश डाला है। आपकी कई कहानियों में स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्ध की विशेषताओं, सफलता, असफलता, आशा-निराशा आदि का सुन्दर चित्रण मिलता है। इस प्रेम व्यापार की स्थिरताओं, अस्थिरताओं तथा आशा के विपरीत होने वाली बातों का मार्मिक चित्रण पाठक के सामने आता है। पात्रों के भीतरी द्वन्द्व के साथ ही वाह्य परिस्थितियों के आकस्मिक परिवर्तन तथा उनसे उत्पन्न होने वाले परिणामो का सुन्दर चित्रण आपने किया है।

परिस्थितियों के आवर्त्त से मनुष्य की अभिलाषाएँ किसी प्रकार ढह जातीं तथा आशातीत बातें घटित हो जाती हैं। इसका सुन्दर चित्रण आपकी 'विधान' नामक कहानी में मिलता है, जिसमे भूल से एक साप्ताहिक पत्रिकाएक भयानक डाकू के बदले एक कुलीन शिक्षित 'प्रकाश' नामक व्यक्ति का चित्र छप जाता हैं। प्रकाश की नव विवाहिता पत्नी 'रश्मि' अपने पति का मुँह नहीं देखे रहती। वह यात्रा करने के लिये ट्रेन के

एक डब्बे में बैठती है, उसी में प्रकाश भी आ बैठता है और कुछ देर बाद सोने लग जाता है। रश्मि एक साप्ताहिक-पत्रिका लेकर पढ़ती है। वह पत्रिका मे भूल से डाकू के लिये छपे चित्र से प्रकाश की तुलना करती है और रिवाल्वर द्वारा उसका प्राणान्त कर देती है। स्टेशन पर पहुँचने पर उसकी भेंट अपनी सखी शैल से होती है जो उसके भूल से किये गये भयानक कृत्य को स्पष्ट करती है। सम्पादक ने नवीन साप्ताहिक अंक में अपनी भूल के लिये क्षमा माँगी थी और इधर प्रकाश बाबू अपनी ही पत्नी के हाथों प्राण खो बैठे।

इस कहानी में वाह्य परिस्थितियों के परिवर्तन या संयोग आदि से उत्पन्न होने वाली दर्दनाक घटना से पाठक अवश्य प्रभावित होता है; किन्तु फिर भी कहानी में मनोवैज्ञानिक शिथिलता अथवा कार्य-कारण-निर्वाह जरा शिथिल है। हम इस बात को मान लेते हैं कि प्रकाश और रश्मि एक ही स्टेशन पर एक ही डिब्बे में आकर बैठे और उन दोनों के अतिरिक्त उस डिब्बे मे और कोई न था। साथ ही यह भी पूर्ण संगत प्रतीत होता है कि रश्मि प्रकाश को डाकू समझ कर पुरस्कार, कीर्ति अथवा जन-सेवा की इच्छा से उस पर गोली भी चला दे, किन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि प्रकाश और रश्मि जो एक दूसरे से विवाह के पूर्व काफी परिचित से थे; इस विषय में क्यों कर चुप रहे कि उनका विवाह किससे हो रहा है। प्रकाश को यह पता नहीं कि उसका विवाह रश्मि से हो रहा है और इधर रश्मि का भी यही हाल है। वास्तव में यह कहानी अत्यंत प्रभावशाली है किन्तु इसका प्रथम खण्ड, जिसमें प्रकाश तथा रश्मि का परिचय आदि और कुछ अन्यमनस्क सीमित, खिंचा-खिंचा सा वार्तालाप दिखलाया गया हैं; मनोवैज्ञानिक तथा सत्यात्मक दृष्टि

से ठीक नहीं जँचता। इसको निकाल देने से कहानी की मार्मिकता बढ़ सकती है; जिससे नव-दम्पति यदि एक दूसरे को पहचान न सके तो कोई भी सांसारिक या मनोवैज्ञानिक बाधा नहीं दिखाई पड़ती। ऐसी स्थिति में संयोग या दैवी-प्रेरणा अथवा परिस्थिति-विशेष का मनुष्य-जीवन पर पड़ने वाला भयानक, अव्यक्त प्रभाव ही प्रमुख रहेगा।

इस कहानी का नाम भी 'विधान' उचित ही प्रतीत होता है।

'विभा' नामक कहानी बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। लेखिका ने नारी के उद्दीप्त सतीत्व तथा प्रेम की स्वार्थान्धता से प्रेरित पैशाचिकता का ज्वलन्त चित्र उपस्थित किया है। कहानी संक्षेप मे यों है—विभा और विनोद बाल्यावस्था में एक साथ खेले-कूदे थे। बाद में विनोद के हृदय मे विभा के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया; किन्तु विभा मे कोई ऐसी बात न हुई। विभा का विवाह एक अन्य व्यक्ति के साथ हो गया। कुछ वर्षों के पश्चात विभा का पति निरपराध होते हुए भी किसी अभियोग में फँस गया। विभा ने विनोद से पति की प्राण-रक्षा करने के लिये प्रयत्न करने की प्रार्थना की, और विनोद उसकी प्राण-रक्षा कर भी सकता था; किन्तु उसने बहाना-बाज़ी कर बात टाल दी। विभा सब-कुछ जानती थी। पति को प्राण-दंड हुआ। बाद में विनोद ने विभा से पुनर्विवाह करने के लिये कहा, किन्तु विभा ने शिष्ट परन्तु तीक्ष्ण, निश्चित एवं उपेक्षापूर्ण शब्दो मे इन्कार कर अपने सतीत्व-पालन पर ज़ोर दिया और पुनः उससे कभी न मिलने की प्रार्थना की।

विभा के प्रेम में हमे नारी-हृदय की स्पष्ट झलक मिलती है; विशेषतया भारतीय-नारी की जो उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी अपनी संस्कृति एवं सभ्यता का पालन करने में सचेष्ट है। विभा और विनोद दोनों का चित्र काफी अच्छा बन पड़ा

है। कहानी के अंतिम पृष्ट मे विभा एक सुन्दरी सुशिक्षिता स्त्री से उठकर एक अचल प्रेमिका, सती-साध्वी एव शान्त रमणी के रूप में हमारे सामने प्रकट होती है। कामुक स्वार्थान्धता से प्रेरित होकर जो व्यक्ति उसके पति की प्राण-रक्षा का प्रयत्न बाल्यावस्था का घनिष्ट परिचय तथा एक पक्षीय प्रेम के होते हुए भी नहीं करता; उसे पति की फाँसी के पश्चात् अपने सामने पाकर भी विभा पूर्ण सौजन्य एवं शिष्टता का परिचय देती है। यह उसके यह अनुशासित शांत स्वभाव का द्योतक है, जिसमे महा अपराधी को भी क्षमा कर देने की शक्ति निहित है।

आप की कहानियाँ छोटी होती हैं। उनमे आप व्यर्थ के पात्र नहीं रखती। कहानी का प्रथम खण्ड साधारण, वार्तालाप-पूर्ण एवं भावो के उतार-चढ़ाव अथवा घटनाओ के घटित होने की दृष्टि से अधिक महत्व-पूर्ण नहीं प्रतीत होता। कहीं-कहीं प्रथम-भाग दूसरे भाग से कार्य-कारण-न्याय से पूर्णतया जुड़ा भी नहीं रहता। उदाहरणार्थ 'विधान' नामक कहानी मे प्रकाश और रश्मि आदि का मिलन, क्षणिक परिचय, रश्मि की ओर की अन्यमनस्कता आदि का सम्बन्ध कहानी के द्वितीय भाग—विवाह तथा भ्रम वश अपनी ही स्त्री रश्मि द्वारा प्रकाश की हत्या—से विशेष संगत एवं समुचित नहीं जान पड़ता। फिर भी कहानी हृदय-विदारक एवं दैव-दुर्विपाक की कठोरतम नृशंस गति को पूर्ण रूप से प्रकट करती है।

इस प्रकार आप की कहानियों में भावो का चढ़ाव एवं परिस्थितियों का द्वन्द्व शनैः-शनैः ऊपर की ओर चढ़ता है और कहानी के समाप्त होते-होते अपने शिखर पर चढ़ जाता है। चरम-शिखर पर पहुँचने के साथ ही लेखिका कहानी को समाप्त कर देती है।

आप की कहानियो में केवल आवश्यक पात्र रहते हैं। इसीलिये आपने विभा जैसी नायिका तक के पति का नाम बतलाने की आवश्यकता न समझी। कुछ पात्र आवश्यकतानुसार आ जाते है किन्तु वे उसी प्रकार चले भी जाते हैं। लेखिका उनमे कोई दिलचस्पी नही लेती और पाठक भी उन्हें तुरन्त भूल जाता है। ऐसे पात्र सूचनार्थ, या वार्तालाप को पूर्ति अथवा दृश्य को पूर्ण एवं प्राकृतिक बनाने के लिये आते हैं। 'विधान' नामक कहानी मे शैलबाला और विनय आदि ऐसे ही पात्र है।

पात्रो का चरित्र आपकी कहानियो मे धीरे-धीरे प्रकट होता है। उनके विषय मे आप स्वयं बहुत कम कहती है। परिस्थितियाँ तथा उनके आचरण स्वयं उनके चरित्र पर भली भाँति प्रकाश डाल देते है। आप उनके विषय मे वहीं कुछ कहती हैं जहाँ ऐसा करना आवश्यक समझती है। विभा के चरित्र, स्वभाव आदि के विषय में आपने प्रायः नहीं के बराबर कहा है, किन्तु आगे चलकर परिस्थितियाँ तथा उसके आचरण अपने-आप सब कुछ कह देते है। पाठक उनमें विश्वास भी करता है क्योंकि वे बिल्कुल सत्य तथा स्वाभाविक–से प्रतीत होते हैं। चरित्र का यह आकस्मिक उद्घाटन पाठक मे कुछ आश्चर्य उत्पन्न करता तथा पात्रों के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करता है।

आपकी कहानियो में कहीं-कहीं कालक्रमानुसार भी पात्रों के चरित्र का विकास होता है। 'कंचन' नामक कहानी में ज़मीदार का उद्दंड, अनुशासनहीन लड़का कंचन के चरित्र तथा स्वभाव से काफी प्रभावित होता और धीरे-धीरे सज्जन एवं विचारशील बन जाता है। बाद मे दोनो का विवाह हो जाता है। जहाँ यकायक चरित्र-उद्घाटन अथवा चरित्र के नये अंग दिखाये जाते हैं, वहाँ भी काल-क्रमानुसार चरित्र-विकास का आभास मिलता है या

पाठक स्वयमेव ऐसी कल्पना कर लेता है। विभा सर्वप्रथम हमारे सामने एक छः वर्ष की लड़की के रूप में आती है, जो अपने खेल आदि में तन्मय रहती है। बाद में एक क्षण के लिये वह अपने विवाह के पूर्व विनोद के साथ दिखाई पड़ती है। यहाँ उसकी बात-चीत एवं व्यवहार काफी शिष्ट तथा अनुशासित दिखाया गया है, दूसरी ओर विनोद में उत्तेजना एवं आवेश की अधिकता है। बाद में विभा विनोद से पति की प्राण-रक्षा के लिये प्रार्थना करती हुई दिखाई देती है और अन्त मे पति की फाँसी के पश्चात् उसका विनोद से शिष्ट, सौजन्यपूर्ण वार्तालाप दिखाया गया है और अन्त में विनोद को लिखा गया पत्र उसके देदीप्यमान सतीत्व, धैर्य, निश्चय एवं शान्ति को प्रकट करता है। इन विभिन्न अवस्थाओं मे विभा के स्वरूपो पर पाठक को आश्चर्य नहीं होता; किन्तु अन्तिम रूप सचमुच पहले कुछ आश्चर्य उत्पन्न करता है; हालाँकि कहानी-कला की आवश्यकताओं को देखते हुए यह आवश्यक-सा था। मार्मिक प्रभाव उत्पन्न करने के लिये या तो विनोद को प्रेमान्ध पैशाचिक रूप में ही परिवर्तित करना था या विभा में ही कोई नया आकर्षक रूप प्रदर्शित करना था। विभा का नवीन रूप वास्तव में कला की माँग को ही पूरा करता है।

आप की कहानियों का आकार छोटा होता है। आप बीच-बीच में कहानी को तोड़ती हुई नवीन परिस्थिति एवं काल को लेकर चलती हैं। इस प्रकार 'विधान' मे प्रकाश और रश्मि को एक पार्टी मे परिचित दिखलाकर लेखिका 'रश्मि' को एक नव-विवाहिता पत्नी के रूप में दिखाती है। आप में अनावश्यक बातों को छोड़ कर केवल आवश्यक बातो को दिखाने की यह प्रवृत्ति सर्वत्र दिखाई पड़ती है। पाठक एक काल-पथ अथवा परिस्थिति से अकस्मात उठाकर एक नवीन काल अथवा परिस्थिति में रख दिया जाता है। इन दोनो कालों के बीच काफी व्यवधान हो

सकता है। लेखिका इन दोनों कालो को घटना-सूत्रों से जोड़ने का कष्ट नही उठाती क्योंकि यह कहानी-कला की दृष्टि से उसे अभीष्ट नहीं जँचता। इस प्रकार पाठक की कल्पना कूद कूद कर नवीन काल-खण्डों एवं परिस्थितियों पर दौड़ती है। पात्रों के सादृश्य के कारण कहानी की गति एवं एकरूपता में कोई बाधा नहीं पड़ती। हम आपके पात्रों को उनकी विविध परिस्थितियो एवं वातावरणों में भी पूर्णतया पहचान लेते हैं।*

पात्रो का वार्तालाप केवल आवश्यकता को दृष्टि में रख कर किया जाता है। इसमे से कुछ तो केवल सूचनात्मक होता है और कुछ पात्रो के चरित्र पर प्रकाश डालनेवाला। 'विधान' नामक कहानी में सभी वार्तालाप सूचनात्मक हैं। कहानी का प्रथम खण्ड वार्तालाप, चरित्र-प्रस्फुटन अथवा वाह्य परिस्थिति-निरूपण आदि की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नही रखता। उसका प्रयोजन केवल सूचनात्मक है, किन्तु अन्तिम पृष्ट पर आया हुआ रश्मि तथा शैल का वार्तालाप सूचनात्मक होते हुए भी काफी महत्व रखता है। इसके द्वारा रश्मि को अपनी भयानक भूल एवं विनाश का पता चलता है। इसका सम्बन्ध दैवी विधान की अटलता को सिद्ध करने से है।

माधुरी जी ने अपनी कहानियो मे प्रायः प्रेम के क्षेत्र को चुना है। 'कंचन', 'विधान', 'विभा' आदि कहानियों मे प्रायः यही विषय मिलता है। किन्तु आप पात्रों के मनोवैज्ञानिक जीवन का निरूपण अधिक मात्रा मे नहीं करतीं। इसका अर्थ यह नहीं है कि आपकी कहानियाँ मनोविज्ञान के विपरीत होती हैं। आप कतिपय आधुनिक कहानीकारो को तरह मनोविज्ञान की गुत्थियाँ सुलझाने में कहानी-तत्व को नहीं भूलतीं। परिणामतः आपकी कहानियों में मनुष्य के भीतरी भावो तथा विचारो एवं उसकी

वाह्य-परिस्थितियो दोनो को संतुलित रूप प्रदान किया गया है। इसी से आपकी कहानियों मे घटनाओ के कारण यथेष्ट गति तथा वाह्यता मिलती है। 'विधान' मे तो यह वाह्यता ही प्रबल है। उसमे बाहरी परिस्थितियो के कारण भूल से पत्नी सोते हुए पति पर गोली चला देती है। वाह्य परिस्थिति पर संयोग का यह भाग्य- निर्माणकारी रूप, जिसके निकट मनुष्य को प्राय: झुकना पड जाता है, टामस हार्डी के विख्यात उपन्यासो में चित्रित भाग्य, होनी या संयोग आदि के उस भयानक रूप का स्मरण दिलाता है जो उन उपन्यासों मे आये हुए शक्तिशाली, विचारवान सज्जन अथवा अर्द्ध-सज्जन पात्रों को चकनाचूर कर देता है। लेखिका होनी या संयोग के इस अपरिमित शक्ति को, जो मनुष्य के सुख-दुख की तनिक भी परवाह नहीं करती, चित्रित करने में काफी सफल हुई है। यह कार्य-कारण-परम्परा से बिल्कुल बाहर एक रहस्यमय स्वरूप में हमारे चारो ओर विद्यमान प्रतीत होती है और स्वतंत्र कार्य किया करती है। यही गोपनीयता इसको ऐसी अपरिमित भयानकता प्रदान करती है, जिसका स्मरण कर पाठक सिहर उठता है। वैज्ञानिक दृष्टि से भले ही इस तथ्य पर सन्देह प्रकट किया जाय किन्तु हमारे व्यवहारिक जीवन में हमारी आशाओं के विपरीत ऐसी घटनायें हुआ करती हैं, जिनका कोई कारण समझ मे नहीं आता।

'विभा' नामक कहानी में पात्रों का मानसिक रूप विशेष प्रधानता रखता है। थोड़े से शब्दो के भीतर से विभा का दीप्त सतीत्व एवं क्षमामय, निश्चिन्त, शान्त, साध्वी रूप तथा विनोद का कामान्ध पैशाचिक रूप स्पष्ट झलकता है। इसमें बाहरी परिस्थितियाँ पात्रों के चरित्र-निरूपणार्थ ही रखी गई प्रतीत होती हैं। पति की मृत्यु और उसके बाद भी यह शान्त साध्वी रूप विभा

के उच्च व्यक्तित्व को भली भाँति स्पष्ट करता है। आपत्ति-काल मे ही मनुष्य की वास्तविक परख हो सकती है। यह कहानी इसी तथ्य की पुष्टि करती है; भले ही लेखिका का यह दृष्टि कोण न रहा हो।

आप पहले 'कल्पना' के उपनाम से लिखती थीं किन्तु उस समय उनमे भाव-शक्ति की प्रधानता थी। आपकी आधुनिकतम कहानियो मे प्रेम का स्वरूप विविध परिस्थितियो मे चित्रित मिलता है जो काफी गम्भीर, ठोस एवं निर्मल है। लेखिका ने सर्वत्र इस विषय मे संयम, अनुशासन एवं पवित्र दृष्टि कोण से काम लिया है। वह प्रेमियो के चित्त मे उठने वाले विविध भावो को पाठक की कल्पना पर छोड़ देती है। आश्चर्य होता है कैसे इतने कम स्थान मे वह इतना प्रभाव-पूर्ण जीवन-चित्र हमारे समक्ष रख पाती है। आप पात्रो के वाह्य स्वरूप-वर्णन पर भी विशेष ध्यान नही देतीं। केवल 'कंचन' नामक कहानी में कंचन के सौन्दर्य का आवश्यकतानुसार वर्णन मिलता है अन्यथा अन्य कहानियों मे पात्रों के शारीरिक सौन्दर्य अथवा आकार-प्रकार की ओर संकेत-मात्र कर दिया जाता है। पाठक इससे सन्तुष्ट भी हो जाता है। अस्तु, आपकी कहानियों में भीतरी भावो की अवतारणा की प्रधानता है, जो कभी पात्रो के आचरण और कभी बाहरी परिस्थितियों के संघर्ष से सम्भव होती है, या कभी-कभी इस ओर आप ही कुछ संकेत कर देती हैं।

शृंगार के अतिरिक्त मनुष्य के अन्य भाव उदारता, घृणा, प्रतिद्वन्द्विता, ईर्ष्या, मित्रता, कष्ट, निर्दयता और पक्षपात आदि भाव भी आपकी कहानियो मे उचित स्थान पर पाये जाते हैं। किन्तु इन भावों की प्रबलता नहीं है। प्रतिद्वन्द्विता, ईर्ष्या एवं कठोरता के भाव 'विभा' नामक कहानी में विनोद में मिलते हैं। 'कंचन' में कंचन

की सौतेली माँ का कंचन के प्रति व्यवहार निर्दयता, डाह एवं पक्षपात से पूर्ण है। ये अनेक भाव, परिस्थिति तथा घटना के दौरान मे किसी माला की छोटी-छोटी मणियो के समान पिरोये हुए दिखाई पड़ते हैं और पात्रो के चरित्र मे विविधता अथवा अनेकरूपता उत्पन्न करते हैं।

आप अभी एक नवोदित कहानी कार हैं। भविष्य में आपकी प्रतिभा एवं शक्तियो के विकास की काफी आशा है। शनैः-शनैः आप में विषय-विविधता एवं दृष्टि-व्यापकता आ रही है। फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि आप का दृष्टिकोण अभी-पूर्ण विकसित नहीं हो सका है। वाह्य समस्याओं की ओर आप कुछ कम ध्यान देती हैं। मानव जीवन की शाश्वत चारित्रियक अथवा सुख-दुख-सम्बन्धी समस्याओं की अनेक रूपता भी आप में पूर्ण विकसित रूप मे अभी नहीं मिलती।

आप की भाषा सरल एवं साहित्यिक होती है। उनमें व्यर्थ के आडम्बर, वाक्-जाल या कठोर शब्दों के प्रयोग का कोई आग्रह नहीं दृष्टिगत होता। आपकी भाषा प्रायः ऐसी ही है जैसी शिष्ट साहित्यकार अपनी दैनिक बात-चीत में प्रयुक्त करते हैं। इसी लिये स्वाभाविक एवं सरल होते हुए भी उसमें गम्भीर विचारों को व्यक्त करने की पर्याप्त शक्ति है। आपकी भाषा में संयम एवं अनुशासन की कमी नहीं है। आप गलदश्रु भावुकता-पूर्ण भाषा से सर्वथा दूर रहती हैं। पात्रों के भावों का वर्णन करती हुई भी आप पूर्ण विवेक शीलता का परिचय देती हैं। संक्षेप में आप पात्रों के साथ रोने या हँसने से दूर रहती हैं, किन्तु अपनी कल्पना-शक्ति से उनकी वास्तविकता को हमारे समक्ष उपस्थित करती हैं। प्रस्तुत कहानी 'छः वर्ष' से पाठकों को हमारे इस कथन की सत्यता का यथेष्ट परिचय मिल जायगा।

—:०:—

कुमारी सावित्री कुच्छल एम. ए., एल. टी.

कुमारी सावित्री कुच्छल का जन्म-स्थान प्रयाग है। आपका परिवार काफी शिष्ट और प्रगति-शील है। आपके पिता बाबू रघुनाथ प्रसाद एक सुशिक्षित एवं प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति हैं। उन्होने बाल्यावस्था से ही आपकी शिक्षा-दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया। पठन-पाठन मे आपकी रुचि सर्वदा उत्तम कोटि की रही है। साहित्य आदि से प्रेम के अतिरिक्त कुमारी सावित्री जी को संगीत से भी विशेष प्रेम है, और इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिये आपने परिश्रम भी यथेष्ट किया है। आप संगीत की एक सफल साधिका समझी जाती हैं। १६४० में प्रयाग विश्व-विद्यालय की म्यूज़िक-कानफ्रेन्स में आपको प्रथम पारितोषिक प्राप्त हुआ था।

हिन्दी साहित्य सावित्री जी का सर्वाधिक प्रिय विषय है। गहन अध्ययन के अतिरिक्त आप ने साहित्य-सृजन की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया है। इस दिशा में आपकी स्वाभाविक प्रवृत्तियो ने स्वयमेव प्रेरणा दी। परिणामतः आपने हाई स्कूल के बाद ही इस दिशा मे कदम उठाया। धीरे-धीरे आपकी साहित्यिक कृतियों मे प्रौढ़ता एवं गहनता आती गई। यूनिवर्सिटी-जीवन में आपका साहित्यिक प्रयत्न क्रमशः अधिक गति पर चालू रहा। विश्व-विद्यालय छोड़ने के बाद आपने इस दिशा मे और भी दिलचस्पी और तन्मयता दिखाई है। हिन्दी-जगत् को आपसे बड़ी आशायें है।

सावित्री जी ने कहानियों के अतिरिक्त इधर ५-६ वर्षों में कतिपय सुन्दर लेखों की भी रचना की है। आपकी कहानियाँ और

बाद में लेख भी 'चाँद' 'महिला' 'संसार और' विद्यार्थी' आदि सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में अबाध गति से छपते रहे। आपके लेख गम्भीर एवं साहित्यिकता लिये हुए होते हैं। 'सिन्दूर का ऋण' आपका एक सुन्दर कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुका है।

कुच्छल जी की कहानियों और लेखों से उनकी सामाजिक पारिवारिक, राजनीतिक आदि विषयों में दिलचस्पी प्रकट होती है। उन्होंने विशेषकर नारी-जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया हैं। परिणामतः कन्याओं के विवाह की आर्थिक समस्या, दहेज़, जाँत-पाँत-बिरादरी आदि के प्रश्न, अनमेल विवाह, आधुनिक पढ़ी-लिखी लड़कियों के विचार, विधवा-समस्या, सन्तान-पालन आदि विषयों पर विशेषकर आपकी रचनाएँ आधारित हैं। किन्तु कुच्छल जी की दृष्टि केवल इन्ही विषयों तक सीमित नहीं रहती। उनकी कृतियों मे ये विषय जीवन की अन्य समस्याओ-आर्थिक उलझनों, राजनीतिक समस्याओ, सामाजिक व्यक्तिगत-झगड़ों तथा मनुष्य के परस्पर-सम्बन्धों-प्रेम, कर्त्तव्य क्रोध, घृणा आदि के साथ संयुक्त होकर आते हैं।

अस्तु, हम कह सकते हैं कि कुच्छल जी की जीवन-दृष्टि काफ़ी विस्तृत है। अपनी रचनाओं का विषय उन्होंने जीवन के विविध क्षेत्रों से लिया है और सभी मे अपनी रचना-शक्ति से प्राण-प्रतिष्ठा की है। इसी विस्तृत जीवन-दृष्टि के कारण उनकी रचनाओं मेंवह एकांगिता नहीं मिलती, जो स्वाभाविकता उत्पन्न करती है। प्रधानता अवश्य एक या दो समस्याओं की होती हैं किन्तु वे इतने सुन्दर ढंग से हमारे सामने रखी जाती है कि उनमे हमें लेखिका कोई 'थीसिस' रखती हुई नही जान पड़ती। इन समस्याओं के इर्द-गिर्द जीवन के अन्य पहलुओ की भी यथेष्ट योजना रहती है। इससे कहानी में विविधता, वज़न और आकार-वृद्धि उत्पन्न होती है।

कहानियों के पढ़ने से उनमें प्रस्तुत की गई समस्याओं में कुच्छल जी की विस्तृत पैनी दृष्टि का परिचय मिलता है। यह अवश्य कहा जा सकता है कि अभी उनमें किसी महान विचारक की विदग्ध चिन्तन शीलता नहीं है, तथापि अवस्था को देखते हुए हमें उनमे काफ़ी मौलिकता स्वीकार करनी पड़ती है। आगे चल कर इसका विकास अवश्य होगा। उस समय आप और अधिक गहराई तथा चिन्तनपूर्ण ढंग से इन समस्याओं का स्वरूप-उद्घाटन कर सकेंगी।

न तो भाषा अथवा शैली के क्षेत्र मे और न विचार या भाव-में कुच्छल जी किसी का अनुकरण करती हैं। उनकी भाषा पर न त हमे छायावादी कोमल-कान्त पदावली का प्रभाव मिलता है और न अज्ञेय और जैनेन्द्र आदि मनोविज्ञान-प्रधान रचना-कारो की वैज्ञानिक शैली का, जिसमें वे बाल की खाल खींचते हुए किसी बात को निहायत सफाई और पूर्ण अर्थ-बोधक रूप में प्रकट करना चाहते हैं।

सावित्री जी की रचनाओं मे मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को खोलने का प्रयत्न हमें न मिलेगा। उनमें दैनिक जीवन में अथवा विशेष आपत्तियों एवं कठिनाइयों में उत्पन्न होने वाले मानवी भावो तथा विचारो का वर्णन मिलता है। लेखिका उनके उद्गम-स्थल की ओर न जाकर प्रेमचन्द, सुदर्शन, और जयशंकर आदि की तरह उनको मानवी व्यापारो—कार्य, बात-चीत इत्यादि के माध्यम से हमारे सामने लाती है। अस्तु, हमारे सामने हाड़-मॉस से बने सजीव स्त्री-पुरुष आते हैं जो हमारी ही तरह सुख-दुख, भूख-प्यास, प्रेम-घृणा, तथा क्रोध-दया आदि का अनुभव करते है। उनके प्रति हमारी सहानुभूति होती है। ये पात्र निर्जीव नही होते, जिनमे लेखक मनोविज्ञान की गुत्थियों को वैज्ञानिक ढंग से सुलझाता है। इस दृष्टि से कुच्छल जी को प्रेमचन्द, सुदर्शन, उग्र, भगवती-

प्रसाद बाजपेयी, और सुभद्रा कुमारी चौहान आदि कलाकारो के साथ रखा जा सकता है।

कुच्छल जी की भाषा सरल, प्राकृतिक एवं प्रवाहशील होती है। उनका विशेष गुण भाषा की वर्णन-शैली है। न तो उसमें प्रसाद जी की भावुकता है, न महादेवा वर्मा की कष्ट-साध्य, अति चिन्तन-प्रधान वक्रोक्तियाँ जो पाठक के हृदय मे दुरूहता और नीरसता उत्पन्न करती हैं और न निरी गद्यात्मकता ही है। भावुकता और कल्पना के तत्व अवश्य आवश्यकता से कम है। यह बात उनकी कला-शक्ति की शिथिलता की ओर संकेत करती है किन्तु आगे चलकर, आशा है, शनैः-शनैः इसमे विकास हो जायगा। कुच्छल जी की भाषा कहानी के लिये अत्यंत उपयोगी है। उसमें वर्णनात्मकता अधिक है इसीलिये वह कुछ खुरदरी-सी प्रतीत होती है। आप को सरल ठेठ प्रचलित शब्दो, मुहावरो और लोकोक्तियो से कोई परहेज़ नही है। इससे भाषा मे और भी स्वाभाविकता तथा प्रवाह आ जाता है और उसकी अर्थ-स्पष्टता बढ़ जाती है। आपकी भाषा मे उर्दू-फारसी तथा अंग्रेजी के दैनिक जीवन में व्यवहृत होने वाले शब्दो की यथेष्ट संख्या होती है। संक्षेप में आपकी भाषा सर्वत्र कहानो की भाषा है, जिसे साधारण पाठक तक पहुँचना है और अधिकतम व्यक्तियो की समझ मे आ जाने के अपने मन्तव्य को पूरा करना है। अवश्य ही सरल भाषा तथा गम्भीर मार्मिक भाव एवं विचार-युक्त कहानियाँ ही दीर्घजीवी हो सकती हैं।

सावित्री जी की वर्णन शैली सीधी-सादी है। उसमे दिमाग को हैरान करने वाले अर्थ-मोड़ अथवा दृष्टकूट-से लगने वाले वाक्य नहीं मिलते हैं। परिणामतः वह एक खुली हुई और स्पष्ट वस्तु है, जिसका मूल्य समझने के लिये केवल एक बार दृष्टि भर डालनी पड़ती है।

विषय की दृष्टि से ऊपर कहा जा चुका है कि सावित्री जी की दृष्टि काफी विस्तृत है। उसमें सामाजिक और राजनीतिक विषयो के अतिरिक्त मानवी-सम्बन्धों को भी यथेष्ट स्थान मिला । मनुष्य के प्रेम, यौन-आकर्षण तथा सम्बन्ध, दाम्पत्य, वात्सल्य, हास-परिहास, क्रोध, घृणा आदि पर भी कुच्छल जी ने पूर्ण प्रकाश डाला है और प्रायः इन पहलुओं को सामाजिक और राजनीतिक समस्याओ के मेल में हमारे सामने रखा है। इसीलिये इनकी रंगत भिन्न हो गई है। ये हमको अधिक विस्तृत घेरे में दिखाई पड़ते है। अस्तु, इनके मूल्यांकन पर भी इन समस्याओ का प्रभाव पडता है।

सावित्री जी मे व्यंग्य को यद्यपि विशेष स्थान नहीं मिला है, तथापि उनकी रचनाये जीवन तथा प्रफुल्लता से परिपूर्ण हैं। कहीं पर निराशा, क्षोभ कड़वाहट या क्रोध आदि का दर्शन भी नहीं होता। इससे आपके स्वभाव की सरलता ही प्रकट होती है।

कुच्छल जी का विषय-क्षेत्र विशद है और भाषा भी कहानी के उपयुक्त है किन्तु खटकने-वाली बात है उनकी रचनाओं मे भावनाओं की गहराई की कमी और कहानी के प्रवाह की शिथिलता। आप की कहानियों को पढ़कर पाठक का हृदय प्रेम, करुणा, आश्चर्य, भय, जघन्यता, वीरता वीभत्सता, या कुतूहल से अन्दोलित नही हो पाता। ये भाव जैसे प्रेम, करुणा, दया, भय और शोक आदि मिलते अवश्य है किन्तु हृदय को मथने की शक्ति नहीं रखते। साथ ही आपकी कहानियो मे घटनाओं के क्रम में शिथिलता है। कुछ दूर चलकर उनका एक सोपान समाप्त हो जाता है और उसके बाद आप सोच-सोचकर दूसरा नया सूत्र आरम्भ करती है, किन्तु उसमें स्वाभाविकता की कमी-सी मालूम होती है।

—:०:—

दूर या निकट

आज जैसे ही उमेश आफिस से लौटकर घर आये और कपड़े उतार कर हाथ-मुँह धो, दिन भर क़लम घसीटने के पश्चात् सुख की एक साँस लेने ही वाले थे कि पत्नी सरोज ने कुछ नाश्ता एक तश्तरी मे रखते हुए पूछा—"लखनऊ से कुछ खबर मिली कि अभी नही ?"

"अभी नहीं।"

"बड़ी मुसीबत मे जान है। आप त इस तरह निश्चिन्त हैं जैसे कोई समस्या ही नहीं। सोचें तो, जिसके घर में सोलह वर्ष की लड़की शादी के लिए बैठी हो उसके माँ-बाप का निश्चिन्त होकर बैठना कह ांक ठीक है।"

उमेश ने झुँझलाते हुए कहा—"तुम कैसे समझती हो कि मैं निश्चिन्त हूँ। लड़की का विवाह क्या पकी-पकाई खीर है जो मुँह में रख ली जाय। इसके लिए लोहे के चने चबाने पड़ते हैं। अभी क्या हुआ है ? वर्षों जूते घिसने पड़ेंगे। घर की कड़ी-शहतीर बेचने की नौबत आ जायगी तब कहीं दामाद का मुँह देखना नसीब होगा। लखनऊ वाले पूरे पाँच हज़ार से एक पैसा भी कम नहीं चाहते। इतना मेरे पास कहाँ है जो देकर बेटी के हाथ पीले कर सकूँ।"

सरोज ने अनमनी होकर कहा—"मैं आप की सब कहानियाँ समझती हूँ पर करू ँ क्या ? मुझे भी चार औरतों के बीच उठना-बैठना पड़ता है। सब कहती हैं—'बहिन ! सिर का बोझ जल्दी उतारो।' सोलह वर्ष की लड़की ! हे भगवान् ! कहने वालों का

ह कोई न पकड़ लेगा। कानपुर वाले लड़के के यहाँ से कोई उत्तर आया या नहीं ? आप कहते थे कि शायद वहाँ बात-चीत तय हो जाय। अगर वहाँ बेटी सुख से रह सके तो फिर ठीक है।"

"हाँ, वहाँ हो तो सकता है पर ·····।"

"पर क्या ? क्या कुछ दाल मे काला है ?"

"यही, जरा लड़के की उम्र कुछ अधिक जँचती है। इसी कारण तबियत ज़रा हिचकती है।"

"कितनी उम्र है ?" सरोज ने उत्सुकता से पूछा।

"पचास पूरा होने मे कुछ ही कम हैं। पर इससे क्या हुआ—देखने-सुनने मे तीस-बत्तीस का ही लगता है। इसके अतिरिक्त धन है और प्रतिष्ठा में तो आस-पास उसका कोई मुकाबिला नहीं कर सकता। सब से मुख्य बात यह है कि तिलक में जो कुछ भी दे दिया जायगा उसमें उसे आपत्ति न होगी।"

"ये सब ठीक है, पर मेरी किरण ! क्या विधाता ने इतना रूप-रंग देकर भाग्य पर काली रेखाएँ बना दी हैं ?" फिर एक ही क्षण में उसका नारीत्व सजग हो उठा। वह कहने लगी अपने स्वयं के अनुभव से—"ओह ! कितनी सुखद और मोहक कल्पनाएँ होती हैं विवाह के पूर्व की। रंगीन सपनो के रंगीन आवरण मे दुनियाँ की हर वस्तु रंगीन दिखलाई देती है। लेकिन उस क्षण की कल्पना-मात्र से दिल काँप उठता है जब सपनों का रंगीन महल चकनाचूर हो जाता है, अरमानों की दुनियाँ उजड़ जाती है। चाहे जो हो जाय, मैं अपनी प्यारी किरण को ऐसे बूढ़े को कभी न सौपूँगी चाहे जन्म भर क्वाँरी ही क्यो न रहे। पचास वर्ष के बूढ़े का क्या ठिकाना—उसका पैर तो हमेशा क़ब्र मे ही रक्खा है।"

उमेश सरोज की बातें सुनकर झल्ला उठे—"क्या कहूँ, इन औरतों को बुद्धि तो रत्ती भर छू ही नहीं गई। सदा उल्टी ही बातें किया करती है।" फिर पत्नी की ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा—"अगर इस सम्बन्ध मे तुम्हे आपत्ति है तो जाओ बाहर जाकर देखो तो होश ठिकाने आ जायगा। मैं तो कहता हूँ अगर अपनी सारी जायदाद बेच दूँ तब भी मनोनुकूल वर मिलना कठिन ही नही वरन् असम्भव है।"

सरोज कहने लगी—"भारतीय समाज लड़की को अभिशाप समझता है पर क्या उसने कभी सोचा है कि क्या लड़की को अपने ठाँचे से अलग रख कर वह जीवित रह सकता है? कभी नहीं! तब इतनी उपेक्षा क्यों!"

बात बढ़ती हुई देखकर उमेश उठकर बाहर चले गये। सरोज की आँखो की कोरों से स्वभावतः आँसू झाँकने लगे जो नारी के दुःख-सागर में आशा की बल्ली हैं।

किरण माता-पिता की बात-चीत दूसरे कमरे में बैठी सुन रही थी। दोनो को परेशान जानकर उसके दिल में एक बड़ा भारी धक्का लगा। वह अपने को धिक्कारने लगी—'ईश्वर ने मुझे जन्म ही क्यो दिया? माता-पिता की चिन्ता का एकमात्र कारण मैं ही हूँ। अच्छा हो भगवान मुझे मृत्यु दे दे। पर मौत माँगने से तो नहीं मिलती। गृहस्थी के सुचारु संचालन में एक तो यों ही पचास मुसीबतों का सामना करना पड़ता है फिर यदि लड़की के विवाह की समस्या समक्ष हो तो, 'एक तो करेला और दूसरे नीम चढ़ा' वाली कहावत अत्यन्त युक्ति-संगत दीख पड़ती है। अगर माता-पिता ने अपनी सारी सम्पत्ति बेंचकर विवाह कर भी दिया तो उन्हें जन्म भर भिक्षा-वृत्ति का सहारा लेने के अतिरिक्त और कोई चारा न रह जायगा। लेकिन क्या मेरा यही कर्त्तव्य है?"

कुछ क्षण मौन रह कर फिर उसके मस्तिष्क में विचार दौड़ने लगे और उसने दृढ़ता-पूर्वक निश्चय किया—"नहीं, नहीं, मैं अपने सुख के लिए पिता की सम्पत्ति का विक्रय नही चाहती। अच्छा हो मैं आत्म-हत्या कर लूँ, लेकिन वह तुरन्त सचेत हो गई—आत्म-हत्या! कभी नहीं यह वीराङ्गनाओं का नहीं, कायरो का काम है। हम भारतीयो को न भूल जाना चाहिए अपनी दुर्गा और लक्ष्मी-जैसी बहनो की अमर गाथाओ को, जिनके बलिदान से भारतीय इतिहास का निर्माण हुआ है। अतः आत्म-हत्या की बात तो दूर रही। यदि मै ही अपने लिए कोई योग्य वर तलाश कर लूँ तो माता-पिता को कोई आपत्ति न होनी चाहिए।"

इन्हीं सब बातो का ताना-बाना बुनती हुई वह सो गई।

× × ×

किरण मैट्रिक की छात्रा थी। वह जिस स्कूल में पढ़ती थी उसमें सह-शिक्षा भी दी जाती थी। दीपावली के अवसर पर संचालन-कमेटी ने एक ड्रामा करने का निश्चय किया था। आज स्कूल के मैनेजर ने स्कूल के सारे छात्र और छात्राओ की एक सभा की और उसमें अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों का चुनाव किया। किरण को भी एक पार्ट दिया गया। यद्यपि किरण अभिनय करने के लिए बिल्कुल तैयार न थी परन्तु वह बाध्य की गई। किरण ने मन मसोस कर ड्रामे में अभिनय करना स्वीकार कर लिया।

उसके सफल नायिका के अभिनय से सारे स्कूल मे उसकी प्रसिद्धि फैल गई। सुरेश तो उसके अभिनय पर लट्टू हो गया उसने कई बार किरण को अपनी ओर झुकाने की कोशिश की, परन्तु किरण ने उसे कोई प्रोत्साहन नहीं दिया।

उस दिन किरण अपने कमरे में अकेली बैठी थी। माता-पिता कहीं गये हुए थे। इतने ही मे किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। किरण ने पूछा—"कौन ?"

"मैं हूँ, सुरेश।"

किरण ने दरवाज़ा खोल दिया। सुरेश ने कमरे मे प्रवेश किया और किरण की अनुमति पा कर कोच पर बैठ गया।

"कहिए, कैसे कष्ट किया ?" किरण ने उत्सुक नेत्रों से पूछा।

"यों ही, कोई विशेष बात न थी।" फिर कुछ क्षण पश्चात् उसने पाँच हज़ार रुपये की थैली निकाल कर किरण की ओर बढ़ाई। किरण ने चौंक कर पूछा—"यह क्या ?"

"रुपये है किरण।"

"कैसे रुपये ? मुझे रुपये देने वाला कौन है ?"

"इसे जान कर आप क्या कीजिएगा ? समझ लीजिए यह मेरी ही भेंट है।"—सुरेश ने रुकते-रुकते कहा। किरण विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखने लगी।

"आप अपनी भेंट अपने ही पास रखिए। मैं दुःख भुगतने के लिए जन्मी हूँ, सुख से मेरा कोई नाता नही।"

"नहीं किरण, ऐसा मत कहो। जिससे तुम्हारा नाता नहीं उसे मैं तुम्हे सौंपना चाहता हूँ और दुःख को स्वयं अपनाना चाहता हूँ।" किरण के हृदय में इन्द्रधनुष-सी रंग-विरङ्गी नाना भावनाएँ जागृत हो उठी। वह सोच रही थी—"क्या सुरेश मुझसे विवाह कियां चाहता है ? और सम्भवतः यह भेंट उसी की भूमिका-स्वरूप है। लेकिन क्या माता-पिता को यह स्वीकार होगा कि मैं एक क्रान्तिकारी से विवाह करूँ ? कितनी ही बार सुरेश

जेल जा चुका है और भविष्य मे भी क्या ठिकाना—न जाने किस दिन फाँसी के फन्दे पर हँसते-हँसते झूल जाना पड़े।"

इतने में नौकर चाय लेकर आ पहुँचा। किरण के विचार टूट गये।

किरण ने सुरेश की भेंट स्वीकार न की।

.........फिर किरण ने एक दिन जी कड़ा कर माता-पिता से इस बात की चर्चा की। किरण का सुरेश के प्रति स्नेह जान कर दोनो भौचक्के रह गये।

"किरण, हमारे समाज को यह मान्य न होगा।"—पिता ने स्नेहसिंचित स्वर में कहा।

"पिता जी, समाज तो आँख का अन्धा और गाँठ का पूरा होता है। वह उँगलियाँ उठाना जानता है पर किसी की मुसीबत में साथ देना नहीं।"

'ठीक है बेटी, पर हमे तो समाज मे रहना है और इस कारण उसके नियमों के कड़वे घूँट पीने ही पड़ेंगे।"

इस पर किरण थोड़ी अधिक उद्दण्ड हो गई—"पिता जी, क्षमा कीजिएगा—मै तो समझती हूँ कि ऐसे समाज और उसके ऐसे कठोर नियमो को ठोकर मार देनी चाहिए। मैं निश्चय ही सुरेश से ही विवाह करूँगी, समाज चाहे कुछ भी कहे।"

"बेटी, कहना मान जा। क्यों बुढ़ापे में मेरे मुँह में कालिख लगाना चाहती है।"

"नहीं बाबू जी, मैं यह कदापि नहीं चाहती। लेकिन एक नारी-हृदय ..।" कहते-कहते उसका गला रुँध गया और वह सिसकियाँ भरने लगी।

पत्थर-तले दबे हाथ को निकालने में ही अच्छाई जान कर उमेश ने द्रवित-हृदय से कहा—"बेटी, तुझे जिसमें सुख मिले वही कर।"

सरोज ने भी किरण की पीठ पर अपना स्नेह-युक्त हाथ फेरते हुए पति की बात का समर्थन किया।

× + ×

विवाह की तिथि निश्चित हो गई। वह पास सरकती आ रही थी। वह उसे शीघ्रातिशीघ्र सुहागिन बना देना चाहती थी। और उधर विधि अपना पाँसा फेंकने की तैयारी मे संलग्न था। समय की गति और विधि में होड़ जो लगी थी।

बारात आने में केवल दो दिन शेष थे। उमेश सारी तैयारियाँ कर चुके थे।

सुबह का समय था। श्रीमोहन ड्राइङ्ग-रूम में बैठे हुए एक किताब पढ़ रहे थे कि इतने में अखबार वाला आ पहुँचा। उस से अखबार लेकर श्री मोहन ने प्रथम पृष्ठ पर दृष्टि फेरी। बड़े-बड़े-अक्षरों में छपा था—मि० सुरेश असेम्बली हाउस में आग लगाने के अभियोग में पकड़े गये। नीचे उसका फोटो भी छपा था। इतने में किरण ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—"मामा जी, चाय और नाश्ता तैयार है। चलिए, माता जी इन्तज़ार कर रही हैं।"

गिरफ्तारी की इस सनसनी-पूर्ण खबर को पढ़ने में श्रीमोहन इतने व्यस्त थे कि किरण की बातें उन्होने सुनी अवश्य पर उत्तर देने में कुछ क्षणों का बिलम्ब हुआ कि इसी बीच किरण पूछ बैठी—"क्या कोई खास खबर है, मामा जी?"

"हाँ, सुरेश नाम का एक व्यक्ति असेम्बली हाउस में आग लगाने के शक में गिरफ्तार किया गया।" किरण ने अखबार पर

आँखे गड़ा दीं। सामने सुरेश का फोटो था। उसके मन में विचारों का तूफ़ान आ गया—यही तो हैं वह सुरेश जिसने मुझे पाँच-हज़ार रुपये की थैली देना चाहा था और हाँ यही तो है मेरा भावी जीवन-धन। एक क्षण के लिए उसके हृदय ने धोखा देना चाहा। उसमें दुःख उमड़ने लगा। पर वह तुरन्त ही सचेष्ट हो गई। उसका कोमल नारी-हृदय पत्थर की कड़ी चट्टान मे परिवर्तित हो गया। वह भारतीय आदर्श और मर्यादा की रक्षा जो करना चाहती थी। दो दिन के पश्चात् ही तो उसे और सुरेश को बाँध देते एक सूत्र मे सात फेरे और फिर बाँध लेती वह उसे अपने हृदय की रेशमी डोर से—कभी न छोड़ने के लिए। पर इसके पूर्व ही बाँध दिया गया वह लोहे की हथकड़ियो में। अधिकारियो ने समझा कि लोहे की इन हथकड़ियों का बन्धन मंत्र-युक्त सात फेरो के बन्धन से कहीं अधिक दृढ़ होगा!

किरण यही सब सोच रही थी कि पहुँचे उमेश बाबू। "क्यों बेटी, खड़ी-खड़ी क्या सोच रही है?"

"कुछ नही बाबू जी।"

श्रीमोहन ने उमेश का ध्यान अपनी ओर आर्षित करते हुए कहा—"देखिए जीजा जी! यह सनसनी-पूर्ण खबर—मि० सुरेश नाम का एक व्यक्ति गिरफ्तार किया गया—" कहते हुए उन्होंने अखबार उनकी ओर बढ़ा दिया। फोटो पर नज़र पड़ते ही उनके पैरों तले से मानो ज़मीन खिसकने लगी। "ओफ़!" वे सिर थाम कर पास ही रखे कोच पर लड़खड़ा गये। किरण और श्री मोहन ने बढ़ कर उन्हे सम्हाला। उमेश कह रहे थे—"अदृश्य का हाथ बड़ा कठोर होता है। बेटी के सुहागिन होने के पूर्व ही विधि ने उसके भाग्य पर काली रेखाएँ खींच दी……मैं कहता था……।"

सारे घरमें उथल-पुथल मच गई। श्रीमोहन की समझ में बात बहुत देर में आई—उन्हें मालूम भी न था कि सुरेश ही किरण का भावी पति था। सारे घर मे मुर्दनी छा गई।

आस-पास के लोगों को जब यह समाचार मालूम हुआ तो उन्होंने टीका-टिप्पणी प्रारम्भ कर दी—"उमेश बाबू ने किसी की बात नहीं मानी, परिणाम शीघ्र ही सामने आ गया। आकाश के तारे तोड़ने की चेष्टा करने वाले गिरते ही है। किसी दूसरे के साथ विवाह तय किया होता तो आज क्यों यह दिन······।"

सभी कुटुम्बी दुःख के अथाह और भयानक सागर में गोते लगा रहे थे। पर किरण! वह संयत थी। वह अपनी 'नारी' संज्ञा को अनजाने ही सार्थक कर रही थी कि नारी गम्भीर होती है। समय पर उसका आवेग उमड़ता अवश्य है पर वह अपनी मर्यादा कभी नहीं लाँघता।

\+ + +

आज अदालत ने सुरेश को फाँसी की सजा सुनाई। अखबारों ने शीघ्र ही पूर्ववत् यह खबर देश के कोने-कोने तक पहुँचा दी। किरण ने भी जी कड़ा कर अपने ऊपर गिरे हुए इस पहाड़ को सम्हालने की चेष्टा की।

फाँसी की सजा रद्द कराने के लिए दौड़-धूप होने लगी। किसी ने कोई बात—कोई कोशिश उठा न रक्खी। जनता ने इस सम्बन्ध मे प्रस्ताव पास कर सरकार से अपील की। तब कही सरकार ने प्राणदंड के स्थान पर बीस वर्ष के कठिन कारावास का हुक्म दिया।

सुरेश जेल पहुँचाया गया। किरण का शीघ्र ही बसने वाला संसार उजड़ गया। उसने पति से मिलने की आज्ञा माँगी पर सरकार ने उसकी प्रार्थना नामंजूर कर दी।

जेल में सुरेश के दिन मज़े से बीतने लगे। अन्य सभी कैदियों की आँखो में उसने ऊँचा स्थान बना लिया। वे सब उसे आदर की दृष्टि से देखते। यों उसका जीवन अत्यन्त सुखी था पर यदि चिन्ता थी तो किरण की-वह सोच रहा था कि मैंने उससे कहा था—सुख मैं तुम्हें सौंपा चाहता हूँ और दुःख को स्वयं अपनाया चाहता हूँ। पर संसार का जैसा नियम है—मनुष्य आशाएँ बाँधता है और बिधि उन्हें तोड़ देता है। यही उसके साथ भी हुआ। उसकी आशा पूरी न हो पाई।

सुरेश जेल से न कभी डरा था और न आज ही डर रहा था लेकिन उसे केवल इतना अफसोस था कि इस बार वह बिना किसी कसूर के बन्दी बना लिया गया।

× × ×

कई वर्ष बीत गये। किरण अपनी तपस्या में रत थी। इस बीच वह कई बार पति से मिलने की आज्ञा के लिए चेष्टा कर चुकी थी किन्तु सदा उसे हताश ही होना पड़ा था। पर न जाने किस अदृष्ट भावना से प्रेरित हो कर इस बार सरकार ने उसे मुलाक़ात की मंजूरी दे दी थी।

कल दिन मे ग्यारह बजे उसे मिलने जाना था। वह सोच रही थी कि मुलाकात के लिए केवल दस ही मिनट तो दिये गये हैं और आज उन्हें देखे हुए वर्षों बीत गये। इन वर्षों में न जाने कितने परिवर्तन हो चुके। उन अनगिनती परिवर्तनों पर इतने थोड़े से समय में एक विहंगम-दृष्टि भी तो नहीं डाली जा सकती।

दूसरे दिन ठीक ग्यारह बजे वह सुरेश के समक्ष ले जाई गई। उसके हाथों मे खुशबूदार फूलो का एक हार था। सब से प्रथम उसने सुरेश को माला पहिनाने का निश्चय किया था लेकिन

जब वह उसके समक्ष पहुँची तो हार पहनाना बिल्कुल भूल ही गई—इधर-उधर की बात-चीत चल निकली।

"......देवी जी, मुलाक़ात का समय खत्म हो चुका है"—जेल के वार्डन ने कहा। किरण ने सुनी उसकी बात जी थाम कर और वह स्वप्न-संसार से मानो वास्तविक जगत मे आ गई। उसे याद आया कि वह हार पहनाना तो भूली ही जा रही थी। फिर उसने तुरन्त ही सुरेश के गले मे माला पहनाते हुए उसके चरण स्पर्श किये। सुरेश अपने को न रोक सका। उसने किरण को हृदय से लगा लिया। किरण की आँखें चमक उठीं। दोनो को एक स्वर्गीय आनन्द उपलब्ध हुआ।

फिर बैरक का सीकचेदार द्वार बन्द कर दिया गया। अब किरण और सुरेश के बीच मे खड़ी थी लोहे की एक मज़बूत दीवार; दुनिया और समाज की दृष्टि में दोनो को एक दूसरे से पृथक करती हुई। पर कौन जानता था कि वे अब कितने निकट पहुँच चुके थे।

—:०:—

प्रेम कुमारी उपाध्याय एम० ए०

प्रेम कुमारी जी का जन्म सन् १६२६ ई० मे एक सुसम्पन प्रतिष्ठित परिवार मे हुआ। आपके पिता डाक्टर ईश्वरी प्रसाद उपध्याय अपनो विद्वत्ता एवं ऐतिहासिक ज्ञान के लिये केवल भारत ही नहीं अपितु सारे संसार मे प्रसिद्ध हैं। डाक्टर साहब स्वयं पाश्चात्य सभ्यता एवं पूर्वी सभ्यता का स्पृहणीय ज्ञान तथा अनुभव रखते हैं। उन्होंने आप को उच्चकोटि की शिक्षा प्रदान की। पठन-पाठन मे आपको अपने पारिवारिक तथा सामाजिक वातावरण से काफी प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। डाक्टर साहब ने राजनीति-विभाग के अध्यक्ष रूप मे प्रयाग विश्व-विद्यालय की पर्याप्त सेवा की है। ऐसे परिवार में पठन-पाठन का वातावरण ही मुख्य रूप से रहता है। प्रेमकुमारी जी ने इतिहास लेकर प्रयाग विश्व-विद्यालय से एम० ए० परीक्षा अच्छे नम्बरों मे उत्तीर्ण की। आपका विवाह सन् १६४८ ई० मे पं० हरि स्वरूप जी शर्मा से सम्पन्न हुआ। शर्मा जी आज-कल बुलन्दशहर में सिटी मैजिस्ट्रेट के पद पर आसीन हैं।

घर का वातावरण कहिये या पिता का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव कहिये, प्रेम कुमारी जी ने इतिहास से ही एम० ए० किया किन्तु उनमें साहित्य-सृजन की यथेष्ट शक्ति है और उसका उपयोग भीवे हिन्दी की सेवा मे कर रही हैं। आप कहानी तथा कविता दोनों उच्चकोटि की लिखतीं हैं। इनके अतिरिक्त आप में निबन्धों के लिखने की भी सुन्दर प्रतिभा है। १४ वर्ष की अवस्था से ही आपने कविता तथा कहानी-निर्माण की ओर ध्यान दिया। दिसम्बर सन् १६४० ई० के 'विद्यार्थी' में आप की 'कब्र' नामक कहानी

सर्वप्रथम प्रकाशित हुई। आपने कविता तथा कहानी की रचना साथ-ही-साथ प्रारम्भ की।

प्रेम कुमारी जी की कहानियों पर उनकी काव्यात्मक भावुकता का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। उनकी भावुकता, भाषा-शैली, और प्रेम का कुछ अतिरंजित स्वरूप आदि सभी इस सत्य की ओर पूर्णतया संकेत करते हैं। किन्तु इस काव्यात्मकता से उनकी कहानी-कला को कोई हानि नहीं पहुँची; बल्कि इससे उसमे यथेष्ट स्निग्धता, संचरण-शीलता तथा कल्पनात्मक भावुकता आ गई है। आपकी गणना अब भी हिन्दी की नवोदित साहित्य-सेवी महिलाओ मे की जाती हैं। शनैः-शनैः आपकी कृतियो मे जीवन तथा जगत् के अनुभवों की वृद्धि होती जा रही है। आपकी भाषा भी उत्तरोत्तर अधिक संयत, नियमित और यथार्थवादी होती जा रही है।

प्रारम्भ से ही आप में सुन्दर कल्पना-शक्ति, भावुकता तथा संसार की गति-विधि के प्रति सजग-बुद्धि देखकर हम आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। १४-१५ वर्ष की अवस्था में की गई आप की कई रचनाये काफी प्रौढ़ मस्तिष्क एवं गहन अनुभूति का पर्याप्त परिचय देती हैं। इस समय की आपकी कविताओं में छायावादी पद्धति का अनुसरण मिलता है। भाषा, शब्द-चुनाव, तथा पंक्ति-निर्माण सभी में उक्त पद्धति के दर्शन होते हैं, किन्तु भाव तथा कल्पना के क्षेत्र में आप पूर्ण मौलिकता का परिचय देती हैं। आगे चल कर आपकी काव्य-कला का विशेष विकास हुआ।

प्रेम कुमारी जी ने अपनी कहानियो के विषय को प्रेम तथा मानव-जीवन की अन्य व्यक्तिगत या शीलगत समस्याओ तक ही स मित रखा है। राष्ट्रीयता भी उनकी कतिपय कहानि-यों में अपने स्वच्छ निखरे रूप मे मिलती है। आप की कल्पना मे प्रारम्भ में (Romance) आश्चर्य, प्रेम तथा खतरे के तत्व

विशेष रूप से मिलते है। प्रेम के क्षेत्र में आपको विशेष सफलता मिली है। इस विषय में उत्पन्न होने वाले मानसिक भावों तथा बाह्य कठिनाइयों का आपने ऐसा सुन्दर वर्णन किया है; जो पाठक पर शीघ्र ही यथेष्ट प्रभाव डाल देता है।

प्रेम कुमारी जी में मानव-जीवन को समझने तथा उसे पात्रों के माध्यम से चित्रित करने की अपूर्व क्षमता हमे प्रारम्भ से ही मिलती है। इस दृष्टि से वे जीवन को उसकी सर्वाङ्गीणता में अपनाती और उसके विभिन्न भाव एवं शीलगत पहलुओं को हमारे समक्ष मार्मिक ढंग से रखती हैं। आप जीवन के किसी एक क्षेत्र-मात्र को लेखिका नहीं हैं। यह अवश्य है कि कहीं पर एक पहलू तो कही पर दूसरा प्रधान हो जाता है। 'कब्र' नामक कहानी, जो आपके प्रथम प्रयत्नों में से एक है, प्रेम की एक दुःखान्त रचना है जिसमें प्रेमिका से बिछुड़ा हुआ प्रेमी कई वर्ष के बाद उससे मिलने पर बिलकुल नवीन परिस्थितियों के कारण उसे पहचान नहीं पाता। प्रेमिका पश्चात्ताप और वेदना से घुल-घुल कर मृत्यु-शय्या पर जा पड़ती है। इसी समय प्रेमी उसको पहचानता और पश्चात्ताप करता है; किन्तु 'अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।' उसका देहान्त हो जाता है। प्रेमी उसकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये संगमरमर का एक भव्य स्मारक बनवा देता है और आगे उसी के नाम पर विवाह नहीं करता। हो सकता है कि इस कहानी की प्रेरणा प्रेमकुमारी जी को दाम्पत्य प्रेम के प्रतीक ताजमहल से मिली हो। निश्चय ही यह कहानी आपकी कल्पनात्मकता, भाव-रमणीयता, प्रेम-तल्लीनता तथा बाल-सुलभ आश्चर्य के कारण सर्वदा हमारे आकर्षण एवं मनोरंजन का साधन रहेगी।

इस कहानी में प्रेम का वियोग-पहलू प्रधान है। प्रेमी-द्वय परिस्थितियों के आवर्त से एक दूसरे से बहुत समय के लिए

विलग हो जाते है। उनका यह विलगाव इस कहानी को अधिक मार्मिक रूप प्रदान करता है। यहाँ गोपी-कृष्ण-वियोग का स्मरण हो आता है। आखिर गोपिकायें भी तो एक बार कृष्ण से विलग होने के बाद फिर उनसे नहीं मिल पाती हैं। प्रेम के इस वेदनामय चित्र के साथ हमारे समक्ष जीवन के अन्य पहलू तथा अन्य प्रकार के अनुभव भी यथेष्ट यथार्थता के साथ रखे गये है जैसे विमाता का अत्याचार, घृणा तथा उपेक्षा, रोगी की अशान्ति क्षोभ, और कष्ट, दो मित्रो का पारस्परिक प्रेम एव मुक्त वार्तालाप आदि।

प्रारम्भ से लेकर आज तक प्रेम कुमारी जी की रचनाओं मे यथेष्ट भाव-संघर्ष मिलता है जो प्रायः पात्रो के स्वकथनों से भली-भाँति प्रकट हो जाता है। 'कब्र' मे रहीम अपने मन मे ही चिल्लाकर कहता है:—'तुम जा रहे हो एक अबला का दिल दुखा कर; क्या तुम ऐशो आराम से रह सकते हो?...... आदमी को कायर न बनना चाहिये। मैं अवश्य जाऊँगा। मुझे जाना ही होगा।' पात्रो के ये भाव-संघर्ष उनके चरित्र के छिपे रहस्यों को खोलकर हमारे समक्ष रख देते हैं। 'कब्र' मे इसी प्रकार के स्वकथन रज़िया से भी करवाये गये हैं, जो उसकी दिव्य प्रेम-भावना, प्रेमी की आराधना एवं उसके प्रति निष्ठा, सरलता, तथा प्रेम मे अविचल रहने के गुण को पूर्णतया प्रकट करते है।

इस प्रकार अपनी कल्पना तथा भावना के आधार पर प्रेम कुमारी जी प्रेम का दिव्य-स्वरूप हमारे सामने रखने में यथेष्ट सफल हुई हैं। अवश्य ही उनकी कल्पना ने सर्व-प्रथम इस प्रकार के सुन्दर भावो को मूर्त रूप दिया होगा। बाद में उनको लेखिका ने कहानी की परिधि मे जकड़ दिया। आपका यह मानव-प्रेम, सहानुभूति एवं करुणा आपके साहित्यिक व्यक्तित्व के प्राण है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में पीड़ित के लिये सर्वदा आपमें सहानुभूति मिलती है। कटुवादिनी, उपेक्षापूर्ण विमाता

के विरुद्ध आप रज़िया से सहानुभूति रखती है। प्रेमी से दूर उसकी चिन्ता एवं प्राप्ति-अभिलाषा मे अनेक कष्ट उठाने वाली रज़िया सर्वदा आपकी करुणा तथा सहानुभूति का पात्र रही।

अस्तु, आप अपने पात्रों मे अपने को तल्लीन कर लेती हैं। मौलिक साहित्यकार मे इस गुण का होना अति आवश्यक है। शेक्सपियर के पात्रों की सफलता का एक कारण यह भी है कि वह अपने विविध चरित्र के पात्रों से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। कौन नहीं विश्वास करेगा कि मूर्च्छित लक्ष्मण के पास बैठकर विलाप करने वाले राम के साथ गोस्वामी तुलसीदास भी रो रहे हैं। यह उन्हीं का रोदन है जो राम में दिखाई पड़ता है, अन्यथा पता नहीं वीर, धीर और मर्यादा-पुरुषोत्तम राम रोये भी थे या नही। या रोये ही थे तो क्या उन्हीं भावों के साथ जिनका प्रदर्शन गोस्वामी जी ने राम-चरित्र-मानस में किया है? प्रेम कुमारी जी में भी अनेक प्रकार के पात्रों की रचना करने की शक्ति है। ये पात्र विभिन्न चरित्र, तथा शील-स्वभाव के होते हैं और कलाकार के आन्तरिक जीवन, भाव तथा कल्पना को लेकर हमारे समक्ष जीवित रूप मे आते है और उसी रूप में हमारी सहानुभूति करुणा, तथा प्रतिहिंसा आदि के पात्र बन जाते हैं, जिस रूप मे लेखिका उन्हे हमारे समक्ष लाना चाहती है।

आपके पात्रो का वार्तालाप काफी प्रभावोत्पादक, उन्मुक्त एवं भाव-प्रस्फुटन मे सहायक होता है। इस विषय मे आप एक स्वाभाविक आवश्यकता के अनुसार आचरण करती हैं। कथनोपकथन कही तो बिल्कुल छोटा तथा कहीं अधिक विस्तृत होता है। इनमें हम साधारण बातों के वर्णन से लेकर बड़ी मार्मिक बातो तक का वर्णन पाते हैं। भाव-गहराई के कारण पात्रों का वार्तालाप प्रायः मार्मिक एवं प्रभावशाली होता है चाहे वह कोमल और स्निग्ध भावों से प्रेरित हो अथवा कठोर और निर्दय

भावो से। दोनों में हम भावों के जीवित तत्वों को पाते है। सारांश यह है कि लेखिका मे हृदय के भावों को कुरेद-कुरेद कर हमारे सामने रखने की अद्भुत शक्ति भरी हुई है—मृत्यु के निकट रज़िया अपने को पहचानने वाले प्रेमी रहीम से कहती है :—"मै तकलीफो को सहन न कर सकी और तुम्हारी खोज में घर से निकल पड़ी। किन्तु तुम न मिले, अब तुम्हारी ही खोज में जा रही हूँ।' रहीम चीख़ पड़ा। आपके पात्र अपने भावों के प्रदर्शन में काफी अनुशासन, संयम एवं मितव्ययता से काम लेते हैं। स्त्री पात्रो मे प्रायः उनकी परम्परागत स्त्री-सुलभ लज्जा भी होती है। इस कारण उनका वार्तालाप काफी संकेत-सूचक होता है। वे जितना कहती हैं उससे कई गुना भाव उनके हृदय में छिपा रहता है। कल्पना शील पाठक उसका अनुभव करता है और उससे उसमें सहानुभूति तथा करुणा का संचार होता है।

प्रेमकुमारी जी की कहानियाँ छोटी तथा अपने अर्थ में पूर्ण होती हैं। उनके अन्त के बाद पाठक में कोई जिज्ञासा नहीं रह जाती है। आपकी कहानियों में ऐसे पात्र या परिस्थिति नहीं आते जिनके विषय में पाठक की जिज्ञासा शान्त न कर दी जाती हो। व्यर्थ की बातों के वर्णन से आप सर्वदा दूर रहती हैं। पात्रों के वार्तालाप में भी ऐसी बातों से विलग ही रहती हैं जो उनके भाव-प्रस्फुटन, चरित्र-चित्रण या कहानी की कलात्मक आवश्यकता से सम्बन्ध न रखती हो। उनमें प्रायः दो पात्र मुख्य होते हैं। कभी-कभी एकाध पात्र अन्य मानवी भावो अथवा समस्याओं की अभिव्यंजना के लिये बढ़ा दिये जाते हैं, किन्तु उद्देश्य पूर्ण हो जाने के बाद उन्हें उसी प्रकार छोड़ भी दिया जाता है। वे पाठक के चित्त पर अपनी छाप अंकित कर उसकी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। बाद मे आने वाली कहानी की रूप-रेखा एव परिस्थिति-संचरण में उनका कोई प्रयोजन भी नही प्रतीत

होता। कुछ पात्र केवल सूचना अथवा वातावरण की पूर्ति के लिये आते हैं। इनका हमारे चित्त पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। लेखिका इनमें अपनी विशेष कल्पना एवं भावना भी नहीं भरती है।

प्रेमकुमारी जी पात्रों की परिस्थिति एवं वातावरण के निर्माण की ओर कम ध्यान देती हैं। आप उनके हृदय-व्यापारों को ही कलात्मक रूप देने में इतनी व्यस्त रहती हैं कि उनके चारों ओर के वातावरण पर आप विशेष ध्यान नहीं दे पातीं। अस्तु, कहानी पढ़ने के बाद सर्व-प्रथम उसमें चित्रित मानव-जीवन की चिर शाश्वत समस्या या सत्य तथा बाद में पात्र अपने सारे शारीरिक एवं भाव-गत सौन्दर्य या कुरूपता के साथ हमारे सामने आते है। फिर हम यह नहीं स्मरण कर पाते कि ये बातें किस स्थान पर या किस परिस्थिति मे हुई। अवश्य आप स्थान का नाम देती हैं तथा काल-परम्परा का निर्वाह भी करती हैं किन्तु स्थान एवं परिस्थिति आदि आपकी कल्पना से दीप्त न होने के कारण हमारे लिये आकर्षक नहीं बन पाते। प्रेमी 'रहीम' को खोजने के लिये प्रेमिका 'रज़िया' पेरिस जैसे भव्य नगर में जाती है और वहाँ नर्स का काम कर अपनी जीविका चलाती हैं; किन्तु लेखिका ने पेरिस के विषय में एक शब्द भी ऐसा नहीं कहा जो हमारी कल्पना को उद्दीप्त कर पेरिस की कोई मूर्ति हमारे चित्त में स्थापित कर सके। इसी प्रकार आपने उस अस्पताल तथा वहाँ के जीवन के विषय में कुछ नहीं लिखा जहाँ आपकी रज़िया-जैसी-नायिका कार्य कर रही थी।

हमारे इस कथन में अत्युक्ति न होगी कि वातावरण के वर्णन की ओर कम ध्यान देने के कारण प्रेमकुमारी जी की कहानियों को कलात्मक क्षति पहुँची है। इससे उनकी सर्वांगीण सुन्दरता एवं पूर्णता में बाधा पहुँची है। आपके पात्र इसी से ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे किसी भी स्थान या दुनिया में न हों।

आपकी वर्णन-शैली बिल्कुल सरल एवं भाव-प्रस्फुटन के लिये काफी उपयुक्त है। उसमें उच्च साहित्यिकता अवश्य नहीं है तथापि करुणा, प्रेम आदि के मृदु भावो के चित्रण काफी सशक्त और सजीव हैं। भाषा प्रभावोत्पादक होने से आपके भाव सीधे पाठक के मर्मस्थल पर चोट करते है। भाषा की कठोरताये, वक्रताये, अर्थ की दुरूहताये आदि उसके मार्ग मे कहीं भी बाधक नही होतीं। साधारण-से-साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति आपकी कहानियो का आनन्द उठा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो जीवन के रहस्यों को भली भाँति समझने वाला कोई व्यक्ति सरल साधारण भाषा मे कोई कहानी कह रहा है।

भाषा के इस सरल स्वरूप से लाभ के साथ कभी-कभी हानि भी होती है। आपकी भाषा में कम-से-कम ऐसे शब्द एवं वाक्य-समूह नहीं मिलते जो अपने आप पाठक की कल्पना को उद्दीप्त कर सकें तथा उसके मस्तिष्क मे मूर्त-विधान कर सके। ऐसी भाषा मृदु भावों को प्रकट करने मे अवश्य सफल होती है किन्तु वह मनुष्य के कठोर भावों एवं विविध दृश्यों का सफलता पूर्वक नहीं वर्णन कर सकती। भाषा की सरलता का यह प्रयोजन नहीं है कि अर्थ-अभिव्यंजना मे अशक्त और निष्प्राण शब्दो का प्रयोग किया जाय, वरन् इसका अभिप्राय यही होता है कि भाषा में व्यर्थ के कठोर शब्दों का प्रयोग कर पाठक की असुविधा न बढ़ाई जाय और रचना के मुख्य उद्देश्य को क्षत-विक्षत न किया जाय। शब्दो का प्रयोग अर्थ तथा भाव आदि के दृष्टि कोण से किया जाय। एक ही प्रकार की भाषा सभी भावों एवं विचारों के लिये ठीक नहीं हो सकती। प्रेम और रौद्र रस के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषायें ही होना चाहिये; केवल शब्दों की भिन्नता से काम न चलेगा। उसी प्रकार विचार-शील, तर्क-प्रधान विषय की भाषा भावावेश पूर्ण विषय की भाषा से भिन्न होती है। गद्य और पद्य

का यही स्वाभाविक भेद भी है। परम्परा से भाषा में व्यवहृत शब्द अपना विशेष अर्थ एवं वातावरण रखते हैं जो उनके पर्यायों से नहीं सिद्ध हो सकता। अस्तु, उक्त अर्थ और वातावरण को पूर्णतया उत्पन्न करने के लिये उन्हीं शब्दों का प्रयोग भी अनिवार्य है।

किन्तु प्रेमकुमारी जी की भाषा उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में ही इस प्रकार के दोषों से पूर्ण है। ऐसा होना उस समय स्वाभाविक भी था, क्योंकि आपने अत्यंत अल्प अवस्था से ही साहित्य-सृजन का प्रयत्न किया। बाद में आपकी भाषा अधिक परिष्कृत एवं स्वच्छ हो गई। उसकी विविध विषयों के वर्णन की शक्ति भी यथेष्ट रूप से बढ़ गई। आपकी कविताओं में प्रारम्भ से ही भाषा का उच्च रूप ही मिलता है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि आत्म भावाभिव्यंजन-पूर्ण छायावादी रचनाओं के लिये उतनी विविध विषय-व्यापी, बहुरूपी भाषा की आवश्यकता नहीं पड़ती; जितनी गल्प, निबन्ध या नाटक आदि की रचना में। क्योंकि इनका क्षेत्र जीवन की छोटी-से छोटी घटना से लेकर बड़ी-से-बड़ी स्थिति तक होता है। इसलिये भाषा पर पूर्ण आधिपत्य रखना गल्प-साहित्य-निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। कविता की भाषा एक प्रकार से निर्धारित सी हो जाती है। गेय पदों में तो वह और भी सीमित रहती है। सफलता के लिये केवल सुन्दर भाव तथा कल्पना चाहिये। यही कारण है कि आधुनिक युग में जितनी सफल कवियित्रियाँ हुईं, उतनी कहानी-लेखिकायें नहीं। सफल गद्य-रचना वर्षों के अध्ययन, लेखन, अभ्यास तथा गहन-जीवन-निरीक्षण से ही की जा सकती है।

—:०:—

"कब्र"

• "डॉक्टर साहब ! दर्द हो रहा है । ओफ ! डॉक्टर ! मुझे मरने दीजिये'" डॉक्टर ने खाँसते हुए पूछा 'क्यों, कहाँ दर्द है ?' उसने कहा 'फोड़े मे, ओफ बहुत दर्द है ! 'डॉक्टर ने कहा, 'अच्छा तो आप के फोड़े का सुबह आठ बजे ऑपरेशन होगा !'

आज रज़िया बहुत ही घबड़ा रही थी और साथ ही रो भी रही थी। इतने में डॉक्टर आ गये वह चीख़ उठी। 'या अल्लाह ! अब तुम ही मेरे प्राणों के रक्षक हो।' उसने कहा, 'डॉक्टर आप मेरा ऑपरेशन मत करिये अगर मैं मर रही हूँ तो मुझे मरने ही दीजिये क्योंकि अब मैं यहाँ ज्यादा रहना नही चाहती।' परन्तु डॉक्टर ने उसकी एक न भी सुनी और ऑपरेशन कर दिया जिसके कारण वह बेहोश हो गई था। उसी बेहोशी में वह कहने लगी, 'रहीम तुम सचमुच जा रहे हो, क्या तुम मुझे सचमुच ही मरने पर उतारू कर रहे हो ? अब तक मैंने हर एक मुसीबत का सामना किया परन्तु बइ मुसीबत बड़ी कठिन है ! इसका मुकाबला करना बड़ा मुश्किल है। मेरी ये सौतेली माँ मुझे कितनी तकलीफ़ देती है यह तुमसे छिपा नहीं है ! फिर भी तुम मेरे साथ अन्याय कर रहे हो। तुम्हारे जाने के बाद मेरा जीना मुश्किल है।' इतना कहते-कहते वह होश में आ गई। उसकी माँ ने सब बातें जो कि उसने बेहोशी की हालत मे कहीं थीं, सुन ली थी। इसलिये उसके होश आजाने पर उन्होंने उसको खूब खरी-खोटी सुनाई ! इन सब बातो को उसने ज़हर की तरह पान किया। परन्तु फोड़े की तकलीफ़ ने उसे मसल डाला और वह रोने लगी। आवाज सुन कर उसके वालिद आये और बोले, 'रज़िया यदि रोना है तो

उठता है कि रहीम तुम वाकई मे बड़े कड़े दिल के हो। तुम्हारे दिल में किसी के लिये मुहब्बत नही है। तुम जा रहे हो एक अबला का दिल दुखा कर। क्या तुम ऐशोआराम से रह सकते हो ? सोचो, उस बेचारी की क्या हालत होगो ? क्या वह तुम्हारे जाने के बाद सुखी रह सकेगी ? नही, तुम मत जाओ। फिर वह चिल्ला उठा, "आदमी को कायर न बनना चाहिये। मैं अवश्य जाऊँगा। मुझे जाना ही होगा।" लेकिन एक गरीब दिल के अरमानों को भी तो नहीं कुचला जा सकता है। चार बजे गाड़ी का वक्त होने वाला है, जब तक रजिया का देख आऊँ !

'निज़ाम ओ निज़ाम'। निज़ाम ने बाहर आते हुए कहा "कहो भाई रहीम कैसे हो, कब जा रहे हो।" इसी गाड़ी से—उसने सुपाड़ी का टुकड़ा मुँह में रखते हुए कहा। फिर उसने पूछा—'रजिया की तबियत कैसी है।' "भाई उसे तो आज बहुत तेज़ बुखार है ! चलो भाई जरा उसे देख लें।" उसके वहां पहुँचते रजिया ने आँख खोली और पूछा जा रहे हो रहीम ?, 'हाँ रजिया ! कभी २ याद कर लेना' रहीम ने कहा। उसने कहा "रहीम, शायद यह हमारा तुम्हारा आखिरी मिलन है। पता नहीं फिर तुम्हें देख पाऊँगी कि नहीं।" रहीम को आँखो में आँसू आ गये उसने कहा, "रजिया मैं फिर आऊँगा घबराओ नहीं।" "जाओ ज़रूर जाओ रहीम, तुम्हारा कर्तव्य है लेकिन जीत कर आना।" वह चला गया और बेचारी रजिया रोती रही !

आज रहीम को गये एक साल हो गया परन्तु वह न लौटा। रजिया को दिन-रात उसकी बाट जोहने में ही बिताने पड़ते थे। आखिर को जब वह निराश हो गई तो उसकी खोज में निकल चली ! रास्ते की तकलीफों को हँसते-हँसते सहन कर लिया। और फ्रांस जा पहुँची। फ्रांस में उसके सामने अपना पेट भरने का सवाल था।

वह डॉक्टरी के काम में बड़ी तेज़ थी इसीलिये उसने Hospital में नौकरी कर ली और उसी से गुज़ारा करने लगी। १ वर्ष बाद वह एक बड़ी डाक्टरनी हो गई और खुशी से दिन बिताने लगी। अब भी जब वह मरीज़ों के पास जाती है और वे उन्हें अपनी दर्द-भरी कहानियां सुनाते हैं तो उसका दिल बेचैन हो उठता है और वह सोचती है "क्या कभी वह फिर मिल सकेगा ?" और जब खाली रहती, तो खूब रोती।

आज आठ साल हुए रहीम वहाँ का एक बड़ा अफसर हो गया जो कि कभी कभी Hospiatl भी जाता था। उसके रङ्ग ढंग बदल गये थे। वह आजकल एक बड़ा आदमी था। उसके कई एक नौकर थे और महल थे। सचमुच उसे पहचानना बड़ा मुश्किल काम था। हाँ रज़िया तो पहचानी जा सकती थी परन्तु पहचानने वाला तो उसे सचमुच भूल चुका था लेकिन रज़िया के दिल में पुरानी बातें ज्यों-की-त्यों बनी थीं। कभी-कभी वह इतनी विकल हो उठती थी कि रो-रा कर अपना दिल हलका करती।

इसी तरह बहुत दिन बीत गये। रज़िया बीमार पड़ गई और उसकी हालत बहुत खराब हो गई। वही जो मरीज़ों को देखने जाती और धीरज देती थी उसी को आज मरीज़ धीरज दे रहे थे। आज नर्सों में वह फुर्ती थी जो कभी नहीं दिखलाई पड़ती थी। लेडी डाक्टर की हालत का हाल सुन कर रहीम भी उसे देखने गया। उस वक्त वह बेहोश थी और कह रही थी 'रहीम तुमने मुझे छोड़ कर अच्छा नहीं किया। मैं तकलीफो को सहन न कर सकी और तुम्हारी खोज में घर से निकल पड़ी। किन्तु तुम न मिले। अब तुम्हारी ही खोज में जा रही हूँ।' रहीम ये बातें सुन कर चीख पड़ा और बोला, 'रज़िया! मैं यहाँ हूँ आँखें खोलो, मुझे एक बार पहचानो, मैं ही तुम्हारा अभागा रहीम हूँ।'

उसने एक बार आँखे खोली और फिर बन्द कर लीं और कहा 'खोज ही तो लिया। अब कुछ काम नहीं है।' "यह क्या रज़िया! क्या तुम इस अभागे को छोड़ जाओगी ? नहीं, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकूंगा" वह रोने लगा। समय निकल चुका था "फिर पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गईं खेत"। उसकी साँस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगी और वह इतना ही कहने पाई थी कि फिर मिलेंगे कि उसके प्राण-पखेरू निकल गये। रहीम चीख़ पड़ा सब नर्सें अवाक् रह गईं और इस रहस्य को कोई भी न जान सका।

रहीम ने रज़िया की बहुत ही ख़ूबसूरत सफ़ेद पत्थर की एक क़ब्र बनवाई जो कि उसके कमरे के सामने थी।

वह रोज़ रात को कमरे की खिड़की खोल कर क़ब्र की ओर देखा करता है और आँसू बहाया करता है। अब भी जब ठंडी हवा चलती है, तो उन हवा के झोकों के साथ-साथ उसे मालूम होता है कि कोई बड़ी मीठी आवाज़ मे गा रहा है 'फिर पछताये होत, क्या जब चिड़िया चुग गईं खेत।' और जब बदली घिर आती है और नन्हीं-नन्ही बूंदे पड़ने लगती हैं तो उसे पता चलता है कि कोई बड़े वेग से कह रहा है कि फिर मिलेंगे। रहीम सोचता है कि क्या सचमुच यह आवाज़ 'क़ब्र' ही की है।



स्वर्गीया सभद्रा कुमारी चौहान

सुभद्रा कुमारी चौहान

सुभद्रा जी का जन्म सन् १६०४ ई० में प्रयाग में एक सभ्य एवं सम्भ्रान्त परिवार मे हुआ। आपके पिता ठाकुर रामनाथ-सिह जी यथेष्ट उदार तथा प्रगतिशील विचार के व्यक्ति थे। परिणामतः उनकी शिक्षा-दीक्षा का सुव्यवस्थित प्रबन्ध भी प्रारम्भ से ही हुआ। उनकी दो बहनें और हैं। उनको भी पढ़ाई-लिखाई की ओर ठाकुर साहब ने पूर्ण ध्यान दिया। यह कितने कुतूहल और हर्ष की बात है कि आगे चलकर सुभद्राकुमारी की तरह उनकी दोनों बहनो ने भी हिन्दी साहित्य की सेवा प्रारम्भ की और वे अब भी रचनाशील हैं।

सुभद्रा जी को क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में शिक्षा मिली। पढ़ने लिखने मे बाल्यावस्था से ही आपकी विशेष रुचि रहती थी। किसी भी विषय को भली भाँति ग्रहण करने तथा उससे अनुभूति प्राप्त करने की आपमें विशेष आन्तरिक शक्ति थी। क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज छोड़ने के बाद आपका विवाह खण्डवा-निवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान बी० ए०, एल० एल० बी० के साथ सम्पन्न हुआ।

हिन्दी कहानी-लेखिकाओं में आपका श्रेष्ठ स्थान है। आपके दो कहानी-संग्रह 'बिखरे मोती' तथा 'उन्मादिनी' प्रकाशित हो चुके हैं। 'बिखरे मोती' पर आपको पाँच सौ रुपये का सेकसरिया पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

सुभद्रा जी की कहानियो का क्षेत्र हमारे सामाजिक, पारिवारिक तथा राजनीतिक समस्याओं का लम्बा-चौड़ा प्रदेश

है। साथ ही आप ऐसी भी रचनायें करती हैं जो बच्चो के लिये विशेष आकर्षक हो सकती हैं। इनमे आपकी कल्पना-शक्ति कितनी ही आश्चर्यजनक एवं अविश्वसनीय बातों का भी प्रयोग करती है, किन्तु ऐसी कहानियो की संख्या कम है।

सामाजिक तथा राजनीतिक कहानियो में आपको विशेष सफलता मिली है। देश की पराधीनता, विवशता एवं अशिक्षा से ही आपका हृदय नहीं पीड़ित हुआ, वरन् स्त्रियों, अछूतो आदि पर होनेवाले अत्याचारो ने भी आपके दयामय हृदय को उत्पीड़ित किया है। इसकी प्रतिध्वनि हमे उनकी कतिपय कहानियो में पूर्णतया मिलती है।

समाज के पीड़ित व्यक्तियों तथा वर्गों के प्रति आपकी सच्ची सहानुभूति रहती है। उनकी मानसिक दशाओ, बाहरी परिस्थितियो आदि का जो सही चित्र आपकी कल्पना में आता है उसे ही आप पाठको के समक्ष प्रस्तुत करती है। निश्चय ही उसमें आपका पीड़ित हृदय झंकृत होता रहता है। घर की चहारदीवारी के अन्दर बन्द सासुओं अथवा घर की अन्य मालकिनों से पीड़ित, पतियों से उपेक्षित स्त्रियों अथवा विधवाओं के ज्वलंत एवं करुण जीवन से आपकी कहानियो के माध्यम द्वारा हम यथेष्ट रूप से परिचित हो सकते हैं।

आपका क्षेत्र मुंशी प्रेमचन्द की तरह विस्तृत नही है। उसमें उतनी गहराई तथा तगड़ी जीवन-दृष्टि नहीं है और न आपकी कहानियाँ उस अधिकार के साथ समाज एवं हमारे व्यक्तिगत जीवन की समस्याओ को पाठक के समक्ष रखती ही हैं, किन्तु सभी कहानी-लेखक बाबू प्रेमचन्द नहीं हो सकते। अवश्य ही आपकी कहानियों में अखिल भारतीय समाज अपने शत-शत रूपो, वर्गों एवं वर्गगत समस्याओं के साथ नहीं प्रकट हुआ है,

और न वे मानवी जीवन की अपरिमित विविधता तथा व्यापारों की अनेकरूपता को ही हमारे समक्ष रखती है जैसा कि प्रेम चन्द की कहानियाँ और कहानियों से बढ़कर उनके उपन्यास करते हैं, तथापि आपकी कहानियों में एक निश्चित सीमा के भीतर यथेष्ट विभिन्नता, रुचि-विपर्यय एवं जीवन का समीचीन चित्रण मिलता है।

वास्तव मे कहानी होती भी है जीवन के एक छोटे खण्ड से सम्बन्धित, चाहे उसमें कोई भाव या विचार-गुत्थी प्रकट की जाय एवं सुलझाई जाय अथवा राजनीतिक, सामाजिक आदि कोई बाह्य समस्या हमारे समक्ष रखी जाय और उसके समाधान की ओर संकेत किया जाय। किसी भी लेखक की अनेक कहानियों को पढ़ने के बाद उसकी साहित्यिक सफलता अथवा असफलता पर विचार किया जा सकता है, जबकि उसका एक विस्तृत उपन्यास काफी सीमा तक जीवन तथा समाज की विपुल समस्याओं की झाँकी दे सकता हो। सुभद्रा जी की कई कहानियों को पढ़ने से विदित होता है कि आपकी जीवन-दृष्टि सामाजिक तथा राजनीतिक होते हुए भी सम्पूर्ण-व्यापी नहीं है। वह प्रायः सामाजिक समस्याओं तक अर्थात् समाज के विभिन्न व्यक्तियों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों तक ही सीमित रहती है।

सुभद्रा जी ने समाज की आर्थिक समस्या पर कलम नहीं चलाई। उनकी दृष्टि विशेष रूप से जीवन के नैतिक एवं चारित्रियक अथवा भावगत स्वरूपों तक रह गई है। समाज का एक वर्ग किस निःशब्द सूक्ष्मता के साथ दूसरे का शोषण कर रहा है, इस ओर आपका ध्यान कम नहीं है।

यद्यपि आपको पुरुष तथा स्त्री दोनो के चरित्र-चित्रण में सफलता मिली है किन्तु आपको स्त्री-पात्रों के चरित्र में अधिक सफलता मिली है। घर के भीतर की दशाओं को आप अत्यन्

सूक्ष्मता एवं पहचान के साथ चित्रित करती हैं। ऐसे स्थलों पर पूरा पारिवारिक वातावरण उत्पन्न हो गया है, जिसमें हम अपने भीतरी कौटुम्बिक जीवन का चित्र पाते हैं।

सुभद्रा जी की रचनाओं पर भी उनके व्यक्तिगत जीवन की पूर्ण छाप है। उनकी कहानियों में उनका आर्द्र एवं वीर रूप अधिक मात्रा में उत्पन्न हुआ है। उनकी कविताओं में करुणा, भूतकालीन शैशवगत इच्छा, आत्म समर्पण, श्रद्धा और आत्म-बलिदान इत्यादि के भाव अधिक मात्रा मे मिलते हैं। यह स्वाभाविक भी है। किन्तु कहानियों में आपका आलोचक, एवं विवेचक का रूप देखने को मिलता है। सरलता निरहंकारता शत्रु के प्रति भी आर्जवता आपकी रचनाओं का प्राण है। कहानियों में हमे आपकी नाटकीयता के दर्शन होते हैं। आपकी वार्तालाप-शैली यथेष्ट महत्व रखती है। उसमे स्वाभाविकता तथा सरलता है और जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में उसका निर्वाह भी आपने उचित रूप से किया है।

सुभद्रा जी की भाषा सरल एवं परिष्कृत होती है। साधारण पाठक भी उन्हें पढ़ कर समझ सकता है। आपकी भाषा मे प्रवाह काफी मात्रा मे मिलता है। प्रायः कवियों या कवियित्रियों के गद्य मे अनावश्यक माधुर्य की प्रवृत्ति मिलती है; किन्तु आपकी कहानियों में ऐसी बात नहीं हैं, फिर भी उसमें रूखापन न होकर समुचित माधुर्य मिलता ही है। भाषा सरल होते हुए भ वशुद्ध सहित्यिक है। उसमें प्रेमचन्द-स्कूल का उर्दूपन नहीं मिलता है, हालाँकि उन्होंने उर्दू के शब्दों का बहिष्कार नहीं किया है। भाषा सर्वत्र भावों की वशवर्त्तिनी हो करचलती है और उसमे काफी प्रवाह उपलब्ध होता है।

प्रस्तुत 'तीन बच्चे' शीर्षक कहानी सुभद्रा जी की एक अत्यन्त करुण और सफल रचना है।

तीन बच्चे

मेरे बच्चों मे से प्रत्येक ने अपने लिए फूलों का एक-एक बगीचा लगाया था। बगीचा क्या फूलों की छोटी-छोटी क्यारियाँ थीं। एक दिन सबेरे हम लोगों ने देखा कि उन क्यारियों में फूल खिल आये है।

बच्चे ही तो ठहरे! हर एक को अपनी अपनी-क्यारी के फूल अधिक सुन्दर जान पड़े—और इसी बात पर उन लोगो में लड़ाई छिड़ गई। हर एक का कहना था कि उसकी क्यारी के फूल सबसे अधिक सुन्दर हैं।

बात बढ़ते-बढ़ते फूलों से हटकर दूसरे ही क्षेत्र में जा पहुँची। एक हिटलर बना, तो दूसरा मुसोलिनी और तीसरा स्टालिन। और मुझे इन तीनों की माँ बनने का सौभाग्य, एक साथ ही प्राप्त हो गया।

संग्राम मे विषैले वाक्यो का प्रयोग होते सुनकर, मुझे चौके का काम छोड़, बगीचे की ओर जाना पड़ा। मुझे देखते ही सब एक साथ, अपने-अपने पक्ष का समर्थन कर, न्याय की दुहाई देने लगे। न्याय का कार्य उतना आसान न था, जितना एक अदालत के जज का होता है। जज के पथ-प्रदर्शन के लिए तो कानून होते हैं और नज़ीरें भी। चाहे लकीर की फकीरी मे अन्याय ही क्यों न हो जाय, पर उसका मार्ग स्पष्ट रहता है। मेरे सामने न कानून था, न नज़ीर—फिर भी मुझे यह लड़ाई किसी-न-किसी प्रकार समाप्त करनी थी—और न्याय-पूर्वक!

मैं सोच ही रही थी कि निर्णयके लिए जूरी क्यों न नियत कर दिये जायँ कि इतने मे ही बच्चो के काका जी आते दिखे। चीखना चिल्लाना तो दूर रहा उन्हें किसी का पंचम स्वर के ऊपर बोलना तक पसंद नहीं है। बच्चों को लड़ते देखकर बोले—"अच्छा, यह लड़ाई किस लिए है ? यदि तुम लोग लड़े-भिड़े तो मैं तुम्हारी माँ को सत्याग्रह न करने दूँगा।"

मेरे हिटलर-मुसोलिनी शान्त हो गये। माँ के बिना जिन्हें स्कूल जाने तक मे कष्ट होता है, माँ के बिना जिनका एक भी काम नहीं हो सकता, वही मेरे बच्चे जो से चाहते थे कि मैं सत्याग्रह करूँ और जेल जाऊँ।

अब मैंने उनसे पूछा कि कोई शिकायत तो नहीं है, तो सब एक स्वर से बोल उठे—"नहीं माँ, सभी क्यारियों के फूल बहुत सुन्दर हैं। तुम सत्याग्रह करो और जल्दी जेल जाओ।"

हम सब भीतर जाने को उठ ही रहे थे कि बाहर से गाने की आवाज़ आई—गाना कोरस में था और स्वर था बच्चों का-सा-

"भगवान् दया करना इतनी,
मोरी नैया को पार लगा देना।"

और अब तो हम सभी दरवाज़े की ओर दौड़ पड़े। इसी समय दूसरा पद सुनाई पड़ा—'मैं तो डूबत हूँ मँझधार पड़ी, मोरी बैयाँ पकड़ के उठा लेना।"

बाहर आकर देखा—तीन बच्चे थे—दो लड़कियाँ और एक लड़का। बड़ी लड़की होगी दस बरस की; छोटी आठ और सात के बीच में थी और लड़का, वह बड़ी की गोद में हो था—कोई पाँच साल का। हम लोगों को देखते ही उन्होंने गाना बन्द कर दिया। लड़के को गोद से उतारकर, बड़ी ने ज़मीन से माथा टेक कर हमें प्रणाम किया। उसकी देखा-देखी छोटी लड़की और

लड़के ने भी ज़मीन से माथा टेका और तीनों ने अपने चीथड़ों में छिपे हुए पेट को दिखाकर यह बतलाया कि वे भूखे हैं। बड़ी के हाथ मे एक झोला था और छोटी के हाथ मे टीन का एक डिब्बा। उन्होने एक बार झोला की ओर देखा जो बिलकुल खाली जान पड़ता था, फिर हमारी ओर याचना की दृष्टि से देखने लगे। मैंने उनसे कहा—"तुम गाती तो बहुत अच्छा हो, और भी कोई गाना जानती हो ?"

बड़ी के बोलने के पहले ही छोटी बोल उठी—" हमें भजन भी आते हैं, बड़ी मालकिन !" और आदेश पाये बिना ही वे दोनों गाने लगीं—

"कमर कस ले रे बिलोची, तेरे सङ्ग चलूँगी।
तेरे सङ्ग चलूँगी रे तेरे साथ चलूँगी।
कमर कस ले......।

मेरे साथ चलेगी तो तेरी अम्माँ लड़ेगी...।"

हम लोगों की हँसी अब दबाये न दबी। अम्माँ के लड़ने की बात सुनते ही वह फूट पड़ी। वे सभी शर्माकर चुप हो गये। उनकी दृष्टि से ऐसा जान पड़ता था कि वे किसी अज्ञात भूल से दुखी हो गये हैं। मैंने हँसी रोककर, आश्वासन के स्वर में कहा—'बहुत अच्छा गाया।' मेरी बात सुनते ही वे सब फिर बैठकर लगे ज़मीन से माथा टेकने ! मैंने पूछा—"तुम्हें क्या चाहिये—पका हुआ खाना या कच्चा ?'

बड़ी ने फिर ज़मीन से माथा टेककर कहा—" कुछ भी खा को चाहिये, बड़ी मालकिन ! कल से कुछ नहीं खाया है।" मैंने बच्चों से कहा कि इन्हें दो-दो पूरियाँ लाकर दे दो, और मैं अन्दर चली गई।

बच्चो ने उन्हें कितनी कितनी पूरियाँ दीं, यह तो मै नहीं कह सकती पर जब चौके में जाकर देखा तो न डिब्बे में एक भी पूरी थी और न कटोरे में तरकारी।

(२)

दूसरे दिन हम लोग सुबह की चाय पीकर उठने ही वाले थे कि वे बाल-गवैये फिर आ पहुँचे। हमें कोमल स्वर में सुनाई पड़ा—

'साँवरिया हमें भूल गयो, सखि साँवरिया।
बिंदराबन की कुञ्ज गलिन में बाज रही है बाँसुरिया।
हमें भूल गयो सखि, साँवरिया।"

मैंने अपने बच्चों से कहा—कल तुमने उन्हे खूब पूरियाँ खिलाई थीं न! अब वे सब फिर आ गये। जैसे उनके लिए यहाँ रोज़ ही पूरियाँ धरी हैं।"

"धरी तो हैं, माँ!" एक साथ ही बच्चों के मुँह से निकला और सबके हाथ एक साथ ही पूरी के डिब्बे की ओर बढ़े।

मैंने उन्हे रोकते हुए कहा—'ठहरो-ठहरो! रोज़-रोज उन्हें पूरियाँ खिलाओगे तो वे दर्वाज़ा ही न छोड़ेंगे। उन्हे चावल या आटा देकर जाने को कह दो।'

एक बच्चा बोल उठा—'बेचारे छोटे-छोटे बच्चे न जाने उनकी माँ भी है या नहीं। वे भला कहाँ पकायेंगे ?'

दूसरा ताने के स्वर में बोला—'इससे तो यही अच्छा है कि उन्हें कुछ भी न दिया जाय।'

सबसे छोटा बोला—"तुम भी माँ होकर ऐसा क्यों कहती हो, माँ! उन बेचारों को भी भूख लगी होगी। न हो, हमारे हिस्से की ही दे दो।"

लड़की सब में समझदार थी। उसकी दृष्टि यही चाह रही थी कि माँ का इशारा भर मिले और पूरियों का डिब्बा ले जाकर वह उन बच्चों को खिला दे।

मैंने उदासीनता से कहा—'पूरियाँ ही दे दो, पर शाम को फिर तुम्हारे लिये नाश्ता बनाना पड़ेगा।'

'माँ, हम शाम को नाश्ता नहीं करेंगे' एकस्वर में एक साथ बच्चों ने कहा और हाथ में पूरियाँ लिये हुए सब-के-सब दरवाज़े की ओर दौड़ पड़े।

चौके का काम निपटाकर, मैं भी बाहर गई। देखा, वे तीनों बड़े मज़े में पूरियाँ खा रहे थे और मेरे बच्चे भी बड़े उत्साह से उन्हें परस रहे थे। जब वे खा-पीकर उठे तो मैंने कहा—'देखो भाई! तुमने पूरियाँ तो खा लीं। अब बिना गाना सुनाये न जाने पाओगी।' उन्होंने कृतज्ञता-पूर्वक माथा ज़मीन पर टेककर गाना शुरू किया—

'अब न रहूँगी कान्हा, तोरी नगरिया।
हाट-बाट मोरी गैल न छोड़े,
पनघट पर मोरी फोरे गगरिया।
अब न रहूँगी...॥'

गाना गा चुकने के बाद उन्होंने फिर ज़मीन से माथा टेका, जैसे हमें आशीर्वाद देकर जाने के लिये उद्यत हों, पर मैंने उन्हें रोककर पूछा—'क्या तुम तीनों भाई-बहन हो?'

'हाँ, बड़ी मालकिन'—बड़ी लड़की ने कहा।

मैंने पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है?' अपना नाम उसने 'ईठी', छोटी बहिन का नाम 'सीठी' और भाई का नाम 'प्रेमा' बताया।

'इठी', सीठी', और 'प्रेमा', उनका नाम दुहराते हुए मैंने पूछा—"क्या तुम्हारे माँ-बाप कोई नहीं हैं ? तुम कल भी अकेले आये थे, और आज भी अकेले आये हो।"

छोटी लड़की बड़ी तत्परता से बोल उठी—"माँ भी हैं और बाप भी हैं, बड़ी मालकिन-हमारे सब कोई हैं।"

"कहाँ हैं तुम्हारे माँ-बाप, जो तुम्हें इस तरह अकेले फिरने को भेज देते हैं ?"

"बाप अमरावती मे है और माँ···"

"अमरावती में तुम्हारा बाप क्या करता है ?" मेरा छोटा लड़का बीच मे ही पूछ बैठा।

"जेल में है, छोटे बाबू।" बडी लड़की ने उत्तर दिया।

"जेल में है ?" मैंने कुछ अनास्था से पूछा—"जेल क्यों हुई उसे ?"

लड़की बोली—"वह दारू जो पीता था और दारू पीकर वह चुप भी नहीं रहता था। दङ्गा करता था, माँ को मारता था, गाली बकता था और इसी लिये तो...(लड़की आँख उठाकर मेरी ओर देखते हुए बोली) बड़ी मालकिन, पुलिसवालों ने उसे पकड़ा और सब लोग कहते है कि पुलिसवालों ने ठीक किया।"

"और तुम्हारी माँ, वह अब कहाँ है ?" मैंने पूछा।

लड़की बोली—"माँ ?...वह भी तो जेल में है और उस के साथ हमारा सबसे छोटा भाई भी है। वह तो (अपने भाई की ओर उँगली दिखाकर लड़की ने कहा) प्रेमा से भी छोटा है। वह रोता नहीं। इससे अच्छा है।"

"बेचारे बच्चे !" मेरे मुँह से निकल पड़ा—"माँ-बाप दोनों जेल में और ये अनाथ बच्चे सड़क पर भीख माँगते फिरते हैं।"

मैंने फिर पूछा—"तुम्हारी माँ ने क्या किया था?"

लड़की बोली—"हमारी माँ ने पुलिसवाले को मारा था—जिसने हमारे बाप को पकड़ा था न, उसी को। और फिर वे माँ को भी पकड़ ले गये। बड़े बुरे होते हैं पुलिसवाले—हमारी माँ को भी ले गये। माँ के बिना हमको भी बुरा लगता है पर यह प्रेमा तो रात-दिन रोता ही रहता है!"

मैंने लड़के की ओर देखा—बेचारा छोटा-सा बच्चा, मुश्किल से पाँच बरस का, फटे चीथड़े में लपटा हुआ; सिर में महीनों से तेल का नाम नहीं; रूखे बिखरे बाल; न जाने कब से नहाया नहीं था, शरीर पर मैल की एक तह-सी जम गई थी; गालों पर आँसुओं के निशान बने हुए थे, आँसुओं के साथ-साथ उस स्थान की मैल जो धुल गई थी। मुझे उस बच्चे पर बड़ी दया आई। मैंने उस लड़की से पूछा—"तुम लोग अपनी माँ से जेल में मिलने नहीं जातीं?"

छोटी बोल उठी—"जाती तो हैं बड़ी मालकिन।" बड़ी ने कहा—तीन महीने में एक बार मुलाकात होती है। एक बार मुलाकात करने गये थे; दूसरी बार तीन महीने के बाद जब हम लोग गये तब मालूम हुआ कि माँ को यहाँ की जेल में भेज दिया गया है। तो हम लोग सब काली माँ साथ यहाँ चले आये। काली माँ भी भीख माँगती है।"

"तुम लोग रात को कहाँ रहती हो? सोती कहाँ हो? तुम्हें डर नहीं लगता?" मैंने पूछा।

बड़ी लड़की ने कहा—'जेल के पास एक नाला है। हम लोग रात को वहीं पुल के नीचे माँ की बातें करते-करते सो जाते हैं। कभी-कभी काली माँ भी आ जाती है, पर वह रोज़ नहीं आती।"

"माँ की सज़ा कितने दिन की है ?"

"दो साल का" बड़ी लड़की ने कहा, "हम रोज़ जेल को देखते हैं। हमारी माँ वहीं तो हैं। जब माँ छूटेगी तो हम उसको साथ लेकर देश जायँगे।" एक प्रकार की खुशी से बालिका पुलकित हो उठी। अपनी माँ को लेकर जैसे वह सचमुच देश जाने की तैयारी कर रही हो।

मैंने लड़की से पूछा—"तुम लोग नहाती हो कभी ?"

संकोच से बड़ी लड़की चुप रही। छोटी ने कहा—"हमारे पास दूसरे कपड़े नहीं हैं न।"

मेरा इशारा पाते ही मेरे बच्चों ने अपने पुराने कपड़ों में से, उनके पहनने के लिए, बहुत से कपड़े ला दिये।

मेरा चित्त उदास हो गया। मैं कमरे मे बैठकर कुछ सोचने लगी और वे बच्चे कपड़े लेकर खुशी-खुशी चले गये।

कुछ दूर से गाने की आवाज़ आई—
"मैं तो डूबत हूँ मँझधार पड़ी,
मोरी बैयाँ पकड़ के उठा लेना।"

बहुत से सुन्दर-सुन्दर पद पढ़े, लिखे और सुने थे। पर स्वर और आत्मा का ऐसा संयोग तो कहीं नहीं देखा था, शब्द और वस्तु का ऐसा मेल तो कभी चित्रित नहीं हुआ।

मैं उन्हें बुलाने के लिए झपटी, परन्तु तब तक वे दूर निकल गये थे।

(३)

इस घटना के दूसरे ही दिन, मैं भी युद्ध-विरोधी सत्याग्रह करके, जेल की अतिथि बनी, मेरे और बच्चों ने तो हँसी-खुशी से

बिदाई दी पर सबसे छोटी मिनू बहुत छोटी होने के कारण, मुझे छोड़कर घर मे न रह सकती थी। अतएव वह भी मेरे साथ ही गई।

उस समय जबलपुर जेल में कोई अन्य राज-बन्दिनी न थी। अकेली होने के कारण मैं अस्पताल मे रखी गई। मेरी सेवा के लिए दो साधारण कैदी स्त्रियाँ रात में मेरे साथ रहती थीं। दिन में सब लोग एक साथ रह सकते थे।

कैदखाने की दुनिया भी एक विचित्र ही वस्तु है।

यह कौन है? चोर!

यह? यह चरस बेचती थी और इसने एक नवजात शिशु की हत्या करने की चेष्टा की थी, पर माँ होकर यह हत्या कर सकती थी—इसका मुझे विश्वास न हुआ।

और यह लड़की? यह तो अभी बहुत कम उमर की है! इसने क्या किया था? इसने अपने पति और सास को जहर दिया था! मैं काँप उठी। विधाता! क्या यह सचमुच स्त्रियाँ हैं? क्या तुम्हारी ही आज्ञा से इनका भी सृजन हुआ था?

किन्तु, इसी समय जैसे कोई अन्दर से बोल उठा—'यह तसवीर का एक ही पहलू है—इसकी दूसरी ओर भी देखो! संभव है ये निर्दोष हों; संभव है ये देवियाँ हों।'

मेरी सेवा के लिये जो दो औरतें तैनात थीं, उनमें से एक तो अल्हड़-सी थी, जिसे कुछ काम-काज न आता था पर दूसरी समझदार थी। वह प्रौढ़ा थी। उसकी गोद में भी एक बच्चा था, वह बड़ी फिक्र से सब काम करती थी। वह अधिकतर चुप रहती थी जैसे सदा मन-ही-मन कुछ सोचा करती हो। मिनू को तो

उसने इस प्रकार हिला लिया था जैसे वह उसी की बच्ची हो। उसका खुद का बच्चा पाँव पाँव चलता और मिनू चलती उसकी गोदी पर। वह पानी भरती तो मिनू उसके साथ होती, दाल दलती तो मिनू उसके साथ और बरतन मलती तो मिनू भी उसके साथ छोटी-छोटी कटोरियाँ और गिलास मलती दीख पड़ती। अन्त को बात इतनी बढ़ी कि वह मिनू को अपनी पीठ से बाँधकर झाड़ू देने लगी। उसका नाम था—लखिया।

लखिया और मिनू के इस स्नेह-संबंध से, लखिया के बच्चे को जो अभाव ज्ञात हुआ उसकी पूर्ति मैं उसे मिनू के फल और मिठाइयाँ दे-देकर करने लगी। वह प्रायः मेरे ही पास खेला करता। फल और मिठाइयाँ खाने से इस बच्चे को और पानी भरने, बरतन मलने तथा बगीचा सींचने से मिनू को थोड़े ही दिनों में स्वास्थ्य का लाभ होता दिखाई पड़ा।

मैं बहुत सोचती थी कि यह लखिया कौन है! वह जेल क्यों आई! एक दिन अचानक मैंने मेट्रन से पूछा, जिसका उत्तर मिला "ओह, यह बड़ी खतरनाक औरत है। इसने पुलिस को मारा है—पुलिस को। पर हमने उसका दिमाग़ ठीक कर दिया है। आपको कोई तकलीफ तो नहीं देती?"

अचानक मुझे उन बच्चों का खयाल आ गया। उनकी माँ भी तो पुलिस को मारने के कारण जेल भेजी गई थी और साथ में भी तो एक छोटा सा बच्चा था। मैंने कई बार पूछना चाहा पर लखिया की गंभीर और उदास मुद्रा देखकर, मेरी हिम्मत एक बार भी न हुई।

एक दिन रात को खूब पानी बरसा। खूब दहाड़-दहाड़ कर बादल गरजे और कड़क-कड़क कर बिजली चमकी। मुझे अपने

बच्चों की याद आ गई। छोटा लड़का डरा होगा। दूसरे पलँग पर सोने पर भी वह बादलों के गरजते ही मेरे पास आकर सो जाता था। इसके साथ मुझे उन तीनो बच्चों की भी याद आई जो बेचारे पुल के नीचे सोते थे! कहीं...आगे सोचने को मेरी हिम्मत न पड़ी। मैंने मन-ही-मन प्रार्थना की "हे ईश्वर सब माओं के बच्चों को अच्छी तरह रख और सबके बाद मेरे बच्चों की भी रक्षा कर।"

(४)

जेल मे मेरे पास अखबार आया करते थे। जेल की सभी कैदी स्त्रियाँ लड़ाई की खबरें सुनने को उत्सुक रहा करती थीं। उन्हें विश्वास था कि एक दिन ऐसा होगा जब जेल के फाटक टूट जायँगे और अवधि से पहले ही उनका छुटकारा हो जायगा। मैं भी उन्हें योरप की लड़ाई और भारत के सत्याग्रह की खबरें सुना दिया करती थी।

उस दिन शाम को अखबार आया और पढ़ते-पढ़ते मेरा जी धक से रह गया! जबलपुर की ही खबर थी—

'कल रात एकाएक पानी बरसा और खूब बरसा। जेल के पास के नाले में तीन गरीब बच्चे बह गये। उन तीनो की लाशें मिली हैं। बहुत खोज करने पर भी उनकी शिनाख्त नहीं हो सकी। दो लड़कियाँ हैं और एक लड़का। ऐसा सुना गया है कि वे गाना गाकर भीख माँगा करते थे।'

मेरे घर पर आकर गानेवाले उन तीनों बच्चों का चित्र हठात् मेरी आँखों के सामने खिच गया और ऐसा जान पड़ा जैसे दूर से कोई गा रहा है—

"मैं तो डूबत हूँ मँझधार पड़ी,
मोरी बैयाँ पकड़ के उठा लेना।"

अख़बार रखकर मैं आँसू रोकने का प्रयत्न करने लगी। अचानक मेरे मुँह से निकल गया—'बेचारे बच्चे।'

लखिया पास ही बैठी मेरे लिए चाय तैयार कर रही थी। उसने पूछा—"क्या खबर है, बाई साहब! अरे, उदास क्यों हो गईं? बच्चों की याद आ रही है क्या?"

मैं उसे कुछ भी उत्तर न दे सकी? वह फिर बोली—"थोड़े ही दिन तो और है, बाई साहब! कट ही जायँगे? फिर बच्चे अपने बाप के साथ तो हैं, फिकर क्यों करती हो?"

उसकी ओर देखने की मेरी हिम्मत नहीं थी पर मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे उसने बात खतम होते-न-होते एक गहरी साँस ली और आँखों के आँसू पोछ लिए। मैंने अपनी सब शक्ति संचित करके उससे पूछा—"लखिया तेरे और बच्चे हैं, या यही एक है?"

आँखों में आँसू और ओठों पर एक क्षीण मुस्कुराहट के साथ वह बोली—"एक ही क्यों बाई साहब; (मेरी बच्ची की ओर इशारा करके) यह बिटिया भी तो है।"

मैंने कहा—"ये तो जेल के भीतर हैं? जेल के बाहर कितने हैं?"

लखिया एक गहरी साँस लेकर बोली—"जेल के बाहर बाई साहब! वो तो भगवान के हैं—अपने कैसे कहूँ?"

और इसके बाद वह अखबार की खबर पूछती ही रह गई पर मैं उसे कुछ भी न बतला सकी।

—::०::—



सुश्री विमला रैना एम० ए०

विमला रैना

सुश्री विमला जी का जन्म २६ सितम्बर सन् १६१२ ई० को प्रयाग में एक सुसभ्य एवं भद्र कश्मीरी परिवार में हुआ। आपके पिता पण्डित पृथ्वी नाथ जी कौल इस समय भी प्रयाग में ही हैं। आपके पितामह पं० विश्वम्भर नाथ जी प्रयाग के अग्रगण्य बैरिस्टरो मे रह चुके हैं। विमला जी की शिक्षा-दीक्षा प्रयाग में ही हुई। इस ओर आपके पिता ने पूर्ण ध्यान दिया। आप शैशव मे सेंट मैरी कान्वेण्ट मे पढ़ने के लिये भेजी गई। तत्पश्चात् आपने क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज से इण्टरमीडियेट की परीक्षा उत्तीर्ण की। एम० ए० आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से अंग्रेजी मे सन् १६३४ ई० मे पास किया। कक्षा मे प्रथम स्थान की अधिकारिणी होने से आपको एक स्वर्ण-पदक पुरस्कार के रूप में मिला। एम० ए० मे अग्रेजी लेने का कारण अंग्रेजी का अन्ताराष्ट्रीय महत्व, साहित्य-विशदता एवं गम्भीरता थी। आप में हिन्दी के प्रति सर्वदा विशेष प्रेम रहा। बी० ए० तक आपने हिन्दी का अध्ययन भी किया।

मौलिक साहित्य-सृजन की प्रवृत्ति आप में उच्च कक्षाओं में पहुँचने पर हुई। अंग्रेजी की तुलना मे हिन्दी को पिछड़ी हुई देखकर आपको विशेष कष्ट हुआ। अनेक कमियों मे हिन्दी मे मौलिक नाटको का अभाव भी था, जो अंग्रेजी साहित्य को विशेष सम्पन्न बनाते हैं। आपने उसी समय मौलिक नाटको के सृजन का संकल्प किया और काफी सीमा तक उसमें सफल भी हुई। नाटक-रचना आपके साहित्यिक क्रिया-कलाप की एक विशेषता है जो अन्य स्त्री-साहित्यकारो में नहीं मिलती। स्त्रियाँ केवल

हिन्दी में ही नही अपितु विश्व-साहित्य में नाटक-रचना में नगण्य-सी हैं। उन्हे सफलता यदि मिली है तो काव्य एवं गल्प-साहित्य के निर्माण में। यद्यपि रैना जी के नाटक उच्चतम कोटि के नहीं हैं तथापि उनका प्रयत्न अवश्य श्लाघ्य एवं स्पृहणीय है।

विमला जी का विवाह सन् १६३५ में श्री जे० यम० रैना जी साथ हुआ। आपके पति महोदय इस समय आगरा के ज़िलाधीश हैं। आप अपने पति के साथ आगरा मे ही रहती हैं। जैसा कि ऊपर स्पष्ट कर दिया गया है, आपने सर्वप्रथम, नाटकों की रचना की। आपका प्रथम नाटक 'निर्वासिता' सन् १६४५ ई० मे 'रेड क्रास' के सहयोग-दान के रूप में लिखा गया। दर्शकों एवं कला-पारखियो ने इसकी यथेष्ट प्रशंसा कर आपके उत्साह में,वृद्धि की। सन् १६४६ मे आपका प्रथम नाटक 'निर्वासिता' अलीगढ़ से प्रकाशित भी हुआ। डा० अमर नाथ झा, डा० ताराचन्द्र, श्री सुमित्रा नन्दन पन्त आदि महानुभावों से प्रेरणा पाकर आपने यथेष्ट लगन के साथ नाटक-रचना प्रारम्भ कर दो। अब तक आपने ६ मौलिक नाटको का सृजन किया हैं। उनके नाम निम्नांकित हैं:—

(१) निर्वासिता (२) खानिहर (३) उद्धार (४) कौन है ? (५) समस्या (६) अनन्त (७) न्याय (८) क्यों (६) आज शाम को।

सर्व प्रथम 'खानिहर' ने हिन्दी-जगत् का ध्यान आकर्षित किया। 'कौन है' की रचना काश्मीर- सहायता के निमित्त की गयी थी। 'अनन्त' महारानी लक्ष्मी बाई झाँसी के जीवन-चरित्र तथा महत्वाकांक्षाओ से सम्बन्ध रखता है। यह राजपूताना तथा विन्ध्य प्रदेश की हाई स्कूल (मैट्रीकुलेशन) की कक्षाओं में पाठ्य

पुस्तक के रूप मे निर्धारित कर दी गई है। 'न्याय' एक सामाजिक एकांकी नाटक है जिसे चित्रावनी लिमिटेड ने फिल्म के लिये खरीद लिया। 'क्यों' भी एक सामाजिक एकांकी नाटक है।

नाटको के पश्चात् आपने कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया। आपकी कहानियो का संग्रह हम 'तुम और वो' प्रकाशित हो चुका है हिन्दी। तथा अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में आपने कुछ कविताएं भी लिखी हैं। 'रिद्‌मिक लाइट्स नामक एक कविता-संग्रह भी आपने प्रकाशित किया जिसमे आपकी भी कतिपय कवितायें संग्रहीत हैं। सम्प्रति आप अपना सर्व-प्रथम उपन्यास 'अन्तर' लिख रही हैं। काफी दिलचस्पी के साथ आप विन्ध्य प्रदेश और अजमेर की हाई स्कूल परीक्षा मे सहायक निरीक्षक के रूप में कार्य कर चुकी हैं। वास्तव में आप जीवन तथा साहित्य के सभी अंगो मे दिलचस्पी रखती है। आप की महत्वाकांक्षा हिन्दी और अँग्रेजी आदि साहित्यों के विशद अध्ययन की है।

विमला जी ने यद्यपि अधिक कहानियों की रचना नहीं की, तथापि उन्होने जिन कहानियों का निर्माण किया उनमें वे श्रेष्ठ कहानी-लेखिका के रूप में ही हमारे सामने आती हैं। भाषा तथा भाव दोनो ही दृष्टियों से आपकी रचनाओं मे श्रेष्ठ प्रौढ़ता मिलती है। अपनी साहित्यिक सृजन-शक्ति का प्रयोग-काल आप ने नाटको में व्यतीत किया। इसीलिये जब बाद में आप कहानी के क्षेत्र में आईं तो उन मे किसी साहित्यकार की प्रयोगात्मक लाघवता का दर्शन न होना स्वाभाविक ही है। अस्तु, आपके साहित्यिक विकास का क्रमिक रूप कहानियों में नहीं, अपितु नाटकों में देखा जा सकता है। आपकी सभी कहानियाँ भाषा की दृष्टि से काफी प्रौढ़, सचेष्ट एवं साफ-सुथरी हैं। उनमें आप का काव्यात्मक हृदय, प्रकृति तथा परिस्थिति-

वर्णन एवं सुकुमार तथा प्रौढ़ भावों का मार्मिक चित्रण स्पष्ट परिलक्षित होता है। आपकी कहानियों में आपकी भावुकता न तो गूढ़, उलझी हुई और न रहस्यवादी अथवा आदर्शवादी ही होने पाई है। अस्तु, आपकी कहानियों को समझने मे कठिनाई का अनुभव बिल्कुल ही नहीं होता।

विमला जी की कल्पना भावुक, सौन्दर्य-स्थापिका एवं वास्तविकता का निर्वाह करती हुई चलती है। पृथ्वी को छोड़ कर आकाश चारी बनने की या सांसारिक वस्तुओं अथवा दृश्यों में ही अतिरंजित वर्णन द्वारा अवास्तविकता उत्पन्न करने की प्रवृत्ति उसमे कही नही दृष्टि गोचर होती। प्रकृति-चित्रण मे आपका हृदय उमड़ता हुआ दिखाई पढ़ता है। एक कवियित्री की सौन्दर्य-दर्शी संवेदन शील दृष्टि का प्रयोग कर आपने अपनी कहानियों में आई हुई प्रकृति को जीवित रूप प्रदान कर दिया है। जान-बूझकर आप उस पर मानवी भावों का आरोपण नहीं करतीं। वास्तव में ऐसा करने पर कृत्रिमता एवं असत्य का अनुभव होता है। आप प्रकृति के व्यापारों का वर्णन मानवी व्यापारों के माध्यम से करती हैं। कहने मे अत्युक्ति न होगी कि यह वर्णन-प्रणाली छायवादी प्रवृत्ति की परिचायिका है। आप की अधिकांश कवितायें छायावादी सौन्दर्य-दृष्टि एव प्रकृति चित्रण को लेकर चलनी हैं। मानना पड़ेगा कि प्रकृति मे सौन्दर्य-दर्शन एवं कोमल भावों का चित्रण पूर्ण रूप से मौलिकता लिये हुए है। मूर्त-दृश्य-विधान सरल किन्तु मार्मिक सशक्त भाषा-शैली में होने से पाठक के चित्त पर विशेष प्रभाव डालता है। 'टूटी पुलिया' नामक कहानी में प्रकृति-चित्रण एवं सौन्दर्य-विधान अत्यंत उच्चकोटि का हुआ है। कहानी की नायिका पुलिया अपने आचरण, भाव-व्यापार बाह्य एवं मानसिक सौन्दर्य आदि को लिये-दिये प्रकृति की विशाल सत्ता मे घुलती-सी दिखाई पड़ती है। पाठक उसे

प्रकृति का एक अन्यतम अंग अनुभव करता है। निश्चय ही पात्र तथा परिस्थिति का यह मनोरम सम्बन्ध विमला जी की श्रेष्ठ मौलिक कल्पना एवं भावानुभूति का द्योतक है। पुलिया के अभाव मे कहानी में चित्रित प्रकृति-सौन्दर्य तथा प्रकृति-सौन्दर्य के अभाव ने पुलिया का भाव-प्रधान सुकुमार दिव्य सौन्दर्य-शाली व्यक्तित्व फीका पड जायगा। मानव अपनी परिस्थितियों का प्राणी होता है। उनसे पृथक उसकी सत्ता की कल्पना भी सम्भव नही है। अस्तु कहानी में वास्तविकता एवं पूर्णता लाने के लिये पात्रो के आस-पास की परिस्थितियों और उनके साथ पात्रों के मानसिक सम्बन्ध का चित्रण करना आवश्यक है।

बाह्य चित्रण केवल नाम गिनाने के समान न होना चाहिये। यह तो एक प्रकार से केवल कर्त्तव्य-पालन हुआ। वास्तव में इसके लिये आवश्यक है कि कहानी या साहित्य के अन्य अंग में चित्रित परिस्थिति साहित्यकार के कल्पना-जगत् से होकर गुज़री हो; तभी उसमें साहित्यिक सत्य एवं वास्तविकता उत्पन्न होगी, वे बाहर से लाकर जोड़ी हुई न मालूम होकर उसी प्रकार कहानी का अंग होंगी जिस प्रकार पात्र तथा उनके कार्य एवं वार्तालाप आदि। संक्षेप मे साहित्यकार उन्हें अपनी कल्पना में जीता-जागता रूप दे चुका है, कहानी मे आने एवं पात्रों के साथ गति-शील होने अथवा परिवर्तित होने के पूर्व वे (परिस्थितियाँ, प्रकृति आदि) कलाकार की कल्पना मे उपस्थित होकर गतिशील एवं परिवर्तित हो चुकी हैं। ऐसे ही प्रकृति-चित्रण कहानी के अवि-भाज्य अंग-से दीखते हैं। वे पात्रों से किसी भी प्रकार विलग नही किये जा सकते, क्योंकि साहित्यकार की कल्पना में पात्रों के साथ विकसित एवं परिवर्तित होने से वे पात्रों के कार्य एवं मान-सिक जगत पर प्रभाव रखते हैं। अस्तु, ऐसी कहानी में एक ओर पात्र हमारे सामने अपने विभिन्न रूपों में आता है, तो

दूसरी ओर प्रकृति या बाह्यता अपने क्रमिक विकास-शील रूप में आती है। दोनो दशाओं मे कार्य-कारण-परम्परा का निर्वाह आवश्यक होता है।

विमला जी की कहानियो का महत्व इस दृष्टि से काफ़ी बढ़ जाता है। पात्रो की परिस्थिति को यदि कहानी से विलग कर दिया जाय तो पात्र स्वयं विलीन हो जायँगे। 'ये विचारे' नामक कहानी मे 'चन्द्र भान' एक मध्यम वर्ग का लिपिक है। घर मे स्त्री-बच्चे चार-पाँच प्राणी हैं। अपने निरर्थक बाह्य सामाजिक स्तर पर आरूढ़ रहने मे उसका काफ़ी रुपया व्यय हो जाता है, जिससे उसके बच्चे भूखों मर रहे हैं। उसका बड़ा लड़का बिल्कुल क्षीणकाय सस्ती कहानियाँ पढ़ा करता और उसकी माता नित्य स्वप्निल कहानियाँ सुना-सुनाकर छोटे लड़के का जी बहला दिया करती। अन्त में चन्द्रभान अपने सामाजिक स्तर को त्याग कर निम्न स्तर में मिल जाता है; एक साधारण-सा कच्चा मकान ले लेता; गन्दे कपड़े पहनता और निम्न श्रेणी के लोगों के बीच मे बैठता; वह पान की एक दूकान खोलता, शराब और पकौड़े बेंचता और उसकी दूकान पर दुनियाँ भर के शराबी, कबाबी, लुच्चे-लफंगे इकट्ठा होते, जुआ खेलते और पकौड़े आदि खाते। इस प्रकार कुछ वर्षों में चन्द्र भान काफ़ी धनी हो गया; किन्तु उसके लड़के अशिक्षित, असभ्य एवं अशिष्ट हो गये। एक दिन वह अपनी स्त्री से पुनः पूर्व वाले समाज में लौट चलने को कहता है; किन्तु उसकी स्त्री उसे यह कह कर मना कर देती है कि वह उसके बच्चों के जीवन के साथ खिलवाड़ करना होगा; उस उच्च समाज मे वे सर्वत्र अपमान एवं उपेक्षा के पात्र बनेंगे और मानसिक कष्ट भोगेंगे।

इस प्रकार पात्र तथा परिस्थिति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध आपकी कहानियों में अटूट गति से चलता है और अन्त तक

विद्यमान रहता है। इसी प्रकार के उदाहरण अन्य कहानियों से दिये जा सकते हैं।

विमला जी की कहानियाँ प्रायः लम्बी होती हैं जिनमें आपको पात्रों के चरित्र-विकास का सुअवसर प्राप्त होता है। आपकी प्रायः सभी कहानियों में परिस्थितियों के माध्यम से पात्रों का चरित्र-विकास चित्रित हुआ है। परिस्थिति का जो अक्षुण प्रभाव मानव-चरित्र पर पड़ता है, उसका स्पष्ट एवं विश्वसनीय रूप हम आपकी कृतियों में पाते हैं। वास्तव मे परिस्थिति मनुष्य के मानसिक संघटन का एक जीवित अंग-सा दीखती है। उसके इस स्वरूप को समझ कर पाठक सिहर उठता है। आपका उद्देश्य न तो परिस्थिति पर पात्रों की विजय और न परिस्थिनि की पात्र पर विजय दिखाना होता है। आप दोनों के पारस्पारिक द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण करती हैं। दोनों में से कोई विजयी नहीं होता, किन्तु पूर्ण रूप से एक दूसरे से प्रभावित होता है। 'बेकार की बातें' में विनोद परिस्थिति से समझौता करके भी अन्त तक अपने पूर्व-भावों को धारण किये रहता है। उसके चरित्र में परिवर्तन अवश्य होता है किन्तु उससे वह इतना नहीं बदल जाता कि पाठक उसे पहचान ही न सके। 'सीमा' नामक कहानी मे साम्यवाद की बातें करने वाले सस्ते और भावुक पात्रों के सामाजिक वर्गीकरण मे प्रवृत्तिगत विश्वास का नग्न रूप आप हमारे सामने रखती हैं। पाठक कह उठता है, 'मनुष्य कितना दुर्बल है, उसके लिये अपने को ही समझना असाध्य एवं जटिल है।'

कहानी के अपेक्षाकृत लम्बे विस्तार में चरित्र-विकास हमारे सामने रखा जाता है। विमला जी इस विकास का निर्वाह भी कार्य-कारण-दृष्टि से सफलता के साथ करती हैं। 'हम, तुम

और वो' नामक कहानी-संग्रह में पात्रों का चरित्र-परिवर्तन सफल ढंग से चित्रित किया गया है, फिर भी कहीं-कहीं त्रुटि दिखाई पड़ती हैं। 'बेकार की बातें' मे विनोद का चरित्र-विकास मनोवैज्ञानिक ढंग से नहीं हो पाता। कहानी के अन्त में उसमें ऐसे मनोवैज्ञानिक तथ्य दिखाये जाते हैं, जिनकी ओर उसके पूर्व कोई संकेत नहीं किया जाता। अस्तु, पाठक उनकी कोई आशा भी नहीं रखता है। उनको अकस्मात् अपने सामने पाकर उसकी कल्पना को धक्का लगता है; वह विश्वास न कर सकने के कारण उहें अस्वीकार कर देता है। इस कहानी को छोडकर शेष सभी कहानियों मे चरित्र-विकास समुचित ढंग से हुआ है।

मनुष्य के बाहरी तथा भीतरी रूप का आपने सूक्ष्म अध्ययन किया है। सामाजिक मान-सम्मान को बनाये रखने के लिये किस प्रकार मध्यम वर्ग तड़क-भड़क, दहेज, शादी-ब्याह, उत्सव, खान-पान आदि के रूप में बुरी तरह पिस रहा है; इसका नग्न प्रदर्शन आपने 'बिचारे' 'अपनी नाक', 'स्वाहा' आदि कहानियों में किया है। 'अपनी नाक' में केदार नाथ अपनी सामाजिक मान-मर्यादा की रक्षा में अत्यन्त शुद्ध नीरस जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में आत्म-हत्या करते हैं। संक्षेप में सामाजिक मान-मर्यादा के प्रश्न ने धीरे-धीरे उनके रक्त का शोषण करते हुए अन्त में उनका गला भी दबा दिया। 'स्वाहा' मे दहेज तथा मृतक-कर्म एवं ब्रह्म -भोज आदि में एक प्रतिष्ठित सम्पन्न परिवार अपना सर्वस्व स्वाहा कर डालता है।

रैना जी में न तो प्रचारवादिता है और न जीवन के प्रति एकांगदर्शिता। आप किसी विचार या सिद्धांत को दृष्टि में रखकर कहानी नहीं लिखतीं, वरन् उनमें स्वाभाविकता का विशेष ध्यान रखती हैं। इसी से आप को किसी वाद के अन्दर नहीं घसीटा

जा सकता। आप जीवन तथा जगत् के पारस्परिक सम्बन्धों की ओट में छिपे हुए रहस्यों एवं कारणों को समझने का प्रयत्न करती हैं और उन्हें पूर्ण सचाई के साथ प्रकट भी कर देती हैं। इतना अवश्य होता है कि आप अपने अध्ययन का क्षेत्र पहले से चुन लेती हैं। आपकी कृतियों से आपका सूक्ष्म निरीक्षण एवं जीवन-अध्ययन प्रकट होता है। समाज का वर्गीकरण धन के आधार पर है; किन्तु धन के अतिरिक्त अन्य अन्तर भी उत्पन्न हो जाते है जैसे शिक्षा-दीक्षा चरित्र, सभ्यता आदि। इसी से दो वर्गों मे आकाश-पाताल का अन्तर उत्पन्न हो जाता है। 'विचारे' नामक कहानी मे समाज का यह वर्गीकरण-रूप एक भयानक जीवित सत्ता के रूप मे दिखाई पड़ता है, जिसके अनुशासन में प्रत्येक व्यक्ति चल रहा है। समाज के इन विभिन्न वर्गों के बीच की खाइयों का पटना कितना कठिन है? वास्तव में यह उतना व्यर्थ, कृत्रिम या असत्य नहीं है, जितना साम्यवादी लोग कहा करते है। आपकी कतिपय कहानियां 'विचारे' 'अपनी नाक' 'स्वाहा' आदि में सामाजिक वर्ग-गत परिस्थिति एवं उसके रीत-रिवाज़ आदि अपने भयानक प्रभावशाली रूप में हमारे सामने आकर पात्रों से कहीं अधिक महत्वशाली हो जाते है, मानों वे ही इन कहानियों के मुख्य पात्र हों।

जीवन के संघर्षों और वाह्य झंझटों आदि के तूफानों के बीच विमला जी गार्हस्थ्य जीवन के अजस्र एवं उद्दीप्त प्रेम की ज्योति (प्रेम-दीपक) दिखलाती है। 'स्वाहा' में जीवन-संघर्ष से बनवारी लाल का अपनी स्त्री, बच्चों, भतीजे, भतीजी, तथा भाभी आदि के साथ प्रेम एवं उनके प्रति त्याग सचमुच पाठक के अशांत उद्विग्न मन को शान्ति प्रदान करते है। 'विचारे' में भी जीवन-संघर्ष से पराजित, समाज-स्तर को बदलने वाला

चन्द्रभान पत्नी के दृढ़ प्रेम का अन्त तक एक :आदर्श अधिकारी बनारहता है।

रैना जी ने स्त्री-पुरुष के यौनगत सम्बन्ध को भी लिया है; किन्तु इस विषय मे उन्होंने एक प्रकार से शिथिलता ही दिखाई है। उनकी नायिकाये अपने प्रेम मे दृढ़ हैं, किन्तु आप उनके मानसिक जगत् का चित्र हमारे सामने नहीं रखती। इस दृष्टि से पुरुष-पात्रो में चलायमान होने की प्रवृत्ति आपने दिखलाया है, किन्तु यहाँ भी विषय-उपेक्षा ही दृष्टिगोचर होती है। सामाजिक दृष्टि से आप विस्तृत मध्यम वर्ग की आर्थिक और सामाजिक समस्याओ तथा उनके कुप्रभावों तक ही सीमित रही हैं। रोटी के लिये तरसने वाला दरिद्र वर्ग आपकी रचनाओ में कहीं नहीं परिलक्षित होता।

आपने मध्यम वर्ग का चित्रणकाफी व्यापक दृष्टि से किया है। मनुष्य के प्रति आप में सहानुभूति और प्रेम दिखाई पड़ता है। आप उसकी दुर्बलताओं एवं अन्ध विश्वासो का चित्रण करने में अवश्य कुछ उठा नहीं रखतीं; किन्तु इस प्रदर्शन में कठोरता या घृणा की गन्ध भी नहीं है। आप समझ चुकी हैं कि मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है। कठोर, दिखावा से परिपूर्ण बाह्य परिस्थितियों के बीच पिसते हुए मध्यम वर्ग के परिवारों की आन्तरिक स्थिति, परिवार के व्यक्तियो के पारस्परिक भीतरी सम्बन्ध एक दूसरे के प्रति सामीप्य, प्रेम एवं द्वेष आदि का सफल प्रदर्शन आपकी कहानियों को पारिवारिक रूप देता हुआ विशेष मानवी बना देता है। पाठक उसमें अपने ही परिवार का सादृश्य देखता है।

विमला जी के पात्रों का वार्तालाप उनके चरित्र के अनुकूल होता है, जिससे काफी वास्तविकता का भान होता है। पात्रों के वार्तालाप में सर्वत्र आप यथार्थ की रक्षा करती हैं। पात्र अपने उद्देश्य, प्रकृति एवं सभ्यता के अनुसार वार्तालाप

करते हैं। इस प्रकार इनका वार्तालाप एक ओर कहानी की कथा-वस्तु को आगे बढ़ाता है तो दूसरी ओर पात्रों के चरित्र का प्रदर्शन करता चलता है। पात्रों का वार्तालाप प्रायः आवश्यकता के अनुसार ही होता है। व्यर्थ की बातों या लम्बे-चौड़े भाषण आपकी कहानियों मे नहीं मिलते।

विमला जी की भाषा मे तीन शैलियों के दर्शन होते है। पात्रों के वार्तालाप मे आप बहुधा सारगर्भित, सरल, दैनिक किन्तु साहित्यिक भाषा का प्रयोग करती है। प्राकृतिक दृश्यों तथा मानवी भाव-गुत्थियों का विशलेषण करने मे आप की भाषा भावपूर्ण मूर्तिमत्ता लिए हुए अग्रसर होती है। कहानी के वर्णन मे आप उसी सरल, और प्रवाहयुक्त भाषा का प्रयोग करतीं हैं, जैसा हम प्रायः समाचार पत्रों में पाते है, जिसका उद्देश्य किसी बात का यथातथ्य वर्णन होता है।

आपकी भाषा मे संस्कृत-निष्ठ तत्सम शब्दों की अधिकता है। भावो के साथ आन्तरिक सम्बन्ध होने के कारण भाषा विशेष रूप से सजीव एवं प्राकृतिक प्रतीत होती है। साथ ही कहीं-कहीं सोचने-विचारने या मस्तिष्क-परिश्रम की भी झलक मिलती है। ऐसा प्रायः प्राकृतिक दृश्यों या मानसिक भावों के वर्णन करते समय मूर्त-योजना करने में होता है फिर भी कहीं दुरूहता नहीं आने पाती।

—:०:—

"स्वाहा"

पंडित गिरधारी लाल चालीस वर्ष में ही अपनी अवधि पूरी कर १२ वर्ष की सुधा, १४ वर्षीय सुरेश तथा पैंतीस वर्ष की पत्नी को अपने छोटे भाई बनवारी लाल के आसरे छोड़ कर चल बसे। उस कोहराम मे बनवारी लाल ने बच्चों का भार अपने ऊपर लेने का वचन दे कर भाभी के आँसू पोंछे। भाभी दिल की खोटी न थीं। देवर का हाथ पकड़ कर बोलीं, "मुझे तुम पर पूरा भरोसा है लल्ला, तुम मेरे लिये सुरेश से बढ़ कर हो। मेरा क्या, भोर का दीपक हूँ, कब बुझ जाऊँ।" भाभी की आयु अधिक न थी पर पति के दुर्व्यवहार ने समय से पहिले ही उन पर वृद्धता का भार डाल दिया था। लाल मतवाली सुरा ही उनकी सौत बन बैठी थी और वह आती विपत्ति को देख-देख कर घुली जाती थी। इस समय बनवारी लाल के वचन ने उनके हृदय की बुझती लौ को फिर से प्रज्वलित कर दिया। उन्होंने फिर आँखें खोल कर दृढ़ता से पुनः अपने भविष्य की ओर देखा।

बनवारी लाल की कपड़ों की दुकान थी। देवी लक्ष्मी का उनसे कोई विशेष प्रेम न था, पर भगवान् की दया से कोई काम न रुकता था और उन्हे इसी में सन्तोष था। घर में हँसमुख पत्नी थी, एक सुन्दर सी लड़की चन्द्रा और था छोटा नटखट रमेश। ये थी उनकी गृहस्थी और उन्हे भगवान् से कोई शिकायत न थी। इस संकट के समय उन्होने शंकित नेत्रों से पत्नी की ओर देखा। उन्हें भय था कि शायद वह इतने भार को ग्रहण करना अपने ऊपर अन्याय समझे। और सच तो यह है कि

उन्हे स्वयं अपने ऊपर भी पूरा विश्वास न था, पर उनकी पत्नी कान्ता ने, "अपने ही ऐसे समय पर काम आते हैं" कह कर उन्हे निश्चिन्त कर दिया। वह पति के अन्तर्द्वन्द को समझ रही थी। वह उठी और जिठानी से दो कौर फलाहार खाने के लिये प्रेमाग्रह करने लगी। बनवारी लाल का भार हलका हो गया, उन्होंने ठंडी साँस ली।

दिन कटने को हैं, दिन कटते ही गये। देखते-देखते अपनी सुधा अब पराई होने लायक हो गई। सुरेश बी० ए० के प्रथम वर्ष में आ गया। चन्द्रा चौदहवीं का चाँद होना चाहती थी। नन्हा नटखट रमेश भी अब छठीं कक्षा मे था और बहिनों पर रोब डालने का उसका चाव बढ़ रहा था।

रात को थाली परस के भाभी बनवारी लाल से बोलीं, "लल्ला सुधा को देखते हो, तुम्हारे दुलार में ताड़-सी हुई जाती है, इतना न खिलाया करो।" बनवारी लाल इस सरल सी बात का तात्पर्य समझ रहे थे, जवाब देने में कुछ देर लगी। कान्ता रोटी सेंक रही थी? पति की सहायतार्थ बोली, "क्यों टोकती हो भाभी, बाढ़ की उमर है, अच्छा है, ताड़ सी होगी, लोग नाटी तो न कहेंगे उसे"। "तुमने कोई घर सोचा है भाभी?", बनवारी लाल ने पूछा। "मुझे कौन जानता लल्ला और मेरी कौन है यह निगोड़ी, जो घर-घर झाँकने जाऊँ।" भाभी ने झेंपते हुए कहा।

"वैसे तो मुझे रमा शंकर का लड़का पसन्द है", चूल्हे पर से कान्ता बोली। "कौन रमा शंकर जो मुनसिफ हैं? भला इतना दहेज कहाँ है तुम्हारे पास? तुमने भी कहाँ की सोची छोटी और रहा मेरा, तो सिवाय गहनों के मेरे पास क्याधरा है?" भाभी कुछ घबरा के बोली—

"हूँ! पर देखने में क्या हर्ज है ? लड़की को दहेज के पीछे कुएँ में तो ढकेलना नहीं है—जेवर तुम्हारे पास है ही—दहेज का मैं किसी तरह प्रबन्ध कर लूँगा। कल सुबह ही जीजी के पास जाऊँगा। रमा शंकर रिश्ते में जीजी के जेठ लगते हैं। उन्हीं से कहूँगा कि पता लगावें कि वे कितना माँगते है।" यह कह कर बनवारी लाल थाली छोड़ कर उठने लगे। भूख न जाने कहाँ लोप हो गई।

"अरे ये क्या लल्ला, तुम्हें मेरी सौगन्ध, नेक और खा लो।"

"अब भूख नहीं भाभी।"

"न, मैं न मानूँगी। ऐसा भी क्या, है सच कहती हूँ, तुम्हे देखकर अपने भाग्य पर रोना आता है। दम भर चैन से निवाला भी नहीं उतार सकते। जो भगवान् चाहेगा, वही होगा, तुम रोटी तो खा लो"। भाभी की आँखें भर आईं, उन्हें पश्चात्ताप हो रहा था कि खाने के बाद ही क्यों न बात छेड़ी।

बनवारी लाल ने उनके आँसू देखकर हँसते हुए कहा, "लो यह भी कोई रोने की बात है, लाओ कितना खिलाओगी, फिर तुम ही को भुगतना होगा जो बीमार पड़ गया तो", यह कह कर उन्होंने दो कौर और खा लिये, चूल्हे पर कान्ता बैठी मुस्करा दी।.........

आज जीजी आने वाली हैं। कान्ता और भाभी उत्सुक हो बाट देख रही है। जीजी का ताँगा आया, कान्ता लपक कर द्वार पर गई पर भाभी कुछ झिझक कर दालान में ही रुक गईं। जीजी अब पहिले की जीजी न थीं, जब गिरधारी लाल जीवित थे तो जीजी और थीं; तब तो जब देखो तब कान्ता की बुराई कर

हाँ तो जीजी आईं। गोरा तपे कुन्दन-सा शरीर, वैधव्य के संयम से मुख पर तेज। बड़ी-बड़ी आँखें, आँखों में लाल डोरे। बिना कन्नी की साड़ी पर सफेद चादर में छिपा था उनका उज्ज्वल कान्ति मय शरीर। ऐसे वह कान्ता से भी कम आयु की लगती थीं। भाभी ने हाथ जोड़े, जीजी ने तनिक उधर देख कर पूछा, "कहो सुधा कहाँ है ? सुरेश तो ठीक है ?"

"हाँ सब ठीक है" भाभी ने धीमी आवाज में कहा।

कान्ता पंखा झलने लगी। जीजी हँस कर बोलीं, "अरे क्या करती हो छोटी ? तुम यूँ ही धान-पान हो, उस पर घर का इतना भार। रहने दे री, क्या मुझे ही गरमी खाये जाती है ?" जीजी ने चादर उतरी। सिर से पल्ला खिसक गया, बाल बहुत पक गये थे। इस मुख पर इतने सफेद बाल अपनी ही कहानी कह रहे थे। "हाँ तो जीजी, कहो न, क्या बातें हुईं ? मेरा तो उतावली के मारे कलेजा निकला पड़ रहा है।" कान्ता ने मोती-से दाँत बिखेरते हुए पूछा। "हाँ, हाँ, कलेजा क्यों न निकलेगा ? अभी क्या है, सुनोगी तो कलेजा बैठ ही जावेगा।", जीजी भौं चढ़ा कर बोलीं।

"क्यों क्या बहुत माँगते है दहेज ?" कान्ता का मुँह सूख गया, भाभी नीचे देखने लगी। "माँगे नहीं तो क्या मुफ्त में दे देंगे अपना लड़का ? मैंने तो पहले ही बनवारी से कहा था कि बेकार मुझे वहाँ भेजते हो। भला कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगुआ तेली ?

"आखिर कितना माँगते हैं ?" डरते हुए बड़ी-बड़ी आँखें फैला कर कान्ता ने पूछा। "यही सिर्फ दस हजार ? तुम्हारे तो हाथों का मैल है" ताने से जीजी बोलीं। "हाँ, हाँ, कौन बड़ी बात है तुम तो नाँठी निगोड़ी हो, तुम्हारे तो बाल-बच्चे हैं नहीं, यही भाभी की

सुधा है सो बेच दो अपने को ! मैं कहती हूँ कन्हैयालाल के लड़के से क्यों नहीं कर लेते ? न दहेज़ का झगड़ा न कुछ, लड़के की उमर भी ज्यादा नहीं—क्या बुराई है ? शराब की दुकान है, बाप बुड्ढा हुआ, थोड़ा और बड़ा होगा—दुकान सम्हालेगा—अभी बीस एक बरस का होगा—हींग लगे न फिटकरी और लड़कीं के हाथ पीले।" कान्ता ने आँखें नीची कर लीं, भाभी ने आँखें ऊँची कर आकाश की ओर देखा। कान्ता ने ज़मीन अंगूठे से कुरेदते हुए कहा, "वह तो कुछ पढ़ा-लिखा नहीं जीजी, सुनते हैं शराब बहुत पीता है।"

"अरे तो पढ़े-लिखे इस ज़माने मे कौन करतब दिखाते हैं ? आज-कल तो जो थैली लावे, वही पढ़ा। तो कान खोल कर सुन लो, फ़ायदा बहुत है दुकान में। बुड्ढा कोई बैठा तो रहेगा नहीं—रहा पीने का, तो अपने बाप की दुकान पर ही तो पीता है, कौन पैसा बरबाद करता है ? घर में बहू आवेगी तो कौन जाने मुफ्त की पीनी भी छोड़ दे।"

"इसकी आदत कभी छूटती है जीजी !" धीरे से कान्ता ने कहा।

"नहीं छूटती तो नहीं छूटे, आज-कल सब साहब अँग्रेज़ पीते हैं। लो वह बनवारी आ गया, क्यों भइया, मैं क्या ग़लत कहती हूँ ?"

"क्या कह रही हो ? वही कन्हैयालाल का लड़का जिसकी ताड़ी की दुकान है ? तुम्हें याद नहीं जीजी ! उसने तो शादी पता नहीं किससे की थी।"

"तो भइया दे दो दस हज़ार नक़द और ब्याह दो लाड़ली को" तिनक कर जीजी ने कहा।

"हाँ, यही सोच रहा हूँ।" बड़ी सावधानी से बनवारी लाल ने कहा।

भाभी ने देवर की तरफ देखा, कान्ता ने मुस्करा कर सर नीचा कर लिया, जीजी ने आकाश की ओर देखा !...

\+ × +

कुछ जेवर भाभी के बिके, कुछ कन्या को दिये, कुछ कर्जा बनवारी लाल ने लिया और सुधा का व्याह हो गया। भाभी देवर-देवरानी के प्रेम और एहसान से दब गईं और दुआयें देकर रह गईं।

बनवारी लाल ने कहा, "माँ के आभूषण बेटी पर ही सोहते हैं। कर्जा एक दिन उतर ही जावेगा पर लड़की का तो जीवन बन गया।"

भाभी ने कान्ता से कहा, "सुरेश के व्याह में तुम भी मन-मानी कर लेना, वही चन्दा के वक्त काम आवेगा।"

कान्ता हँस कर बोली, "और क्या! खूब ठनगन करूँगी, 'हमें काहे की फ़िकर ? भगवान् की दया से हमारे घर भी लाल है।'"

भाभी ने कृतज्ञ होकर कान्ता को प्रेमालिंगन में बाँध लिया।

मानव-हृदय मे ईर्ष्या होती ही है, पर कहते हैं ईश से भी पूर्ण पारिवारिक सुख नहीं देखा जाता। एक दुःख की आँधी आई और कान्ता को उसके चाहने वालों से छीन ले गई। बनवारी-लाल इस आघात से टूट गये। कान्ता की मृत्यु के बाद वह सीधे होकर न चल सके। भाभी का मन रखने को खा लेते, बच्चों का मन रखने को हँस देते, पर उनके अन्तःस्तल में से कुछ खो-सा गया था और वह उसे ढूँढ़ते रहते। यह जानते हुए भी कि जो खोया है कभी मिल न सकेगा, वह ढूँढ़ते ही रहे और ढूँढ़ते-ढूढ़ते खुद खो-से गये।

जीजी आई, कान्ता का क्रिया-कर्म हुआ। अभी सुधा के ब्याह से निपटे थे, घर मे पैसा न था। हजार रुपया और कर्ज़ लेकर बनवारी लाल ने जीजी के कहे अनुसार कर्म कर दिया और पंडितो के प्रत्यक्ष अग्नि की साक्षी दे कर उन्होंने अपनी पत्नी कान्ता से जन्म भर की बिदा ली, पर अपने अन्तःस्तल में सदा के लिये उसकी प्रतिमा को बिठा लिया।

कुछ समय सोते-जागते और बीत गया।

सुरेश रेलवे में आ गया। उसका विवाह हुआ। बनवारी-लाल ने सब प्रबन्ध किया पर उनमें अब वह उत्साह न था, वह आत्म विश्वास न था। भाभी को कान्ता के बिना सब सूना-सूना लगता। बनवारी लाल की व्यथा को देख कर उसका दुःख और भी दूना हो गया। उसे एक ही ज़िद थी, वह यह कि वह दस हज़ार दहेज में लेगी। कन्या वाले सात हज़ार कहते थे, पर वह दस-हज़ार पर अडिग थी। बनवारी लाल ने लाख समझाया। यहाँ तक कहा कि इस तरह सौदा करते तुम्हें लज्जा नहीं मालूम होती है; पर भाभी ने एक न मानी। आखिर ब्याह हुआ और दस हज़ार लेकर बहू घर में आई। बहू भाभी के पैरों पड़ी, भाभी ने आशीष दे कर झट उठा दिया और ले गई उसे कान्ता की तस्वीर के पास; वहाँ बहू ने माथा टेका।

बनवारी लाल रुपये लेकर भाभी के पास आये और उन्हें देने लगे तो भाभी ने कहा "ये कान्ता के हाथ में दे दो, मैं ने उससे वायदा किया था; !" भावावेश में आकर दोनो रो रहे थे, उधर शहनाई बज रही थी।

भाभी चाहती थीं कि सुरेश कुछ दिन घर के भार में हिस्सा ले। पर सुरेश ये न कर सका। दोनों पति-पत्नी कानपुर जाने को तैयार थे। भाभी कुछ कह न सकीं, नई रोशनी की बहू को

चार दिन भी घर में रोक न सकीं। सुरेश ने दहेज में से पाँच हज़ार माँ से माँगा। नया घर बसाना था। फिर अफसरों का घर था, ऐसे ही खटिया-कुरसी से काम न चलेगा। केवल दो कमरों और एक दालान का घर न होगा, वहाँ हर कमरा हर काम के लिये अलग अलग होगा। उसके लिये सामान ख़रीदना होगा पर भाभी ने कहा उसे करज़ा चुकाना है, वह एक रुपया भी उसमें से नहीं दे सकी। हाँ अपने हाथ के कड़े उतार कर दे दिये। कड़े अधिक भारी न थे, पोले थे। बहू ने सुरेश से आड़ में कहा, "काहे को हाथ नंगा कर दो तोले का एहसान लेते हो। मुझे जो अलग से रुपया नातेदारों से मिला है वही बहुत है।"

पर सुरेश ने सोचा जो मिला है उसे क्यों जाने दें, सुरेश को माँ की यह बात बुरी लगी पर बच्चा तो था नहीं—यह भी समझता था कि बहिन की शादी के लिये करज़ा लिया गया था वह चुकाना है, चुप रह गया। दोनों चले गये, भाभी हारी-सी सूने हाथ लिये बैठ गईं।

सुबह हुई फिर शाम हुई। चन्द्रा पूर्णमासी का चाँद हुई जाती थी। इधर भाभी ने राम को रमेश से मिलने के बहाने कई बार आते देखा था। राम द्वारिका प्रसाद इंजीनियर का पुत्र था। कुशाग्र बुद्धि तथा आत्म संयम से मुख पर अलौकिक तेज था—छोटी सी आयु में एम० ए० में आ गया था। चन्द्रा अब बी० ए० में थी और रमेश था एफ० ए० के पहले साल में। भला रमेश और राम का क्या साथ! भाभी सब समझती थीं पर उन्हें राम बहुत अच्छा लगता था।

एक दिन भाभी ने बनवारी लाल से कहा, "तुमने राम को देखा है, बड़ा भला लड़का है—चन्द्रा के लिये कैसा रहेगा? यहाँ

दूसरे-तीसरे दिन आता भी रहता है, दोनों एक ही कॉलिज में पढ़ते भी है, शायद—"

"हाँ, लड़का तो अच्छा है। पर जानती भी हो उसके पिता बड़े इंजानियर है। हजारो पर आस लगाये बैठे होंगे। मुझ ग़रीब के पास क्या है?" "हूँ, हमारी चन्द्रा के बराबर की लड़की चिराग़ ले कर ढूँढ़ें ता भो न मिलेगी।" भाभी ने अभिमान से कहा "फिर पूछा तो, आखिर जान थोड़े ही मांगेगे।"

बनवारी लाल चुप रहे। फिर उठ कर अपनी बैठक में आ गये। वैसे तो द्वारिका प्रसाद को वह बचपन से जानते थे, एक बार वह बड़े संकट में पड़ गये थे, उस समय बनवारी ही उनके काम आया था। पर वह रही पुरानी बात, अब वह बड़े अफ़सर हैं। उस समय तो बड़े बोल से उन्होंने कहा था, "कभी तुम्हें मेरी जरूरत पड़े तो संकोच न करना" पर अब बनवारी लाल की हिम्मत टूट गई था। दुकान का काम भी ढीला पड़ गया था। वक्त पर सामान नही आता था। होली, तीज, दीवाली पर और दुकाने नये भड़कीले कपड़ो से जगमगा जाती पर बनवारी लाल का सामान हफ्तों पीछे पहुँचता। बिक्री कम होती—नफ़ा कम होता। सामान भो कम आने लगा था, ऐसी अवस्था में अफसर द्वारिका प्रसाद के लड़के का स्वप्न देखना मूर्खता नहीं तो क्या है? पर चन्द्रा? भाभी क्या कह रही थीं? राम आता रहता है, दोनों साथ पढ़ते हैं—तो क्या चन्द्रा राम से···पागल लड़की—अपनी बिसात नहीं देखती? अब मैं क्या कर सकता हूँ?······

बनवारी लाल उलझ रहे थे। अपनी विवशता ने क्रोध को और भी भड़का दिया। और यह राम यह क्यों धनाढ्य घरो को छोड़ कर मेरी भोली चन्द्रा को दुःख देता है! उनके पास धन

कहाँ ! दस हज़ार में पाँच कर्ज़ा उतारने में गये । फिर कान्ता के क्रिया-कर्म मे डेढ़ हज़ार स्वाहा हुए । ये जीजी क्यों चली आई थीं ? जो काम पाँच सौ में हो जाता वह पन्द्रह सौ मे हुआ, उस वक्त मेरी भी अक्ल गुम हो गई था । अब तीन हज़ार कुल भाभी के पास होंगे । हूँ ! तीन हज़ार ! और नज़र है एक अफसर के बेटे राम पर ! ये सब मिल कर मुझे क्यों परेशान करते हैं ? अपने मन से ये प्रश्न पूछ कर निरुत्तर हो बनवारी लाल ने सिर की टोपी और हाथ की छड़ी सम्हाली और द्वारिका प्रसाद के घर की ओर चल दिये ।

भाभी दालान में बैठी दाल चुन रही थीं । बनवारी लाल को जाते देख कर वह समझ गईं । अब उनसे दाल न चुनी गई । आँगन में एक अनार का पेड़ था, उसके नीचे चौकी रखी थी—भाभी वहीं पूजा करती थीं—दाल छोड़, हाथ धो के आले पर से रामायण और माला उठा, वह चौकी पर बैठ कर माला जपती रहीं। चन्द्रा कान्ता की धरोहर थी, यदि उसे इच्छानुसार वर मिल जाये तो उनका जीवन सफल हो जाये फिर उन्हें जीने की कामना न थी ।

चौकी पर का साया उठ चुका था पर भाभी ध्यान-मग्न हो भगवान् से भीख माँग रही थीं । बैठक में खटका हुआ; भाभी चोर की भाँति चौंक उठीं—और जल्दी से हाथ जोड़, माला रामायण उठा कर फिर आले पर रख दीं । वैसे ही बनवारी लाल आये । भाभी बड़ी उत्सुकता से उनका मुँह देख रही थीं । कुछ बोल न सकीं । कामना की अत्यधिक तीव्रता ने भयातुर कर दिया था । उनकी दशा इस समय ऐसी थी जैसी परीक्षा के प्रमाण-पत्र के सामने एक परीक्षार्थी की होती है । उनके भाग्य का निर्णय सम्मुख है पर पढ़ने का साहस नहीं ।

"चन्द्रा भाग्यशाली है भाभी, समस्या इतनी जटिल न…"

भाभी ने हाथ जोड़ दिये। आँखों में आँसू छलक आये, मन ने कहा, "जै श्री कृपासिन्धु भगवान् की।"

प्रेम-विह्वल हो वह आगे सुन न सकीं। होठ काँप रहे थे—आँसू बहे जा रहे थे। बनवारी लाल ने देखा—देख कर मुँह फेर लिया—इस समय देखना भी पाप-सा लगा उन्हें—किसी के आत्म-भाव का नग्न प्रदर्शन नहीं देखा जाता! जाने कैसा लग रहा था बनवारी लाल को! हृदय में एक विचित्र कम्पन-सा था। वह बहुत थक गये थे। धीरे से मुड़ कर बैठक में चले गये।

रात को जब बनवारी लाल खाना खाने आये तो सब वृत्तान्त सुनाया। "पहिले तो बीस हज़ार कहते थे फिर पहिली बात याद आने पर चुप हो गये। आदमी तो भले मालूम होते हैं पर पत्नी से बहुत घबराते हैं। कहने लगे, वह बीस से कम में कभी राज़ी न होंगी। दो लड़कियाँ हैं उनके वक्त उन्हें भी देना पड़ेगा। कोई अपने लिये तो ले नहीं रहे हैं। यह प्रथा ही ऐसी है कि केवल वही इसे उठा सकते हैं जिनके घर में कन्या न हो, केवल पुत्र हो। राम की वह दूसरी माँ हैं। आखिर यह निर्णय हुआ कि दस हज़ार मैं दूँ, पर कहा सबसे बीस हज़ार ही जायेगा, वे अपनी पत्नी से भी बीस हज़ार ही कहेंगे। कह रहे थे कि मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। भाई! तुम्हें इन्कार नहीं कर सकता। चलो इसी से कहते है कि नेकी करो कभी-न-कभी काम आती है। अगली बसन्त पंचमी को सगुन है। मुझे अब ज़रा दुकान का काम ठीक से देखना है। दस हज़ार भी बहुत होते हैं, तुम्हारे पास अब कितने हैं भाभी?"

भाभी ने हँस कर कहा, "तुम फ़िकर न करो लल्ला, तीन हज़ार पिछले थे और इधर कई महीनों से हाथ खेंच कर खर्च

कम कर चार सौ और बचाये हैं कुछ दुकान पर कर्जा ले लेना, मै सब चुका दूँगी। मुझे तो इस रिश्ते में ऐसी खुशी है कि मन करता है कि खुद बिक जाऊँ।"

बनवारी लाल हँस दिये, बहुत दिन बाद हँसे थे, हँसने मे कुछ कठिनता हुई होगी कि आँखो से आँसू निकल आये?

बनवारी लाल बम्बई से लौट आने वाले थे। दीवाली आ रही है अब के बिक्री दूनी करनी है। बसन्त पर चन्द्रा का व्याह है। भाभी लहँगा टाँक रही हैं। चन्द्रा लजाई-सी पास बैठी रमेश का स्वेटर बुन रही है। जब से सगाई हुई राम नहीं आता है। कालेज मे भी सब छेड़ते हैं। बिचारी को पढ़ना भी दूभर हो जाता है, पर वह जाती रोज़ है। दूर से एक दूसरे को देख लेते हैं। भाभी मगन थीं, कभी-कभी मुस्करा कर चन्द्रा की ओर देख लेती थीं। रमेश आया—चन्द्रा भाई को आता देखकर उसके लिये जलपान लाने को गई पर उलट कर देखा तो रमेश भाभी को लिपट कर रो रहा है। चन्द्रा दौड़ आई–रमेश के हाथ में एक तार था। चन्द्रा ने तार पढ़ा, लिखा था—ट्रेन का एक्साडैण्ट हो गया। स्वर्गवासियों की सूची में बनवारी लाल का भी नाम था। तार बनवारी लाल के बम्बई के एक मित्र का दिया हुआ था। पल भर में कुहराम मच गया। भाभी अचेत पड़ी थीं। दो बच्चे उन्हें लिपट के सिसक रहे थे। राम अखबार ले कर आया; उसमें उस दुर्घटना का सारा समाचार दिया था।

एक, दो, तीन दिन बीत गये, बात पुरानी हो चली थी। सब रो-धो चुके थे। नानी आ गई थीं, सब क्रिया-कर्म की तैयारी हो रही थी। पंडित कहते थे पंचक में देहान्त हुआ है, पंचक-शान्ति होनी अनिवार्य है। नहीं तो क्लेश का भय है। कुल पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा, भोज, पंचक-शान्ति इत्यादि में तीन हज़ार के

लगभग लग जायेगा। सुरेश भी छुट्टी लेकर आ गया। साथ मे पत्नी और नन्हा लल्ला भी था। भाभी ने समझाया कि चन्द्रा का ब्याह करना है। फिर दुकान भी बन्द है। रमेश की पढ़ाई का सवाल है। पंडित से कुछ कम करने को कहो। सुरेश तो मान गया पर जीजो झमक कर बोलीं, "हाँ, हाँ जिस थाली में खाया, उसी में छेद करो, मुझ से तो नहीं देखा जायेगा, मेरा तो भाई था। अरे मेरा हीरा भाई! मुझे तो खून की लौ लगी है। हाय! कैसे जंगल में प्राण गये। धरती भी न मिली। बिना पूजा के उसकी आत्मा को कैसे शान्ति मिलेगी? हाय! उसी का धन उसी के काम न आयेगा। कैसी कलजुगी दुनिया है?" हाय-हाय कर उन्होंने सर नोच डाला और छाती पीट ली।

सुरेश ने समझाया कि पूजा-पाठ अवश्य होगा पर ये पंडित तो ढोंग करते हैं, ये पंचक-वंचक न होगा। यह सुन कर जीजी ने पैंतरा बदला और हाथ मटका कर बोलीं, "अरे सारे कुल में तुम ही तो एक भुनगे रह गये हो। तुम्हारे सर पर पंचक रहे? अरे ये न होगा। पंचक-शान्ति न होगी तो न जाने किसके सिर पर देवी का कोप हो जाय।"

बहू की गोद मे लल्ला खेल रहा था उसकी ओर देखकर आखिरी बाण छोड़ा, बोलीं, "अरे नन्हीं सी जान पर दया करो, पूरी पूजा न हुई तो—हाय राम! मेरा तो रोयाँ काँपता है।"

बहू ने कस कर बालक को गोद में दबा लिया, वह डर गई। जैसे अभी, इसी समय कोई उससे मुन्ना को छीन लेगा। सुरेश ने भी देखा और फिर धीरे से बोला, "यह तो सच है बुआ, पूजा तो पूरी होगी ही।"

"तो कहाँ से होगी?" भाभी की ओर घूर कर जीजी ने कहा, "जब ये महारानी कुंजी के गुच्छे का मोह छोड़ें तब तो! अरे ये तो गये ही—अब क्या पैसे के पीछे औरों को भी सुरधाम

पहुँचाना होगा ? लोग तो पराये धन पर साँप बन कर बैठे हैं—जाने छाती पर ले जावेंगे।"

भाभी से अब न रहा गया। कमर से चाबी निकाल कर छन्न से जमीन पर फेंक दी, और उठ कर कोठरी में जा पड़ीं।

× × +

सामान होने लगा। घी के टीन, सब्जी के टोकरे, मैदे, आटे, शक्कर की बोरियाँ पूजा की सामग्री—पलंग, पीढ़ी, बिस्तर आदि एक व्यक्ति की पूरी गृहस्थी जमा होने लगी, जीजी बीच-बीच में और बढ़ाती जाती थीं। "अरे, उसे बनारसी पान भाते थे—पान लाना न भूल जाना।" और कभी-कभी तेल, कंघा, साबुन इतर को जाँचतीं कि कहीं सस्ते सामान से तो टाला नहीं जा रहा है। "अरे, छतरी तो लादो ग़रीब को" शायद जब से बिचारे बनवारी का जन्म हुआ, किसी ने इतने शौक से चीजें न मँगाई होंगी, जितनी इस समय आ रही थीं। एक बार रमेश ने सोचा जीवित अवस्था से तो मरण अवस्था ही अच्छी। जब कि बे-माँगे ही सब चीजें प्राप्त हो जाती हैं। वर्षों से जिस वस्तु का घर में भोग न हुआ था वह अब हलवाई बना रहा था। उसकी भोली विचार-शक्ति इस रहस्य को ठीक से समझ न सकी। दस दिन इसी तरह बीत गये। चन्द्रा भाभी की व्यथा को समझ रही थी पर वह भी मौन थी। रमेश इन सब बातों को समझने की चेष्टा करता पर असमर्थ था। जीजी का बोल-बाला था। सुरेश को उन्होंने अब इस गृहस्थी के सरदार की उपाधि दे दी थी। सुरेश को इस समय इस उपाधि को ग्रहण करने में एक विचित्र सुख था। कुछ विशेष सम्मान पाने से गर्व, कुछ अपनी अधिकार-शक्ति से हर्ष परन्तु कभी-कभी उसका मन विचलित हो जाता था। क्या इस तेरह दिन के काण्ड के पश्चात् भी वह इस उपाधि को ग्रहण कर सकेगा ? पर वह तो पीछे की

बात थी। व्यर्थ में अपने मन तथा मस्तिष्क को कष्ट देना वह मूर्खता समझता था।

आज तेरहवीं थी। जीजी चार बजे से घर सिर पर उठाये थीं। उधर ब्राह्मण जिमाने थे—उधर श्राद्ध था—हवन करना था—पूजा होनी थी। और सब उन्हीं को करना था। बच्चे अज्ञान थे और भाभी देख कर के जलती थीं, यह उनकी धारणा थी।

बहुत से लोग समवेदना प्रकट करने आये थे। राम भी आया, चन्द्रा ने दालान के पास की कोठरी के किवाड़ से छिप कर देखा। दोनो ने यूँ ही सब-कुछ कह-सुन लिया। राम फिर भाभी के पास गया उनके घुटनो पर सिर रख दिया, फिर हृदय की बात मुख पर आई। उसके पिता, माँ के कहने पर फिर पलटा खा रहे हैं। यहाँ के पुजारी पंडित से उन्होंने श्राद्ध-दान के विषय में पूछा। पुजारी जी ने जो कथा सुनाई उससे उन्हें विश्वास हो गया कि जो श्राद्ध में इतना देने पर झगड़ा करें वे दहेज में क्या देंगे। पिता जी भी उनके कहने में आ गये हैं। बिचारा राम व्याकुल था, अभी नौकरी मिलने में दो साल थे। अन्त में एक बालक की तरह वह हताश नेत्रों से भाभी की ओर देख कर बोला, "अब क्या होगा काकी ?" पर भाभी न घबराईं। उनके अधर जम से गये—आँखें कुछ पथर-सी गईं पर दृढ़ता से बोलीं, "दो वर्ष बहुत नहीं होते बेटा ! मन में भरोसा रखो। भगवान् सहायता करेगा।" और राम ने देखा साहस की ओर ! उसने समझा, जब तक तन में प्राण हैं वह निराश न होंगी। भाभी से कुछ आत्मबल ले कर वह वहाँ से उठ आया।

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः······अग्नये स्वाहा—
अग्नी नमः स्वाहा, पुष्प्यो नमः स्वाहा······"

स्वाहा, स्वाहा, स्वाहा की ध्वनि से घर गूँज रहा था। अग्नि प्रज्वलित हो ज्वाला बन रही थी, और रमेश बैठा सोच रहा था। उसके मन्त्र पंडित जी के मन्त्र से तनिक भिन्न थे। वह कह रहे थे…स्वाहा—रमेश का हृदय कह रहा था, "विद्या स्वाहा, भविष्य-स्वप्न स्वाहा,। दीदी का प्रेम स्वाहा, घर की शान्ति स्वाहा, सर्वस्व स्वाहा !!!

उधर भोज हो रहा था। ऐसा जान पड़ रहा था जैसे दुनियाँ इसी घर में उलट पड़ी है। बॉभन आते जाते थे, छोटा सा आँगन खचाखच भरा था। अभी एक बॉभन और आया, कम्बल ओढ़े, सर पर पट्टी बाँधे। मुँह भी कुछ बँधा हुआ सा था। सुरेश ने कहा, "इधर बैठ जाओ, ग्यारह बजे का समय दिया था एक बज गया। बॉभन बैठ गया, भूखी आँखों से भोजन को देख तुरन्त खाने लगा। भोज समाप्त होने को था। बाँभन उठ कर जाने लगे पर वह बाँभन दालान में पूजा की ओर बढ़ा! उधर से कोई जा रहा था उससे पूछा, "ये कैसा भोज था भाई ?" उत्तर मिला, "अरे बनवारी लाल पण्डित की तेरहीं है।"

बाँभन कुछ चौंका, अन्दर की तरफ़ चला, उधर से जीजी मटका उठाये आ रहीं थीं झल्ला के बोलीं, "अरे कहाँ मर गये सब ? ये दही की बूँदी तो टोकरे से ढकी ही रह गईं। राम-राम कैसे चाव से इसे बनवारी खाता था।" फिर ब्राह्मण की तरफ़ देख कर बोलीं, "लो बाबा, तुम ही खा लो तो उस बिचारे की आत्मा को तृप्ति हो।" एक सकोरा भर कर उन्होंने ब्राह्मण को थमा दिया। और रमेश ने सोचा, क्या हमारे खा लेने से अधिक बाँभन के खा लेने से 'बाबा की आत्मा तृप्त होगी ?' वह यह भी ठीक से समझ न पाया।

बाँभन ने दही पी कर जो सर उठाया तो देखा भाभी शून्य

नेत्रों से हवन की ओर देख रही थीं। उनके कन्धे पर सिसक रही थी चन्द्रा जिसे अभी राम ने अवसर पाकर सब बताया था। बॉभन भाभी को देख कर चौंका, वह आगे बढ़ा–उधर से अन्तिम आहुति देने को कुटुम्बियों को पण्डित बुला रहे थे। सब एकत्रित हो गये। श्लोक शुरू हुए...स्वाहा...स्वाहा।

चन्द्रा को सहसा ऐसा लगा जैसे वह हाथ में सौभाग्य-सिन्दूर भरे है और अब की स्वाहा पर उसे ये आहुति प्रचण्ड अग्नि को समर्पित करनी होगी। सिर चकरा गया, वह बेहोश होकर गिर पड़ी। वैसे ही कुटुम्बियो के घेरे को तोड़ता हुआ वह बॉभन आया। उसने लोगों के देखते-देखते चन्द्रा को फूल की तरह उठा लिया और फिर वेदी में लात मार दी। न जाने उस क्षीण शरीर में इतना बल कैसे आ गया? एक उन्माद था। लोग स्तम्भित हो देख रहे थे। और वह चन्द्रा को कन्धे पर लिये तहस-नहस कर रहा था। एक हाथ से पण्डित की पगड़ी ले उसने अग्नि में फेंक दी और चिल्लाया स्वाहा फिर सब वस्तुएँ इधर-उधर फेंक कर चिल्लाता गया स्वाहा-स्वहः-स्वाहः; सुरेश ने 'कहा पागल है।' पर भाभी चिल्ला उठीं, "लल्ला?"

बनवारी लाल ने चन्द्रा को लिटा दिया—मुँह की पट्टी खुल गई थी, सिर की आधी खुली थी। अब ध्यान से देखने से सब ही को पता चल गया, ये बनवारी लाल हैं।

घर भर में कोलाहल मच गया। सुरेश की उपाधि छिन गई। वह सामने से हट गया। भाभी हाथ जोड़कर भगवान् को धन्यवाद दे रही थीं–जीजी न जाने क्यों चोर-सी कोठरी में खड़ी हुई हर्ष के आँसू बहा रही थीं। इन आँसुओं में हर्ष था, इसमें सन्देह नहीं पर फिर भी न जाने क्यों सामने न आती थीं। रमेश बाबा के

घुटने पर सर रख कर रो रहा था चन्द्रा अभी तक अचेत थी। पण्डित जी तो दुम दबा कर ऐसे हवा हुये कि किसी ने उन्हे हुए जाते भी न देखा! इतने शोर के बाद सन्नाटा-सा छा गया था।

धीरे-धीरे रहस्य खुलने लगा, उनके साथ उनके एक मित्र भी थे, जब यह दुर्घटना हुई तो हलचल मे बनवारी लाल का नाम-लिखा बक्स उनके पास पाया गया। वह मर गये थे और चेहरा बुरी तरह पिच गया था। बनवारी लाल खिड़की के पास थे। धक्के ने उन्हें बाहर दूर तीसरे दरजे के पास फेंक दिया था। चोट बहुत आई, सरकारी अस्पताल में बेहोश पड़े रहे। जब होश आया तो पास मे एक पैसा भी न था—चलते वक्त कम्पाउण्डर ने पूछा, तुम्हे कहाँ जाना है तो बनवारी लाल ने आगरे का पता बता दिया। ऐसे मुसाफिरो को मुफ्त टिकट बनवा दिये गये थे और ऐसे वे आगरा पहुँचे। सिर में चोट आने से विचार-शक्ति कुछ कम हो गई थी, फिर भूख ने और भी बौखला दिया था। अब बनवारी-लाल पूरे चैतन्य हो गये थे। उन्होंने हारे हुए भाव से भाभी से पूँछा, "जो रहा-सहा था वह भी स्वाहा हो गया भाभी" ?

भाभी ने कहा, "भगवान् का दिया बहुत है। तुम हो तो जहान है" बनवारी लाल को जैसे खोई हुई सम्पत्ति मिल गई।

तिथि—१६-५-५२

—:०:—

सुशीला आग़ा एम० ए०

सुशीला जी का जन्म नवम्बर सन् १६३५ में उत्तर-प्रदेश के जौनपुर ज़िले में एक कुलीन प्रतिष्ठित परिवार मे हुआ। आपके पिता स्वर्गीय श्री रूप कृष्ण जी आगा इलाहाबाद में डिस्ट्रिक्ट जज रह चुके थे। आपकी पॉच बहिनें और हैं :—

१—सुश्री कमला बक़ाया, मानसरी डिप्लोमा होल्डर (रोम) हैं। २—सुश्री रूपकुमारी शिवपुरी, मानसरी डिप्लोमा होल्डर (रोम) हैं। ३—श्री मती किशन हंडू इन्टेलिजेंस विभाग, दिल्ली में डिप्टी डाइरेक्टर के पद पर कार्य कर रही हैं। ४—सुशीला ग़ंजू एम० ए० हैं। ५—श्रीमती प्रेमकुमारी शिवपुरी बी० ए० हैं। आपके पाँच भाइयों में श्री मदन जी एम० ए० 'आल इण्डिया रेडियो' लखनऊ में प्रोग्रैम डाइरेक्टर हैं।

घर का वातावरण एवं संगति पठन-पाठन के लिये विशेष उपयुक्त था। कई पुत्र-पुत्रियों के रहते हुए भी सब की शिक्षा-दीक्षा पर आपके पिता ने यथेष्ट ध्यान दिया और उच्च शिक्षा दिलवाई। सुशीला जी ने भी उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त की। आपने सन् १६३८ में प्रयाग विश्व-विद्यालय से एम० ए० परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। आपका विवाह सन् १६४१ ई० में हुआ। सम्प्रति आप लेबर आफ़िसर के रूप में सर्विस करती हुई स्वरूप नगर कानपुर में रहती हैं।

सुशीला जी को बाल्यावस्था से ही हिन्दी साहित्य से विशेष प्रेम था अतः आपने हिन्दी साहित्य का भली-भाँति अध्ययन किया। विश्वविद्यालय की उच्च-कक्षाओं में पहुँच कर आपने अंग्रेज़ी साहित्य तथा अनेक अन्य आवश्यक विषयों से गहरा

सम्पर्क स्थापित किया। आपका परिवार पूर्ण शिक्षित तथा सामाजिक विषयों में काफी प्रगति शील रहा है। पर्दे आदि जैसी प्रगति-विरोधी वस्तुओं का आपके यहाँ से बहुत समय पूर्व चलन बन्द हो गया था। पाश्चात्य शिक्षा एवं तज्जन्य विचार तथा भाषण-स्वतन्त्रता और जीवन के प्रति उदार दृष्टि-कोण रखने में आपका परिवार काफी बढ़ा-चढ़ा था। इस प्रकार के वातावरण का आपके व्यक्तित्व-विकास, विचार तथा भाव-संगठन आदि पर विशेष प्रभाव पड़ा है। आपकी रचनाओ से आपकी विशेषतायें पूर्णतया प्रकट होती हैं।

विश्वविद्यालय की ऊँची कक्षाओं में पहुँच कर आप का ध्यान कहानियों के निर्माण की ओर आकर्षित हुआ। उस समय आपकी कहानियाँ 'चाँद' 'हंस' तथा सरस्वती प्रेस बनारस से प्रकाशित होने वाली 'कहानी' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं। आप में यथेष्ट उत्साह, उमंग तथा लगन थी। आपने अपनी कृतियों को प्रकाशित करने का प्रयत्न इसी से प्रारम्भ से ही किया। आपकी प्रारम्भिक कहानियाँ स्वभावतः किसी आरम्भ करने वाले कलाकार की रचना प्रतीत होती हैं। भाषा तथा भाव दोनों दृष्टियों से वे प्रयोगात्मक तथा प्रारम्भिक प्रयत्न की छाया लिये हुए दिखाई देती हैं; मानों कोई पथिक अपने नवीन मार्ग को ढूँढ़ रहा हो और इस खोज में कभी गन्तव्य की ओर ले जाने वाले मार्ग को त्याग कर थोड़ी देर के लिये भटक जाता हो और फिर अपने उचित पथ पर आ जाता हो।

अस्तु, इन रचनाओं में कला तथा मस्तिष्क-साध्य अकलात्मकता का मिश्रण मिलता है। विषय-चुनाव में सफल होते हुए भी मानवी भावों की गहराई के प्रति अनभिज्ञता तथा कला की माँग से अपरिचय प्रकट होता है। इसका अर्थ यह नहीं

है कि आपकी प्रारम्भिक रचनायें बिल्कुल असफल या कला-शून्य हैं या उनमें आद्यन्त जीवन तथा जगत के प्रति अनुभव हीनता है। प्रयोजन केवल यही है कि कुछ दूर तक कला का निर्वाह करने के पश्चात् उनमें कलाशून्यता दिखाई पड़ती है। हो सकता है लेखिका में यथार्थवाद के प्रति गलत धारणा रही हो, जिसका निर्वाह करने मे उससे परिणामतः भूल हुई हो। संक्षेप में आप के प्रारम्भिक प्रयत्नो मे हमें कहानी-कला की सफलता तथा असफलता दोनों मिलती है। इनमें प्रारम्भिक प्रयत्न का उत्साह, सीखने की अभिलाषा, आवेग एवं प्रयोग मिलता है।

शनैः-शनैः सुशीला जी की कहानियों ने शक्ति एवं सफलता प्राप्त कर ली है। भाषा तथा भाव, चरित्र-संघर्ष तथा कल्पनात्मकता सभी दृष्टियों से आपकी रचनाओं में यथेष्ट कला एवं जीवन दिखाई पड़ता है। बात भी ठीक है, गल्प-साहित्य या नाटक-निर्माण आदि वर्षों के अभ्यास तथा विस्तृत जीवन एवं जगत के अध्ययन की अपेक्षा करते हैं क्योंकि इनमें उसी लेखक को संतोषजनक सफलता मिल सकती है जो जीवन के विविध अंगों का सफल चित्रण कर सकता हो। इनमें जीवन तथा जगत के जितने ही बहुमुखी विस्तार, दृश्य-खंड, चढ़ाव-उतार, सुख-दुख आदि के स्वरूप आवेंगे, उतने ही वे सफल होंगे। वही साहित्य हमारे ऊपर अक्षय प्रभाव डाल सकता है जो एक ओर जीवन के उच्च और गम्भीर पहलुओं को तथा दूसरी ओर हल्के और साधारणतम व्यंग्य-विनोद मय चित्रों को उपस्थित करता है। राम-चरित-मानस का रचनाकार एक ओर अयोध्या काण्ड में राम-वन-गमन, दशरथ-मृत्यु एवं भरत का पश्चात्ताप-दाह दिखाता है तो दूसरी ओर कैकेयी-मंथरा-संवाद में निम्न श्रेणी की कुटिल स्त्रियों की जीवन-दृष्टि का मूर्त रूप

भी हमारे सामने रखता है। अस्तु, साहित्य को चिरायु होने तथा अखिल मानव-प्रिय बनने के लिये जीवन की अखिलता का चिरन्तत स्वरूप प्रदर्शित करना होगा।

जीवन के प्रति यह व्यापक दृष्टि हमें सुशीला जी की रचनाओं में मिलती है। यद्यपि इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वर्तमान आलोचक उनकी तुलना महा कवि गोस्वामी जी से करके अपनी अनभिज्ञता का प्रदर्शन तथा आगा जी का अपमान करने का अपराध कर रहा है। आपकी कहानियों में अनेक प्रकार के पात्र विभिन्न परिस्थितियों में अपनी-अपनी समस्यायें लेकर आते और पाठक का चित्त आकर्षित करते हैं। उनका सुख-दुख तथा उनकी समस्यायें केवल उन्हीं की नहीं होती हैं। उनका सम्बन्ध सारी मनुष्य जाति से होता है। इसी से वे सभी का चित्त भी आर्कार्षत करते हैं। उदाहरण के लिये 'वह रो रहा है' में आगा जी विश्व-विद्यालय के एक दीन-हीन छात्र की विवशता, सामाजिक अपमान तथा लांछन आदि का चित्रण करती हैं। 'कवि की स्त्री' में आप नवयुवतियों की उस भावुकता तथा अव्यवहारिक आदर्शवादिता की ओर संकेत करती हैं जिनके कारण वे दाम्पत्य जीवन की व्यापक अनेकरूपी समस्याओं तथा आवश्यकताओं का अनुभव नहीं कर पातीं और पति के चुनाव में गहरी भूल कर जन्म भर रोती रहती हैं। 'वह चित्र' में आप एक भद्दी शक्ल-सूरत की कालेज की लड़की के श्रेष्ठ भावों तथा विचारों, मानव-प्रेम एवं चित्र-कला की प्रतिभा का वर्णन करती हैं। आप की 'वह चित्र' कहानी भाषा तथा भाव-चित्रण एवं जीवन-अनुभूति आदि सभी दृष्टियों से सर्व-श्रेष्ठ है।

इस प्रकार आपकी कहानियों में जीवन के गूढ़ सत्यों एवं समस्याओं की ओर संकेत एवं सुलझाव मिलता है। आप की

जीवन-दृष्टि यथार्थवादी है। आप की रचनायें इस बात की साक्षी हैं कि आप ने मनुष्यों के भावों, विचारों, उद्देश्यो, उठने-बैठने के तरीकों, अर्थ-लिप्सा, यौवन का अन्धपन, आदर्शवादी अव्यवहारिकता या अज्ञानता आदि का समुचित और सुन्दर अध्ययन किया है। आपकी रचनाओं में इसी से हम आदर्श, नीति या धर्म आदि की स्तुति लम्बी-चौड़ी व्याख्या के साथ नहीं पाते। उनमें दार्शनिक उड़ान या तर्क-शीलता का अभाव है। आप जीवन को उसके वास्तविक रूप में प्रकट करना चाहती हैं। न तो उसमें आप आदर्शवाद का स्वप्न भर कर पाठक की कल्पना को एक धुँधले अस्पष्ट चित्र की ओर दौड़ने के लिये उकसाती हैं और न जीवन में केवल दुःख, निराशा, ठोकरें, घृणा और दीनता ही दिखाकर उसके सुख, हास्य, प्रेम, सफलता, कर्म-शीलता, और प्रगति आदि के पहलुओं से ही आँखें मूँदने का पक्षपात दिखाती हैं।

अस्तु, सुशीला जी का यथार्थवाद उन लेखकों के यथार्थवाद से भिन्न है जो जीवन में केवल शोषण, घृणा, अश्लीलता, विनाश, सड़न, और निराशा ही देखना चाहते हैं और पाठकों के समक्ष हर समय सूखी ठठरियाँ रखकर उनके मनोरंजन का प्रयत्न करते या अपने राजनीतिक विचारों के पोषण की आशा रखते हैं। आपका यथार्थवाद जीवन की किसी पूर्व-निश्चित धारणा को लेकर नहीं आगे बढ़ता। आप की कहानियों में नवीन विषयों पर नवीन दृष्टि कोण से विचार किया गया है।

आपकी प्रारम्भिक रचनाओं में हमें प्रायः विश्व-विद्यालय का वातावरण तथा छात्र-छात्राओं के जीवन की समस्याओं एवं रूप-रेखाओं का परिचय मिलता है। इस प्रकार आप इनमें अपने आस-पास के वातावरण से अपनी गहन जानकारी एवं उसके प्रति जागरूकता का परिचय देती हैं। आप में यह एक

नवीन बात दृष्टिगोचर होती है। पहले तो छात्र-छात्राओं के जीवन के इस अंग पर कम कहानी-लेखिकाओ ने प्रकाश डाला है। उन्होंने इसके विषय में समझने-बूझने तथा इस पर ध्यान से आँखें गड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। दूसरे जिन गल्प-साहित्यकारों ने इस ओर ध्यान भी दिया है उन्होने चाहे वे स्त्री गल्प-रचनाकार हो या पुरुष, छात्रो के जीवन के बाह्य अंगों तक उनके सिनेमा, रिस्टोराँ, प्रेम-व्यापार, सैद्धान्तिक विवाद, और पोशाक आदि तक ही अपनी रचनाओ को सीमित रखा। बहुत कम गल्पकारो ने इस ओर ध्यान दिया कि विश्व-विद्यालयों में ऐसे छात्रों की संख्या भी पर्याप्त है जो असह्य आर्थिक कष्टों तथा घृणा एवं उपेक्षाओं को सहन करते हुए जैसे-तैसे अध्ययन कर रहे हैं।

'वह रो रहा है' आपकी ऐसी ही कहानी है जिसमें अर्थाभाव से पीडित एक छात्र की निराशाओं, विवशताओं तथा उसके प्रति अन्य छात्रों की उपेक्षाओं एवं कटु आलोचनाओं आदि का सजीव चित्रण मिलता है। विश्व-विद्यालय के छात्र तथा छात्रायें अपने वैवाहिक सम्बन्ध में स्वतन्त्र होने पर प्रायः भूलें करते हैं, और इसके लिये जन्म भर कष्ट उठाते हैं। इस तथ्य की ओर आपकी 'कवि की पत्नी' नामक कहानी संकेत करती है। इसी पहलू को हमारे अन्य कतिपय कहानीकारों ने अन्य दृष्टि से देखा है। उनकी दृष्टि में विश्व-विद्यालय की छात्राओ का चरित्र बिल्कुल दूषित और गिरा हुआ होता है। उनका प्रेम क्षणिक, शारीरिक मात्र और वासनामय होता है। अपने प्रेम की हत्या तक करके वे केवल आर्थिक दृष्टि से पति-चुनाव करती हैं। हो सकता है कि कुछ छात्राओं का चरित्र इसी प्रकार का हो।

यहाँ हम छात्रो के चरित्र को छात्राओं के चरित्र से सुन्दर नहीं

बताते। सभी को ज्ञात है कि उनमें कहीं अधिक चरित्र-हीनता, ग़ैर ज़िम्मेदारी तथा अनुशासन-हीनता मिलती है। किन्तु सभी छात्र-छात्राओं के प्रति ऐसी दृष्टि रखना भूल ही होगी। इस विषय में सच्चाई को एक स्त्री पुरुषों से कहीं अधिक प्रत्यक्ष कर सकती है। सुशीला जी की कतिपय कहानियाँ इसी भ्रम-निवारण का पुनीत कार्य करती हैं। आपकी कहानियों मे आये हुए स्त्री-पात्र भूलें करते हैं किन्तु ऐसी भूलों के लिये उनकी शिक्षा-दीक्षा, वातावरण या उन्मुक्त, उदार एवं विचार-स्वातन्त्र्य-पूर्ण जीवन उत्तरदायी नहीं होता, बल्कि इसका उत्तरदायित्व होता है उनकी अनुभव-शून्यता, दाम्पत्य-जीवन की कठोर समस्याओ से अनभिज्ञता तथा व्यवहारिक जोवन से दूर के स्वप्नों पर। उनमें हम कभो भी बेइमानी, भाव-शून्यता और केवल शारीरिक भोग-विलास की लिप्सा नहीं पाते। वे जो कुछ करती हैं, सच्चे हृदय से सोच-विचार कर करती हैं किन्तु यदि उनकी आशायें पूर्ण नहीं होतीं तो उनके ऊपर चरित्र-हीनता, विलास-प्रियता या अर्थ-लिप्सा आदि का दोषारोपण नहीं किया जा सकता।

सुशीला जी अपनी कहानियों में जीवन की सामान्य समस्याओ के साथ ही पात्रों के चरित्र-चित्रण पर विशेष ध्यान देती है। उनकी कहानियाँ छोटी होतो हैं; जिनमे वे पात्रों के चरित्र-विकास-जैसी वस्तु को दृष्टि मे नहीं रखतीं। उनके पात्रो के एक समय की दशा मनोस्थिति और समस्या आदि का मार्मिक चित्र हमारे सामने आता है। पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिये आप उनके वार्तालाप, वेश-भूषा, वातावरण एवं अपने वर्णन का सहारा लेती हैं। आश्चर्य होता है कि आप में स्वगत कथन—जैसी वस्तु कम मिलती है। पात्र जो कुछ अपने मन में सोचता या कहता है उसे आप स्वयं कह कर कहानी के वर्णित-अंग को अधिक विस्तार दे देती हैं। पात्रो की वेष-भूषा तथा रहन-सहन का ऐसा सुन्दर

चित्र आप हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं जो केवल उसकी आर्थिक-और सामाजिक परिस्थितियों तक को ही सूचित न कर उसके चरित्र, तथा सोचने-विचारने की प्रणाली आदि की ओर भी संकेत करता है। 'वह रो रहा है' में मनोहर के वस्त्रों की अस्त-व्यस्तता, ऊट-पटॉगपन तथा कमी आदि केवल उसकी आर्थिक कठिनाई को ही नहीं प्रकट करते वरन् उसके अस्त-व्यस्त, सहमे हुए, निराश चरित्र का भी द्योतन करते हैं। 'वह चित्र' में इसी प्रकार शारीरिक आकार-प्रकार के वर्णन से एक चित्रकार किन्तु कुरूप छात्रा का मूर्त रूप परिलक्षित होता है।

आपके पात्रों का वार्तालाप काफी सफल एवं अभिप्राय-युक्त होता है। 'वह चित्र' में दोनों मित्र छात्राओं का वार्तालाप उनके विभिन्न चरित्रों की ओर संकेत करता है। एक की गम्भीरता, कला-प्रेम, व्यापक मानवी सहानुभूति तथा समाज की उपेक्षा के कारण दुख एवं कुढ़न तथा दूसरे की चंचलता, प्रसन्नता, मुखरता और सज्जनता युक्त विनोदी प्रकृति का परिचय उनकी पारस्परिक वार्ता से मिल जाता है। सुशीला जी पात्रों का वार्तालाप दो दृष्टियों से नियोजित करती हैं। प्रथम उनके चरित्र और अन्तःकरण के भावों पर तथा द्वितीय से उनकी बाह्य परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है। आप अपने पात्रों में बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव को यथेष्ट लक्ष्य करती हैं। कहानी-जैसी छोटी कृति में यह सम्भव भी नहीं है जब तक कि कहानी-कार का उद्देश्य ही मनुष्य पर परिस्थिति-प्रभाव का चित्रांकण न हो। अवसर पाकर आप इस ओर संकेत मात्र कर देती हैं। उतना ही पाठकों के लिये पात्रों के चरित्र-संघटन में यथेष्ट सहायता पहुँचाता है। 'कवि की पत्नी' में धनी घर की लड़की रानी में तुनुकमिजाज़ी एवं गर्व को उसके वार्तालाप एवं व्यवहार से भली भाँति प्रकट कर दिया गया है। 'वह रो रहा' है' के नायक

पात्र का चरित्र परिस्थितियों से किस सीमा तक प्रभावित है; यह किसी भी पाठक से छिपा नहीं रह सकता है।

सुशीला जी अपनी कहानियो में प्रायः दो विरोधी परिस्थितियों दो विभिन्न शील स्वभाव तथा परिस्थिति के पात्रों को उपस्थित कर देती हैं। ये पात्र एक दूसरे को समझने मे हमें उसी प्रकार सहायता देते हैं जैसे सुख-दुख या धूप-छाया के दृश्य एक ही स्थल पर एक दूसरे के स्वरूप को गहनता के साथ हमारी कल्पना में अंकित करते हैं। 'वह चित्र' में यह विरोधाभास अत्यंत सफल समझा जा सकता है। पता नहीं लेखिका ने जान-बूझ कर ऐसी योजना की है या उसकी कला-प्रधान प्रतिभा ने अनजान में ही ऐसा चुनाव कर डाला है। कुछ भी हो, आपकी ऐसी योजनायें वास्तविकता के इतने निकट होती हैं कि उन पर किसी भी प्रकार से कृत्रिमता और असत्य आदि का दोषारोपण नहीं किया जा सकता। इस विरोधाभास से आपकी कृतियों का प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है। हमारे सुख-दुख तथा मूल्य-निर्धारण आदि बहुत-कुछ एक दूसरे की तुलना पर अवलम्बित होते हैं। 'वह चित्र' में दोनों मित्र छात्राओं का चरित्र एक दूसरे से बिलकुल विपरीत होने के कारण उनको और भी सफलता के साथ हमारी कल्पना में स्थापित करता है।

सुशीला जी प्रेम, प्रतिस्पर्धा, करुणा, वेदना, आदि भावों का सुन्दर चित्र हमारे समक्ष रखती हैं। विनोद उनकी प्रकृति का अंग है जो हल्के रूप में उनकी कृतियों में व्याप्त हुआ दृष्टिगोचर होता है। 'वह चित्र' में कलाकार विनोद छात्रा के जीवन की गम्भीरता, एवं हृदय-सौन्दर्य को और भी दिव्य रूप प्रदान करता है। आप ने इस प्रकार जीवन के लगभग सभी भावों का अत्यन्त सफल चित्रण किया है।

आप का गद्य शुद्ध साहित्यिक और परिष्कृत होता है।

वर्णन कहीं-कहीं अवश्य नीरस-सा लगता है किन्तु ऐसी नीरसता केवल प्रारम्भिक रचनाओं में ही मिलती है। बाद में आपकी भाषा एक श्रेष्ठ साहित्यकार की भावाभिव्यंजन एवं विचार-प्रतिपादन की शक्ति प्राप्त कर लेती है। माधुर्य तथा प्रसाद गुण इसमें सर्वदा परिलक्षित होते हैं।

—:०:—

वह चित्र

"जया! तुमसे वास्तव में अब मुझे ईर्ष्या होने लगी है। इतने सुन्दर चित्र बना कर तुम्हें जो हार्दिक प्रसन्नता और सन्तोष होता होगा यदि मैं भी उसकी भागी बन सकती तो अपने को सबसे अधिक सौभाग्य शालिनी समझती"—कहते हुए जया की सहपाठिनी उषा ने अपनी पुस्तकें समीप ही रखी हुई मेज़ पर डाल दी और जया के पास आ बैठी।

जया इस समय तूलिका हाथ में लिए बैठी किसी कल्पना के लोक में विहार कर रही थी और सम्मुख रखा था एक अधबना चित्र! उषा ने आकर उसका स्वप्न भङ्ग कर दिया, इस कारण तनिक क्रोध की मुद्रा बना कर उसने अपने विशाल नेत्र उषा के नेत्रों में गड़ाते हुए कहा—"कैसी दुष्ट होती जा रही हो तुम! कभी चुपचाप नहीं आ सकती, भीतर घुसने से दस मिनट पूर्व ही मुझे सूचना मिल जाती है कि महारानी जी आ रही हैं।"

"हाँ, तो और क्या, मैं कोई ऐसी-वैसी हूँ? बड़े आदमियों के बड़े ठाठ। अपने सौभाग्य की सराहना करो कि तुम्हारे

महल—कुटिया नहीं, कोठरी को मैं इतने बार पवित्र कर चुकी हूँ।" कहते हुए उषा ठठा कर हँस पड़ी।

जया और भी मुँह फुला कर बोली—"रहने दो; हर समय का तुम्हारा उपहास अच्छा नहीं लगता। कभी-कभी तुम मुझे बड़ा कष्ट पहुँचाती हो। विचारों का तारतम्य टूटने पर मैं लुटी-सी रह जाती हूँ। स्वयं ही सोचो, क्या एक ही स्वप्न दो बार दिखाई पड़ सकता है?"

"ओह! बड़ी भूल हो गई, विचारों का तारतम्य? क्षमा करियेगा श्रीमती जी, अब क्या हो सकता है, गोंद ले आऊँ? सम्भव है, उसे किसी प्रकार जोड़ करके मैं आपका कष्ट निवारण कर सकूँ।"—कहते हुए उषा ने जया के सम्मुख हाथ जोड़ दिये। बस जया का बनावटी क्रोध एक क्षण में उड़न-छू हो गया। उसके होठों पर एक लम्बी मुस्कान दौड़ गई।

उचित अवसर देखकर उषा ने अपने चञ्चल नेत्रों को मटकाते हुए कहा—"बड़ी आई क्षमा-याचना कराने वाली; और मेरी बात जो भुला दी उसका उत्तर दायित्व किस पर होगा?"

जया चट बोल पड़ी—"मेरी बात मानो, थोड़ी देर के लिए यदि हम दोनों चुप हो जायँ तो सब झगड़े का निर्णय स्वयं ही हो जायगा।"

"परन्तु मेरे पास तो इतना समय नहीं है और न मेरे मस्तिष्क के पेंच तुम्हारी तरह ढीले पड़ गये हैं, जो घण्टों सोचूँ तो कहीं जाकर एक आधी बात सूझे—अच्छा अब झगड़ा समाप्त। यह तो बताओ तुम आज कालेज क्यों नहीं आईं?"

"मैं? क्या......"

जया आगे बोलने ही जा रही थी कि उषा ने बात काटते हुए कहा, "हाँ, मैं जानती हूँ, आज प्रोफेसर महोदय पूछते थे, 'उषा,

तुम्हारी छाया कहाँ छुट गई?'-मैने उनसे कह दिया कि उसे चित्रकारी का रोग उपजा होगा।" अपने अधबने चित्रकी ओर दृष्टिपात करते हुए जया बोली-"तुम मेरी आदत सदा से जानती हो, परन्तु प्रत्येक बार अनभिज्ञ बनना तुम्हें प्रिय लगता है।"

"जो समझो, मैं तो सदैव से कहती आ रही हूँ कि तुम मुझे एक पहेली-सी जॅचती हो, जिसे मैं जितना सुलझाने का प्रयत्न करती हूँ वह उतनी ही उलझनी जा रही है। किसी बुद्धि वाले को ऐसी बाते कभी न सूझेंगी जैसी तुम्हे सूझ जाती हैं। पढ़ाई का त्याग कर चित्रकारी करना भला कौन सी बुद्धमानी है ?"

"मेरे जीवन का सुख, मेरे नेत्रो की शान्ति, केवल मेरी यह कला है। इसके अतिरिक्त मेरे पास और है ही क्या ?"—कहते हुए जया ने अपनी शून्य-दृष्टि उषा पर डाली।

उषा ने देखा उसके नेत्रों में एक बिखरा हुआ स्वप्न, जिसका अर्थ वह समझ सकी अथवा नहीं, यह नहीं मालूम।

उषा ने अधबने चित्र की ओर दृष्टि फेरी, ईरानी चित्रकला का ढङ्ग था। साक़ी के हाथ में छलकता हुआ प्याला है—कमर से नीचे तक लटकती हुई नागिन-सी काली दो बेणियाँ, एक पतली ओढ़नी जो वायु के वेग के कारण बिखरी जा रही है और साक़ी के नेत्रों में है शून्यता का भाव। जया के नेत्रों का चित्र उसने साक़ी के नेत्रों में देखा। सफल चित्रकला देख कर उषा का हृदय अपनी सखी की विजय पर नृत्य कर उठा। वह बोली—"जया, तुम्हारी तूलिका में जादू है, कितना सजीव चित्र तुमने बनाया है, कैसा शून्यता से भरा भाव है, कैसी प्रश्न-सूचक दृष्टि है ? लगता है तुम स्वयं साक़ी का आकृति में बैठी हुई झाँक रही हो। तुम कितनी सुखी हो !"

जया ने शान्त भाव से उषा की ओर निहारा और बोली—'जो तुम सोचो।'

उषा ने कलाई पर बँधी हुई घड़ी पर दृष्टि डाली. घर जाने को देर हो रही थी, इस कारण उठ खड़ी। हुई 'कल तुम्हारा चित्र समाप्त हो जायेगा, तब देखने आऊँगी'—'कह कर उषा कमरे के बाहर हो गई। जया तूलिका लेकर फिर अपने स्वप्न-लोक की ओर बढ़ी।

× + +

कई वर्ष हुए, उषा और जया की जीवन-सरिताएँ, अनायास ही टकरा गई थीं, तब से दोनों में घनिष्टता चली आ रही है। उषा देखने में सदैव से दुबली-पतली, गोरी और सुन्दर है, परन्तु जया उसके प्रतिकूल ठिगनी, मोटी, काली और अत्यन्त कुरूप है। उसके विशाल मोटे-मोटे नेत्र, बहुत उन्नत ललाट, मोटी और फैली हुई नाक और बत्तीसी की पूरी झलक दे देने वाला मुँह—इन सब विशालताओं ने मिलकर उसे एक विचित्र जीव बना दिया है। प्रथम दृष्टि में ही लोग घबरा कर उसकी ओर से मुख फेर लेते हैं। जया कभी-कभी स्वयं बैठी घण्टो सोचा करती है—भगवान को समस्त अन्याय उसी के साथ करना था, परन्तु किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुँच पाती। मनुष्य के वाह्य और अन्तर मे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है, इस बात की सत्यता जया को देख कर सिद्ध हो जाती है। वह सीधी-साधी, हँस-मुख और शान्त स्वभाव की है। गुणों का उसमें बाहुल्य है। मालूमा होता है, ईश्वर ने कुरूपता के बदले में ही उसे इतने गुण दे दिये हैं। वह ऊँचे दरजे की चित्रकार है, श्रेष्ट कवि ।और सङ्गीतज्ञ है।

कलाकार से अलग करके यदि उसकी कला को देखा जाय तो प्रत्येक दर्शक अपनी कल्पना में उसका अत्यन्त ही सुन्दर चित्र खींचने में पूर्ण सफल होगा। यह सब होते हुए भी जया केवल उन्हीं थोड़ी सी कॉलेज की छात्राओं और शिक्षकों की सहानुभूति की पात्री बन सकी है, जो उससे भली-भाँति परिचित हैं। इसके

अतिरिक्त यदि वह कहीं समाज मे आती-जाती है, तो उसे अपने ऊपर लोगों की घृणा-दृष्टि जमी देख कर अत्यन्त दुःख होता है। उसका हृदय हाहाकार कर उठता है, मस्तिष्क मे उन्मत्त भाव आने लगते हैं! इच्छा होती है अपना हृदय चीर कर वह दुनिया को दिखा दे कि उसके हृदय में कितनी सुन्दरता भरी है, परन्तु सब व्यर्थ—जो बात सम्भव नहीं, उसे वह किस प्रकार कर दिखाये? वास्तव में उषा—उसकी उपासिका तक उसे पूर्णतया समझने मे असमर्थ है।

उषा और जया प्रायः साथ ही कॉलेज जाती हैं। लड़के लड़कियाँ और यहाँ तक कि शिक्षक भी उनकी हँसी उड़ाते रहते हैं। दोनों को 'धूप' और 'छाया' की उपाधि मिले कितने ही वर्ष हो गये हैं। वह इन उपाधियों की इतनी अभ्यस्त हो गई है कि उषा बहुधा जया को 'छाया' नाम से पुकारती है। यदि किसी दिन दुर्भाग्यवश दोनों में से कोई अकेली हो जाती है, तो लोग अपनी-अपनी सहानुभूतियाँ लेकर उसके पास पहुँचते हैं। आज भी वही बात थी। जया सोच रही थी कि साक़ी के नेत्रों में कितनी लाली भरं, परन्तु आ गई याद उषा की; और उसकी मधुर बातों की। एक स्मित हास्य में उसके मोटे अधर फैल गये। मन-ही-मन सोचने लगी—उषा कितनी अनभिज्ञ है। वह समझती है, मैं बहुत सौभाग्यशालिनी हूँ, बहुत सुखी हूँ। बिना किसी अपराध के समाज जिसे अवहेलना की दृष्टि से देखता है, वह क्या कभी सुखी रह सकती है? आनन्द के सागर में डुबकियाँ मार सकती है? सब झूठ; वह भूलती है। दो बड़े-बड़े मोती जया में नेत्रों के कोनों में बिखर गये, परन्तु समयाभाव के कारण उसने शीघ्रता से तूलिका सँभाली। उसे याद आया; कल उषा उसका चित्र देखने आयेगी, और उसे कॉलेज भी जाना है। तब तक चित्र समाप्त हो जाना चाहिए।

दूसरे दिन जया उषा के साथ ही कॉलेज से लौटी। मन में

उमंग भरी थी कि उषा बैठकर कुछ देर उसके चित्र की प्रशंसा करेगी, परन्तु वहाँ कुछ और ही रंग था। उषा अपने विचारों में भूली हुई कभी-कभी हँस कर जया की ओर निहार लेती। आज वह विचित्र बातें कर रही थी। कमरे में आकर बैठने के बाद भी जब उषा ने चित्र की ओर दृष्टि नहीं फेरी तो जया से नहीं रहा गया, अपनी निराशा को हृदय में छिपा कर बोल ही पड़ी—"क्यों उषा, आज तुम मन-ही-मन किस बात पर इतनी प्रसन्न हो रही हो?"

"तुमको बताते हुए कुछ लज्जा आती है जया! तुम सोचोगी कितनी निर्लज्ज है, परन्तु बिना कहे रहा भी नहीं जाता।"

"तो फिर बताओ न?"

"मेरा विवाह ठीक हो गया है। वह विलायत से अभी इंजीनियरिङ्ग पास करके लौटे हैं। हँसना नहीं जया तुमसे भला क्या छिपाऊँ, मेरी अन्तरङ्ग और सब कुछ तुम्हीं हो।"

एक क्षण के लिये जया के होठों पर मुस्कराहट दौड़ गई। उषा को लपक कर हृदय से लगाते हुए बोली—"बधाई! जीवन का प्रत्येक क्षण तुम्हारे लिये सुनहरे स्वप्नों का मादक जाल लेकर आये और तुम सदैव सुखके गाने गाती रहो—यही ईश्वर से प्रार्थना है।"

उषा की झेंप कुछ कम हुई, वह आँखें मटकाकर हँस के बोली—"अच्छा छाया, तुम उपदेश देने लगीं तो धन्यवाद भी ले लो। तुम समझ नहीं सकतीं, मैं कैसे अनोखे सुखों की अनुभूति कर रही हूँ—मेरे नेत्रों के सम्मुख एक अद्भुत रङ्गीला राज्य है और उसकी रानी हूँ मैं! चित्रपट के चित्रों की नाईं एक के बाद एक, भावी जीवन के मोहक चित्र आते हैं और लुप्त हो जाते हैं। यदि तुम समझ सकतीं—पर तुम कैसे समझो? भगवान ने तुम्हें बस केवल एक इसी शक्ति से वंचित कर दिया है।"

जया के हृदय मे भारी ठेस लगी। वह भूली थी, उषा उसे समझती है, परन्तु आज उसको ज्ञात हुआ—'भगवान ने तुम्हे बस केवल एक इसी शक्ति से वंचित कर दिया है'—ये शब्द एक-एक करके उसके कर्ण-कुहरों में झंकृत होने लगे। हृदय के वेग को रोक कर जया ने प्रश्न किया—'यह कैसे समझीं उषा, कि मैं उस शक्ति से वंचित हूँ ?'

"ठीक ही समझी, तुम इतनी कल्पना रखते हुए भी अपने भावी पति का चित्र नहीं खींच सकतीं—क्योंकि कल्पना का आधारभूत सत्य होता है। तुम जानती हो, तुम्हारा कभी कोई पति ही न होगा तो कल्पना भी कैसे कर सकती हो ? और ज़रा मेरे हृदय में झाँको, कितना सुन्दर चित्र अङ्कित है। तुम्हारी कल्पना के पंख गिर जाते हैं। आज मैं तुम पर अपनी विजय पूर्ण रूप से अनुभव कर रही हूँ, सच है न ?"—उषा एक साँस में ही सब-कुछ कह गई।

जया ने पृथ्वी की ओर दृष्टि गड़ाये सम्मति-सूचक सिर हिला दिया, परन्तु उसके भीतर एक विचित्र हलचल-सी मची थी। जया की इच्छा हुई कि आज यदि वह समाज को अपने हृदय का सौन्दर्य दिखाने में असमर्थ है तो केवल उषा को ही दिखा दे। परन्तु यह भी कहाँ सम्भव था। अपनी निर्बलता पर उसके हृदय ने एक आह भरी।

उषा कुछ देर बातें करके चली गई। उसे यह कदापि ज्ञात न था कि जया को उसने तीव्र वेदना पहुँचाई है।

उस दिन के बाद जया दो दिन तक बराबर कॉलेज नहीं गई। जब उषा उससे न जाने का कारण पूछती तो उदर-शूल अथवा सिर में पीड़ा का बहाना कर देती। तीसरे दिन जब फिर उषा ने जया को कॉलेज में नहीं देखा तो बड़ी रुष्ट होकर उसे लिवाने के

लिए, छात्रावास में जा पहुँची। जया के कमरे के किवाड़ भीतर से भिड़े हुए थे। उषा ने धीरे से द्वार खोले। देखा, जया अपने पलङ्ग पर पड़ी गाढ़ी नींद सो रही है। उसके एक हाथ में बहुत ही सुन्दर एक नवयुवक का चित्र है और दूसरे में तूलिका। निद्रा में भी जया के नेत्र अधखुले थे। गालों पर ढुलके हुए आँसुओं का अस्तित्व अब भी नहीं मिटा था। उषा समझ गई, वह जया की विजय के आँसू थे।

सहानुभूति से उसका गला भर आया। उसने सोई हुई जया के सिर पर हाथ रक्खा। जयाने चौक कर नेत्र खोले। उषा जल्दी से बोल पड़ी—'क्षमा करो छाया, आज समझ पाई कि तुम कितनी भावुक हो।' उषा की आवाज भर्राई हुई थी। जया ने मानों कुछ सुना ही न हो, अपनी शून्य-दृष्टि उषा के मुख पर स्थिर करते हुए उसने कहा—"वह चित्र।"

—:o:—

शान्ति देवी एम० ए०

सुश्री शान्ति देवी का जन्म मार्च सन् १९२६ ई० में राजस्थान की बूँदी स्टेट में नेनुवाँ नामक स्थान पर हुआ। आपके पिता श्री बृजमोहन लाल खन्ना बूँदी स्टेट के एक प्रतिष्ठित जमींदार हैं। आपके भाई श्री श्याम मोहन खन्ना बी० एस० सी० बम्बई में रेडियो इन्जीनियरिंग का अध्ययन कर रहे हैं। शान्ति जी की शिक्षा-दीक्षा पर बाल्यावस्था से ही विशेष ध्यान दिया गया। आपने लखनऊ विश्व-विद्यालय से अर्थ शास्त्र से एम० ए० पास किया। आपका विवाह जून १९४७ में श्री वैकुण्ठनाथ जी मेहरोत्रा एम० ए०, एल० एल० बी०, एल० एम० जी० डी० के साथ सम्पन्न हुआ। मेहरोत्रा जी एग्रीकल्चरल इंस्टीट्यूट इलाहाबाद में रेडियो प्रोग्राम एक्जीक्यूटिव आफिसर हैं। आपके पिता श्री भगवती प्रसाद जी मेहरोत्रा एम० ए० अवकाश-प्राप्त एडिशनल डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट हैं।

हिन्दी की ओर शैशव से ही शान्ति जी मे विशेष प्रवृत्ति है। यद्यपि आपने अर्थ-शास्त्र से एम० ए० किया, तथापि आपकी क्रियात्मकता का विकास हिन्दी-क्षेत्र में ही हुआ। आप की रचनात्मक प्रतिभा बहुमुखी है। साहित्य के किसी एक क्षेत्र तक ही अपने को सीमित रखना आपकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है। कहानी-रचना आपका मुख्य क्षेत्र है; किन्तु आपने कविता, रेखा-चित्र एवं निबन्ध आदि के रूप में भी काफी मात्रा में हिन्दी साहित्य को यथेष्ट भेंट प्रदान की है। प्रारम्भ आपने कहानी-निर्माण से ही किया। आज के युग में कुछ ऐसी ही प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है।

लोग कहानियों को छोटी होने के कारण अधिक पढ़ते हैं। क्योंकि इसमे समय कम लगता है। अस्तु, प्रचार के लिये नवीन लेखक इसी क्षेत्र में आना भी चाहते है। उनका यह उद्देश्य व्यवहारिक दृष्टि से बिल्कुल ठीक भी है। दूसरी बात यह भी है कि कहानी की रचना कविता नाटक आदि से सरल भी मानी जाती है, किन्तु है यह केवल भ्रम। निराला, पन्त आदि श्रेष्ठ आधुनिक कवि अच्छे कहानी-लेखक नही हो सके। हमें विश्वास है कि बाबू प्रेमचन्द उसी प्रकार से अच्छे कवि भी नही हो सकते थे। कविता, कहानी, नाटक आदि सभी साहित्यिक अंग होते हुए भी अनेक महत्वपूर्ण दृष्टियो से एक दूसरे से भिन्न है। अच्छे कवि प्रायः श्रेष्ठ गद्य-लेखक नहीं हो पाते। इसलिये केवल बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति साहित्य के विभिन्न अंगों की पूर्ति कर सकते हैं। बाबू जयशंकर प्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि ऐसे ही श्रेष्ठ साहित्यकार हो चुके हैं; फिर भी यह सभी पर प्रकट है कि प्रसाद जी अच्छे तर्क-युक्त एवं विचार-प्रधान, सुस्पष्ट गद्य लिखने में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सके। प्रतिभा की यह अनेकरूपता हम शान्ति जी में भी पाते हैं। आप की प्रतिभा में यह विशेषता है कि आप साहित्य के विभिन्न अंगों को एक दूसरे से भिन्न ही रखती हैं। कविता न तो कहानी पर और न कहानी कविता पर किसी प्रकार आक्रामक होने पाती है।

शान्ति जी ने हिन्दी के विविध अंगों की पूर्ति यथेष्ट मात्रा में की है। आपकी रचनाओं 'निष्कृति' तथा 'मरीचिका' पर क्रमशः डा० बड़थ्वाल एवं माता कस्तूरबा पारितोषिक प्राप्त हो चुके हैं। 'रेखा' नामक रचना पर आपको हिन्दी साहित्य-सम्मेलन से 'सेकसरिया' पारितोषिक १६४६ ई० में प्राप्त हो चुका है।

'पगध्वनि' और 'चाणक्य' नामक आपकी रचनायें अवध पब्लिशिंग हाउस से प्रकाशित हो चुकी हैं। 'विदा' और 'पंच-प्रदीप' (ज्ञानपीठ-काशी से प्रकाशित) आपकी अन्य रचनायें हैं। लगभग १९४५ से आप काव्य-रचना की ओर अग्रसर हुईं। आल इण्डिया रेडियो के विविध केन्द्रों से आपकी कवितायें, रूपक, आलोचना, वार्तालाप इत्यादि प्रसारित किये जाते है। रेखा-चित्र आपका एक गद्य गीत है। आपको अंग्रेजी-साहित्य से भी विशेष प्रेम है, जिसका आपने गहन अध्ययन किया है। अंग्रेजी में भी आप कहानियाँ और रेखाचित्र लिखती हैं। इनमें से अधिकांश 'पायनियर' तथा अन्य पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। आप "भारत-जननी" तथा "शान्ति" नामक मासिक पत्रिकाओं के सम्पादक-मण्डल की सदस्या भी रह चुकी हैं।

शान्ति जी ने अपनी कहानियों में एक विचार-शील, उदार, स्पष्ट एवं काफ़ी दूर की सूझ-बूझ रखने वाली प्रतिभा का परिचय दिया है। आवेश-जैसी चीज़ आपकी कहानियों में कम ही मिलती है। आपको मानव-हृदय का श्रेष्ठ ज्ञान है। विभिन्न परिस्थितियों से मनुष्य में कैसे परिवर्तन हो सकते हैं, इसको आपकी पैनी दृष्टि काफ़ी दूर तक देख चुकी है। 'दीपक' आपकी एक श्रेष्ठ रचना है। इसमें एक बच्चे के मनोविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन मिलता है। 'दीपक' के माता-पिता मर गये हैं। उसका लालन-पालन उसकी चाची जानकी करती है जो उसे सर्वदा डाँटती-डपटती, अपमानित करती और मारती-पीटती रहती है और घर का सारा बाहरी काम उसी से लेने की चेष्टा करती है। दूसरी ओर वह अपने बच्चों से प्रेम करती और उन्हें ठीक से खिलाती-पिलाती है। ये बच्चे भी दीपक का तिरस्कार करते हैं। पास-पड़ोस में भी दीपक से प्रेम या सहानुभूति का एक शब्द भी बोलने वाला कोई नहीं है। शनैः-शनैः वह संसार से प्रेम

या दया पाने की आशा छोड़ देता है और उससे घृणा करना एवं दूर रहना प्रारम्भ करता है। संसार तो पहले से ही उसके प्रति घृणा, उदासीनता आदि के भाव रखता है। मृदुला पड़ोस में रहती है। वह एक अत्यन्त सहृदय स्त्री है और दीपक की इस दयनीय स्थिति के कारण उसके प्रति दया और प्रेम का भाव रखती है। एक बार जानकी तथा उसके सारे परिवार के बाहर जाने पर वह कुछ दिन के लिये दीपक को अपने पास रख लेती है। उसके प्रेम तथा सद्व्यवहार का दीपक पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। वह एकदम बदल-सा गया और जानकी के लौट आने पर रोता हुआ अपने घर पुनः वापस चला गया।

लेखिका ने उपर्युक्त कहानी में इस तथ्य को मूर्तिमान रूप दे दिया है कि सद्-व्यवहार एवं प्रेम से मनुष्य के स्वभाव में बड़े-बड़े भव्य परिवर्तन किये जा सकते हैं। इनके अभाव में मनुष्य में कठोरता घृणा, प्रतिहिंसा, स्वार्थपरता आदि के ही भाव उत्पन्न होते हैं; जो उसके जीवन को निस्सार एवं कष्टमय बना देते हैं और उससे दूसरों को भी कष्ट ही पहुँचता है।

शान्ति जी में सर्वत्र नियंत्रण, विषय का अनासक्त वर्णन एवं तथ्य-निरूपण मिलता है। आप न तो किसी पात्र की भर्त्सना ही करती हुई दिखाई पड़ती हैं और न बहुत प्रशंसा ही करती हैं। आपका उद्देश्य निर्विकार दृष्टि से तथ्य-निरूपण प्रतीत होता है। अस्तु, आप में भावावेगों को प्रकट करने वाले शब्दों का अभाव है। एक स्वच्छ, भाव नियन्त्रित शैली में आपकी रचना आगे बढ़ती है। आपकी कहानी-कला उस मूर्तिकार की कला से मिलती-जुलती है जो अपनी रचना को एक सुगठित, पूर्ण संतुलित और भव्य रूप प्रदान करता है।

शान्ति जी मे विचारशीलता एवं अनुभवों और भावों की प्रधानता है। आप मे उस कल्पना की प्रधानता नहीं है जो दूरारूढ़ वस्तुओं को एकसूत्रीय योजना मे गूँथ कर हमारे सामने रख देती है। आप की कहानियाँ प्रायः वर्णन-प्रधान होती हैं। इन वर्णनो मे कहीं भी उस अनियंत्रित द्रुतगामी कल्पना के दर्शन नहीं होते जो रचना-प्रगति के साथ ही लेखक के मन मे नये दृश्य नई पात्र-योजनायें तथ पूर्व प्रस्तुत दृश्यों एवं पात्रो मे परिवर्तन उत्पन्न करती चलती है। ऐसा प्रतीत होता हैं कि शान्ति जी को कुछ लिखना है, उस पर वे पहले से ही विचार कर चुकी है अथवा उसकी एक मोटी रेखा तैयार कर चुकी हैं। यदि कल्पना उसमें परिवर्तन भी करती है तो उसका विशेष महत्व नहीं है। अस्तु, आपकी कहानियों मे कभी-कभी गद्य निबन्धो का भी आनन्द मिल जाता है।

शान्ति जी की कहानियाँ मनोविज्ञान की दृष्टि से यथेष्ट महत्व रखती हैं। पात्रों की विभिन्न मनोवृत्तियों बिना किसी अतिरंजन अथवा अतिशयोक्ति के हमारे सामने चित्रित मिलती हैं। आपकी कहानियों के भीतर से पात्रों के विभिन्न भाव उसी प्रकार स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं जैसे दर्पण में किसी की आकृति। लेखिका सत्य-निरूपण पर ही दृष्टि रखती है, किसी का पक्ष लेने से उसका कोई प्रयोजन नही। पाठक भले ही कुछ पात्रो से सहानुभूति रखे और कुछ से असहानुभूति या प्रतिशोध। आप इन भावों तथ मनोवृत्तियों को हमारे सामने पात्रो के आचरण के माध्यम से रखती हैं। आप पात्रों के चरित्र-चित्रण अथवा भाव-विकास में मनोविज्ञान की गुत्थियाँ सुलझाने का प्रयत्न नहीं करतीं। इससे कहानी में कुछ नीरसता तथा असाहित्यकता उत्पन्न हो जाती है, जो पाठक में ऊब पैदा करती है। आप के पात्र अपने भावों तथा विचारों के अनुसार आचरण करके जीवन

'दीपक' में आप दिखलाती हैं कि किस प्रकार मृदुला सीने-पिरोने का काम करती है और बच्चे तीन ओर से जानकी को घेर कर भोजन कर रहे हैं आदि-आदि। इन बातों का वर्णन आप चलते-हाथों करती हैं, जो पाठक की कल्पना में छोटे-छोटे मनोरम दृश्य-खंड उत्पन्न करते हुए लुप्त होती जाती हैं और उनके स्थान पर नवीन दृश्य-योजनाये आती जाती हैं। कहानी पढ़ने के बाद पाठक इनमें से कई एक को स्मरण भी रखेगा। इस प्रकार के वर्णनों से कहानी में वातावरण एवं स्थान की पूर्ति होती है, जो कहानी मे सर्वांग-पूर्णता के लिये आवश्यक है। कतिपय स्त्री-कहानीकारों ने वातावरण अथवा कुछ पात्रों के विषय में यथेष्ट वर्णन न कर अपनी कहानी में एक अपूर्णता उत्पन्न कर दी है। पाठक की जिज्ञासा इससे शान्त नहीं हो पाती।

आपकी वर्णन-प्रधान कहानियों में पात्रो का चरित्र-विकास या चरित्र-चित्रण उनके कथनोपकथन के माध्यम से कम होकर आपके ही वर्णन से विशेष प्रकट होता है। लेखिका के अधिक वर्णन के कारण कहानी में नाटकीयता नहीं आ पाती। अस्तु, उसे पढ़ते समय पाठक की कल्पना में अनेक कार्य-कारण-परम्परा से जुड़े हुए दृश्य एक दूसरे के बाद नहीं आ पाते। पात्र स्वयं हमारे सामने आकर अपने आचरणों द्वारा अपने चरित्र का यथेष्ट प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाते। सरांश यह है कि आपकी कहानियों में इन बातों का नितान्त अभाव नहीं है किन्तु इतना अवश्य है कि वर्णन की प्रधानता के कारण ये अंग पूर्ण विकसित नहीं हो पाते। कहानी पढ़ने के बाद यदि उसे स्मरण किया जाय तो पात्रों एवं परिस्थितियों के क्रम से मस्तिष्क में आने में लेखिका के वर्णनो का विशेष हाथ रहेगा।

आपके पात्रों का कथनोपकथन स्पष्ट सरल और स्वाभाविक

भाषा में होता हैं, जो पात्रों के चरित्र पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। वे अपने स्वभाव, उद्देश्य आदि के अनुसार ही बोलते हैं। साथ ही उनकी बात-चीत बिल्कुल वास्तविक संसार की प्रतीत होती है। लेखिका उनकी भाषा को अवश्य एक स्वच्छ और साधारण साहित्यिक रूप देने का प्रयास करती है। यह स्वाभाविकता इतनी अधिक है कि कहीं कलात्मक काट-छाँट दिखलाई ही नहीं पड़ती; मानो अमुक परिस्थिति में अमुक पात्र के लिये बस इतना ही कहना यथेष्ट था। इससे अधिक कहना उसके स्वभाव तथा आवश्यकता के विपरीत होता। फिर भी यह शान्ति जी की ही कृति है और ध्यान से देखने पर उनका कलात्मक उद्देश्य स्पष्ट झलक जाता है। वास्तव मे यह सब उनकी पात्रों को परखने की शक्ति तथा कहानी-कला के यथेष्ट ज्ञान का फल है। आपके पढ़े-लिखे पात्र भी ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करते जिसमें ज्ञान या विद्वत्ता-प्रदर्शन का आभास हो सके। हमें ज्ञात है कि प्रसाद जी के पात्रों में यह दोष किस प्रकार अधिकता से मिलता है।

अपने वर्णनों में भी आप एक परिष्कृत, स्वच्छ एवं विचार-पूर्ण गद्य का प्रयोग करती हैं जिसमें से यदि पात्रों का वार्तालाप एवं उन की भावनाओं का मूर्त रूप निकाल दिया जाय तो आपकी कहानियाँ केवल विवेचना-पूर्ण गद्य-खण्ड मात्र रह जायँगी। आपकी कहानियों का उद्देश्य जीवन के किसी गूढ़ चिरन्तन सत्य की मार्मिक खोज एवं अभिव्यंजना होता है सत्यं शिवं, सुन्दरम् सचमुच आपकी रचनाओं में प्रतिष्ठित दिखाई पड़ता है। शनैः-शनैः पाठक के समक्ष यह सत्य पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है जो जीवन के विषय में लेखिका की गहन अनुभूति का द्योतक होता है।

पहले ही कहा जा चुका है आपकी भाषा परिष्कृत, स्पष्ट एवं

विचार-पूर्ण होती है। उसमें एक संयत अनुशासन की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई पड़ती है व्यर्थ के कटु या लम्बी शब्दावलियों के प्रयोग की प्रवृत्ति आप मे नहीं है और न आप कहानी की भाषा के प्रति कोई सस्ता दृष्टि कोण ही रखती हैं।

सारांश यह है कि आपकी भाषा पूर्ण रूप से साहित्यिक और विचारशीलता से युक्त है। सरल व्यवहारिक शब्दो की प्रचुरता अवश्य आप मे रहती है। आपकी इस नग्न शैली मे विचारो तथा भावो को व्यक्त करने की अद्भुत शक्ति है। ऐसी भाषा का अनुकरण भी ऐसे ही व्यक्ति कर सकते हैं जिनके सोचने-विचारने की शैली आप-जैसी हो। दैनिक जीवन में व्यवहृत लोकोक्तियो तथा मुहावरो का फिर भी आप की रचनाओं में अभाव है। हाँ, आप के पात्र अवश्य इनका प्रयोग करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। आशा है भविष्य में आप का साहित्यक रूप और भी निखर कर हमारे सामने आयेगा।

—:o:—

दीपक

काम से छुट्टी पाकर मृदुला बाहर के कमरे में जा बैठी। अभ्यस्त हाथ ऊन और सलाइयों को लेकर व्यस्त हो गए और मन ने अवकाश पाकर बिसाती की दुकान खोल ली।

बाहर गली में कोई बच्चा किसी को कूद-कूद कर चिढ़ा रहा था—"अड़ियल टट्टू नहीं जायगा! अड़ियल टट्टू नहीं जायगा!" स्वर परिचित लगने के कारण मृदुला ने खिड़की में से झाँक कर देखा, सामने वाले घर के चबूतरे पर उसकी पड़ोसिन जानकी हाथ में गंदा सा झोला लिए सहमे हुए भोले से बालक दीपक को अपने पतले और कर्कश स्वर मे डाँट कर कह रही थी—

"जायगा कि बताऊँ तुझे? खाने के लिए तो सब से आगे तू ही रहता है और अब मुटाई चढ़ी है! अभागे से काम तो कुछ होता ही नहीं। काम का तो नाम लेते ही मुँह बन जाता है! घर में कौन से नौकर बैठे हैं जो बाजार से तरकारी खरीद लायेंगे? जाता क्यों नहीं?"

दीपक का मुँह लाल हो गया। वह रोकर अन्य बच्चों के सामने अपनी दीनता नहीं प्रकट करना चाहता था अतः उसने ज़िद करते हुए कहा—

"मैं क्यों जाऊँ? मेरे पैर में दर्द हो रहा है। राजेश से कह दो, वह जाकर ले आए।"

जानकी बेटे का नाम सुनते ही आग-बबूला हो कर बोली-हाँ! हाँ! तू तो चाहता ही है कि राजेश दिन भर काम करे, धूप

में दौड़-धूप करे ; और तू आराम करे। ले देखूँ तू जाता है या नहीं...कहते-कहते जानकी ने उसे ज़ोर से दो-तीन तमाचे लगाए। लेकिन बालक भी ज़िद पकड़ गया और मार खाकर भी वह मुंह फुलाए वैसे ही खड़ा रहा। जानकी के और बच्चे भी इकट्ठे हो गए और जानकी को घेर कर तमाशा देखने लगे। सहसा जानकी की निगाह सामने खिड़की पर पड़ी। मृदुला को विचित्र दृष्टि से घूरते हुए देखकर उसने अपनी सेना को मानो पीछे हटने का आदेश देते हुए कहा— "अच्छा चलो भीतर। जब खाने के लिये आयेगा तो पूछूँगी बच्चू से ! काम से न जाने क्यां इतना जी चुराता है यह लड़का। जितना ही इसका ध्यान रक्खो उतना ही बिगड़ता जा रहा है।..."बड़बड़ाती हुई जानकी भीतर चली गई किंतु बच्चे वहीं मोर्चे पर जमे रहे। वे मौका पाकर दीपक को चिढ़ाने लगे। दीपक रुआंसा हो कर उन सब को गालियाँ देता हुआ गली में निकल गया।

मृदुला भारी मन से पुनः अपने पूर्व स्थान पर बैठ गई। उस भोले से अपमानित और आहत बालक की मूर्ति रह-रहकर उसके सामने आ जाती थी; अपनी गालियों में मानो अपने अन्तर के सारे अभिशाप वह दूसरे बच्चों पर बिखेर देना चाहता था। "कैसी है यह जानकी !"...मृदुला ने सोचा" हृदयहीन !...दूसरे के बच्चे को अपना समझने की उसमें शक्ति ही नहीं है !...लेकिन जानकी भी क्या करे...पाँच बच्चे और थोड़ी सी आयु का... जेठ का यह लड़का जो उनकी मृत्यु के बाद बिन-बुलाये मेहमान की तरह आ गया था। उसी पर वह अपनी खीझ उतार लेती है...लेकिन कितना प्यारा सा बच्चा है...न कोई उसकी देख-रेख करने वाला है; न दुलार से "बेटा" कह कर चिपका लेने वाला... उसके एक मात्र साथी हैं मध्यम वर्ग के कहलाने वाले ये निर्धन

चाचा चाची और उनके दिनभर गलियों की धूल-मिट्टी में खेलने और मारपीट में उलझे रहने वाले बच्चे ...खैर अपना-अपना भाग्य ?...चलूँ दूध गरम करना है...कपड़े उठा कर रखने हैं... वे भी आने वाले होंगे ...यही सब विचारती हुई मृदुला ऊन और सलाइयाँ रख कर फिर काम मे लग गई।

पड़ोसिन होने के नाते मृदुला जानकी के घर आती जाती रहती थी। जानकी साधारण विचारों की स्त्री थी; हर समय घर और घरवालो की चिंता में लीन, व्यस्त। अपना पक्ष लेकर वह बच्चों को डाँट लेती थी; बच्चों का पक्ष लेकर वह पति से झगड़ लेती थी और अन्य किसी का भी पक्ष लेकर वह दीपक की खबर ले लेती थी। दीपक के कारण व्यय कितना बढ़ गया है; यह वह समय-असमय, पास-पड़ोस की स्त्रियों को सुनाने से नहीं चूकती थी। वह कितना कामचोर है; और बच्चों को कितना तंग करता है, कैसा अभागा है; कितना खाता है, पढ़ने में कैसा निकम्मा है, यह करीब-करीब सभी पड़ोसी भली भाँति जानते थे। किन्तु मृदुला के अतिरिक्त किसी को यह जानने की इच्छा नहीं थी कि उसमें कितना अंश सत्य है।

औरों के लिये पड़ोसिन का महत्व था; वह समय असमय उनके काम आ सकती थी; किन्तु अबोध अनाथ दीपक से उन्हें क्या लेना-देना था ? केवल मृदुला के हृदय में दीपक की दुर्दशा देख कर विद्रोह की आँधी जाग उठती, उसका मन होता था कि वह जानकी को किसी दिन खूब खरी-खरी सुनाए...लेकिन दूसरे के पारिवारिक जीवन में हस्तक्षेप करने का साहस उसे न होता था।

एक दिन मृदुला बिनाई का नमूना लेने के लिए जानकी के घर गई। जानकी भीतर रसोई में थी और तीन तरफ़ से बच्चे

उसे घेर कर रोटी खा रहे थे। मृदुला ने सुना, "तीनों रोटी खा गए ? जरा होश से खाओ नही तो खाने के साथ ही दवा पर भी खर्चा कराओगे।" सब बच्चे ही-ही करके हँस पड़े। राजेश ने मुँह बनाकर दीपक की ओर देखते हुए कहा, "लूला खाने में बड़ा तेज़ है!"

मृदुला ने देखा बेचारा दीपक रुआँसा होकर बची हुई सूखी रोटी मुँह में ठूँसने का व्यर्थ प्रयास कर रहा था।...शायद और तरकारी या रोटी माँगकर हँसी अपनी उड़वाने का साहस नहीं कर पा रहा था। मृदुला खिन्न होकर वहाँ से लौट आई। आगे बढ़कर शिष्टाचार की दो-चार बातें कर लेने की भी उसकी इच्छा नहीं हुई। मृदुला ने चाहा कि वह किसी बहाने से बालक को अपने पास बुलाकर उसे हृदय से लगा ले। उसकी जेबें मिठाई से भर दे, उसका भोला सा मुँह अपने हाथों में थाम कर कहे "बेटा ! मैं तुझे प्यार करती हूँ !" किन्तु फिर दुखी के जीवन में क्षणभर प्यार और सुख लुटानेका निर्मम व्यंग भी वह नहीं कर पाती थी।

उसी भाँति नन्हें दीपक के दिन कटते रहे। उसका कोमल हृदय प्रति दिन की अवहेलना और उपेक्षा का अभ्यस्त हो चुका था। वह किसी की ओर भी स्नेह अथवा संवेदना पाने के लिये नहीं देखता था क्योंकि बालक होते हुए भी वह यह समझता था कि उसके प्रति सब उदासीन हैं। कभी-कभी उसके पीड़ित हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठती और वह अपनी हठ पर अड़ जाता था। तब वह मार खाने पर भी किसी की बात नहीं सुनता था; अपना अपराध नहीं स्वीकार करता था। क्रमशः उसकी यह प्रवृत्ति बढ़ती गई। वह मार खाता था, सब उसेसे घृणा करते थे और वह सबसे। उसके और संसार के बीच में कोई समझौता सम्भव न था।

समय अपनी गति से बढ़ता गया और दीवाली पास आगई। दीपक के चचेरे भाई बहन प्रसन्न मन से अपनी मौसी के साथ दीवाली मनाने के लिये दिल्ली गए थे। दीपक पर व्यर्थ रुपये नष्ट करके उसे साथ ले जाने की उनकी मौसी को न उत्सुकता थी और न इच्छा, फिर काम-काज के लिये भी तो जानकी को कोई चाहिए था! अतः दीपक अकेला जानकी के पास रह गया।

मृदुला ने आग्रह करके कई बार दीपक को बुलाया, कभी-कभी दीपक उसके घर में आकर दो-चार मिनट बैठ भी जाता था किन्तु मृदुला की ममता और मिठाइयाँ उसके लिये विस्मय की ही वस्तु थी। वह ज़रा सी देर में ही चौंक कर हरिण की तरह भाग जाता था। संभव था कि मृदुला से यहीं तक उसका सम्बन्ध रहता किन्तु एक दिन जानकी ने आकर उससे कहा— "मेरी माँ का तार आया है,मैं आज ही रात को जा रही हूँ..." "अरे-क्या हुआ ?" मृदुला ने पूछा। "पिताजी की दशा चिन्ताजनक है, यही लिखा है, जाने पर पता लगेगा कि अचानक उन्हे क्या हो गया। मेरा जी तो बड़ा घबरा रहा है!"

"घबराने की बात ही है! क्या भाई साहब भी आपके साथ जा रहे हैं ?"

"हाँ; उन्हीं के साथ तो जा रही हूँ। अकेली मैं कहाँ जा पाऊंगी ?"

"दीपक को भी ले जा रही हैं ?"

"ले जा क्या रही हूँ; ले जाना पड़ रहा है। पिता जी बीमार हैं, ऐसे समय उसका झंझट ही रहेगा। उसके खाने-पीने को देखो! कपड़े-लत्ते का ध्यान रक्खो!"

"आप चाहे तो उसे मेरे पास छोड़ जाइए...छः-सात दिन की तो बात ही है !"

"हाँ हफ्ते भर से ज्यादा तो क्या लगेगा मगर आपको भला इतनी तकलीफ कैसे दे सकती हूँ ?"

"अरे वाह ! इसमे तकलीफ भला मुझे क्या होगी ? मैं हृदय से कह रही हूँ कि आप उसे मेरे पास छोड़ जाइये। घर में नौकर हैं ही, उसे किसी तरह का कष्ट नहीं होगा !"

"कष्ट तो उलटा वह देगा आपको, लेकिन मेरा जी नहीं होता कि आपको बेकार परेशान करूँ !"

"आप ऐसे नहीं मानेंगी। मैं चल कर उसे लिये आती हूँ !" कह कर मृदुला जानकी के साथ उसके घर जा कर दीपक को ले आई। जानकी दीपक को ले भी कैसे जाती ? दीपक के पास सिर्फ दो कमीजें थीं और दो जाँगिये। इतने में परदेश में कैसे काम चलता ? मगर अब समस्या यह थी कि मृदुला को दीपक के लिये क्या कपड़े दे जाय ! इसके लिये भी उसने आखिर एक उपाय सोच ही निकाला। शाम को जब वह सामान रिक्शे पर रखकर जाने लगी तो उसने मृदुला से कहा "अरे ! कपड़े तो दीपक के भीतर ही बन्द कर दिये ! अब ? जल्दी से खोल कर निकाल लाऊँ ! मगर यह भी तो याद नहीं कि रक्खे कहाँ हैं ?

मृदुला ने हँस कर कहा—"अब कहाँ फिर से सारा घर खोलेंगी ! मैं कुछ-न-कुछ प्रबन्ध कर लूँगी।"

जानकी कृतज्ञता दिखाती हुई चली गई। और दीपक शंकित और खिन्न-सा-मृदुला के साथ उसके घर में लौट गया। मृदुला ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि वह बालक को उन थोड़े से दिनों में ही इतना सुख देगी, जिसकी स्मृति भी उसके लिये अमूल्य हो।

हृदय के पारखी बालक मनुष्य की भावनाओं को अच्छी तरह समझते हैं! दीपक ने अपनी माँ की मृत्यु के बाद पहली बार किसी को अपने लिये चिंतित पाया। जब वह गली में जाता और देर तक खेलता तो उसे बार-बार ध्यान आता कि मृदुला चाची मेरी राह देख रही होंगी; और वह खेल छोड़ कर लौट आता। और दो-तीन दिन में ही उसे लगने लगा मानो वह मृदुला चाची के बिना रह ही नहीं सकेगा। स्कूल जाने के लिये आनाकानी करना उसने छोड़ दिया। जो कुछ मृदुला उससे कहती वह वही काम करके प्रसन्न होता था। वह अकेले में सोचता कि कैसे मृदुला चाची मुझे इतना प्यार कर पाती हैं! वे मुझे "राजा बेटा" कहती हैं! कितनी चीजें रोज ला-ला कर देती है—नई स्लेट, नई कमीज़ और नीली नेकर ऐसी राजेश के पास भी नहीं है। वे लोग खूब जलेंगे मेरी इतनी चीजे देख कर...बड़ा अच्छा है!

...कहीं मुझे हमेशा के लिये मृदुला चाची अपने पास रख लेतीं! अगर किसी तरह मेरी चाची मर जाती तो मैं कभी यहाँ से न जाता! और जब जानकी का चौथे दिन एक पोस्टकार्ड आया कि उसका दीवाली पर आना अनिश्चित है, तो दीपक फूला न समाया।

मृदुला दीपक में परिवर्तन देखकर बहुत प्रसन्न होती थी। उसके प्यार ने बालक के अन्तर की सुप्त भावनाओं को जगा दिया। उन थोड़े दिनों में ही बालक ने कितनी श्रद्धा, विश्वास और प्यार उसे दे डाला था। फिर भी मृदुला दीपक के भविष्य को स्मरण करके चौंक जाती थी। "यह मैंने क्या कर डाला, अब उन यातनाओं को यह निर्दोष बालक कैसे झेलेगा? मैंने उसे उसकी पीड़ा की गहराई का अनुमान करा दिया है। मैंने

अनजाने ही में उसके जीवन मे चिर असंतोष भर दिया है।" वह समझ नही पाती थी कि उसने ठीक किया या ग़लत ! किन्तु समझने का समय भी तो नहीं था !

छोटी दीवाली के दिन मृदुला ने अपने पति मनोज के साथ जाकर दीपक को ढेर से खिलौने दिलाए। मनोज ने एक बार कहा भी कि 'इन सब की क्या ज़रूरत है ?" किन्तु मृदुला ने हँसकर ही बात को टाल दिया। और जब बाज़ार से दीपक उन खिलौनों को हाथ मे लेकर लौट रहा था, जिन्हे सदा उसने ललचाई आँखों से देखा था, जिन्हें उसने सदैव अपनी पहुँच के बाहर की चीज़ समझा था; तो उसके पाँव ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे। घर आकर उसने सारे खिलौनों को तरह-तरह से सजा-सजा कर देखा; और अन्त मे मृदुला के गले मे हाथ डाल कर कहा, "एक ताला ला देना चाची ? तो मैं इन सब को बन्द करके इस अलमारी में रक्खूँगा, जिससे राजेश वगैरा इन्हे छू भी न सकें !"

मृदुला ने उसे प्यार से अपने पास बिठा कर कहा, "हाँ-हाँ जो कहेगा सो ला दूँगी। अब खा ले चलकर !"

"नहीं बाबा—खाना-वाना कौन खायगा ? मैं तो यहीं बैठ कर खिलौने देखूँगा। तुम खा लो चाची !"

मृदुला ने उसके लिये वहीं थाली मँगवा दी। दीपक रात को भी जब सोया तो खिलौने अपने पास रखकर सोया।

दूसरे दिन मृदुला और मनोज ने घर सजाया और ढेर से दिए मँगवा कर चारो तरफ़ सजाने के लिए रक्खे। दीपक उन सबसे अधिक प्रसन्न और उत्साहित था। वह कभी तेल माँगता और कभी दिए सँजोता ! कभी अपने खिलौनों को देख आता था। शाम को नए नए कपड़े पहन कर उसने मृदुला के गले में हाथ

डाल कर पूछा, "अब चाची! आतिशबाजी कब छुड़ाओगी? इतने में बाहर का द्वार खुला और जानकी ने पुकार कर कहा—"कहाँ हो मृदुला बहन? मुझे बहुत दिन लग गए! माँ ने ज़िद की कि पिताजी भी ठीक हो रहे हैं, दीवाली करके जाना। मेरा भी बड़ा मन था, मगर राजेश के पिताजी को वहाँ खेलने को कहाँ मिलता! सो मुझे आज ही लौटना पड़ा।"

मृदुला का मुँह उतर गया। उसने देखा कि दीपक मुँह खोले और आँख फाड़े जानकी को देख रहा था। मृदुला ने उतनी पीड़ा, और उतनी विवशता की कभी कल्पना भी न की थी जो दीपक के नेत्रों में छाई थी। उसे ऐसे खड़े देखकर जानकी ने ऊब कर कहा—"अच्छा—तो अब चलूँ पूजा की तैयारी करनी है। बड़ा कष्ट दिया होगा इसने आपको? चल दीपक सौदा ले आ... अरे चल कि ऐसे ही खड़ा रहेगा? घर मे क्या नौकर बैठे हैं जो बिना हाथ-पर हिलाये काम चल जायगा?"

दीपक भौचक्का-सा खड़ा था। वह चुपचाप जानकी के पीछे जाने लगा। जानकी अपनी धुन में जल्दी-जल्दी घर लौट गई। मृदुला इतनी देर में एक शब्द भी न कह सकी। उसने देखा कि दीपक अपनी नई कमीज़ की बाँह से आँखें पोछता हुआ बाहर जा रहा था। मृदुला ने पुकार कर कहा, 'रुको दीपक?" दीपक रुक गया। मृदुला ने झटपट सारे खिलौने एक थैले में रख कर उसे पकड़ाते हुए कहा—"इन्हें लेते जाओ बेटा?"

दीपक ने ओंठ काटते हुए जबरदस्ती रुलाई रोकने का विफल प्रयत्न किया। आँसुओं से उसके गाल भीग गए। वह हिचकी लेते हुए एक क्षण को मृदुला से लिपट गया, फिर जल्दी जल्दी बाहर जाते हुए बोला "अब और कुछ नहीं चाहिये चाची!"

सरोजनी देवी पाण्डेय

आप का जन्म सन् १६२७ ई० मे एक सम्भ्रान्त कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में ज़िला कानपुर मे हुआ। आप के पिता पं ०रामलाल बाजपेयी एक अच्छे शिक्षक तथा कुशल व्यवसायी हैं। पिता जी के द्वारा उच्च शिक्षा का प्रोत्साहन मिला और अपर मिडिल तथा इन्ट्रेन्स की परीक्षाये उत्तीर्ण कीं तथा बी० टी० सी० और साहित्य विशारद की भी परीक्षा और पास की। आप की रुचि अध्ययन तथा साहित्य-सृजन की ओर निरन्तर बनी रहती है। १६ वर्ष की अवस्था मे आप का विवाह पं० देवनारायण पाण्डेय एम० ए० के साथ हुआ। सरोजनी देवी अपने पारिवारिक जीवन मे पूर्णरूपेण प्रसन्न एवं सुखी हैं। साहित्यक रुचि विशेषतया उपन्यास एवं कहानियाँ लिखने की ओर है। आप अब तक चार उपन्यास तथा अनेक कहानियाँ लिख चुकी है।

श्री मती सरोजनी देवी पाण्डेय की 'भूल' शीर्षक कहानी जीवन की एक प्रभाव-हीन झलक उपस्थित करती है। इसमे दो प्रकार के स्त्री-पुरुष चित्रित किये गये है। एक स्वभाव से शंकालु और दूसरे प्रेम और उदारता के प्रतीक है। श्री मती पाण्डेय की कहानी पूर्व-निश्चित योजना की भाँति चलती है, जिससे सम्बन्धित होने के कारण पात्रों को कोल्हू के बैल की भाँति एक निश्चित पथ पर चलना पड़ता है अन्यथा सभी पात्र गति-हीन हैं। कारण उनकी मानसिक क्रियाओ और प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न होने वाला द्वन्द्व स्पष्ट नहीं हो सकता है। फलस्वरूप कहानी पाठक के मन पर कोई विशेष प्रभाव नही डालती।



सुश्री सरोजनी देवी पाण्डेय

कथानक का निर्माण एक ऐसे दृष्टि-कोण से किया गया है, जिसका आगे के जोवन मे कोई महत्त्व नहीं है। कारण वह इतना पिटा-पिटाया विषय है कि उससे न तो पाठक के हृदय में कहानी के प्रति कोई आकर्षण उत्पन्न होता है और न कोई विशेष प्रभाव पैदा होता है, जिससे समाज को कुछ लाभ पहुँच सके।

कथानक जितना शिथिल है, वातावरण का चित्रण उतना ही अधिक स्वस्थ और सबल है। इससे ज्ञात होता है कि लेखिका का दृष्टि-कोण वाह्यात्मक प्रवृतियो की ओर झुका हुआ है। वह वाह्यात्मक प्रवृतियो के चित्रण में जितना सफल है, अन्तद्वन्द उपस्थित करने मे उतनी ही असफल। पात्रे की गति-विधि परखने में उसे सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त है किन्तु वह वाह्य जगत के व्यवहारों तक ही सीमित है। जीवन के मनोवैज्ञानिक पक्ष का चित्रण उतना सफल नहीं है, जितना कि होना चाहिये।

लेखिका की शैली व्याख्यात्मक है, जो उसे लम्बी कहानी लिखनेमें सफलता की ओर अग्रसर कर सकती है। वातावरण-प्रधान उपन्यास लिखने मे उसे काफी सफलता मिल सकती है। नारी-हृदय का अन्तद्वन्द कहानी मे अधिक स्पष्ट उभरा है, जिसका एक मात्र कारण लेखिका के अपने जीवन का अनुभव हो सकता है। किन्तु पुरुष की परुष प्रवृतियों के चित्रण मे भी यदि वह सफल होती, तो जीवन की अनेक गहन समस्याओं का समाधान करने मे उसे अधिक सफलता मिलती। पुरुष की मनोवृतियों का एकांगी चित्रण करने का कारण भी उसका अपना ही जीवन प्रतीत होता है।

कहानी के पात्र आदर्शवादी होने के साथ-साथ अपने में अहम् भावना भी रखते है। वास्तव में जीवन मे आदर्शमय प्रभाव की आवश्यकता होती है, जिसके व्यक्त करने में लेखिका

असमर्थ रही है। और इस कमी को पूरा करने के लिये उसने पात्रों को आदर्श रूप मे उपस्थित किया है। विरोध उत्पन्न करने के लिये जो परिस्थितियाँ होनी चाहिये, वे सभी कहानी में है, किन्तु उनका चरमोत्कर्ष नही है। फलस्वरूप कहानी के पात्रों मे लेखिका ही दिखाई पड़ती है। कथाकार को पात्रो के चरित्र-चित्रण में निरपेक्ष रह कर ही उनका विकास करना चाहिये।

लेखिका ने वातावरण के चित्रण द्वारा कहानी को विस्तार देने मे सफलता प्राप्त की है। फिर भी प्रस्तुत कहानी जीवन की किसी विशिष्ट समस्या को सुलझा कर अपना विशिष्ट प्रभाव डालने वाली नहीं है। आज के युग को देखते हुए लेखिका के समक्ष कितने ही नवीन विषय उपस्थित हैं, जिनके आधार पर कहानी लिख कर समाज पर एक विशिष्ट प्रभाव डाला जा सकता है।

कहानी मे पात्रों की गति मे जो नाटकीयता है, वह सम्वादों में उतनी मुखर नहीं हो सकी। फिर भी उनमे स्वाभाविकता है। कहानी शान्त वातावरण से उत्पन्न हो कर उसी में समाप्त हो जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि अभी कुछ शेष रह गया है। पात्रों की घुटन के साथ-साथ यदि उनकी घुटन का विश्लेषण भी कहानी मे होता तो कहानी का स्तर अपेक्षाकृत अधिक ऊपर उठ जाता।

कहानी का व्यापक प्रभाव होना चाहिये, और यह तभी सम्भव था जब लेखिका अपनी कहानी का कथानक जीवन को किसी विशिष्ट घटना पर निर्मित कर उसे व्यंजना द्वारा व्यक्त करती। कहानी मे व्यंजना शक्ति की कमी खलती है। यद्यपि थोड़े ही प्रयास से कहानी को व्यंजक बनाकर तथा उसके मनोविज्ञान में चरमोत्कर्ष की स्थापना करके लेखिका मन-चाहा प्रभाव डाल सकती थी। इस व्यंजना के अभाव मे ऐसा प्रतीत होता है कि मानों लेखिका ने केवल लिखने के लिये ही कहानी लिखी है।

लेखिका की इन कमियों के साथ-साथ कहानी में कुछ विशेषतायें भी मिलती हैं शिल्प का विधान बड़ी चतुराई से किया गया है। भाषा और भाव में संतुलन है। यही कारण है कि जहाँ भी लेखिका ने किसी वातावरण को उपस्थित किया है, वह बहुत ही सजीव बन पड़ा है। पात्रों की बाह्यात्मक गतियों का निर्देश करने में लेखिका का शिल्प-चातुर्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

आपकी भाषा साहित्यिक एवं प्रवाहपूर्ण है। उसमें उचित मात्रा में माधुर्य एवं शब्द-चुनाव की प्रवृत्ति-गत शक्ति दृष्टिगोचर होती है। आप सीधे ढंग से गम्भीर, सरल एवं संयत शैली में कहानी लिखती हैं और आवश्यकता तथा परिस्थिति के अनुसार जहाँ चाहती है, उसे अत्यन्त सफलता पूर्वक परिवर्तित भी कर देती हैं। व्यर्थ की बातें, भाषा-चमत्कार अथवा गलदश्रु भावकता आदि का प्रदर्शन आपको इष्ट नहीं है। कहानी-रचना आरम्भ किये आपको थोड़े ही वर्ष हुए हैं। प्रयत्न एवं लगन से आप इस क्षेत्र मे आशातीत सफलता प्राप्त कर सकती हैं।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि यदि लेखिका शिल्प और वातावरण की भाँति कथानक चुनने और मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द उपस्थित करने में चतुरता से काम ले और संवादों तथा परस्थितियों मे व्यंजना ले आये तो वह बहुत ही सुन्दर कहानी लिखने में समर्थ हो सकती है। कारण उसके पास कहानी का शिल्प बहुत ही परिमार्जित रूप में वर्तमान है और वह उसके अनुकूल भावन-प्रधान वातावरण चित्रित करने में भी काफी सफल है। इन्हीं आधारों पर लेखिका के उज्जवल भविष्य को कल्पना की जा सकती है।

—:०:—

भूल

"तुम बड़ी भोली हो राधा। दो महीने से नित्य यह सब हो रहा है और तुम यह भी न पूछ सकीं कि रोज़ कहाँ जाते हो?"

बार-बार यही वाक्य उसके दिमाग़ मे चक्कर काट रहा था। नीला ने ही उसे यह सूचना दी थी। रीता—मोहन के विद्यार्थी-जीवन की अनुराग-अनुभूति। सुहाग की रात को स्वयं ही तो इन्हों ने वह सब बताया था और कहते थे पवित्र स्नेह–भाई-बहन का सा...। इधर तब से नाम भी नहीं लिया, मानो बिलकुल ही भूल गए हों। अब फिर दो महीने से नित्य उसी रीता के यहाँ जाना क्या अर्थ रखता है? नहीं, नीला झूठ नहीं बोल सकती—कम-से-कम मुझ से। और कभी तो उसने मोहन को लाञ्छन लगाया ही नहीं। सदैव प्रशंसा ही करती रहती थी। मोहन-उसका आराध्य—उसका सौभाग्य-उस का पति—वही जब छिपाव रखने लगा तो...। भयंकर विश्वासघात।

उसके स्वप्नो का साम्राज्य—विवाहित जीवन के दो परम सुखद वर्षों की मधुर स्मृतियो का साम्राज्य—सूखे तिनकों की भाँति एक चिनगारी से धू-धू कर के जल उठा। और क्रोध से जल उठी स्वयं वह। ग्लानि से रो उठा उसका मन। ढ़ढ़स बँधाने के लिए आ खड़ा हुआ प्रतिरोध। फिर भी वह फूट-फूट कर रोती ही रही।

सन्ध्या समय नित्य नियमानुसार ठीक पाँच बजे मोहन की साइकिल टनटनाती हुई द्वार पर रुकी। नौकर के हाथ में साइकिल दे कर वह कमरे की ओर बढ़ा। राधा ने खिड़की से उसे आते

देख चादर से मुँह ढँक लिया। उसकी हृदगति मे वेग था और मस्तिष्क मे तूफ़ान। आँखो मे रोष और भौंहो मे बल।

"क्या हो गया राधा? अच्छी तो हो न?" कमरे में घुसते हुए मोहन बोला। "आप को क्या? अच्छी होऊँ या न होऊँ!" कहती हुई वह चादर एक ओर फेंक कर खड़ी हो गई। उसके नेत्रो से अंगारे निकल रहे थे। छितराए हुए बन्धन-मुक्त केश नागिनो की भाँति फुफकार रहे थे। मुँह रूखा और भौंहे तनी हुईं। देवी का दानवी रूप देखकर मोहन अवाक विस्मित रह गया, आगे न बढ़ सका। लौट कर, अपने कमरे मे जाकर, हाथ-मुँह धोकर, कुर्सी पर बैठ कर, परिस्थिति पर विचार करने लगा। प्रातः काल की जरा सी कहा-सुनी पर इतना क्रोध? ऐसा तो कभी नही हुआ। खड़े होकर कपड़े बदलने लगा वह! नौकर ने चाय मेज़ पर लगा दी; वैसे नित्य राधा स्वयं चाय लाती थी और दोनों साथ-साथ पीते थे।

"मालकिन नही आवेंगी, छेदी?" उसने नौकर से पूछा।

"नाहिन सरकार, उइ कहे हैन, हम न आउब।"

"हुँ..." कह कर वह चाय पीने लगा। "तो अब नौकर भी यह जान गये कि झगड़ा है।" सोचने लगा, "माइके जाने के लिये सुबह से इतना झगड़ा मचाने की क्या ज़रूरत थी? इस तरह तो चल नहीं सकता। मैं नही मान सकता।" पुरुषत्व के दर्प ने बेत खूँटी से उतार कर चप्पल पहन कर टहलने जाने की तैयारी की। राधा ने मोहन को जाते हुए देखा। वह रो उठी, "उन्हें मेरी क्या चिन्ता? विश्वासघाती।" घृणा से भर गया उसका मन। "रीता-चाण्डालिनी!" वह चीख़ उठी। द्वेष ने नारी-हृदय की कोमलता को मसल डाला। किन्तु यह क्या, दस मिनट बाद

ही फिर वही पगध्वनि। कमरे के द्वार पर खड़े हो कर मोहन ने पूछा।

"सिनेमा देखने चलोगी राधा ? शबिस्तान"

"नहीं जी, मैं कहीं न जाऊँगी" आँसुओं का वेग पीते हुए वह बोली ?

"किन्तु मैं उन लोगों से वायदा जो कर आया हूँ।"

"तो आप जाकर अपना वायदा पूरा करिए न। मैं रोक तो नहीं रही हूँ। जाइए, जाते क्यों नहीं ?"

आत्म सम्मान ने धिक्कार कर कहा 'छिः 'और लौट पड़ा मोहन। बेंत नौकर को देकर साइकिल उठा ली और चल दिया। हवा से फड़फड़ाती हुई उसकी कमीज़ की पीठ पेड़ों के झुरमुट की आड़ मे विलीन हो गई। खिड़की से यह सब देखती हुई राधा चीख़ कर चारपाई पर धम से गिर पड़ी। वह रोती रही, कोसती रही, तड़पती रही, जलती रही और फिर सोचती-सोचती न जाने कब सो गई।

उधर मोहन सिनेमा-हाल के गेट पर पहुँचा तो रीता और अम्बर को प्रतीक्षा मे खड़ा पाया। मोहन को साइकिल से उतरते देख कर रीता ने पूछा, "राधा नहीं आई मोहन ?"

मोहन चुप। क्या उत्तर दे वह ? स्नेहमयी भाभी से वह झूठ न बोलना चाहता था।

फिर वही प्रश्न, "राधा नहीं आई ?"

"देख तो रही हो भाभी! कि मैं अकेला ही आया हूँ।" उसने कहा।

"लेकिन आख़िर, क्यों ?"

"यह सब मैं नहीं जानता—तबियत ख़राब होगी शायद।"

"तबियत ख़··रा··ब··हो··गी··शा··य··द।" एक-एक शब्द को तोलते हुए बोली वह। उसका माथा ठनका। सिर में फिर चक्कर-से आने लगे। "अम्बर! आज हम सिनेमा नहीं देखेंगे। चारों टिकट बेच दो" कहती हुई वह एक रिक्शे की ओर बढ़ी। सिनेमा-घर की खिड़की के पास लगी हुई लम्बी लाइन में से छः-सात आदमी निकल कर "एक टिकट हमे दे दीजिये" कहने लगे आग्रह-भरे स्वर मे। एक मिनट मे चारों टिकट बिक गये। अम्बर कि-कर्त्तव्य विमूढ़-सा पैसे जेब में डालता हुआ रीता के पास रिक्शे मे जाकर बैठ गया। चल पड़ा रिक्शा और पीछे-पीछे साइकिल पर मोहन। दोनो घण्टियों की टनटन के अतिरिक्त यह तीन-चार व्यक्तियों का छोटा सा जन समूह मौन का अभ्यास करता हुआ रीता के द्वार पर जा पहुँचा। अम्बर रिक्शे वाले को पैसे चुका कर अन्दर पहुँचा। पीछे-पीछे रीता और मोहन भी साइकिल के जा पहुँचे साथ।

सरिता भोजन तैयार कर चुकी थी। रीता की भूख गायब हो चुकी थी। उसके सिर में भयंकर पीड़ा थी। अम्बर डाक्टर के यहाँ से जाकर दवा ले आया। सरिता मोहन से सिनेमा बिना देखे लौट आने का कारण पूछती रही। रीता की आज्ञा तथा अम्बर के आग्रह से मोहन को वहीं भोजन करना पड़ा। रात के ग्यारह बजे वह अपने घर पहुँचा। नौकर ने दरवाजा खोला और साइकिल सँभाल कर रक्खी। मोहन ऊपर पहुँचा अपने कमरे में राधा जाग चुकी थी। थोड़ी देर बाद नौकर से भोजन की थाली भिजवा दी। "मैं भोजन कर आया हूँ" कह कर उसने थाली वापस कर दी और चारपाई पर लेटा ही था कि द्वार पर राधा आकर बरस पड़ी "तो अब से भोजन भी बाहर होने लगा?"

"तो तुम्हारा कौन सा घाटा पड़ गया इसमें ?"
"नहीं जी, हमारे लिये तो हार ही गढ़ गये।"
"ज़बान सँभल कर बोलो राधा"
"नहीं तो घर से भी निकाल देंगे क्या ?

"चली जाओ अपने कमरे में—जाओ—फौरन" कहता हुआ आग्नेय नेत्रों से ताकता हुआ मोहन उसकी ओर बढ़ा। राधा पीछे हटी। मोहन ने कमरा बन्द कर लिया। राधा चिढ़ती हुई, बल-खाई नागिन की तरह अपने कमरे मे घुसी। दरवाज़ा बन्द करके धम से चारपाई पर गिर कर फूट-फूट कर रोने लगा। रात भर रोती रही वह ! कलपती रही वह। प्रातःकाल नौकरों ने देखा कि मालिक घर मे नहीं हैं और मालकिन अकेली खिड़की के पास खड़ी हैं—नौकरों को देखकर वह चुपचाप, शर्म से गड़ी जा रही थी।

हाथ-मुँह धोकर बिना जलपान किए ही वह कुर्सी पर बैठकर एक स्थानीय कन्या-विद्यालय के अध्यापिका पद के लिए आवेदन-पत्र लिखने लगी। इण्टर तक पढ़ी थी वह। उपेक्षा और अपमान क्यों सहे और क्या सहे आर्थिक दासत्व ? लिफाफे में आवेदन पत्र रखकर वह स्वयं नीचे उतर कर गई और सड़क की मोड़ पर स्थित पोस्ट आफिस के लेटर बाक्स में छोड़ आई उसे। वापस आकर वह साथ अपने कमरे में गई। नौकर आकर उसका कमरा साफ कर गया था। और गाय दुहने चला गया था। दिन भर वह कमरे से बाहर नहीं निकली। दोनों नौकर आपस मे काना-फूसी करते रहे।

सायंकाल पाँच बजे मोहन आया। साइकिल रक्खी। हाँथ मुँह धोकर कपड़े बदले। थोड़ी देर नौकरों से इधर-उधर का अनावश्यक बातें करते हुए उसे पता चल गया कि मालकिन डाकखाने में एक पत्र डालने गई थीं और यह भी मालूम हुआ कि आजदिन भर न

भोजन बना और न चाय ही। पोस्ट आफिस तक जाने की बात से वह चौंका। मन ही-मन बोला, "तो रानी जीने माइके जाने की तैयारियाँ भी शुरू कर ही डालीं। अच्छी बात है। देखा जायगा।" नौकर से थोड़ा सा दूध माँग कर उसने पिया और फिर हाथ में बेत लेकर खटपट-खटपट करता हुआ जीने से उतर कर सड़क पर नित्य की दिशा में चल पड़ा। न इधर देखा, न उधर। राधा का कुचला हुआ मान फिर से रो उठा। दिन भर सोचती रही कि शायद शाम को आकर मनावेंगे। गलती मान लेंगे। सच-सच बता देंगे और...और शायद क्षमा भी मागेंगे। मेल हो जायगा...। किन्तु...कहाँ; वह तो जले पर नमक छिड़कता हुआ चला गया। एक बार कमरे में आया भी नहीं। जब इनका दिमाग सातवें आसमान पर है तब मैं ही क्यों मनाने जाऊँ? वह वैसी ही पड़ी रही।

उधर मोहन झुँझलाया हुआ तर्क-वितर्क के थपेड़े सँभालता हुआ रीता के घर की ओर जा रहा था। सोचता था, "माइके के धन का अहंकार मेरे आत्म सम्मान को नहीं कुचल सकेगा। नहीं, यह नहीं होने का। जाना ही है तो जायँ। मैं फिर बुलाने भी नही जाऊँगा और न पीछे-पीछे तुलसीदास की भाँति दौड़ूँगा ही।" रीता का घर आ गया। अम्बर ने द्वार खोला। वह भीतर गया। उतरा हुआ मुँह देखकर रीता चिन्तित हुई। बीमारी में भी चारपाई से उठ बैठी और प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी। सरिता ने हँस कर पूछा, "क्या बात है मोहन भैया! आज सुस्त-से क्यों हो?"

"कुछ नही सरिता" कहता हुआ वह धम से कुर्सी पर बैठ गया। रीता मौन ही रह कर उसके मुँह का उतार-चढ़ाव देखती रही।

"अब कैसी तबियत है भाभी ? दवा से कुछ लाभ हुआ ?" उसने पूछा । "हाँ भैया ! सिर मे दर्द तो कम है । ज्वर भी नहीं रहा । किन्तु न जाने क्यों भूख अब भी नहीं लगी ।"

अम्बर ने नित्य की तरह ताश लाकर रख दिया । खेल शुरू हो गया । मोहन खोया-खोया सा खेल रहा था । बेरंग की ओर उलटी चालें चल रहा था । रीता की हार होने लगी । वह झुँझला उठी अपने साथी की उदासीनता पर । ताश पलट कर बोली, "बन्द करो यह खेल, मोहन मन से नहीं खेल रहा है । क्या बात है मोहन ?"

"कुछ तो नहीं भाभी ! यों ही मन नहीं लग रहा है ।" खेल बन्द हो गया । सरिता चाय बनाने चली गई । रीता के अधिक हठ करने पर मोहन ने अनिच्छा से कह दिया, "राधा की तबियत कुछ खराब है ।"

"तो आज रुक गए होते वहीं । बेचारी अकेली होगी ।"

"नहीं भाभी, मैं आज यहीं रहूँगा ।" और सचमुच उस रात को वह वहीं रहा तथा दूसरे दिन भी वहीं से दफ्तर गया और दफ्तर से फिर वहीं आया । रीता की तबियत ठीक हो चुकी थी, वह पूर्ण स्वस्थ था । वह मोहन की मनोदशा से पूर्ण परिचित होना चाहती थी । किन्तु स्वयं न पूछना चाहती थी कुछ । मोहन भी फाइल का बोझ लाद लाया था, उन्हीं मे पूरे तौर से जुटा रहा । तीसरे दिन प्रातःकाल दस बजे मोहन दफ्तर चला गया और अम्बर अपने कालेज । रीता सरिता को लेकर रिक्शे में बैठ कर दूर के मुहल्ले मे स्थित मोहन के घर की ओरचल पड़ी । मुहल्ले वालों से पूछती हुई वह मोहन के घर जा पहुँची और नौकरों सेपूछ-ताछ करने लगी ।

इधर राधा तीन दिनों के अनशन से जीर्ण शिथिल अपने कमरे

मे पड़ी थी। नीचे नारी कण्ठ-द्वारा नौकरों से मोहन के विषय में बात चीत करते हुए किसी को उसने सुना। दरवाज़ा खोला तो सामने एक अपरिचित सम्भ्रान्त किन्तु रोग-जीर्ण महिला एवं मुखाकृति व आयु के अनुमान से कुछ बड़ी लगने वाली उसकी बहिन को खड़ा पाया। उसकी रोनी सूरत क्षोभ, ग्लानि एवं लज्जा से सिकुड़ने लगा। "नमस्ते" के उत्तर में उसने दोनो हाथ उठा भी दिए और दोनो को अन्दर ले जाकर बिठाया।

"क्षमा करेंगी, मैं पहचान नहीं सकी।" परिचय-प्राप्ति की आशा से उसने कहा।

"मोहन भैया कब तक आवेंगे?" सरिता ने पूछा।

"पता नहीं। रोज़ तो पाँच बजे तक आ जाते थे, आज तीन दिन से ··"

"क्या तीन दिन से घर नही आए ?" सरिता की ओर आँखों से देखती हुई रीता ने पूछा। राधा—चुप। उसने पड़ोस के घोष बाबू के पास नौकर भेज कर सूचना मँगा ली थी कि मोहन नियमित समय पर नित्य की भाँति दफ्तर जाता और वापस होता है। किन्तु कहाँ रहता है रात भर, यह तो राधा जान ही चुकी थी। परन्तु किसी अपरिचित महिला से तो ये सब बातें कहने की नहीं होतीं। साहस करके उसने फिर सीधा प्रश्न किया, "कृपया परिचय तो दे दीजिए। कहाँ से आ रही हैं ?"

"मै मोहन की भाभी हूँ राधा। अधिक परिचय उन्हीं से पूछ लेना। और लो यह लिफाफा आने पर उसे दे देना। उसके भाई ने नागपुर से भेजा है। हम लोग कल पाँच बजे फिर आवेंगी। कह देना।" इतना कह कर रीता उठ खड़ी हुई फिर फिर सरिता भी चलने के लिए उद्यत हो गई।

"अरे अभी ऐसे ही चली जायेंगी ? ऐसी भी क्या जल्दी ? कम-से-कम जल पान तो करही लीजिए।"

"अपना ही घर है। फिर कभी..."

"नहीं जीजी ! तुम्हे मेरी कसम, बैठिए भी।" और सचमुच उसने रीता को पकड़ कर बिठा दिया कुर्सी पर।" सरिता भी मुसकराती हुई बैठ गई।

नौकर को बुला कर उसने जलपान का सामान मँगाया—मिठाइयाँ और नमकीन। और खुद चाय बनाने के लिए रसोई-घर की ओर बढ़ी। सरिता आलमारी में से एक किताब निकाल कर पढ़ने लगी। रीता चुपचाप बैठी रही, कुछ सोचती सी। तीन दिन बाद चूल्हे का मौन व्रत टूटा। भूख से व्याकुल राधा के शिथिल हाथों ने किसी तरह चाय बनाई और तश्तरियों में मिठाइयाँ व नमकीन सजा कर ट्रे में सब सामान रख कर स्वयं कमरे में ले आई। सरिता व रीता के बार-बार आग्रह से विवश राधा को भी जलपान में साथ देना पड़ा। पञ्च–महायज्ञ के प्रमुख अतिथि–सत्कार का "एवमस्तु" प्राप्त करने लगी वह। कुछ इधर–उधर की बातें और कुछ घर-गृहस्थी की बातें होती रहीं किन्तु रीता जान-बूझ कर अपने आगे एक आवरण रखे रही। राधा की उत्सुकता का भी शान्तिपूर्वक समाधान करती रही।

दोनों के चले जाने के बाद राधा ने वह पत्र खोल कर पढ़ा।

नागपुर

चि० प्रिय मोहन, ८-१०-१९५४

सस्नेह शुभाशीष। आज बहुत दिनों के पश्चात् तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ। वह भी कारणवश। तुम शायद नहीं जानते कि मैंनें सिविल मैरेज ऐक्ट के अनुसार विवाह कर लिया है और

तुम्हारी भाभी तुम्हारे ही शहर इलाहाबाद में हैं। मुझे सरकारी कार्य वश चार महीने के लिए बम्बई जाना पड़ रहा है। आवश्यक कार्य है। छुट्टी न मिल सकी अतः तुम्हारी भाभी की बीमारी में उपचार आदि का प्रबन्ध तुम्हे सौंप रहा हूँ। भाई, पैसे का मुँह न देखना। मै प्रतिमास भेजता रहूँगा। चिन्ता की बात होने पर तार भेज देना, मै स्वयं आ जाऊँगा।

अब तुम पूछोगे कि आखिर इन भाभी का नाम और पता ? शायद "तुम्हारी सहपाठिनी रीता माथुर" इतना कह देना पर्याप्त होगा। उनके माता-पिता गत वर्ष दिवंगत हो गए और उसके बाद हुआ हमारा विवाह। छोटी बहन सरिता तथा भाई अम्बर को छोड़ कर वे हमारे साथ न आ सकीं।

आशा है कि तुम और बहू सानन्द होगे। बहू को मेरा आर्शीवाद कहना। अपनी कुशलता का समाचार प्रति सप्ताह देना। बम्बई पहुँच कर अपना नया पता भेज दूँगा। अच्छा आर्शीवाद।

तुम्हारा बड़ा भाई
राजेन्द्र चतुर्वेदी

पत्र पढ़ कर राधा अवाक् रह गई। राजेन्द्र मोहन की बुआ का ज्येष्ठ पुत्र था। राधा के विवाह के अवसर पर उसने राधा को एक अच्छी साड़ी-पिन भेंट की थी—थाली परोसवाई के हक में। मोहन राजेन्द्र के प्रति असीम श्रद्धा रखता था और राजेन्द्र भी मोहन के प्रति अपूर्व स्नेह। वह भारत-सरकार के सी० आइ० डी० विभाग मे एक उच्च पद पर प्रतिष्ठित था। तो क्या यही रीता थीं ? उसे सन्देह न रहा। तो क्या उसी कर्तव्य के कारण वे नित्य रीता के घर जाते थे; अवश्य। उसका हृदय मोहन से क्षमा-याचनाके लिए व्याकुल हो उठा। पश्चात्ताप ने ईर्ष्या

तथा अन्य विकारों को उसके मन से ढकेलना प्रारम्भ किया। रीता के अप्रत्याशित आगमन ने उसे आज ही मोहन के आने का आश्वासन दे दिया। उसने प्रसन्न मन से भोजन पकाया। सायंकाल ६ बजे मोहन आया। रीता ने उसे ठेल-ठेल कर भेजा था। बाहर से आते हुए उसे राधा ने देखा। उसका मन क्षमा-क्षमा चिल्लाने लगा। नौकर ने दौड़ कर साइकिल ले ली। वह ऊपर आया। सीधा राधा के कमरे में। राधा रोती हुई चरणों में लिपट गई और उसने राधा को अपनी बलिष्ठ भुजाओं में जकड़ लिया। चारों नेत्रों से बहकर आँसुओं ने राधा के कपोलों पर संगम की प्रतिष्ठा कर दी। दर्पण की धूल धुल गई और स्वच्छ प्रतिविम्ब लक्षित होने लगा। दोनों ने एक दूसरे से क्षमा-याचना की। रीता के आने की बातें भी हुईं...।

भोजन करते समय राधा ने नीला की बात बताई। मोहन चौंक पड़ा, "अरे अगर पहले इतना बता दिया होता तो यह सब न होता। नीला ने आखिर बदला ले ही लिया।"

"बदला कैसा ?" राधा ने पूछा।

"मैं ने तुम्हें नहीं बताया। नीला के विवाह-प्रस्ताव को मैंने अस्वीकार कर दिया था। तभी से रुष्ट थी वह।"

"अच्छा ?"

"हाँ, अब उसे कभी मत बुलाना। और सुनो, रीता भाभी ने सिनेमा चलने को कहा है। तुम भी खा-पी कर तैयार हो जाओ। वह खा चुका था, उठ कर हाथ-मुँह धोने लगा।

वह कमरे में आया तो नौकर ने एक लिफाफा ला कर दिया जो शाम को डाक से आया था। मोहन ने पढ़ कर जेब में रख लिया

और फिर दोनों रिक्शे में बैठ कर रीता के मकान की ओर प्रसन्न मन से चल दिए और वहाँ से सिनेमा पहुँच कर अम्बर टिकट लेनें के लिए बढ़ा। मोहन ने रोक कर कहा, "पैसे तो ले लो अम्बर" कह कर वह रुपए देने लगा।

"यह क्या कह रहे हो मोहन ? निमंत्रण तो मैंने दिया है" रीता बोली। "नहीं भाभी, आज तो मै ही टिकटे खरीदूँगा। आज से तुम्हारी देवरानी अध्यापिका जो हो गई हैं।" कह कर खिलखिलाते हुए उसने कोट की जेब से वह लिफ़ाफ़ा राधा के हाथ में दे दिया। राधा समझ गई कि यह नियुक्ति-पत्र होगा। उसने एक सरसरी नज़र लिफ़ाफ़े के पत्र पर डाली और सरिता की उसे छीनने की कोशिश सफ़ल होने के पहले ही वह नियुक्ति-पत्र सैंकड़ों टुकड़े हो कर नाली में जा चुका था।

टिकटें लेकर मोहन आ गया। सब ने प्रसन्न मन से सिनेमा देखा। इण्टरवल में सब के पूछने पर राधा ने स्वयं नियुक्ति-पत्र का सब हाल बता दिया और फिर रीता से भी क्षमा माँगी। पाँचो व्यक्ति खिलखिला कर हँस उठे।

कमला कुमारी पाण्डेय

स्वर्गीय कमला कुमारी पाण्डेय सन् १६२३ ई० में अयोध्या मे एक कुलीन सरयूपारीण ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुई थीं। आपके नाना श्री रामहर्ष पाठक और आप की माता पार्वतीदेवी ने शैशव मे ही आप की शिक्षा-दीक्षा पर यथेष्ट ध्यान दिया था। स्थानीय कन्या-पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने के अतिरिक्त घर पर भी आप के स्वाध्याय का समुचित प्रबन्ध था। अंग्रेजी में मैट्रिक तक की योग्यता आपने स्वयं अपने घर में ही पढ़ कर प्राप्त कर ली थी।

सन् १६३६ में स्वर्गद्वार अयोध्या के निवासी सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि पं० रामगोपाल पाण्डेय 'शारद' के साथ आपका पाणिग्रहण-संस्कार हुआ। श्री शारद जी के सहयोग और सहवास से आपकी साहित्यिक प्रतिभा को यथेष्ट प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला।

आपके विवाह के सम्बन्ध में एक बात अत्यन्त उल्लेखनीय है। विवाह के पहले ही अकस्मात अयोध्या में साम्प्रदायिक वैमनस्य की अग्नि भीषण रूप से प्रज्वलित हो उठी और राजद्रोह के अपराध में श्री शारद जी एक वर्ष के लिए कारागार में भेज दिये गये। उस समय आपके पिता ने निराश होकर आपका विवाह अन्यत्र निश्चित करना चाहा। पर आपने डट कर अपने पिता के विचारों का विरोध किया और कहा कि जिसके साथ मेरा विवाह एक बार निश्चित हो गया वे मेरे पति हो चुके अब मैं अन्यत्र विवाह के लिए अपनी स्वीकृति दे कर अपने कुल को कलङ्कित करना तथा अपने लोक और परलोक को नष्ट



सुश्री कमला कुमारी पाण्डेय

करना नहीं चाहती। आश्चर्य तो यह है कि उस समय आपकी आयु केवल ११ वर्ष थी।

अयोध्या के लब्ध-प्रतिष्ठ संगीतज्ञ पं० शीतल प्रसाद त्रिपाठी से आपको संगीत सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपकी संगीत की योग्यता के विषय में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जिस समय आप वैजो बजा कर अपने कोकिल-कण्ठ से संगीत की मधुर तान छेड़ती थीं उस समय साक्षात् वीणापाणि भगवती सरस्वती का ध्यान आ जाता था। सारांश यह है कि साहित्य, संगीत और शिल्पकला आदि में आपने पर्याप्त दक्षता एवं निपुणता उपार्जित कर ली थी। हारमोनियम, तबला, वेला और बंशी आदि बाजे आप बड़ी कुशलता से बजा लेती थीं।

कीर्तन करने में भी आप बड़ी कुशल थीं। जिस समय आप का कीर्तन होता था, उस समय जनता मंत्रमुग्ध होकर भक्ति रस में विभोर हो जाती थी। एक बार आपके कीर्तन पर मुग्ध होकर प्रतापगढ़ ज़िले के काला काँकर स्टेट की महारानी श्री मती लक्ष्मी देवी ने आपके घर पर जाकर आप के कीर्तन की प्रशंसा की थी। सौन्दर्य–प्रतियोगिता में भी आप फैज़ाबाद ज़िले की सुन्दरी लड़कियों मे सर्व-प्रथम थीं।

कहानियों के अतिरिक्त आप कवितायें भी लिखती थीं और वे कविताएँ सम्मान पूर्वक 'हलचल' तथा 'जीवन-ज्योति' आदि हिन्दी के प्रमुख पत्रों में यदा-कदा प्रकाशित होती रहती थीं। आपकी कहानियों में 'दो चिताएँ' और 'कृसानुरेता' अधिक प्रसिद्ध हैं। दुःख है कि अभी तक आपकी रचनाओं का फुटकर रूप ही पत्र-पत्रिकाओं में परिलक्षित होता है, पुस्तक रूप में कोई संग्रह नहीं दृष्टिगोचर होता।

सन् १६४२ में केवल १८ वर्ष की अवस्था में आपका देहावसान हो गया। स्वर्गवास के समय आपके पतिदेव घर पर नहीं थे। आप प्रत्येक दिन और प्रत्येक क्षण अपने पति के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती थीं। अन्तिम दिन जब प्रातःकाल की ट्रेन चली गई तो आप ने अपनी माता से पूछा, 'क्या वे आज भी नहीं आये ?' उत्तर मिला 'नहीं'। इस पर आपके मुख से निकला, 'अब क्या आयेंगे !' और यह कहने के साथ ही इस स्वार्थपूर्ण संसार को छोड़ कर कमला जी सदैव के लिए अनन्त पथ पर चली गईं।

आपकी कहानियों की भाषा अत्यन्त स्वाभाविक एवं सजीव है। पात्रों का वार्तालाप प्रभावोत्पादक और यथार्थवादी है, मानो आप ने उन्हे अपने कानों से सुना हो, फिर भी कही अनावश्यक बातें नहीं मिलतीं। आपकी मार्मिक एवं यथार्थवादी दृष्टि बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक ;तथा मानसिक वीरता से परिपूर्ण है। प्रायः साहित्यिक लोग उच्च वर्ग के वासनापूर्ण अश्लील वातावरण से मुक्त जीवन के चित्रण से मुँह मोड़ लेते हैं, उनमें इतना साहस ही नहीं होता कि वे समाज के सम्पत्तिशाली व्यक्तियो की रोंगटे खड़े करने वाली वीभत्स परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करें। यदि वे इस वर्ग के पात्रों को अपनी रचनाओं का विषय भी बनाते हैं तो उन्हें उस वीभत्स वातावरण के साथ नहीं चित्रित करते, जिससे उनका वास्तविक रूप दर्पण की भाँति स्पष्ट हो जाय। वे उनके जीवन के बाहरी रूप को जैसा उनकी कल्पना में आता है, मनमाने ढंग से चित्रित कर देते हैं। परन्तु आप ने इस वर्ग की जीवन-दशा को पूर्ण यथार्थता के साथ चित्रित किया है। इस वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली आपकी कहानियाँ प्रायः उसकी जर्जर मनोवृत्ति तथा उसके भयानक परिणामों से सम्बन्ध रखतीं हैं।

आपकी कहानियों में आप की तीव्र भावना-शक्ति के दर्शन होते हैं। यही कारण है कि पाठक को आपकी कहानियों में ऐसा आनन्द आ जाता है कि बिना उन्हें समाप्त किये किसी अन्य कार्य में उसका मन ही नहीं लगता। दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी समस्याओं के स्पष्टीकरण में आप अत्यन्त दक्ष एवं कुशल हैं। इनमें आपने घर की चहारदीवारी के अन्दर बन्द स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों को प्रदर्शित करने की सफल चेष्टा की है। पाठक, इस तथ्य से स्वयमेव भली भाँति परिचित होने के कारण कहानी पढ़ते ही पूर्णतया प्रभावित होने लगता है। इन अभागिनियों के प्रति आपकी सच्ची सहानुभूति, करुणा तथा इनके उत्पीड़कों के प्रति भी आपकी शान्ति पाठक को यथेष्ट प्रभावित करती है।

अपनी रचनाओं में कहीं भी आप उपदेशक का आसन ग्रहण करने की भूल नहीं करतीं। आप इस बात की ओर भी संकेत नहीं करतीं कि अन्ततोगत्वा उनके विचार क्या हैं। वे पूर्ण संयम एवं-मायावादी कठोरता के साथ अपनी कहानी कहती जाती हैं, पाठक यदि बुद्धि-हीन और चक्षुहीन नहीं है तो उनके उद्देश्य तथा प्रौढ़ साहित्यिक कला-शक्ति से परिचित हुए बिना नहीं रह सकता। जो उत्तर दिशा मे जा रहा है वह कहे या न कहे, उसकी गति को ही देखकर हम समझ सकते हैं कि वह किधर जा रहा है।

संक्षेप में आपकी कहानियाँ आप के जीवन का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनमें पक्षपातपूर्ण एकांगिता नहीं है। भाव भी आप के गम्भीर, कठोर एवं अनुशासित हैं। आपकी भाषा सफल, प्रभविष्णु एवं प्रवाहपूर्ण कही जा सकती है। उस पर आप के गम्भीर विचारों एवं मननशील प्रवृत्तियों की छाप है। पात्रों का कथोपकथन स्वाभाविक, परिमार्जित, सशक्त और नाटकीय है।

दो चिताएँ

प्रभात काल के बालसूर्य्य की स्वर्णमयी किरणे सालुम्बर-गढ़ के उच्च कंगूरों पर पड़कर उसे स्वर्णिम आभा प्रदान कर रही थी। मन्द समीरण अपनी मन्थर गति से प्रधावित होकर जड़ और चेतन मे नवीन स्फूर्ति भर रहा था। आज सालुम्बर की राजकुमारी स्वर्णप्रभा का विवाह था, अतएव राजधानी अच्छी तरह से सजाई गई थी। प्रत्येक राज-पथ पर छिड़काव किया गया था। द्वार-द्वार पर कदली-खम्भ और कलस रखकर बन्दनवार बाँधे गये थे। गढ़ के मुख्य द्वार भर नफीरी का मधुर स्वर जन-समाज को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। राज्य के कर्मचारी राजकीय वस्त्रों से सुसज्जित होकर इधर-उधर आगन्तुक अतिथियों के प्रबन्ध मे दौड़-धूप रहे थे।

राजमहल के सामने एक बड़ा विशालकाय शामियाना खड़ा किया गया था। उसके भीतर इन्द्र–भवन की तरह सजावट की गई थी। इसी के भीतर नर्तकियों, गायकों, आदि के कला-प्रदर्शन करने के लिए महफिल का प्रबन्ध किया गया था। अनेक प्रकार के बहुमूल्य गलीचे, कालीन, झाड़फनूस आदि बड़ी उत्तमता से सजा कर लगाये गये थे तथा उसी के भीतर एक ओर दूल्हे तथा उसके सम्बन्धी दूसरी ओर आगन्तुक राजा-महाराजाओं, राज-कुमारों एवं तीसरी ओर राज्य के प्रधान कर्मचारियों तथा चौथी ओर नगर के प्रतिष्ठित एवं सम्भ्रान्त नागरिकों के बैठकर उत्सव देखने का प्रबन्ध किया गया था।

ठीक आठ बजे महफिल आरम्भ हो गई। दर्शकों, आगन्तुकों,

अतिथियों तथा बरातियों से वह स्थान खचाखच भर गया। कहीं तिल रखने का भी स्थान नहीं था। जिस स्थान पर इस उत्सव का महान समारोह एवं आयोजन किया गया था, वहाँ दर्शकों, बारातियों, और आगन्तुक अतिथियों के अतिरिक्त ऊपर कुछ चिकदार गैलरियों का भी प्रबन्ध किया गया था जिसके भीतर निम्न श्रेणी से लेकर उच्च-से-उच्च श्रेणी तक की स्त्रियाँ भीं बैठकर उक्त महफिल का आनन्द अच्छी तरह से उठा सकती थीं।

महफिल के खचाखच भर जाने के लगभग आधे घण्टे की देर के पश्चात् मणीन्द्रगढ़ के राजकुमार पधारे। आप ही के साथ रात मे सालुम्बर की राजकुमारी स्वर्णप्रभा का विवाह सम्पन्न हुआ था। दूल्हे के आते ही अन्य आगन्तुक महाराजा तथा महाराजकुमार गण आकर यथा-स्थान बैठ गये। सूर्य की चमकीली प्रकाशमयी किरणों से राजाओ और राजकुमारों के मस्तकों पर बँधे हुए सरपेच चमाचम चमक कर उस अनुपम दर्बार की शोभा को चतुर्गुणित कर रहे थे।

लक्ष्य पाते ही सुन्दरी बार बनिताओं ने खड़ी होकर सुन्दर नृत्य आरम्भ किया। सारी महफिल संगीतमय तान की लहरी से मस्त होकर आनन्द में विभोर हो गई। तबले की ठनक और सारंगी की मधुर स्वर-लहरी के साथ-साथ कोकिल-कण्ठियों की मनोहर तान-मदिरा ने अपनी उन्मत्त मादकता से सबको अपने में लय कर लिया।

परन्तु इस अनुपम संगीत का मणीन्द्रगढ़ के राजकुमार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उनके हृदय सागर में एक दूसरी ही विचार-धारा एक नया तूफ़ान पैदा कर रही थी। सालुम्बर की राजकुमारी के भुवन-मोहन सौन्दर्य की चर्चा उस समय सारे देश में थी। ऐसी

'नहीं बहन! पिता जी को दोष न दो। उन्होंने अपनी पुत्री को सुखी बनाने के लिए वर मे जितनी बातें उचित होती हैं, सभी देखीं। अवस्था, रूप, कुल, धन, प्रतिष्ठा, अब रह गया चरित्र, सो इसके सम्बन्ध में वे क्या जान सकते हैं ? तुम्हीं बताओ क्या हम लोगो का विवाह उन्होंने योग्य वर के साथ नहीं किया ? ऐसी दशा मे स्वर्ण जो सबसे छोटी होने के कारण उन्हें सबसे अधिक प्रिय है, उसके वर की खोज में भला वे कैसे भूल करते ?'

सायंकाल का समय था। मुस्कराती हुई संध्या देवी तारों से ढकी हुई नीली साड़ी पहन कर अम्बर से उतर रही थी। उसके स्वागत में दूती बनकर मतवाली हवा प्रेम-सन्देश सुनाती हुई प्रेमियों के दिलों में एक प्रकार की गुदगुदी पैदा कर रही थी। सालुम्बर गढ़ के राजमहल में दीपक जल चुके थे। ऐसे समय एक सुसज्जित कमरे में दो सुन्दर बालाएँ बैठी हुई उपरोक्त बातें कर रहीं थीं। इनको उपरोक्त बातों को सुनकर पाठक समझ ही गए होंगे कि ये दोनों सालुम्बर गढ़ की राजकुमारियाँ हैं, जो नवीन दूल्हे मणीन्द्रगढ़ के राजकुमार के सम्बन्ध में बातें कर रही थीं।

सालुम्बर-नरेश के तीन राजकुमारियाँ थीं एक का नाम विभा, दूसरी का करुणा तथा तीसरी का स्वर्णप्रभा था।

विभा का विवाह जोधपुर के राजकुमार के साथ तथा करुणा का बूँ के राजकुमार के साथ हुआ था। यह दोनों बहनें अपने-अपने पतियों के साथ अपनी छोटी बहन स्वर्णप्रभा के विवाह में निमन्त्रित होकरआई थीं। सालुम्बर गढ़ के महाराज जाति के सोलंकी क्षत्रिय थे। कुलीन होने के कारण इनका सम्बन्ध राजपूताने के बड़े-बड़े उच्च घरानों से था। जोधपुर के राठौर और बूँदी के हाड़ावत इनके सम्बन्धी थे। मणीन्द्र गढ़ वाले यादवों से इनका यह नया सम्बन्ध स्थापित हुआ था; अतएव उच्चता तथा कुलीनता की

दृष्टि से इनका घराना अत्यन्त पवित्र था। राजपूताने के राजा गण इनसे सम्बन्ध स्थापित करने में अपना गौरव समझते थे।

विभा की आयु अट्ठारह वर्ष तथा करुणा की सोलह वर्ष की थी एवं स्वर्णप्रभा की आयु का पन्द्रहवाँ वर्ष आरम्भ हो चला था।

विवाह के अवसर पर स्वर्णप्रभा का चेहरा घूँघट से ढका हुआ था, इस कारण मणीन्द्र गढ़ के राजकुमार अच्छी तरह उसे देख नहीं सके थे। परन्तु करुणा का कमनीय मुख उन्होंने अवश्य देखा था जिसके परिणाम-स्वरूप उसे वे अपना हृदय दे बैठे थे। उसके आयत लोचन, लम्बी सघन कृष्ण केश-राशि, चन्द्रमा को लज्जित करने वाला सुन्दर मुख देखकर वे अपना सब कुछ खो बैठे थे! और इस मोहनी रमणी-रत्न को प्राप्त करने का तरकीब सोच रहे थे। उनके चंचल नेत्रों के हाव-भाव से करुणा भी यह समझ गई थी कि कुँवर साहब का विचार, उसके प्रति पवित्र नही है। अतः वह भी सतर्क होकर अपनी सुरक्षा के प्रबन्ध मे लगी हुई थी।

रात अधिक जा चुकी थी अतएव दोनो बहनें विभा और करुणा अपनी-अपनी शय्या पर जा कर लेट गईं और लेटते ही उन्हें नींद आ गई।

(तीन)

दूसरे दिन की बात थी। मणीन्द्र गढ़ के राज कुमार महल के भीतर कोहवर का पूजन करने के लिए बुलाये गए। राज-पूताने में यह उत्सव बड़ी सज-धज से मनाया जाता है! विवाह के दूसरे दिन लड़का कुँवर-कलेऊ के लिये जाता है। पहले दिन कच्ची और दूसरे दिन पक्की रसोईं खिलाई जाती है। वहाँ भोजन के अवसर पर उसे नेग आदि देकर सत्कार

किया जाता है तथा तीसरे दिन कोहवर के पूजन के लिए वह भीतर बुलाया जाता है। उस दिन दूल्हे की सालियाँ और सलहजें आदि मिलकर उसके साथ परिहास करती है।

आज कुँवर साहब अत्यन्त प्रसन्न थे, सोच रहे थे कि सौभाग्य से आज पुनः उस सौन्दर्य की राशि भुवन-मोहनी के दर्शन होंगे। इसलिए स्नान आदि करके अच्छे-अच्छे वस्त्र धारण कर और पालकी पर बैठकर महल मे जा पहुँचे। द्वार पर पालकी रोक दी गई। राजकुमार उस पर से उतर कर अन्तःपुर में गए। वहाँ उनकी सास आरती लेकर खड़ी थी। राजकुमार की उन्होंने आरती की। राजकुमार ने उन्हे प्रणाम किया। इसके पश्चात् कोमलाङ्गिनी सुन्दरियो का दल वहाँ आ पहुँचा। जिसके साथ राजकुमार भीतर एक लम्बे चौड़े सजे हुए कमरे में पहुँचे।

यह कमरा खूब सजा हुआ था। चारों ओर कीमती कालीनें बिछी हुई थी। बीचों बीच में मखमल का एक कामदार गद्दा बिछा हुआ था, जिस पर मसनद लगी हुई थी। सामने इत्रदान, गुलाब पास, पान-इलायची-केसर-जावित्री-लौंग आदि से भरी हुई सुवर्ण की कुछ तश्तरियाँ सजी थी। उन सुन्दरियों ने कुँवर साहब को लेजाकर उसी गद्दे पर बिठा दिया और इत्र तथा पान आदि से उनका सत्कार किया। इसके पश्चात् हँसी-मज़ाक की बातें आरम्भ हुईं।

'जीजा जी को अगर साड़ी पहना दी जाय तो किसी सुन्दरी औरत से कम नही जँचेगे क्यों बहन?' एक षोड़शी सुन्दरी ने हँस कर राजकुमार पर बिजली गिराते हुये कहा ?

'और अभी भला ये किस औरत से कम मालूम पड़ते हैं?' दूसरी हँस कर बोली ?

'हमने सुना है कि मणीन्द्र गढ़ की राजकुमारियाँ स्वयं ही स्वयंम्बरा होती हैं', तीसरी ने कहा। इस पर वहाँ की सभी स्त्रियाँ हँस पड़ीं।

करुणा चुपचाप बैठी हुई थी। वह इस हँसी-दिल्लगी में कोई भाग नहीं ले रही थी। एकाएक एक दासी ने आकर कहा कि आप सब को महारानी जी बुला रही हैं। करुणा देवी को कुँवर साहब के पास छोड़ दीजिए; जिसमें वे अपनी बात-चीत के द्वारा इनका दिल बहलावें और आप लोग शीघ्र ही जाकर उनकी बात सुन आइये।

कुँवर साहब का तो कहना ही क्या था, वे जिस बात को चाहते थे, अकस्मात् वही बात हो गई। मगर करुणा के दिल पर क्या बीत रही थी, यह तो वही जान सकती थी।

एक क्षण में ही वहाँ की सारी सुन्दरियाँ उड़ंछू हो गईं तथा उस कमरे में अकेले कुँवर साहब करुणा के साथ रह गए।

कुँवर—जब से मैं यहाँ आया हूँ। आँखें एकमात्र तुम्हीं को देख रही हैं करुणा।

करुणा—मैं इसका अभिप्राय नहीं समझ सकी।

कुँवर—सुन्दरी! तुम्हारे जैसी भुवन-मोहनी मैंने इस जीवन में और पहले कभी नहीं देखी थी।

करुणा—तब तो आप को अपने सौभाग्य पर गर्व करना चाहिए?

कुँवर—अवश्य गर्व कर रहा हूँ करुणा! जी चाहता है कि तुम इसी प्रकार मेरे सामने बैठो रहो और मैं अपनी आँखों के प्याले से तुम्हारी सौन्दर्य-सुधा का जी भर कर पान करता रहूँ।

करुणा—कोई बुरी बात नहीं है, किन्तु सौन्दर्य-सुधा का पान

करते-करते एक दम कहीं उसे समाप्त न कर दीजिएगा, अन्यथा आपको अपच हो जाने का भी भय रहेगा।

कुँवर—मैं तुम्हे हृदय से प्यार करता हूँ करुणा !

करुणा—बड़ो अच्छी बात है। किसी को प्यार करना बुरा नहीं है।

करुणा से बातें करके कुँवर साहब गद्गद् हो रहे थे। उनका आत्म विश्वास इस अवस्था पर पहुँच रहा था कि जिस प्रकार मैं करुणा को चाहता हूँ उसी प्रकार वह भी मुझसे प्रेम करती है। परन्तु करुणा उनकी दशा पर चुटकियाँ ले लेकर उन्हे बना रही थी।

उधर कुँवर साहब अधीर हो उठे। उन्होंने लपक कर अपने बाएँ हाथ से करुणा के बाएँ हाथ की सुनहरी चूड़ियों से मण्डित कलाई पकड़ ली और अपनी ओर खींचते हुए कहा, 'प्राणाधिके ! आओ जरा हृदय से लगकर मेरे जलते हुए हृदय को शान्ति प्रदान करो।'

करुणा—नीच ! पापी ! चाण्डाल ! नराधम ! क्या तुझे मालूम नहीं कि मैं विवाहिता हूँ ? हत्यारे ! मुझ पतिव्रता की जिस कलाई का तूने पर पुरुष होकर स्पर्श किया है उसका सम्बन्ध अब इस पवित्र शरीर से नहीं रहेगा। इतना कहकर करुणा ने कमर से कटार निकाल ली और अपनी कलाई पर ऐसा वार किया कि कलाई कटकर कुँवर साहब के हाथ में रह गई तथा उसमें की सुवर्ण-मण्डित जड़ाऊ चूड़ियाँ फर्श पर गिर कर बिखर गईं और खून के फव्वारे से सारी कालीन भीग गई।

इसी बीच में और स्त्रियाँ भी वहाँ आ गईं। कमरे की दशा देखकर उन सब के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। करुणा ने एक सहेली से चिल्लाकर रोते हुए कहा, 'बहन ! जरा प्राणनाथ को बुलवा दो ?'

फौरन डेरे में खबर भेजी गई और बूँदी के राजकुमार वहाँ आकर उपस्थित हो गये। करुणा उनके चरणों से लिपट गई और रोती हुई बोली, 'प्राणेश ! तुम्हारी पतिव्रता पत्नी की पवित्र कलाई का इस नराधम ने स्पर्श किया था। अतएव मैंने उसे काटकर फेंक दिया। अब इस पापी से आप अपनी स्त्री के अपमान का बदला क्यों नहीं चुकाते ?'

इतना सुनते ही बूँदी के राजकुमार की आँखें लाल हो गईं उन्होंने अपनी तलवार म्यान से खींच ली और कुँवर साहब पर सिंह की भाँति टूट पड़े।

(चार)

दोनों राजकुमारों ने अपनी-अपनी तलवारें खींच लीं और एक दूसरे पर डटकर वार करने लगे। खनाखन्न की आवाज़ से वह कमरा गूँज उठा। पलक मारते ही बूँदी के राजकुमार की तलवार ने मणीन्द्र गढ़ के राजकुमार का काम तमाम कर दिया। उनका सिर धड़ से अलग होकर दस कदम की दूरी पर जा गिरा, सारा फर्श खून से रँग उठा।

इस गड़बड़ी में महल की सभी स्त्रियाँ वहाँ आ गई थीं। मणीन्द्र-गढ़ के राजकुमार का बध कर डालने के बाद बूँदी के राजकुमार यह कहते हुए 'इस नीच ने मेरी स्त्री को अपमानित किया है, अब मैं इसकी स्त्री को अपमानित करूँगा' राजकुमारी स्वर्णप्रभा की तरफ़ लपके। उन्हें आगे बढ़ते देखकर राजकुमारी ने ललकार कर कहा, 'खबरदार पापी ! आगे मत बढ़ना। क्या तुझे नहीं मालूम कि अपनी सतीत्व-रक्षा के लिये राजपूत रमणियाँ सर्वस्व की बाज़ी लगाने के लिए तैय्यार रहती हैं ?' किन्तु राजकुमारी की इस ललकार का बूँदी के राजकुमार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे दूने जोश के साथ उसकी कलाई पकड़ने के लिए आगे बढ़े।

पहले स्वर्ण ने अपने बचाव की भरपूर चेष्टा की परन्तु जब उसने बचना असम्भव समझा तो आगे बढ़कर बूँदी के राजकुमार की कमर से कटार खींच ली। सूर्य की तेज़ रोशनी में बूँदी की कटार चमचमा उठी। राजकुमारी का हाथ ऊपर उठा और पलक मारते ही वह कटार राजकुमार की छाती में मूँठ तक घुसकर पार हो गई और उनकी लाश ज़मीन पर गिरकर तड़पने लगी।

(पाँच)

नदी के किनारे दो चिताएँ तैय्यार थीं। दोनों राजकुमारियों ने शृङ्गार करके चिता की प्रदक्षिणा की। कई मन काष्ठ से चिताएँ सुसज्जित थीं। दोनों राजकुमारियों ने अपने-अपने पतियों के शव को अपनी अपनी गोद मे लेकर चितारोहण किया। आग की कराल लपटें आसमान चूमने लगीं। विवाह की खुशियाँ मातम में बदल गईं। धुएँ के नीले बादल के बीच में चिता की चिन-गारियों के अमर स्वर्णाक्षरों से गगन-मण्डल में लिखा हुआ 'सतीत्व' शब्द ध्रुवतारे की भाँति देदीप्यमान हो रहा था।

—:०:—

कमलेश कुमारी सक्सेना साहित्य रत्न

कुमारी कमलेश कुमारी का जन्म २२ जनवरी सन् १६३८ ई० को प्रयाग के एक सुशिक्षित सम्भ्रान्त कायस्थ परिवार में हुआ। आप के पिता श्री कुँवर बहादुर सक्सेना ने आप की शिक्षा-दीक्षा पर आपकी बाल्यावस्था से ही यथेष्ट ध्यान दिया। स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त घर पर भी आप के अध्ययन की समुचित व्यवस्था की गई और सुयोग्य तथा अनुभवी अध्यापकों की देख-रेख में आप ने हिन्दी, अंग्रेजी, इतिहास और भूगोल इत्यादि विषयों का अत्यंत लगन के साथ अध्ययन किया और इन विषयो में विशेष कर हिन्दी मे आशातीत योग्यता उपलब्ध की।

एक अच्छे प्रकाशक और 'ग्रैण्ड बुक डिपो' के संचालक होने के कारण आप के पिता श्री कुँवर बहादुर जी प्रत्येक विषय की अच्छी-से-अच्छी नवीनतम पुस्तकों द्वारा आप की ज्ञान पिपासा को शान्त करने की चेष्टा में अनवरत दत्त-चित्त रहते हैं। इसे आपके अखण्ड स्वाध्याय का ही फल समझना चाहिए कि इतनी छोटी अवस्था में ही आपने हिन्दी साहित्य रत्न की परीक्षा अच्छे अंकों से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली। साहित्य-साधना की ओर आप की प्रवृत्ति शैशव से ही झुक चुकी है किन्तु कहानी-क्षेत्र में आप विशेष रुचि रखती हैं।

आप की प्रारंभिक कहानियों में किसी प्रतिभाशाली कलाकार का प्रारंभिक प्रयत्न परिलक्षित होता है। घटनाओं की दृष्टि से उनमें यथेष्ट प्रगति है, परन्तु यह प्रगति कहीं-कहीं



कु० कमलेश कुमारी सक्सेना साहित्य रत्न

रुकती-सी विदित होती है। ऐसे स्थलों पर लेखिका पूर्व घटना-सूत्र को अग्रसर करने के उद्देश्य से पुनः कुछ सोच कर नवीन घटना सूत्र तैयार करती है और इस प्रकार कहानी की गति को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करती है।

आपकी कहानियों मे मुख्यतया दो तत्वों की प्रधानता है; प्रथम प्राकृतिकता और दूसरे काल्पनिकता एवं आदर्श-वादी भावुकता। ये दोनों बाते हमे उनके चरित्र-चित्रण और भाषा दोनो में मिलती है।

प्राकृतिकता का उद्देश्य केवल प्रकृति के वृक्ष, फल-फूल, नदी, पहाड़, झील और जल-प्रपात आदि का मनोरम चित्रण ही नहीं है, वरन् इस शब्द का अर्थ और संभवतः अधिक प्रचलित अर्थ प्रकृति के पदार्थों से है। किन्तु इसका एक दूसरा अर्थ भी है और वह है मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का वर्णन—मनुष्य की उन प्रवृत्तियों, अनुभूतियों, विचारो और कार्यों आदि का वर्णन जो उसमें उस अवस्था में उत्पन्न होते, जब वह अपना समस्त जीवन प्रकृति के शुद्ध एवं पवित्र वातावरण में व्यतीत करता, वह समाज तथा नगर की कृत्रिमता, स्वार्थ-परता, कुत्सित वासना आदि दूषित वायु-मंडल से दूर रहता। उस समय उसके विचार और भावनाएँ पवित्र होतीं, उनमें बनावट तथा छल-पाखण्ड आदि के लिए स्थान न होता और न कभी निराशा, मानसिक पीड़ा एवं अन्यमनस्कता आदि के कारणो की ही सृष्टि होती। खैर, हमें इन विचारो की वास्तविकता पर विवाद नहीं करना है; क्यों कि यदि ये सत्य होते तो आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका और भारतवर्ष के ही अनेक भागों में निवास करने वाली अनेक असभ्य एवं अशिक्षित जातियाँ, आज आदर्श जीवन व्यतीत करती हुई दृष्टिगोचर होतीं।

इस प्रकार के विचार उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में इङ्गलैण्ड में जोरों से फैले। इसके पूर्व ही इन्हें फ्रांस आदि देशों में रूसो इत्यादिक विचारकों ने अपनाया था। इङ्गलैण्ड मे इसके सबसे प्रमुख प्रचारक वर्ड्सवर्थ और कालरिज आदि कवि थे। इनके अनुसार प्रकृति के क्षेत्र में रहने वाले लोगों के हृदय को प्रकृति अपनी सारी स्वतंत्रता, पावनता तथा स्वास्थ्य के भावों से ओत-प्रोत कर देती है और ये लोग मनुष्य के कपट-पूर्ण आचरणों तथा विचारों से बिल्कुल अछूते बच जाते हैं।

इन विचारों से प्रभावित हो कर साहित्य-रचना करने वाले कलाकार हिन्दी साहित्य मे बहुत से हुए हैं। हमारा उद्देश्य उनके विचारों की सत्यता एवं असत्यता को तर्क की कसौटी पर कसना नहीं है। मानवी इतिहास में अनेक प्रकार के विचारक हुए हैं और उन्होने हमारी समस्याओं का अपने मत के अनुसार विविध सुलझाव भी दिया है। साहित्यकार के विषय मे प्रश्न यही होता है कि अपनी साहित्यिक रचनाओं मे उसे कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है। दूसरे शब्दो में अपनी कृतियों में वह कहाँ तक अपने इन विचारों को समाविष्ट कर सका है।

कहानियों तथा लेखों से कमलेश जी की ऐतिहासिक रुचि तथा अन्तर्दृष्टि का पूर्ण परिचय मिल जाता है। अनेक प्रसिद्ध इतिहास-खण्ड अपने विशिष्ट शौर्य, पराक्रम, त्याग तथा द्वन्द्व के साथ आपकी कृतियो में आते और पाठक को पूर्ण वेग के साथ अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वास्तव में आप का लक्ष्य इतिहास की घटनाओं का आद्योपान्त वर्णन नहीं होता, उसका उपयोग तो आप केवल अपनी कहानी की पृष्ठ-भूमि के रूप में करती हैं। आपका उद्देश्य होता है मानवी चरित्र के किसी एक सत्य का रहस्यपूर्ण उद्घाटन।

आप की कहानियों में छोटे-बड़े सभी प्रकार के पात्र आते हैं। इनमें से अधिकांश पात्र सच्चरित्र, पराक्रमी और शौर्य-सम्पन्न होते हैं किन्तु उनका चरित्र पूर्व निश्चित-सा रहता है। उनमें परिस्थितियों तथा घटनाओं के परिवर्तन से अधिक परिवर्तन नहीं होता; हालाँ कि अपवाद-रूप कभी-कभी परिवर्तन हो भी जाता है।

आप में करुणा, श्रद्धा, शोक, विषाद, आशंका, श्रद्धा और सम्मान आदि का भावनाएँ जागृत करने की अपूर्व क्षमता है। उनके श्रेष्ठ पात्रों की त्याग पूर्ण करुणा, शोक एवं विषाद आदि में पाठक अपने को भूल कर बह-सा जाता है। अपनी जन-सेवा-साधना, श्रेष्ठ चरित्र, त्याग एवं शिष्टता आदि के कारण उनके पात्र पाठक के अपने हो जाते हैं। जिनके निकट वसुधा ही आत्मवत् है, वह भी वसुधा के सभी प्राणियों के निकट उन जैसा ही होता है। उसका हर्ष, शोक, पीडा, सुख आदि सब के हर्ष शोक आदि बन जाते हैं। साधारणी करण की यह अद्भुत शक्ति केवल महान् कलाकारों में ही मिल सकती है। इन पात्रों के प्रति स्वभावतः हमारे चित्र में प्रगाढ़ श्रद्धा तथा सम्मान का भाव उत्पन्न होता है।

ऐसे पात्र हमें वास्तविक जीवन में भी मिलते हैं; किन्तु उनके प्रति तो इस प्रकार केवल कतिपय क्षणों में ही हमारे हृदय में श्रद्धा तथा सम्मान के भाव नहीं उदित होते। कारण यह है कि सफल साहित्यकार उनके चरित्र के विभिन्न अङ्गों को भली भाँति धैर्य पूर्वक समझने का प्रयास करता है और उन्हें पूर्णतया स्पष्ट कर कर्म-वचन अथवा अपने ही वर्णन द्वारा हमारे समक्ष रखता है। अस्तु वह बने-बनाये भोजन के सदृश हो जाता है। उसको पढ़ कर हम शीघ्र ही उस महान चरित्र को समझ लेते हैं।

सचमुच कमलेश जी में चरित्र-अवतारणा की महान शक्ति पुँजीभूत है।

आपकी वर्णन-शक्ति यथेष्ट सफल है। मनुष्य के मनोवेगों एवं विचारों का वर्णन आप काफ़ी सफाई तथा गम्भीरता के साथ करती है। अस्तु, पाठक के हृदय मे आप जिस भाव को उत्पन्न करना चाहती है, वह शीघ्र ही उत्पन्न हो जाता है। आप की कहानियाँ प्रायः चरित्र-प्रधान होती है। घटनायें तथा परिस्थितियाँ उसी मात्रा मे होती हैं, जिसमें वे पात्रो के चरित्र-प्रस्फुटन मे सहायक हो सके। सर्वत्र चरित्र की अवतारणा का ही प्रयत्न रहता है।

चरित्र-प्रस्फुटन के लिए आप वार्तालाप पर अश्रित न रह कर स्वयं ही उसका वर्णन करती हैं और वर्णन मे आपको अपूर्व सफलता भी मिलती है। वार्तालाप छोटे और विशेष महत्व के नही होते। किसी विदग्ध चित्रण के बाद एकाएक वार्तालाप को बीच मे पा कर पाठक की भाव-तन्द्रा टूट जाती है और वह एक आघात का अनुभव करता है, किन्तु शीघ्र ही आप की कुशल वर्णन-धारा मे वह पुनः निमग्न हो जाता है।

आपकी कहानियों से शान्ति, औदार्य, करुणा, व्यथा, त्याग, निराशा आदि गंभीर भावो की अजस्र वर्षा होती है और पाठक को प्लावित किये रहती है। हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद, आदि हल्के भाव आपकी रचनाओ में नहीं के बराबर मिलते हैं।

आपकी भाषा कहानी के अत्यंत उपयुक्त है। भाव तथा परिस्थिति के अनुसार आप उसे काफी सफलता के साथ आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर देती हैं। आपकी भाषा का सब से अधिक शक्तिशाली स्वरूप आप के चरित्र-चित्रण सम्बन्धी वर्णनों

में दृष्टि गोचर होता है। आप सीधे ढंग से, गंभीर एवं संयत शैली मे कहानी लिखती हैं। व्यर्थ की बाते, भाषा का चमत्कार अथवा गलदश्रु भावुकता आदि का प्रदर्शन आपको इष्ट नही है।

आपकी कहानियाँ प्रायः दुखान्त होती हैं। उनमें किसी श्रेष्ठ चरित्र की मृत्यु अथवा मृत्यु के समान निराश स्थिति दिखाई जाती है। अस्तु उनसे पाठक का चित्त अवसाद एवं करुणा से भर जाता है। आप वाह्य संघर्षों पर विशेष ध्यान नहीं देती हैं। अपने पात्रों को विशेष परिस्थितियों मे छोड़ कर आप निश्चिन्त हो जाती हैं, फिर उनके मानसिक संघर्षों का जीता-जागता रूप हमारे सम्मुख उपस्थित करती हैं, जिसमें क्षण-क्षण बदलने वाली मनुष्य की भावनाओं का सफल चित्रण देख कर आपका मनोविज्ञान संबंधी गहन ज्ञान भली भाँति विदित होता है। वाह्य संघर्ष आपके चरित्रों के उज्जवल रूप को और भी अधिक उज्जवल करने के लिए प्रयुक्त होता है। पाठक पर उसका यथेष्ट प्रभाव पडता है क्यों कि उसमें आपकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं जिन्दादिली छिपी रहती है।

—:०:—

फांसी

वह थी बिन्नो, रूपनगर के राजा की केवल एक राजकुमारी हाँ, राजकुमारी बिन्नो ही तो। किसने उसका नाम दक्षिणी भारत में न सुना होगा? वह नागिन के समान केशोंवाली, सूर्य का सा दमकता ललाट, मृगी जैसे नेत्र, बिम्बाफल-जैसे होठ, शुक-पिक-सी नासिका, और हँसती तो मानो बिजली चमकती हो। और लोल-कपोल। कानों में कुंडल, नासिका की कील नक्षत्रों की शोभा बनाते, भरा हुआ यौवन, बल खाती कमर, और चलती तो हृदय मोहने वाले छमछम की ध्वनि करने वाले घुँघरू पैरों में। विधि ने शायद पूरा सौन्दर्य उसी में रख दिया था। जिधर से निकल जाती मानों एक मादक बयार बह जाती।

और शूरता में कौन सानी भरता? सभी शस्त्र इतनी स्फूर्ति से चलाती कि बड़े-बड़े योद्धा दङ्ग रह जाते, घुड़सवारी और शिकार का तो राग ही सा था। लड़ती तो बिजली के समान टूट पड़ती और चामुण्डा के समान मालूम होती।

इस बात की खबर देश-देश मे चारों ओर फैल गई। फैलते-फैलते बीजापुर के सुलतान के पास भी जा पहुँची। मुसाहिबों ने कहा, "क्या बताएँ हजूर! वह तो हुस्न की परी है। उसकी बड़ी-बड़ी नरगिस के पत्ते की सी आँखें मानों कुछ कहना चाहती हैं। बस कहते ही बनता है।" दूसरे ने कहा—"अरसा हुआ मुझे इस दरबार में आये, पर ऐसी नाज़ की परी हमने सल्तनत भर मे न देखी" तीसरा बोला—"और इस दरबार में कमी ही क्या है? सब कुछ है परन्तु बिना उस परी के सब रंग फीका है।"

सुलतान बोला-'क्याँ ? कहते तो ठीक हो। यही बात हमें भी खटकती है। अच्छा, कोई ऐसी तरकीब बताओ जिससे वह नाज़ और हुस्न की परी यहाँ आ सके।'

इतने में चौथा मुसाहिब बोल उठा—"हज़ूर ! वह इतनी बहादुर है कि कोई उसे भगा कर नहीं ला सकता। मेरी राय तो यह है कि रूपनगर के राजा के पास एक खत लिखा जाय जिसमें साफ़ ज़ाहिर कर दिया जाय कि या तो वह हार मान कर बिन खून-खराबा के अपनी लड़की बिन्नो जान को हम लोगों के हवाले कर दे वरना उन्हें लड़ाई लड़नी होगी।"

सुलतान बोला—"बिल्कुल ठीक ! बिल्कुल ठीक !"

एक मुसाहिब बोला—"अमाँ सैयद हुसेन ! तुम तो भई आफ़त के परकाले हो, कैसी अच्छी सूझ बताई ?"

दूसरा बोला—"तो क्या इन्होंने धूप में थोड़े ही बाल सफ़ेद किये हैं तजुरबा हासिल किया है।"

तीसरा—"हाँ ! हाँ ?......"

सुलतान—"तो सब का यही राय है ?"

सब—"आमीन." फौरन ही एक चिट्ठी रूपनगर के राजा के नाम लिखी गई और एक शाही ख्वाजा बुलाया गया। उसके सुपुर्द यह काम हुआ और कहा गया जल्द से जल्द खबर लाये।

+ + +

तीन दिन लगातार चलते-चलते वह आखिर रूपनगर जा पहुँचा। रूपनगर के राजा को खबर दी गई कि बीजापुर के सुलतान का कोई दूत आया है। रूपनगर के राजा ने आज्ञा दी कि वह दूत सामने लाया जाय। दूत सामने आया और बड़े कायदे से आदाब बजाकर उसने चिट्ठी राजा के सामने रख दी। चिट्ठी को पढ़ते ही राजा आग-बबूला हो गया। उसने ज़ोर से कहा-"जाओ,

और अपने सुलतान से कह दो कि इसका निपटारा लड़ाई के मैदान में होगा। कोई भी शर्त मुझे मंजूर नहीं है, आर्य लोग कभी ऐसा नीच प्रस्ताव स्वीकार नहीं करते।"

शाही खोजा लौट आया और आकर संदेशा सुना दिया। सुलतान चुप था। थोड़ी देर बाद उसने कहा—"अच्छा! इस बेइज्जती का मजा लड़ाई के मैदान मे चखायेंगे। काफिर ने समझ क्या रखा है मुझे? कुत्तो से नुचवा दूँगा।" यह कहते हुए उसने फतहजंग को बुलवाया। फौजी सिपहसालार फतहजंग फौरन हाजिर हुआ। शाही हुक्म हुआ कि फौज की एक टुकड़ी लेकर रूपनगर पर धावा बोल दो और राजकुमारी बिन्नो जान को गिरफ्तार कर सुलतान के सामने हाजिर करो। जो कुछ जरूरत हो शाही खजाने से ले लो।

"जो हुक्म" कह कर उसने आदाब किया और वहाँ से चल दिया।

+ ÷ +

रूपनगर का घेरा डाले फतहजंग पडा था। कोई सूरत नजर नहीं आ रही थी जिससे फतहयाबी हासिल हो। और किधर से हमला किया जाय। सन्ध्या का समय था, फतहजंग पड़ाव मे लेटा हुआ था। वह सोच रहा था अतीत के चलचित्र, इसी समय उसको एकाएक ख्याल हो आया कि उस दिन भैया द्विज है। ख्याल-पर-ख्याल बेधने लगा। हाँ! पहले कभी वह भी तो हिन्दू था जब कि उसके माता-पिता जीवित थे और उसके एक छोटी सी, नन्हीं सी बहन थी। और वह उसे कितना प्यार करती थी? जो कुछ पाती उसमे से आधा छिपा कर रखे रहती। हाँ? उसकी माँ उसे बराबर कहतीं और वह उसे बराबर पीटता रहता और बिना करण तंग किया करता। खिलौने चुरा लेता और फिर उसे याद आया एक साल जब कि भैया द्वीज के कुछ दिन

पहले वह मिट्टी का घरौंदा बना रही थी और मारी थी उसने एक लात और उसका घर बर्बाद हो गया था। वह रोयी थी। कुछ दिन बोलना भी बन्द कर दिया था। पर भैया द्विज के दिन मेल हो गया था और शैलजा ने उसके टीका लगाया था। उसे याद आया कि कुछ दिनो बाद वह चल बसी थी। माँ बहुत रोया करती थी उसके लिये; और उसे भी क्या कम दुख था ?

फिर उसने सोचा मुसलमानों के आक्रमण मे उसके पिता की मृत्यु और माँ का सती होना। वह अकेला निराश्रय और निरुपाय था। मुसलमानो ने उसे घेर लिया और मुसलमान बनने पर आग्रह किया। वह विवश था। उस दिन से वह राव कमलाकर न था बल्कि फतहजंग था। कितनी ही कोशिश की, कितनी ही मिन्नतें की कि वह फिर राव कमलाकर हो जाए पर सब विफल। फिर उसे हिन्दू-समाज मे घृणा होने लगी और प्रतिहिंसा का भाव जागृत होने लगा। उसने सोचा आजही रात को वह रूपनगर को मिट्टी में मिला दे। फिर एकाएक शैलजा याद आ गयी, भोली सी नन्ही सी बहिन, जब उसने भैया द्वीज को उसके मस्तक पर टीका लगाया था। वह फिर सोचने लगा। किसी भावी आशङ्का से उसका हृदय द्रवीभूत हो रहा था और वह उठकर टहलने लगा। फिर बैठ गया।

इतने मे एक सिपाही ने आकर कहा—"हजूर! कोई औरत आप से मिलना चाहती है।"

"बुलाओ"

फतहजंग का कलेजा जोरों से धड़क रहा था; इतने ही में एक सुन्दर रमणी ने कैम्प में प्रवेश किया और कहा—

"आदाबअर्ज"

"आदाबअर्ज"

"आप जानते हैं, मैं कौन हूँ !"

"जी नहीं, बताइये।"

"मैं रूप नगर की राजकुमारी बिन्नो हूँ।"

"आप ! राजकुमारी बिन्नो! रूपनगर की ?" आश्चर्य से फतहजंग बोल उठ

"जी हाँ, मैं ही हूँ।"

"अच्छा, कहिये।"

"आप जानते हैं कि मैं हिन्दू हूँ और आज हिन्दुओं का त्योहार भैयाद्ूज है मैं आपको उसी का टीका लगाने आई हूँ।" कहते हुए उसने बढ़ कर टीका लगा दिया।

"अच्छा बहन ! नमस्ते" कह कर फतहजंग चुप हो गया और उसकी आँखे डबडबा आईं।

"अच्छा भाई ? अब मैं जा रही हूँ, देरी हो रही है।" कहती हुई बिन्नो वहाँ से चल दी।

+ + +

दूसरे दिन प्रातःकाल रूपनगर के इर्द-गिर्द कहीं भी शाही सेना का पता न था। सब यही कहते, पता नहीं फौज क्यो लौट गई क्या कोई सन्धि हो गई ? कुछ पता न था।

बीजापुर सुलतान के शाही दरबार में उधर सिपहसालार फतहजंग क़ैदी के रूप मे खड़ा था। शाही हुक्म सुनाया गया— "शाही हुकमउदूली और सल्तनत को धोखा देने की वजह से फतहजंग मुजरिम करार दिया जाता है और उसे फाँसी की सजा दी जाती है और रिआया को इत्तिला दी जाती है कि आइन्दा ऐसी हरकतें न हो वरना ऐसे हीं सजा दीं जायेगी।"

दरबार बरखास्त होने के बाद फतहजंग फाँसी के तख्ते पर खड़ा था। उस समय उसके मुख पर हर्ष और विषाद दोनों के भाव दृष्टिगोचर हो रहे थे।

———



सुश्री प्रभा वर्मा बी॰ ए॰



सुश्री सुदक्षिणा वर्मा

प्रभा वर्मा बी० ए०

सुश्री प्रभा जी वर्मा का जन्म १७ दिसम्बर सन् १९१६ ई० को मिर्ज़ापुर जिले मे एक अत्यन्त शिक्षित, भद्र एवं उच्च परिवार में हुआ। आप के पिता श्री बनारसी लाल जी एम० ए०, एल० एल० बी० अवकाश-प्राप्त डिप्टी-कलक्टर हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। आपने हाई स्कूल तथा इण्टर क्रास्टवेट कालेज, इलाहाबाद से पास किया। बी० ए० की परीक्षा आपने हिन्दू विश्व-विद्यालय बनारस से सन् १९३९ ई० में उत्तीर्ण की। मई सन् १९४२ मे श्री जय नारायण जी वर्मा, डिप्टी कलेक्टर प्रयाग के साथ आपका विवाह हुआ। आपकी बड़ी बहन श्रीमती रत्नकुमारी जी प्रयाग विश्व-विद्यालय के विज्ञान-विषय के आचार्य डाक्टर सत्य प्रकाश जी की धर्मपत्नी हैं।

श्रीमती प्रभा जी में बाल्यावस्था से ही हिन्दी के प्रति असीम अनुराग था; वही आगे चल कर काफी विकसित रूप में हमारे सामने आया। अपने छात्र-जीवन में ही आपने कहानियों की रचना प्रारम्भ कर दी। कहानियों के अतिरिक्त आप निबन्ध भी अच्छा लिखती हैं; किन्तु आपकी विशेष रुचि एवं सफलता कहानियों के क्षेत्र में ही है। इस दिशा में आपका सतत प्रयत्न जारी रहा। शनैः-शनैः आपकी कहानियाँ कला एवं प्राण दोनों दृष्टियों से काफी महत्वशाली बन गईं। उनमें काफी शक्ति, प्रौढ़ विचार-शीलता, भाषाधिकार वार्तालाप में नाटकीयता एवं चरित्र-दिग्दर्शन मिलता है।

प्रभा जी की कहानियों में अपूर्व जिज्ञासा परिलक्षित होती है। एक बार उन्हे प्रारम्भ कर देने पर फिर बिना समाप्त किये संतोष नहीं होता। इस जिज्ञासा का कारण घटनाओं अथवा परिस्थितियों के अद्भुतत्व के साथ पात्रों की भी विचित्रता है। विचित्रता से यह अभिप्राय नहीं है कि आपके पात्र वास्तविकता से दूर है वरन् यह कि वे काफी शक्तिशाली, तार्किक, दार्शनिक एवं उच्च विचारों के होते है। उनका अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त आकषक होता है। इस प्रकार के आकर्षक तथा मार्मिक घटनाओं एवं परिस्थितियों के साथ जिज्ञासा के केन्द्र स्वयं वे पात्र ही होते हैं जिनके मानसिक संसार का सुन्दर सूक्ष्म निरूपण लेखिका करती हैं।

पात्रों का यह मानसिक द्वन्द्वों हमें प्रेमचन्द, कौशिक, प्रसाद तथा अन्य अनेक छोटे-बड़े कहानीकारों मे मिलता है, किन्तु उसे दार्शनिकता का पुट देते हुए चित्रित करने मे केवल थोड़े से कला-विज्ञों को ही सफलता मिली है। प्रभा जी पात्रों की भावनाओं का मूल्यांकन काफी दृढ़ता एवं महत्व के साथ करती है। इस प्रकार मनुष्य के नैतिक, दार्शनिक एवं विचारगत् जीवन का एक अत्यन्त स्पष्ट चित्र हमारे सामने आता है जिसका मूल्यांकन करने एवं जिनको मूर्त रूप देने में लेखिका पूर्णतया सफल हुई है। आपकी कहानियों मे चित्रित जीवन का नैतिक पहलू, उसी प्रकार स्पष्ट ठोस, और ज्ञेय है जैसे जीवन का भौतिक या आर्थिक पहलू।

प्रभा जी की रचनाओं में जीवन के नैतिक एवं विचारगत् पहलू की प्रधानता मिलती है। विभिन्न विषम परिस्थितियों में पड़े हुए पात्रो की मनोदशा का सूक्ष्म चित्रण करते हुए आप एक श्रेष्ठ आदर्श एवं नीति की रक्षा करती हुई दिखाई पड़ती है। आपके पात्र उच्च कोटि के विचारशील या तार्किक व्यक्ति होते हैं जो कुछ काव्यात्मक दार्शनिक एवं प्रतीकात्मक भाषा बोलते

हैं। यह बात हमें प्रसाद जी के पात्रों मे भी मिलती है। अन्तर केवल यह है कि प्रसाद जी की कहानियाँ आद्योपान्त भावुक और काव्यात्मक भाषा में होती हैं—चाहे पात्रो का कथनोपकथन हो या लेखक का स्वयं वर्णन। आप में यह बात नहीं है। आपके पात्रो तक ही यह बात सीमित है। आप स्वयं जब कुछ अपनी ओर से लिखती हैं तो भाषा को वर्ण्य विषय के अनुरूप बना कर चलती हैं। भाषा पर अवश्य आपका श्रेष्ठ अधिकार दीखता है। साथ ही आप में भावों एवं परिस्थितियों को चित्रात्मक रूप देने की यथेष्ट शक्ति है।

प्रभा जी ने मनुष्य के अन्तरतम में झाँक कर उसके सुख-दुख के उद्गम का पता लगाया है। उनका विश्वास है कि मानसिक दुनिया की अव्यवस्था से दुःख उत्पन्न होते हैं। यही कारण है कि उनके पात्र अपनी 'उजड़ी दुनिया', या 'हरी-भरी दुनिया' की बात करते हुए दिखाई पड़ते हैं, वे उन परिस्थितियों या घटनाओं की ओर कम संकेत करते हैं। जो उनके सुख दुख के लिये उत्तरदायी है। इसके विपरीत वे अपने अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक क्षोभ एवं सन्ताप, प्रतिशोध-भाव, और प्रेम-तल्लीनता आदि की विशेष चर्चा करते हैं। इस प्रकार पाठक के समक्ष पात्रों के मानसिक जगत् का एक चित्र खिंच जाता है जो सचमुच काफी आकर्षक, सत्य और प्रभावशाली होता है।

आज-कल की ऐसी कहानियों को पढ़कर जिनमें केवल सर्वहारा वर्ग की आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयों का दिग्दर्शन कराया जाता है, ऊबा हुआ पाठक प्रभा जी की कहानियों में जीवन का एक नवीन पहलू जो अपनी सत्ता एवं उपादेयता में पर्याप्त महत्व रखता है, पाकर काफी संतोष की साँस ले सकता है। हमारा प्रयोजन सर्वहारा या शोषित वर्ग पर कहानियाँ लिखने

का विरोध करने से नहीं है। यह तो अत्यन्त आवश्यक है; किन्तु उनमे कलात्मक सौन्दर्य की सृष्टि होनी चाहिये अन्यथा उन्हें साहित्य नही कहा जा सकता। अधिक से-अधिक ऐसी रचनाओं को प्रचारक साहित्य माना जा सकता है। जहाँ नव-निर्माणकारी कल्पना-शक्ति एवं भावना का अभाव होगा वहाँ सच्चे साहित्य का सृजन नहीं हो सकता और चाहे जो कुछ भी हो।

रुपये–पैसे के लिये मची हुई दौड़-धूप में हम यह भूल गये हैं कि रुपया ही जीवन को सुखी नहीं बना सकता तथा जिनके पास इसका अभाव है वे वास्तव मे उतने दुखी नहीं है जितना हम उनको समझते हैं, यदि वे स्वयं अपने को दुखी एवं संपन्न न बना डालें। रुपये का सर्व–प्रथम कार्य एव मुख्य प्रयोजन हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। किन्तु जब भौतिक आवश्यकताओं में वृद्धि करना और उनको संतुष्ट करना ही जीवन का श्रेष्ठतम उद्देश्य एवं अभिप्राय मान लिया गया है तो धन के लिये इतनी बड़ी परेशानी स्वाभाविक ही है। प्रभा जी की कहानियों में जीवन के आर्थिक पहलू की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। उनके पात्रों के सुख-दुख उनकी आर्थिक समस्याओं पर अवलम्बित नहीं होते! उसका कारण कोई अन्य आकस्मिक घटना एवं उससे उत्पन्न मानसिक संघर्ष हुआ करता है।

प्रभा जी का प्रयत्न इस बात के लिये होता है कि उनके भाव को अधिक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और प्रभावशाली शैली मे व्यक्त किया जाय। आपका उद्देश्य आदर्शवादी नहीं होता। यदि भावों की ऊँचाई चित्रित भी की जाती है तो वह किसी पूर्व-निर्धारित आदर्श की रक्षा के निमित्त नहीं; वरन् उसका विकास पात्रों के भाव-संघर्ष के माध्यम से होता है। इसलिये वह कोई आदर्शवादी वस्तु न होकर पात्रों की व्यक्तिगत् विशेषता के ही

अन्तर्गत रह जाती है। अस्तु, वह यथार्थवादी भाव-उच्चता कही जायगी। पात्रों के इस सूक्ष्म, प्रायः भयानक एवं आकर्षक मानसिक द्वन्द्व में पाठक को किसी ऐसे दुःखान्त नाटक का आनन्द मिलता है, जिसमें घटनाओं तथा परिस्थितियों के मध्य से गुज़रते हुए पात्रों की विविध प्रभावशाली मानसिक अवस्थायें, भाव तथा दृष्टिकोण पाठक अथवा दर्शक को मुग्ध कर लेते हैं। शेक्सपियर, कालिदास और शा आदि श्रेष्ठ नाटककारों की सफलता का यही रहस्य है।

प्रभा जी की कहानियाँ सर्वदा दुःखान्त नहीं हुआ करतीं किन्तु पात्रों के मानसिक संघर्ष में हमें यही श्रेष्ठ नाटकीय तत्व परिलक्षित होता है। मानसिक संघर्ष के चित्रण के लिये किसी रचना का दुःखान्त होना आवश्यक नहीं है। इतना अवश्य सत्य है कि जहाँ भावों का संघर्ष चित्रित किया जायगा वहीं सुख और दुख की बदलती छाया दिखलानी पड़ेगी। इस प्रकार आप की कहानियों के पात्र कभी हँसते, कभी रोते, कभी क्षुब्ध, कभी निराश और कभी दार्शनिक मुद्रा में संसार के संघर्षों के ऊपर उठते हुए दिखाई पड़ते हैं।

मानसिक संघर्ष की प्रधानता के दृष्टिकोण से प्रभा जी के पात्र अत्यन्त उच्चकोटि के हुआ करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे समाज के उच्च स्तर से ही लिये जायँ। इस बीसवीं शताब्दी में अब इस भ्रमपूर्ण धारणा के लिए स्थान नहीं रह गया है कि केवल धन से या उच्च वर्ग में जन्म लेने से आदमी महान हो जाता है। वह चाहे उसके उपयोग में अपनी महानता का परिचय भले ही दे दे; किन्तु यह तो हुई उसके चरित्र की महानता। प्राचीन काल में अवश्य इस प्रकार का विश्वास था। इसलिये दुःखान्त नाटकों के नायक अथवा प्रधान पात्र सम्राट, सेनापति ड्यूक और अर्ल आदि हुआ करते थे

ताकि रंग-मंच पर उनकी उपस्थिति मात्र दर्शकों पर यथेष्ट प्रभाव डाल सके।

प्रभा जी के पात्रों में पैनी बौद्धिक शक्ति, साहस एवं आत्म बल होता है, जीवन की कठिनाइयों को वे हेय दृष्टि से देखते हैं। उनकी आत्म-शक्ति उनके सत्य दर्शन से प्राप्त हुई प्रतीत होती है। उनके वार्तालाप और कथनोपकथन मे उनका ठोस और प्रभावशाली व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। पात्रो की यह प्रधानता ही आपकी कहानियो में यथेष्ट परिमाण में दृष्टि-गोचर होती है; जिससे उनमें मानसिक द्वन्द्वों का सफल चित्रण एवं दार्शनिक भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति भी विशेष रूप से आ गई है।

काव्यात्मकता, दार्शनिकता भावुकता एवं विवेचनात्मकता आप के सभी पात्रों में मिलती हैं। उनके सोचने तथा भावों को अभिव्यक्त करने का एक ही ढंग होता है। यदि उनके चरित्र में विशिष्ट अन्तर न दिखाये जायँ तो वे एक से प्रतीत होने लगेगे; किन्तु उनके चरित्र में यथेष्ट विभिन्नता तथा विविधता होती है जो उनको एक दूसरे से अलग करती है। 'क्षमा' नामक आपकी श्रेष्ठ कहानी में, 'अविनाश', 'मनोहर' और 'सुभद्रा' आदि सभी पात्र काव्यात्मक, दार्शनिक और विवेचना-प्रधान भाषा बोलते हैं किन्तु उनके चरित्रो में आकाश-पाताल का अन्तर है।

'अविनाश' शरीर से हट्टा-कट्टा, साहसी, निर्भीक, प्रतिशोध एवं क्रोध से आक्रान्त, भयानक फिर भी दयाशील, उदार एवं सिद्धान्त पर अडिग रहने वाला व्यक्ति है। 'मनोहर' भयभीत पश्चात्ताप से पूर्ण उत्तेजित एवं, क्षमा-प्रार्थी दिखाई पड़ता है। 'सुभद्रा' लावण्य एवं सौन्दर्य की मूर्ति, स्पष्टवादिनी, पैनी विचारशक्ति से युक्त अपने ध्येय पर अडिग अग्रसर होने वाली रमणी है। उसने अपने प्रथम पति 'अविनाश' को छोड़कर 'मनोहर' को अपनाया; किन्तु शीघ्र ही

उसे अनुभव हुआ कि 'मनोहर' से वह घृणा करती है और उसके अन्तरतम में केवल 'अविनाश' से प्रेम है। 'मनोहर' भी इस बात को जानता है और पश्चात्ताप एवं मानसिक संताप की ज्वाला में दग्ध होने लगता है। 'अविनाश' बाद में 'मनोहर' की हत्या कर उससे अपना प्रतिशोध लेने आता है क्योंकि सुभद्रा को अपनाने के पश्चात् उसने अविनाश को गोली से मार देने का भी प्रयत्न किया था। 'अविनाश' में सुभद्रा को पुनः अपनाने की कोई इच्छा नहीं है। वह केवल प्रतिशोध चाहता है। किन्तु मनोहर' को एकान्त कमरे में आधी रात के समय पाकर भी वह क्षमा कर देता है; साथ ही 'सुभद्रा' को भी धीरे-धीरे उसमें 'मनोहर' से उत्पन्न 'सुभद्रा' की छोटी सी लड़की के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है। इसे एक मनोवैज्ञानिक सत्य माना जा सकता है।

कुछ दिनों के बाद पश्चात्ताप एवं क्षोभ से पीड़ित 'मनोहर' का देहान्त हो जाता है। मृत्यु के समय 'सुभद्रा' निश्चल और स्पष्ट शब्दों में उससे कह देती है कि उसने सर्वदा उससे घृणा की। कुछ दिन और बीतने पर वह बालिका भी चल बसती है और बाद में 'अविनाश' 'सुभद्रा' से विलग हो जाता है। जाते समय न तो सुभद्रा को अपनाने की 'अविनाश' में कोई इच्छा दिखलाई गई है और न सुभद्रा में ही, किन्तु इतना स्पष्ट है कि 'सुभद्रा' के प्रति 'अविनाश' का चित्त काफी कोमल हो गया है। उसकी घृणा, प्रतिशोध आदि प्रवृत्तियाँ गत हो चुकी हैं।

अविनाश को यह विदित हो चुका है कि पार्थिव दृष्टि से उससे विलग होने पर भी 'सुभद्रा' के के स्वतन्त्र मन ने केवल उसी की आराधना की और उन प्रतिद्वन्द्वी 'मनोहर' से सर्वदा घृणा की। इससे उसके चित्त में 'सुभद्रा' के प्रति आदर, उसके आत्मिक कष्ट पर तरस तथा उसकी उज्ज्वल गरिमा पर आश्चर्य

और प्रशंसा के भाव उत्पन्न होगये। बिदा होते समय वह 'सुभद्रा' से उसी प्रकार बातें करता है मानो 'सुभद्रा' ने अपने विषय में यथेष्ट सफ़ाई पेश कर दी हो और उसने उनकी सत्यता में विश्वास भी कर लिया हो। कहानी का अन्त कितना मार्मिक, दुखान्त एव भावो का हाहाकार लिये हुए है। दो श्रेष्ठ चरित्रवान स्त्री-पुरुष जो पहले दम्पति-रूप में जीवन व्यतीत कर चुके हैं; स्त्री की गल्ती से अलग होते और बाद में एक दूसरे को अपना नहीं सकते—अन्ततोगत्वा पार्थिवता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

इस कहानी का विषय आधुनिक है—दाम्पत्य जीवन में यौनगत कठिनाइयाँ, तलाक तथा अन्य व्यक्ति से विवाह आदि। लेखिका ने प्रथम पति को छोड़कर दूसरे को अपनाने को उचित नही माना है और इसलिये 'अविनाश' 'सुभद्रा' को अपनाता भी नही है; फिर भी उसके प्रति लेखिका का दृष्टिकोण उदार, एवं विचारशील है। वे यह मानने के लिये तैयार नहीं हैं कि ऐसी भूल कर चुकने के बाद नारी को एकदम से दुराचारिणी, पतिता, भ्रष्टा एवं शीलहीना मान लिया जाय। 'सुभद्रा' का चरित्र पहले से कहीं अधिक गरिमा एवं तेजमय दिखाया गया है। अन्त मे वह एक प्रश्न करती है जिसका उत्तर 'अविनाश' से देते नही बनता। "तुम आज मुझे क्षमा का दान दे कर, महान बन कर जा रहे हो...... चिरकाल तक तुम्हारे आदर्श की अमर कहानी कही जायगी।"

+ × +

"तुम्हारा क्लेश, तुम्हारी पीड़ा, तुम्हारे आँसू आज दुनिया देख रही है, लेकिन मेरे अदृश्य आँसुओं को तो किसी ने भी नहीं देखा। मेरा मौन रुदन तो किसी भी ने नहीं सुना।"

कितनी भयानक चिर व्यथा का प्रदर्शन इन थोड़े से वाक्यों में हो जाता है। दूसरी समस्या भी हमारे सामने आती है—पुरुष का त्याग, कष्ट, आत्म बलिदान, सत्य-पालन आदि संसार देखता है और उसका सम्मान एवं पूजा करता है; किन्तु रमणी के आत्म बलिदान, त्याग, और कष्ट आदि को कोई नहीं देखता और उसे इनके बदले कुछ भी नहीं प्राप्त होता। 'अविनाश' और 'सुभद्रा' दोनों मानसिक वेदना भोग चुके हैं, अनवरत आँसू बहा चुके हैं किन्तु 'अविनाश' के अमर आदर्श की पूजा होगी, और 'सुभद्रा' के नाम पर समाज थूकेगा क्योंकि वह कलंकिनी पतिता, कुल्टा और भ्रष्टा है।

पात्रों का यह चरित्र-चित्रण प्रभा जी की कहानियों की विशेषता है जो उनकी सशक्त कल्पना-शक्ति एवं अनुभूति को प्रकट करती है। कमरे में घुसने के बाद 'सुभद्रा' से विदा होने तक 'अविनाश' के भाव-संघर्ष के विविध रूपों को देखकर लेखिका की श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक जानकारी का लोहा मान लेना पड़ता है। इतने व्यवधान में हम 'अविनाश' के क्रूर, चिन्तित, निराश, ईर्ष्या-प्रतिशोधमय, क्रुद्ध, भयंकर, उदार, तार्किक विवेचनापूर्ण, वत्सल और क्षमामय आदि अनेक रूपों को देखते हैं। किसी एक भाव की स्थिरता उसमें नहीं दीखती। एक के बाद दूसरे भाव आते जाते हैं; किन्तु प्रबलता बढ़ती जाती है उदारता, क्षमा और प्रेम की ही। अन्तिम कुछ वाक्यों में ही लेखिका ने 'सुभद्रा' का श्रेष्ठ तपस्यामय जीवन हमारे सामने अंकित कर दिया है।

इसी प्रकार का मानसिक संघर्ष एवं भावों का चमत्कारपूर्ण ऊहापोह आपकी अन्य कहानियों में भी मिलता है।

इस प्रकार प्रभा जी मानव-जीवन की विशेष बाह्य समस्याओं को लेकर उनके माध्यम से हमारी शाश्वत समस्याओं का दिग-

दर्शन कराती हैं। आपकी जीवन-दृष्टि काफी विस्तृत एवं गहन अनुभूतिपूर्ण है। आपकी रचनाओं से आपकी श्रेष्ठ कल्पना-शक्ति का पर्याप्त परिचय मिलता है। निश्चय ही आपका स्थान श्रेष्ठ साहित्यकारों में होना चाहिये।

प्रभा जी की भाषा सशक्त एवं भावों के अनुसार स्वरूप बदलने वाली होती है। उसमें भावुकता तथा काव्यात्मकता के तत्व अवश्य कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक आकर उसकी तेजस्वता एवं अर्थ-व्यंजना-शक्ति में कुछ बाधा उपस्थित करते हैं। आप उच्च साहित्यिक भाषा का प्रयोग करती हैं जिसमें ओज गुण की प्रधानता होती है। आपके भावों तथा विचारों की छाप आपके प्रत्येक वाक्य पर परिलक्षित होती है मानों कोई चबा-चबा कर शब्दों का प्रयोग कर रहा हो। यह आपकी कठोर तार्किक विवेचना एवं विचार-शक्ति का द्योतक है।

—:o:—

क्षमा

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। शहर के कोलाहल से दूर दरिया के किनारे वह विशाल भवन, जिसकी ऊँची. पथरीली दीवारें उस अँधेरी रात में भयानक लग रही थीं, मौन खड़ा था। उस रात को जब आकाश के विशाल आँगन में तारों के दीप बादलों की आँधी में बुझ गए थे, और चारों ओर भयानक अन्धकार छाया हुआ था, एक आगन्तुक अपने बड़े कोट के कालर को ऊँचा करता हुआ उस विशाल भवन के फाटक पर आ खड़ा हुआ। उसने अपने बलिष्ठ हाथों से फाटक के लौह पल्लों को खोल कर ठेल दिया, और गम्भीर गति से आगे बढ़ता गया। उसने

एक बार आँखें उठा कर देखा, वह विशाल भवन उस जाड़े की अँधेरी रात मे एक रहस्य-भरे स्वप्न-सा खड़ा था। भवन के प्रवेश-द्वार के चरणो में लिपटी हुई उन चौड़ी सीढ़ियों के नीचे आगन्तुक क्षण भर स्तब्ध-सा खडा रहा। फिर धीरे-धीरे सीढ़ियों पर चढ़ कर उसने उल्टी उँगलियो से प्रवेश-द्वार को तीन बार खटखटाया।

अन्दर विस्तृत कमरे के एक कोने में, जहाँ शमादान की हल्की रोशनी कमरे की अँगीठी में जलती हुई आग की लाल लपटो के सामने फीकी हो रही थी, एक युवक गम्भीर भाव धारण किये किताबो की दुनिया में खोया बैठा था। सामने उससे हट कर कुछ दूर पर एक नारी मौन बैठी थी। उसके कानो ने द्वार पर हुए हल्के आघात को स्पष्ट सुना।

बाहर जाड़े की तीखी वायु तीर-सी चल रही थी। आगन्तुक ने अधीर हो कर द्वार को फिर से खटखटाया।

युवती ने उठ कर शमादान मे जलती हुई तीन मोमबत्तियों में से एक निकाल ली, और जा कर चुपचाप द्वार खोल दिया।

प्रतीक्षा मे अधीर आगन्तुक तीखी, ठण्डी हवा के झोंके के साथ अन्दर आ गया। एक हाथ पीछे कर के द्वार बन्द करते हुए और दूसरे हाथ से सिर को टोपी उतारते हुए, उसने उस एक पल मे मोमबत्ती के क्षीण प्रकाश मे सामने खड़ी हुई उस नारी की ओर देखा, जिसका रूप मोमबत्ती की सैकड़ो शिखाओ से भी अधिक ज्वलन्त था। हवा के झोंकों से बुझती हुई मोमबत्ती के क्षण भर के प्रकाश मे युवती ने आगन्तुक को देखा, पहिचाना, और क्षण भर पहिले शिखा-सी प्रकाशमान वह रूपराशि जमीन पर गिरी हुई मोमबत्ती की तरह बुझ गई। केवल बुझ ही नहीं गई, बुझ कर राख-सी सफेद पड़ गई। भयभीत, कम्पित ओंठों से धीरे से निकला केवल—"तुम!"

किताबों की दुनिया में भूला हुआ युवक अँधेरी रात में अपने भवन के प्रवेश-द्वार पर हुए उस क्षण भर के अभिनय को देख कर चौंक उठा। किताब फेंक कर वह आगन्तुक की ओर बढ़ा। दोनों प्रकाश में आए। दोनों की आँखे क्षण भर के लिए मिलीं, और मिलने के साथ ही युवक का मुख शव-सा सफेद, रक्तहीन हो उठा। कंठ से अटकते हुए शब्द निकले—"कौन ?...अ...वि...नाश...तुम !"

अविनाश ने एक व्यंग्य-भरी मुस्कान के साथ कहा—"तुम्हारी याददाश्त बड़ी जबरदस्त है मनोहर !" और मूर्छित-से होते हुए मनोहर को दोनों हाथों से सँभाल कर कुरसी पर बैठा दिया।

मनोहर आतंक-भरे नेत्रों से उस दैत्य-से खड़े व्यक्ति की ओर अवाक् निहारता रहा, जो आज आधी रात को उसकी मौत का सन्देश ले कर आया था।

अविनाश ने आँखें घुमा कर देखा, युवती कमरे में न थी। एक गहरी साँस भर कर अविनाश मनोहर की ओर पीठ करके उस पिघलते हुए सोने की-सी आग मे अपने बर्फ-से ठण्डे हाथ सेंकने लगा।

मनोहर ने भयभीत आँखों से देखा, अविनाश के कोट की जेब से झाँकती पिस्तौल की भयानक मूठ आग की रोशनी में चमक रही है। उसके मुख का रक्त जम-सा गया। एक बार अविनाश की ओर देख कर उसने भीतरी द्वार की ओर देखा। उसके पैर द्वार की ओर बढ़ने ही को थे कि अविनाश ने दृष्टि के न जाने कौन से कोण से बिना आँखें घुमाये ही उसे देख लिया, और सहज गम्भीर स्वर में बिना मुख फेरे ही बोला—"इसकी जरूरत नहीं, मनोहर !"

अविनाश के शब्दों से मनोहर सिहर उठा।

अविनाश आग के पास से हट कर मनोहर के बिलकुल समीप आ खडा हुआ। आतंक से भरा मनोहर असहाय-सा खडा ताकता रहा अविनाश की दृढ़ आखों मे। अविनाश ने गम्भीर भाव से मनोहर के कॉपते हुए दोनों हाथों को पकड़ कर, सहज, शान्त स्वर में कहा—"मनोहर, उस दिन शायद तुमने ऐसे ही कॉपते हुए हाथों से मुझ पर गोली चलाई थी, तभी निशाना चूक गया।"

अन्तर की उत्तेजना ने मनोहर के कंठ को वाणी दी। कॉपते ओठों से उसने कहा—"अविनाश, तुम्हारा जेब मे पिस्तौल है! एक फायर कर दो! मेरी जिन्दगी का एक-एक क्षण भारी हो रहा है!"

अविनाश ओठों में व्यंग्य भर कर मुस्कराया। जेब से पिस्तौल निकाल कर क्षण भर देखा, फिर उसे पास की मेज पर रखते हुए बोला—"मनोहर, उस दिन तुमने मेरी रंगीन दुनिया मे आग लगा कर मुझे गोली का शिकार बनाया था। आज मै सोचता हूँ, काश, वह गोली मेरे सीने को पार कर जाती! लेकिन नही, तुमने मुझे गोली का शिकार बना कर अधमरा करके छोड़ दिया।" अविनाश के शांत स्वर में उत्तेजना की लय क्षण-क्षण में बढ़ रही थी। मनोहर के दोनों हाथो को अपने दोनों हाथो से झकझोरता हुआ उत्तेजित स्वर में बोला—"मेरे प्यारे दुश्मन, क्यो नही इन हाथो में उस दिन जोर हुआ, क्यो नहीं तुम्हारी गोली मेरे अन्तर को बेध सकी? मेरे बहादुर शिकारी, क्यों तुम्हारा निशाना उस दिन चूक गया?" कठिन वेदना से से उसका कण्ठ भर आया।

मनोहर के हाथ छूट गये उसके हाथों से। वक्षःस्थल के बायीं ओर दाहने हाथ को दबा कर वह कराह उठा, जैसे उस दिन का घाव आज फिर से ताजा हो कर कसक उठा हो, जैसे उस दिन की गोली आज फिर अन्दर-ही-अन्दर रेंग उठी हो।

मनोहर एक असहनीय वेदना का मौन हाहाकार अपने अन्तर में छिपाये अवाक् खड़ा रहा।

अविनाश उत्तेजना की शान्त होती हुई मौन लहरों के साथ शान्त हो गया। उसने मनोहर के निकट से हट कर कमरे की बन्द खिड़की खोल दी। बाहर बादलों का घना आवरण हटा कर चाँद एक मधुर मुस्कान-सा खिल उठा था। खिड़की के नीचे नदी की लहरियाँ सूने किनारे से टकरा रही थीं। अविनाश स्थिर दृष्टि से बाहर ताकता रहा, फिर बोझिल स्वर में बोला—"मनोहर चाँदनी रात में यह नदी का एकान्त किनारा, यह विशाल भवन, यह ऐशो-आराम दुनिया के कोलाहल से दूर तुम्हारी और सुभद्रा की यह चैन की जिन्दगी! क्या चाहते हो कि इस तुच्छ लोहे के टुकड़े से इसे उड़ा दूँ?"

"हाँ, उड़ा दो, अविनाश, उड़ा दो! मैं तुमसे प्राणों की भिक्षा नहीं, मौत का दान माँगता हूँ!"—असहाय-सा मनोहर बोल उठा।

अविनाश ने जहरीली मुस्कान के साथ मेज पर पड़ी हुई पिस्तौल उठा ली, और मनोहर के सम्मुख पिस्तौल तानता हुआ बोला—"उड़ा दूँ मनोहर?"

"हाँ उड़ा दो, अविनाश!" व्यथित, कातर स्वर में मनोहर ने कहा।

अविनाश ने क्षण भर क्रूर दृष्टि से मनोहर की व्यथित, याचना-भरी आँखों में देखा, फिर विद्युत-गति से हाथ की पिस्तौल खिड़की की राह नदी मे उछाल दी। मनोहर के कन्धों पर अपने दोनों बलिष्ठ हाथ रख दिये, और उसकी आँखों में ताकता हुआ बोला—"मनोहर, तुम्हारी आँखें अभी मौत नहीं चाहतीं! इनमें जीवन की लालसा है, मोह है!"

मनोहर अविनाश के सामने घुटनों के बल गिर पड़ा, और आँखों के आँसू आँखों ही मे पीता हुआ बोला—"अविनाश, मेरे हृदय मे लालसा की एक कोमल कली है। मैं उसे मसलने के पहिले एक बार देख लेना चाहता हूँ, केवल एक क्षण के लिए!"

अविनाश एक उच्छ्वास भर कर बोला—"सुभद्रा को तुम..."

"नहीं, नहीं, अविनाश, उसको नहीं!" व्यथित स्वर में मनोहर ने बात काटते हुए कहा।

"फिर किस को, मनोहर?" विस्मय से अविनाश ने पूछा।

"देखना चाहते हो, अविनाश?" मनोहर ने गम्भीर भाव से कहा—"देखने के पहले दिल पर पत्थर रख लेना होगा।"

"दिल पर पत्थर रखने की ज़रूरत नहीं, मनोहर! वह तो खुद ही पत्थर हो गया है!"

मनोहर के पीछे अविनाश उसकी परछायीं-सा चल रहा था किन्तु उसके अन्तर में केवल एक विस्मय भरी जिज्ञासा के अतिरिक्त और कुछ न था। मनोहर के पैर सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे और मन मे भावों का बवन्डर उसे पीछे ठेल देना चाहता था। वह क्या करने जा रहा है? प्रतिशोध की बारूद से जिसका अन्तर भरा हुआ है, उसे आग की चिनगारी दिखलाने जा रहा है। लेकिन अब पीछे हटने का रास्ता नहीं था, आगे बढ़ना ही था। सीढ़ियों को पार करके वह एक बन्द द्वार के समीप आ खड़ा हुआ। क्षण भर ठहर कर कॉपते हाँथो से भिड़े हुए द्वार को ठेल दिया। अब सामने केवल एक मोटे रंगीन पर्दे का व्यवधान था। मनोहर ने घूम कर एक बार अविनाश की आँखों में देखा। केवल एक पवित्र जिज्ञासा मूर्तिमान हो रही थी उन दो आँखों मे। उसने एक गहरे उच्छ्वास के साथ पर्दा

धीरे से हटा दिया। सामने दुग्ध-फेन-सी उज्जवल शय्या पर एक अबोध बालिका रंगीन स्वप्नों के बीच सुख की नींद सो रही थी।

अविनाश एकटक उस सुन्दरतम रचना को निर्निमेष नेत्रों से ताकता रहा। सुभद्रा की सुन्दर आकृति बालिका के उस भोले मुख पर जैसे परिचय का एक छोटा सा मौन सन्देश ले कर छा गई हो। बालिका के मुख पर उस चिरपरिचित-आकृति को देख कर अविनाश के अन्तर की समस्त भावनायें मिल कर एकाकार हो उठीं। हारे हुए जुआरी-सा, जो अपना सब-कुछ हार चुका हो जो अपनी हसरतों से भरी दुनिया को अपनी आँखों से जलती देख चुका हो, अविनाश पराजय की गहरी ठोकर से ठगा-सा खड़ा रह गया। चेतना एक दर्द-भरी आह बन कर ओठों की राह बाहर निकल गई।

धूमिल सन्ध्या की गहरी उदासी सुभद्रा के गहरे उच्छ्वासों से भर उठी। अन्तर में भावों की आँधी और आँखों में मौन रुदन के वे आँसू थे जो आँखों ही में लहराना जानते हैं, जिनको पलकों की आट से निकलने में संकोच होता है। उन आँसू-भरी आँखों में सुभद्रा अपने गत जीवन के इतिहास की तस्वीरें देख रही थी। चलचित्र-सा नाच रहा था उसकी आँखों में उसके जीवन के इतिहास का वह पृष्ठ, जो कभी भुलाया नहीं जा सकता, और जो एक दर्द-भरी कहानी बन कर उसके बाद भी दुनिया के पर्दे पर रह जायगी।

जीवन के उस काल में जब सुभद्रा स्वप्नों की छाया में सोती और कल्पना की दुनिया में जागती, उसके जीवन में दो व्यक्ति आए थे, अविनाश और मनोहर। सुभद्रा ने दुनिया और समाज के सामने ईश्वर को साक्षी मान कर अविनाश को अपना साथी

चुना था। लेकिन उसके बाद उसने महसूस किया कि उससे भूल हुई, और उस भूल को सुधारने के लिए उसने अपनी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी भूल कर डाली।

एक दिन अविनाश की अरमानों से भरी दुनिया में आग लगा कर, समाज के बन्धनों को ठुकरा कर, पत्नी की पवित्र मर्यादा को कलंक की कालिमा से रंग कर, सुभद्रा ने मनोहर के साथ एक नये पथ पर पैर बढ़ाया। लेकिन पहला क़दम उठाने के पहिले ही सुभद्रा ने भयंकर विस्मय से देखा कि वह मनोहर से घृणा करती है, उसके अन्तर की गहराई में अविनाश की पवित्र मूर्त्ति अविनाशी है। सुभद्रा ने देखा, उसकी कल्पनाओं का मन्दिर बनने के पहिले ही ढह गया। आशाओं का जाल फैलने के पहिले ही उलझ गया। और अब ? केवल एक भयंकर पश्चात्ताप, एक कलुषित, लांछित जीवन, विडम्बनाओं से भरा हुआ मिथ्या संसार ले कर ज़िन्दगी का लम्बा सफर पूरा करना है।

सुभद्रा नहीं जानती थी कि मनोहर की गोली अविनाश का नाश न कर सकेगी, और नहीं जानती थी कि वह महान् व्यक्ति, जो दुनिया की आँखों में उसके मन और शरीर का स्वामी है, उसकी पाप की दुनिया में एक दिन क्षमा का दान ले कर आयेगा, नहीं जानती थी कि जो सौभाग्य-सिन्दूर एक अँधेरी रात को अनायास ही पुँछ गया था उसको विधाता ने अब तक सुरक्षित रक्खा है। लेकिन आज उसका सौभाग्य उसके जीवन का एक अभिशाप बन कर आया है।

तभी रेनू ने आ कर पूछा—"बाहर कौन आया है, माँ ?"

सुभद्रा के मन पर एक तीखा आघात हुआ।

"कौन है, माँ ?" रेनू ने माँ का आँचल खींचते हुए कहा।

सुभद्रा ने व्यथित आँखें शून्य से हटा कर रेनू के मुख पर

गड़ा दीं। मनोहर की आकृति नाच उठी उस नन्हीं-सी बालिका के मुख पर। अकथ क्षोभ से सुभद्रा का अन्तर भर उठा। रेनू के हाथ से आँचल छुड़ा कर व्यथित स्वर मे धीरे से कहा—"मैं नही जानती"

"तुम नहीं जानतीं, माँ?"

सुभद्रा उस अबोध बालिका के नेत्रों का जिज्ञासा भरा विस्मय सहन न कर सकी। विद्युत-गति से उठ कर चली गई।...

पेड़ की छाँह में अविनाश गहरे विचारो मे खोया-सा बैठा था। आँखे स्थिर भाव से शून्य की ओर देख रही थी। रेनू ने धीरे से आ कर अपनी कोमल हथेलियों से अविनाश की आँख मूँद ली, और पूछा—"मैं कौन हूँ?"

अविनाश ने रेनू की नन्हीं, कोमल कलाइयों को पकड़ कर मुस्कराते हुए पूछा—"तुम . तुम कौन हो?"

"तुम नहीं जानते?" रेनू ने आनन्द-पूर्ण कौतुक से पूछा।

"न, मैं नहीं जानता।"

"मैं रेनू हूँ!" उसने खिलखिलाते हुए कहा—"चाचाजी, तुम नहीं पहिचान पाए!"

"हाँ, रेनू!" अविनाश ने कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"देखो तो, मैं तुम्हें नहीं पहिचान सका!"

रेनू अविनाश के हाथों से खेलती हुई बोली—"अच्छा चाचाजी, तुम बाबा को पहिचान सकते हो?"

"हाँ, हाँ, उन्हें पहिचान सकता हूँ!"

"और माँ को?" अबोध रेनू ने निष्ठुर प्रश्न किया।

अविनाश का मुख पीला पड़ गया।

रेनू ने जोर दिया—"बोलो चाचाजी!"

"नहीं, रेनू, मैं उन्हें नहीं पहिचानता !" अविनाश ने कहा।

"हाँ, चाचाजी, माँ भी तुम्हें नहीं पहिचानतीं !" रेनू ने भोलेपन से दूसरा आघात किया। फिर डाल में झूलते हुए फूल के पास दौड़ गई।

अविनाश सोच रहा था—सुभद्रा उसे नहीं पहिचानती जिसका परिचय उसके लिए दुनिया के सभी परिचित व्यक्तियों से अधिक प्रिय है, जिसका परिचय ले कर वह दुनिया की तमाम मुसीबतों का सामना करने के लिए तैयार है, वही उसे नहीं पहिचानती !

सहसा उसकी आँखें रेनू की ओर घूम गईं। वह फूलों के बीच तितली-सी उड़ रही थी। अविनाश स्थिर दृष्टि से उस फूल-सी बालिका को निहारता रहा। सुभद्रा की नन्हीं-सी प्रतिमूर्ति, कितनी सुन्दर, कितनी मोहक ! लेकिन उसके अन्तर में प्रतिहिंसा की जो एक जलती-बुझती चिनगारी दबी पड़ी है, उसको यह नन्हीं-सी निर्दोष बालिका क्यों आँधी बन कर सुलगा देती है ? क्यों इसको देख कर वह चिनगारी सुलग कर, चमक कर, उसके व्यथित अन्तर को भस्म कर देना चाहती है ? आज यह अकेली बालिका उसके समीप खेल रही है। वह चाहे, तो अपने इन बलिष्ठ हाथों से एक क्षण में इस कोमल कली को मसल सकता है, मनोहर और सुभद्रा की इस सुन्दर कल्पना को एक क्षण में छिन्न-भिन्न कर सकता है। उसका अन्तर एक तीव्र प्रतिहिंसा से जल उठा। वह उत्तेजित सा हो कर उठ गया। फूलों के बीच खड़ी रेनू की ओर तीव्र गति से बढ़ा !

रेनू एक क्षण के लिए रुकी, फिर एक मीठी किलकारी भर कर फुलवारी के बीच दौड़ गई। अविनाश उसको पकड़ने के लिए दौड़ा। तितली-सी उड़ती हुई रेनू की भोली हँसी से फुलवारी गूँज

उठी। अविनाश दोनों आँखों में प्रतिहिंसा की चिनगारी लिए रेनू को पकड़ने को दौड़ता, और रेनू बाल-सुलभ कौतुक से फूलों में छिप जाती। अबोध बालिका अविनाश की आँखों का हिंसक भाव न पढ़ सकी। फूलों के बीच रंगीन तितली-सी उड़ती हुई रेनू जितनी मोहक लग रही थी, अविनाश की आग उतनी ही भभक रही थी। सहसा अविनाश ने झपट कर रेनू को पकड़ लिया। रेनू एक किलकती चीत्कार के साथ उससे लिपट गई। अविनाश ने उसको दोनों हाथों से पकड कर सामने खड़ा कर लिया, और एक हाथ उसकी कोमल गर्दन पर रखते हुए तीव्र स्वर में पुकारा—"रेनू !"

रेनू ने अपनी बड़ी-बड़ी पलकें उठा कर एक बार अविनाश की आँखों में देखा, फिर मुस्करा कर कहा—"चाचाजी, फिर आँख-मिचौनी खेलो !"

अविनाश के मुख से एक गहरा उच्छ्‌वास निकल गया। एक व्याकुल स्नेह से उसका हृदय भर उठा। उसने रेनू को अपनी बाँहों में भर कर उसका मोहक मुख चूम लिया। रेनू खुशी से किलक उठी। अविनाश ने आँखें ऊपर उठायीं। सामने से मनोहर आ रहा था। उसी क्षण उसके मुख का भाव बदल गया। रेनू को धीरे से छोड़ कर उठ गया।

मनोहर ने अविनाश के अन्तर की अमृत लालसा को देखा। एक मौन वेदना से उसका दोषी मन व्याकुल हो उठा। अविनाश ने अपने को सँभाला। मनोहर ने जैसे उसको सहारा देते हुए कहा—"बाजार चलना है न, अविनाश ?"

"हाँ, चलो !" अविनाश ने मन की व्यथा को स्वर में उतरने से रोका।

उस दिन अविनाश ने सारा दिन रेनू के साथ बिता दिया।

धूमिल सन्ध्या का अन्धकार जब नीचे झुकने लगा, तब अविनाश रेनू की उँगली पकड़े सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। उछलती हुई रेनू अविनाश का हाथ छोड़ कर भाग गई। अविनाश ने उदास भाव से अन्दर प्रवेश किया, किन्तु ठिठक कर खड़ा हो गया। किताबों की आलमारी के पास सुभद्रा खड़ी थी। लम्बे-काले बाल पीठ पर लहरा रहे थे। सुभद्रा ने पैरों की आहट से चौंक कर मुख फेरा।

अविनाश एक क्षण के लिये पलकें झुका न सका। सुभद्रा का सुन्दर किन्तु दुर्बल शरीर उन आँखों के आगे सिहर उठा। आलमारी की किताबों में से जो एक किताब आगे खींच कर निकालने जा रही थी, उसे उसी तरह छोड़ कर सुभद्रा किस प्रकार उस कमरे के बाहर जा सकी, यह वह स्वयं न जान सकी। क्षोभ का कलंकित भार ले कर क्यों नहीं वह धरती में उसी क्षण उसी जगह समा गई ?

कई क्षण तक अविनाश मौन भाव से वहीं खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे आ कर आलमारी के निकट खड़ा हो गया। उस आधी निकली हुई किताब को खींच कर निकाल लिया। खोल कर देखा, 'चरित्र-हीन !' ओंठों से अनजान ही में निकल गया, 'चरित्र-हीन !' जैसे सुलगते अङ्गारों से उसके मानसपट पर किसी ने लिख दिया, चरित्र-हीन !' खिड़की के बाहर देखा, ताड-वृक्षों के झुरमुट में छिप कर झाँकते हुए चाँद ने रहस्यपूर्ण मुस्कान से कहा, 'चरित्र-हीन !' नीचे लहरें गुनगुना उठीं, 'चरित्र-हीन !' पवन चीख उठा, 'चरित्र-हीन !' 'अविनाश' ने जोर से दोनों कानों पर हाथ रख लिये। मुख रक्तहीन हो उठा। आखें जैसे पत्थर के दो चमकते हुए टुकड़ों-सी निर्जीव हो कर रह गईं।

रविशों के किनारे पत्थर की बेंच पर अविनाश मौन-उदास भाव से बैठा था। आँखों का सूनापन जैसे एक चिर उदासी का

मूक सन्देश लिए हो। दूर पर उस विशाल भवन की सीढ़ियों पर मनोहर रेनू का हाथ पकड़ कर उतर रहा था। सुभद्रा दरवाजे के समीप खड़ी थी। अविनाश सूनी, स्वप्निल आँखों से मनोहर की उस रंगीन दुनिया को निहारता रहा। पलकें भीग उठीं। मनोहर और रेनू निकट आते जा रहे थे। अविनाश ने अपनी दुर्बलता का गीलापन हथेली से पोंछ डाला।

रेनू मनोहर का हाथ छोड़कर फूलों से खेलने लगी। मनोहर धीरे-धीरे आ कर अविनाश के निकट बैठ गया। अविनाश की आँखें शून्य की ओर देख रही थीं। मनोहर की आँखों से अविनाश के आँसू छिप न सके। एक अकथ पीड़ा से मनोहर का मुख पीला पड़ गया। वह आज इस दया और मोह से घिरी हुई महान आत्मा के पैरों पर लोट कर अपने को हमेशा के लिए मिटा देने को तड़प उठा। उसने अपराधी के-से स्वर में पूछा—"अविनाश, तुम रो रहे हो ?"

"यह रोना नहीं है, मनोहर !" अविनाश ने स्थिर दृष्टि से शून्य की ओर ताकते हुए कहा—"यह एक टूटे दिल की अनोखी हँसी है, जो ओंठों मे नहीं आँखों में खिलती है।"

मनोहर के अन्तर में गहरा आघात लगा। धीरे से बोला—"अविनाश, मैं जानता हूँ कि मैंने तुम्हारी सुख की दुनिया उजाड़ दी, तुम्हारे हसरतों से भरे दिल को निकाल कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।...लेकिन, अविनाश, जो चुरा कर, लूट कर तुम्हारे बाग का वह अनोखा फूल मैं लाया था, वह समय से पहिले ही मुरझा गया, बाहर जाने के पहिले ही कुम्हला गया! अविनाश, प्रकृति का वह सुन्दरतम पुष्प अप्राकृतिक वातावरण में खिला न रह सका !"

अविनाश मौन था।

मनोहर कहता गया—"सुभद्रा मेरी न हो सकी, कभी न हो सकी! मन, प्राण, वचन से आज भी वह तुम्हारी ही है! जो कुछ मैंने पाया है, वह सब मिथ्या है, नश्वर है! एक दिन वह सब मिट्टी में मिल जायगा! परंतु अविनाश, तुम्हें जो कुछ मिला है, वह अमर है, अजर है! मुझे पुष्प मिला था ज़रूर, लेकिन वह कुम्हला कर, मुरझा कर, एक दिन मिट्टी मे मिल जायगा। परंतु तुमने तो वह सुगन्ध पाई है, जो चिरकाल तक तुम्हारे साथ रहेगी, जिससे तुम्हारे अन्तर का कोना-कोना महक उठेगा! मैं तो लूट कर भी आज भिखारी ही हूँ, अविनाश!"

अविनाश मौन, निस्तब्ध क्षितिज की गहराई में दृष्टि गड़ाये बैठा रहा।

मनोहर बोलता ही गया—"अविनाश, सुभद्रा आज दुनिया की आँखों में लांछित है। समाज उसे कभी क्षमा नहीं कर सकता। लेकिन उसकी आत्मा आज भी पवित्र है, निष्कलंक है। उसे समाज क्या, तुम भी दंडित नहीं कर सकते। अविनाश! जिस दिन उसका फूल-सा शरीर अङ्गारों की शय्या पर लेटेगा, उस दिन सारी दुनिया का, समाज का, तुम्हारा, सब का दंड समाप्त हो जायगा!" मनोहर क्षण भर को रुका, फिर एक गहरा उच्छ्वास छोड़ कर बोला—"अविनाश, सुभद्रा मेरे जीवन की अधूरी कहानी है!"

"नहीं मनोहर, तुम भूलते हो!" अविनाश ने बीच ही में रोकते हुए बिना दृष्टि हटाये ही कहा—"सुभद्रा मेरे जीवन की अधूरी कहानी है, और तुमने उसे पूरा किया!"

मनोहर ने उस कठोर व्यंग्य को सह लिया, और बोझिल कंठ से बोला—"अविनाश, उस दिन मैंने सोचा था कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया!"

"तो क्या मैने तुम्हें क्षमा नहीं किया, मनोहर ?" अविनाश ने व्यथित विस्मय से पूछा।

मनोहर ने धीरे-धीरे बोझिल स्वर में कहा— "नहीं, अविनाश, वह क्षमा नहीं थी, वह तुम्हारे दंड का एक अनोखा विधान था। उस दिन से एक-एक क्षण, एक-एक पल, मेरे लिये भारी हो रहा है! मेरे अन्तर मे पश्चात्ताप की जो आग सुलग रही है, उसकी जलन कम नहीं हुई, अविनाश!"

"तुम्हारी जलन कम है या अधिक, मैं कह नहीं सकता, मनोहर! लेकिन तुमको क्षमा कर के मैंने जो आग सुलगाई है, उसकी जलन अन्त तक मेरे अन्तर का भस्म करती रहेगी, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ! लेकिन, मनोहर! तुम्हारे हित के लिए यदि मैं अपने को मिटा सका, तो मेरा जन्म सफल हो जायगा!"

"नहीं, अविनाश! मैं अपनी जिन्दगी का लम्बा सफर पूरा कर के आखिरी मंजिल पर आ गया हूँ!"

"मनोहर!" अविनाश मनोहर की आँखों में एक शंकित विस्मय से ताकता हुआ बोल उठा।

मनोहर क्षीण मुस्कान के साथ बोला—"हाँ, अविनाश, मेरा समय आ गया है! मेरे बिना नरक की दुनिया सूनी हो रही है!"

"मनोहर, मनोहर! यह तुम क्या कह रहे हो?" अविनाश अन्तर की सच्ची पीड़ा से बोल उठा।

मनोहर ने अविनाश के कंधे पर हाथ रख कर धीरे से कहा—"देखो, अविनाश, मेरी आँखों में देखो! मौत खुल कर झाँक रही है!"

अविनाश ने मनोहर के दुर्बल, अशक्त मुख को दोनों हाथों

में लेकर धीरे से कहा—"नहीं, नहीं, मनोहर ! मैं तुमको मरने नहीं दूँगा !"

मनोहर मृत्यु-शैया पर पड़ा था। दुनिया के रंगमंच पर उसके अभिनय का आखिरी दृश्य था, जिस पर मौत का पर्दा गिर रहा था धीरे-धीरे। सुभद्रा उसकी शय्या के निकट बैठी थी मौन, गम्भीर।

अविनाश ने पर्दा हटा कर अन्दर प्रवेश किया। सामने का दृश्य देख कर अन्तर में एक टीस उठी, किन्तु उसने तुरन्त अपने को सँभाल लिया। सुभद्रा अपने स्थान पर जड़-प्रतिमा सी बैठी रही।

अविनाश ने क्षण भर स्थिर दृष्टि से मनोहर के मुख की ओर देखा। जीवन-पथ का क्लान्त पथिक कठिन यात्रा से थक चुका था। अविनाश वहाँ से हट कर खिड़की के समीप आ गया। मन मे भावों की आँधी चल रही थी। एक दिन अँधेरी रात में जिसके लिए मौत का परवाना ले कर उसने इस घर मे पैर रक्खा था, फिर जिसे अपने दिल पर पत्थर रख कर क्षमा का दान दे सका, वह आज जा रहा है अपने-आप ही। अविनाश का मन उसके लिए व्याकुल हो उठा।

सहसा मनोहर ने करवट बदल कर धीरे से पुकारा—"सुभद्रा !"

सुभद्रा ने शून्य से अपनी स्थिर दृष्टि हटा कर पलकें झुका लीं।

मनोहर ने क्षीण स्वर में कहा—"सुभद्रा, आज मैं जा रहा हूँ ! इस जाने की बेला में तुम से कुछ कहने-सुनने को नहीं रह गया है ! लेकिन एक बात पूछना चाहता हूँ ! उत्तर दोगी ?"

"अभी पूछने को क्या कुछ बाकी ही है, मनोहर ?"

सुभद्रा के स्वर में घृणा और क्षोभ का जो अनोखा मेल था, उसको सुन कर खिड़की के समीप खड़ा अविनाश अवाक् रह गया। जो अभी चन्द क्षणों में साँसों का बन्धन तोड़ कर ऊपर उठ जायगा, उसके प्रश्न का यह कैसा निष्ठुर उत्तर ?

मनोहर ने एक बार स्थिर दृष्टि से सुभद्रा के मुख की ओर देखा, फिर करुण स्वर में बोला—"हाँ, अभी एक प्रश्न बाकी है !...क्या तुम हमेशा मुझसे घृणा करती रहीं ?"

मनोहर के प्रश्न ने सुभद्रा के ध्वंस हृदय को जलती सलाखों से छू दिया। क्षण भर वह स्थिर दृष्टि से ताकती रही। पीछे खिड़की के समीप खड़ा अविनाश आँखों में न जाने कितनी उत्सुक जिज्ञासा भर कर ताकता रहा। सुभद्रा एक उच्छ्वास भर कर, विराग-भरे स्वर में धीरे-धीरे बोली—"मनोहर, जिस दिन मैं अपने जीवन का सब से बड़ा सत्य ठुकरा कर तुम्हारे साथ चली आई थी, उस दिन से आज तक मैं तुम्हारे साथ मिथ्या और असत्य का ही खेल खेलती आई ! लेकिन आज जब तुम माया-मोह का बन्धन छोड़ कर जा रहे हो तो मेरा विश्वासघाती मन तुम्हे इस पवित्र मुहूर्त्त में ठगने को तैयार नहीं है !' सुभद्रा क्षण भर के लिये रुकी, फिर बोझिल स्वर में बोली—"मेरे पाप की दुनिया के साथी, आज जब तुम जा रहे हो, तो मेरे मन का सबसे निष्ठुर सत्य सुन कर ही जाओ ! मैं तुमसे हमेशा घृणा करती रही !"

अविनाश विस्मय-विमूढ़-सा सुनता रहा उस सामने बैठी हुई नारी के अनोखे मन की वह निष्ठुर कहानी। मनोहर के जीवन के साथ यह कैसा निष्ठुर उपहास ? उस दिन मनोहर ने कहा था, 'अविनाश, मैं तो लूट कर भी आज भिखारी ही हूँ !' तो वह भिखारी जा रहा है खाली हाथ, पराजय की गहरी ठोकर खा कर।

मनोहर दुनिया के रंग-मंच से अपना अभिनय समाप्त करके चला गया। लेकिन दुनिया की कभी न समाप्त होने वाली कहानी चल रही थी।

अविनाश गहरी उदासी से भरा बैठा था अकेले कमरे में। रेनू ने सहसा आकर पुकारा—"चाचाजी!"

अविनाश ने रेनू की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। फिर धीरे से पूछा—"अच्छा, रेनू, मैं कौन हूँ?"

"तुम!...तुम चाचाजी हो!" रेनू ने विस्मयभरी आँखों से देखते हुए कहा।

अविनाश ने रेनू को पास खिसका कर, उसके कानों के पास धीरे से कहा—"रेनू, बाबा कहो बाबा!"

रेनू अविनाश की ओर कौतुक-भरी आँखों से ताकती रही। फिर जैसे अविनाश ने कहा था, उसी तरह धीरे से कहा-"बाबा!"

अविनाश ने रेनू का मुख अपने दोनों हाथों में ले लिया, और बहुत धीरे से आतुर ओंठों से बोला—"और ज़ोर से कहो, रेनू!"

रेनू उसी तरह ओंठों ही में ज़ोर से फुसफुसाई—"बाबा!"

अविनाश रेनू का मुख अपने निकट खींच कर, अस्फुट व्याकुल स्वर में बोला—"और ज़ोर से रेनू!"

रेनू ज़ोर से चीख उठी—"बाबा!"

अविनाश जल्दी से रेनू के ओंठों पर बाँया हाथ रख कर धीरे से बोला—"चुप-चुप, रेनू, चुप!"

रेनू अविनाश का हाथ अपने मुख से हटाती हुई बोली-"बाबा कहाँ हैं, चाचाजी?"

अविनाश का सुख-स्वप्न जैसे बिखर गया। मुख से एक दर्द-भरा उच्छ्वास निकल गया।

द्वार के पर्दे के पीछे से सुभद्रा ने अविनाश के दिल की यह अनोखी लालसा देखी। एक मोह-भरे मन का अनोखा कौतुक देखा। और देख कर अन्तर मे वेदना का मौन हाहाकार ले कर हट गई। यह कैसा निष्ठुर दण्ड उसे पल-पल, क्षण-क्षण मिल रहा है ? एक धधकती हुई आग, जो ऐसा लगता है कि चिर-काल तक जलती ही रहेगी! उसने अपराध किया है, फिर उसको दण्ड से वंचित कर के यह दया क्यों दिखलाई जा रही है ? यह उदारता दिखला कर उसके दोषी, लांछित मन के साथ यह कैसा उपहास किया जा रहा है ? सुभद्रा का मन एक कठिन विद्रोह से भर उठा।

अविनाश रविशों के किनारे उसी पत्थर की बेंच पर बैठा था। मन में भरी थी वही गहरी उदासी, जो उसकी जिन्दगी के साथ मिल कर रह गई थी। और आँखों में एक तूफान था, जो उठते-उठते निस्तब्ध हो कर रह गया था। अन्तर की गहराई में भावों की लहरें परस्पर टकरा कर सैकडों लहरियों का निर्माण कर रहीं थीं। कब सुभद्रा आकर उसके पीछे खडी हो गई, अविनाश जान न पाया। सहसा सुभद्रा के ओठों से अनजान ही में एक गहरा उच्छ्वास निकल कर उदासी से भरे उस वाता-वरण में समा गया। अविनाश ने चौंक कर सिर घुमाया। सुभद्रा क्षितिज के छोर पर दृष्टि गड़ाए मौन खड़ी थी।

"सुभद्रा.. तुम...क्या पूछना चाहती हो ?" अविनाश ने विस्मय से पूछा।

"पूछने को बहुत-कुछ है, लेकिन इस समय केवल एक बात

पूछने आई हूँ !" सुभद्रा ने बिना दृष्टि हटाए ही कहा—"तुम रेनू को क्यों प्यार करते हो ?"

अविनाश के ओंठों पर एक फीकी, करुण मुस्कान फैल गई। दर्द-भरे स्वर में बोला—"सुभद्रा, रेनू को मैं क्यों प्यार करता हूँ, यह तो मैं स्वयं नहीं जानता। लेकिन यदि मुझे पहिले से मालूम होता, कि इसके लिए एक दिन तुमको कैफ़ियत देनी होगी तो शायद आज मैं तुम्हारे सवाल का जवाब दे सकता !"

सुभद्रा ने इस कठिन आघात को मौन होकर सह लिया। फिर सहज शान्त स्वर में बोली—"तुम से मैं इसकी कैफियत नहीं माँगती। लेकिन यहाँ आकर जो कठोर दण्ड तुम मुझे दे रहे हो, वह कम नहीं है ! फिर रेनू को ले कर यह तुम कौन-सा खेल खेल रहे हो ?"

अविनाश का अन्तर जैसे सैकड़ों कोड़ों की चोट खा कर तिलमिला उठा। अपने अन्तर की इच्छाओं और अरमानों की होली जला कर वह यहाँ जो रह रहा है, मनोहर और सुभद्रा के कठिन अपराधों को जी-जान से जो क्षमा करता आया है, प्रति-हिंसा की धधकती आग को बुझा कर, प्रतिशोध की भयङ्कर ललकार को अनुसनी कर के जो वह अपने को तिल-तिल मिटा रहा है, उसका क्या यही प्रतिदान है ? मनोहर ने भी यहीं, इसी जगह उसकी क्षमा को दण्ड का अनोखा विधान बतलाया था, और आज सुभद्रा भी उसकी क्षमा को दण्ड बतला रही है ! तब क्या क्षमा की वह कठिन साधना व्यर्थ थी, मिथ्या थी ? क्या क्षमा का इससे उदार रूप भी है कोई ? क्या अपने को तिल-तिल मिटाने का और भी कठोर उपाय है कोई ? उसने अत्यन्त आग्रह-भरे स्वर में पूछा—"सुभद्रा, क्या मैंने तुम्हें भी क्षमा नहीं किया ?"

सुभद्रा ने बोझिल स्वर में धीरे-धीरे कहा—"नहीं, तुम मुझे भी क्षमा नहीं कर सके !"

अविनाश का विद्रोही मन तिलमिला उठा। वह आँखों में उत्तेजना भर कर सुभद्रा के सामने खड़ा हो गया, और कठोर हाथों से सुभद्रा के खुले हुए लम्बे बालों को मुट्ठियों में लेकर एक-एक शब्द में क्रूरता भर कर बोला—"अभिमानिनी नारी, क्षमा का कौन-सा रूप देखना चाहती है तू ?"

सुभद्रा ने ओठो में मोहक मुस्कान भर कर, आँखों की एक भोली अदा से देख कर मधुर स्वर मे कहा—"यही रूप, स्वामी, यही रूप देखना चाहती हूँ "

अविनाश ने स्थिर दृष्टि से सुभद्रा की आँखों में देखा, और उसकी कठोर मुट्ठियाँ शिथिल पड़ गईं। उसने सुभद्रा के बाल छोड़ दिये, और बेंच के हत्थे पर बैठ गया। आँखें क्षितिज की गहराई में डूब गयीं। सुभद्रा धीरे-धीरे चली गई।

आज तीन दिन से अविनाश ने रेनू को अपने निकट नहीं आने दिया। आज आँखों मे न जाने कितना उल्लास भर कर रेनू किलकती हुई उसके पास दौड़ी आई थी। और अविनाश ने अपने को सँभाल कर संयत स्वर में कहा था—"नहीं-नहीं, रेनू ! तुम मेरे पास मत आओ।"

"क्यो ?" रेनू ने भोली आँखो में अपार विस्मय भर कर पूछा।

"यह मुझसे मत पूछो, रेनू !" अविनाश ने उसके मुख से अपनी आतुर दृष्टि हटाकर धीरे से कहा, और विद्युत-गति से रेनू को छोड़कर चला गया।

किन्तु रेनू के अबाध मन को चोट पहुँचा कर अविनाश का मोह-भरा मन व्याकुल हो उठा। दिन भर कमरे में किताब लिए

बैठा रहा, लेकिन पढ़ने को मन न हुआ। किताब से आँखें हटा कर ऊपर छत की ओर शून्य दृष्टि से ताकता रहा।

सुभद्रा द्वार पर आकर खड़ी हो गई।

अविनाश ने प्रश्न-भरी आँखों से उसकी ओर देखा।

"रेनू घर में नहीं है।" सुभद्रा ने शंकित स्वर में कहा।

"रेनू घर में नहीं है?" विस्मय-विस्फारित नेत्रों से अविनाश ने कहा।

"नहीं।"

अविनाश हाथ की किताब फेंक कर आँधी के वेग से कमरे से बाहर निकल गया। वह उपवन की झाड़ियों के बीच जाकर पुकारने लगा—"रेनू, रेनू!"

कोई उत्तर न पाकर अविनाश अधीरता से आगे बढ़ता गया। पत्थर की बेंच पर सिर टेके रेनू ओस से भीगी ठण्डी घास पर सो रही थी।...

उस दिन गीली रात में ओस से नहाई हुई कोमल कलिका रेनू मृत्यु की नज़र से अपने को बचा न सकी। पवन के गीले झोंकों से जो ठण्ड उसके नन्हें से दिल में समा गई थी, उसे कोई भी निकाल न सका। और एक दिन सुभद्रा की लज्जा और लांछन की वह सजीव प्रतिमा पृथ्वी को अपने नन्हें भार से हल्का कर गई। सुभद्रा अपने पाप की दुनिया में अकेली असहाय रह गई। जिन्दगी की सूनी लम्बी राह उसके सामने फैली थी, कभी न खतम होने वाली एक कहानी-सी।

अविनाश के एकाकी जीवन का एकमात्र सहारा रेनू चली गई। उसकी अँधेरी दुनिया का एक छोटा-सा चिराग़ था, जो बुझ गया असमय ही नियति के अदृश्य झोंकों से।

अविनाश अँधेरे कमरे मे खिड़की के समीप खड़ा था। नीचे

नदी के अगाध जल में लहरें इठला रही थीं। ऐसी ही अँधेरी रात में एक दिन अविनाश ने इस घर में पैर रखा था। अन्तर में उसके प्रतिशोध की भावना पथरीली चट्टान की तरह कठोर होकर समाई थी। धीरे-धीरे वह कठोर चट्टान अविनाश के अन-जान ही में रेनू की स्नेह-लहरियों में घुल-घुल कर स्वयं लहर बन गई। उन लहरों के किनारे उसने और रेनू ने ममता और मोह की बालू से एक घर बनाया था। नहीं जानता था अभागा अविनाश कि वे लहरें, जो कठोर चट्टान को घुला सकी, इस बालू की भीत को भी एक दिन अपने साथ बहा ले जायँगी। आज दोनों ओर से लुटा हुआ अविनाश मन में भयंकर सूनेपन से व्याकुल हो उठा। जिस स्नेह के धागे में वह अपने भारी हो रहे मन को बाँध रखना चाहता था, वह टूट गया। अब इस घर में, जिसकी एक-एक ईंट में रेनू की स्मृति समाई है वह एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। वह कपड़े पहिन कर बाहर निकल आया।

सामने शुभ्र ज्योत्स्ना में सुभद्रा सीढ़ियों पर बैठी थी वेदना की साकार कल्पना-सी। अविनाश सुभद्रा के सामने आ खड़ा हुआ। सुभद्रा ने शून्य से दृष्टि हटा कर, एक बार यात्रा के लिए तैयार खड़े अविनाश की ओर स्थिर दृष्टि से देखा, फिर पलकें झुका लीं। अविनाश ने धीरे से पुकारा—"सुभद्रा!"

सुभद्रा के नेत्र कई क्षण बाद मौन प्रश्न ले कर उठे।

अविनाश ने कहा—"सुभद्रा, उस दिन तुमने पूछा था, 'रेनू को ले कर तुम कौन-सा खेल खेल रहे हो?' आज मैं बतलाने आया हूँ! सुनोगी?"

"सुनने के अलावा अब मेरे जीवन में रह ही क्या गया है?" सुभद्रा ने भाव-शून्य वाणी में कहा।

अविनाश ने क्षण भर रुक कर कहा—"सुभद्रा, रेनू मेरे

अपमान और पराजय के गीत की सब से ऊँची लय थी, मेरी प्रतिहिंसा की धधकती हुई आग की सबसे ऊँची लपट थी, मेरे प्रतिशोध के बारूद के लिये एक चिनगारी थी ! फिर भी मैंने उसे प्यार किया ! रेनू को प्यार करने के लिए मुझे दिल के कैसे कैसे तूफानों से लड़ना पड़ा, इसे सुभद्रा ! तुम कभी नहीं समझ सकतीं !" अविनाश क्षण भर रुक कर फिर बोला—"आज अब वह खेल भी समाप्त हो गया ! अब मैं जा रहा हूँ !"

"तुम जा रहे हो...इसी समय ?"

"समय और काल का भेद अब मेरे जीवन में नहीं रह गया !"

सुभद्रा ने गम्भीर स्वर में कहा—"जा रहे हो, तो मेरी बात भी सुन कर जाओ !"

अविनाश के पैर रुक गए। ओठों में व्यंग्य-भरी मुस्कान भर कर वह बोला—"अब तुमको क्या कहना है, सुभद्रा ?"

"अभी तक तो मैंने कुछ भी नहीं कहा। आज कहूँगी, क्योंकि फिर कभी कहने का अवसर नहीं आयेगा !"—सुभद्रा ने भाव-भरी वाणी में कहा।

अविनाश मौन भाव से सीढ़ियों पर एक पैर आगे बढ़ाए क्षितिज की गहराई में दृष्टि गड़ाए खड़ा था।

सुभद्रा उठ कर अविनाश के सामने बढ़े हुए पैरों के निकट की सीढ़ी पर खड़ी हो गई, और तीखे स्वर में बोली—"तुम आज मुझे क्षमा का दान दे कर, महान् बन कर जा रहे हो ! दुनिया और समाज की आँखों में तुम्हारे महान् व्यक्तित्व की पूजा होगी, चिरकाल तक तुम्हारे आदर्श की अमर कहानी कही जायगी !"

"ठहरो सुभद्रा ! आदर्श या महान् बनने के लिए मैंने तुम्हें क्षमा नहीं दी थी !"

"मुझे क्षमा करके तुमको महान् गौरव मिला है। लेकिन मुझे क्या मिला। मुझे तो कुछ भी नहीं मिला!"

"मेरी सोई हुई व्यथा को जगाने की कोशिश मत करो, सुभद्रा! हारे हुए जुआरी की पराजय को दोहरा कर उसके क्लेश को तुम बढ़ा रही हो!'

तुम्हारा क्लेश, तुम्हारी पीड़ा, तुम्हारे आँसू आज दुनिया देख रही है, लेकिन मेरे अदृश्य आँसुओं को तो किसी ने भी नहीं देखा! मेरा मौन रुदन तो किसी ने भी नहीं सुना!" सुभद्रा व्यथित उत्तेजित स्वर में बोलती ही जा रही थी—"चोर की चोरी पकड़ने पर सजा मिलती है। अपराधी अपराध खुलने पर दण्ड पाता है। पापी को उसके पाप का फल मिलता है। लेकिन मुझे तो माँगने पर भी दंड न मिला!" उसकी वाणी काँप उठी, आँखें आँसुओं से भर उठीं।

सुभद्रा के शब्दों से अविनाश के अन्तर में एक भयङ्कर आँधी चलने लगी। उसको लगा, वह भी इस आँधी के साथ उड़ कर आँधी हो जायगा। तभी वह सामने खड़ी सुभद्रा को हटा कर उत्तेजना के एक गहरे झोंके के साथ आगे बढ़ गया।

सुभद्रा आँधी से टूटी लता-सी गिर पड़ी सीढ़ियों पर।

अविनाश तूफान-सा सीढ़ियाँ उतरता चला गया।

सुभद्रा ने क्षण भर बाद जब गीली पलकें उठाईं, तो अविनाश लोहे का फाटक खोल कर आँधी के एक झोंके-सा सुभद्रा के दृष्टि-पथ से ओझल हो गया था। सुभद्रा की सूनी दृष्टि दूर खड़े वृक्ष की सूनी डालों के सूनेपन में खो गयी।

—:o:—



सुश्री शान्ति देवी श्रीवास्तव

शान्ति देवी श्रीवास्तव

सुश्री शान्ति देवी श्रीवास्तव का जन्म १५ सितम्बर सन् १९३२ ई० को रायपुर (मध्य प्रान्त) मे हुआ। आप के पिता श्री ईश्वरी प्रसाद जी वर्मा एक सुशिक्षित भद्र पुरुष है। आपके प्रपिता श्री रामनारायण जी वर्मा गाडरवारा (मध्य प्रान्त) के निवासी थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा का बाल्यावस्था में ही उचित प्रबन्ध किया गया। यद्यपि आपकी स्कूली शिक्षा हाई स्कूल तक ही हो सकी, तथापि आपने घर पर स्वेच्छा से यथेष्ट अध्ययन कर कई विषयों का सुन्दर ज्ञान एवं परिचय प्राप्त किया। आप राजनीति, साहित्य तथा इतिहास का अच्छा ज्ञान रखती हैं। इन विषयों पर आपने पुस्तकों की भी रचना की है। हिन्दी साहित्य से आपको विशेष प्रेम है। शैशव से ही आप प्राचीन तथा नवीन हिन्दी साहित्य का अध्ययन दिलचस्पी तथा प्रयत्न-पूर्वक करती रहीं। आपने लगभग सभी आधुनिक कथाकारों की रचनाओं का पर्याप्त अध्ययन किया है।

आपका विवाह ९ मार्च १९४९ ई० को अकबरपुर (पडरौना) जिला देवरिया (उत्तर प्रदेश) निवासी श्री जगदीश नारायण जी 'योगी' के साथ सम्पन्न हुआ। श्री जगदीश नारायण जी एक उच्च शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति हैं और हरिजन हायर सेकण्डरी स्कूल में सहायक अध्यापक हैं। आपके पिता श्री सुखदेव लाल जी मखनपुर (पचरूखी) जिला छपरा (उत्तर प्रदेश) के एक प्रतिष्ठित निवासी है। विवाह के पश्चात् आपका निवास-स्थान प्रयाग हो गया है। आप के दो पुत्र तथा एक पुत्री हैं। पुत्रों के नाम लक्ष्मी प्रताप नारायण अवस्था ५ वर्ष तथा शिवप्रताप

नारायण अवस्था ४ वर्ष है। पुत्री का नाम मंजु, अवस्था एक वर्ष है। आपका दाम्पत्य जीवन अत्यन्त सुखमय है। आप स्वभाव से सरल, सौम्य, मधुर तथा गम्भीर हैं। भावुकता, अध्ययन-शीलता, भक्ति-भावना, विचार-स्वातन्त्र्य तथा स्पष्टवादिता आपके विशेष गुण हैं।

शान्ति जी को शैशव से ही कहानी से विशेष प्रेम है। कहानियों के अध्ययन के साथ १३-१४ वर्ष की अवस्था से आपने कहानी-रचना भी प्रारम्भ कर दी। आपकी उस समय की कृतियाँ सन् १६४५ ई० के आस-पास की अनेक सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ी जा सकती हैं। आपकी रचनाओं में भाषा तथा कहानी की आत्मा दोनों दृष्टियों से धीरे-धीरे प्रौढ़ता आ रही है। वास्तव में कहानी लिखने की आपकी अवस्था अब आ रही है जब आप जीवन तथा संसार का गहन विस्तृत अनुभव प्राप्त करेंगी तथा आपकी बौद्धिक- शक्ति परिपक्व हो जायगी। अस्तु, आपकी अभी तक लिखी गई रचनाओं के आधार पर आपका साहित्यिक मूल्यांकन करना समीचीन न होगा।

कहानी, उपन्यास, नाटक आदि साहित्यांगों को काव्य की अपेक्षा कहीं अधिक जीवन तथा जगत् की समस्याओं से परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। इनमें केवल भावों की आन्तरिक अभिव्यंजना से काम नहीं चल सकता। गल्प-साहित्य तभी पूर्ण सफल हो सकता है जब उसमें जीवन का विविध स्वरूप, जगत, भावों का चढ़ाव-उतार एवं कहानियों की अनेक-रूपता सम्यक रूपेण चित्रित की जा सके। अस्तु, सफल गल्प-लेखक बनने के लिये यथेष्ट अध्ययन, निरीक्षण एवं अनुभव की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिये समय का विशेष महत्व है।

शान्ति जी अपने साहित्यिक प्रयत्न में सतत प्रयत्नशील

रहती हैं। यद्यपि गार्हस्थ्य कर्त्तव्य इस पवित्र कार्य में यदा-कदा बाधा पहुँचाते रहते हैं तथापि आप अपने कार्य में सदैव दत्त-चित्त रहती हैं। आपका अध्ययन भी अभी तक जारी है। आप का गम्भीर अध्ययन आपके व्यापक दृष्टिकोण का परिचय देता है। आपके इस अध्ययन की छाप आपकी रचनाओं पर भी मिलती है। पढ़े हुए विषयों की भी यथेष्ट झलक आपकी रचनाओं में मिलती है। आप निबन्ध भी अच्छा लिख लेती हैं। आप के निबन्धों मे एक ऐसी विचारशील, तर्क-प्रधान शैली का दर्शन किया जा सकता है जो निबन्धों में सदैव ठोस अर्थ एवं विषय प्रति-पादन का प्रयत्न करती तथा उथलेपन या दिखावट से दूर ही रहती है। पूर्ण विश्वास है कि आपका साहित्यिक जीवन भविष्य में अधिक उज्जवल तर स्वरूप में हिन्दी जगत् के समक्ष आयेगा।

आपकी प्रारम्भिक रचनाओं में एक श्रेष्ठ साहित्यकार की प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उनका यही महत्व भी है कि वे आपकी साहित्यिक सफलता की ओर संकेत करती हैं। आप-ऐसी एक अल्प वयस्का नारी से कहानी-कला की प्रौढ़ता तथा सांसारिक अनुभव की आशा ही करना व्यर्थ है; किन्तु उनमें कुछ ऐसी बातें अवश्य मिलती हैं जो श्रेष्ठ मौलिक साहित्यकार में ही मिल सकती हैं। संक्षेप में आपकी प्रारम्भिक रचनाओं में वे ही साहित्यिक क्षमतायें एवं अभाव मिलता है जो कुमारी लावण्य बोस में। यों तो साहित्यकारों के बीच अन्तर का होना स्वाभाविक ही है।

कुमारी लावण्य बोस की कहानियाँ लगभग सभी दुखान्त हैं और उनका विषय-क्षेत्र भी जीवन के एक महत्वपूर्ण किन्तु फिर भी संकीर्ण पहलू को लेकर चलता है—वह है स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्ध में स्त्री की स्थिति जिसमें आप स्त्री पर

पुरुष के अत्याचार, पुरुष की लोलुपता, स्वार्थपूर्णता, वासना एवं निर्दयता आदि का प्रदर्शन करतीं और स्त्री को निस्वार्थ त्यागपूर्ण एवं कोमल दिखलाती हैं और अन्त में प्रेम में निराश होने पर उससे आत्म-हत्या करवाती हैं। आपकी रचनाओं का क्षेत्र भी स्त्री-पुरुष का शृंगारिक सम्बन्ध है। आप भी स्त्री के दैन्य, तथा नैराश्य आदि का सफल चित्रण करती हैं किन्तु पुरुष के सम्बन्ध में आपकी धारणा लावण्य बोस जी की धारणा से भिन्न है। आपकी कहानियाँ भी प्रायः दुखान्त होती हैं किन्तु उनमें रमणी के दुख का कारण पुरुष की स्वार्थमय वासना, लोलुपता तथा हृदय-हीनता आदि नहीं होती।

आपके प्रेमी पात्र एक-दूसरे से निष्कपट भाव से प्रेम करते हैं;किन्तु परिस्थिति- वश एक-दूसरे से अलग होते और दोनों कष्ट उठाते हैं। अस्तु, आपकी नायिकाओं को अपने प्रेमियों से कोई शिकायत नहीं है। वे अन्त तक इस विश्वास में रहती हैं कि उनका प्रेमी उनसे सच्चा प्रेम करता है और उनके वियोग में कष्ट उठा रहा है। इतना अवश्य होता है कि आपकी प्रेमिकाओं में प्रेम का अधिक स्थायी, उज्जवल एवं वासना- रहित स्वरूप मिलता है तथा प्रेमियों में प्रेम की वासनामय शारीरिकता एवं तीक्ष्णता अधिक किन्तु लगाव का चिर-स्थायित्व दोनों में रहता है। प्रेमिकायें अवश्य अन्त में आत्म हत्या करती हैं; किन्तु पाठक की जिज्ञासा इससे सन्तुष्ट नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि आप उनकी हत्या द्वारा प्रभाव मात्र उत्पन्न करना चाहती हैं। पाठक इस बात से अवश्य सहमत हो जाता है कि उन्हें बहुत अधिक मानसिक वेदना एवं कष्ट है, किन्तु उनका एकाएक हत्या कर बैठना उसके कारण-भाव को तृप्त नहीं कर पाता।

कहानियों में आत्म हत्या आदि दिखाना उचित ही है किन्तु वह आत्म हत्या उचित मानसिक एवं वाह्य कारणों को लेकर

होनी चाहिये। पहले वाह्य कारणों की यथेष्टता इस बात के लिये दिखाई जाय कि पात्रों में भयानक आत्म-कष्ट, दैन्य एवं नैराश्य उत्पन्न हो; फिर उनके भाव-संघर्ष को दिखाया जाय। यही संघर्ष विभिन्न विरोधी भावों का परिवर्तन के साथ आना और एक ही समय में पूरे वेग एवं तीक्ष्णता के साथ पात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का उनके द्वारा झकझोरा जाना और पुनः उनका बदलना, हास्य और रुदन के संयुक्त स्वरूप आदि का प्रदर्शन कहानी का प्राण होता है। इसका चित्रण इस रूप में होना चाहिये कि उसका अन्त स्वभावत आत्म हत्या में हो। इस प्रकार एक गम्भीर आत्म सम्मान एवं कीर्ति-प्राप्त मनुष्य का लांछित होना उसकी आत्म हत्या का कारण बन सकता है या किसी उद्देश्य की पूर्ति में बीसो वर्ष प्रयत्नशील व्यक्ति की असफलता उसे आत्म हत्या की ओर प्रेरित कर सकती है। आत्म हत्या के लिये स्वभाव की निर्बलता एवं उत्तेजना दिखाना आवश्यक है। मनुष्य मे यह मानसिक स्थिति तभी उत्पन्न होती है जब वह चारों ओर से निराश होकर जीने का भार नहीं ढोना चाहता।

शान्ति देवी की नायिकाओं का मानसिक कष्ट एवं नैराश्य अवश्य ऐसा होता है कि पाठक उनकी सत्यता में अविश्वास नहीं कर सकता। फिर भी उनका आत्म हत्या करना अचानक तथा उपयुक्त कारणयुक्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त उनके भावो की सच्चाई में भी कभी-कभी अविश्वास होता है। उदाहरण के लिये 'अन्तिम मिलन' नामक कहानी को ले लिया जाय। इसमें शाहज़ादा सलीम का एक किशोरी वारवनिता से प्रेम दिखाया गया है। वह सलीम की वर्ष-गाँठ पर अन्य वारवनिताओं के साथ नृत्य-गान के लिये आती है। अन्य वारवनिताओं की तरह वह भी सलीम को अपने रूप-जाल में फाँसने का प्रयत्न करती है और अनेक प्रकार के हाव-भाव का प्रदर्शन करती है। वह एक पेशेवर

वेश्या है जो अपने उद्देश्य-पथ पर चलती हुई दिखाई देती है। यद्यपि अन्य वाराङ्गनायें असफल हो जाती हैं; किन्तु वह पूर्णतया सफल होती है। उसका नाम अनारकली है।

उत्सव-समाप्ति के बाद शाहजादा उससे प्रेम-संलाप करता हुआ दिखाया जाता है। उसके प्रेम में शारीरिक वासना का पहलू अधिक रहता है; यों वह अनारकली से स्थायी प्रेम की प्रतिज्ञा करता है। बादशाह अकबर को इस बात का पता चलता है और वह उनके प्रेम-संलाप के ही समय आकर विघ्न पहुँचाता है। अनारकली को जेल में बन्द कर दिया जाता है। सम्राट् स्वयं रात्रि में उससे प्रेम-याचना करता है किन्तु अनारकली अडिग रहती है। प्रातः काल उसको देश-निकाले का दण्ड मिलता है; यों वह मृत्यु के लिये भी उत्सुक दिखाई जाती है। सलीम अनारकली के लिये ही पिता से विद्रोह करता है। अन्त में वह उससे एकान्त में एक जंगल में मिलता है और अपने प्रेम के उज्जवल स्वरूप को समझाता है। वह सलीम से पिता के पास जा कर समझौता कर लेने तथा अपना राज्य सँभालने की प्रार्थना करती हुई एक विषमय वस्तु निगल कर प्राण त्याग कर देती है।

पाठक सलीम से वियुक्त अनारकली की मानसिक वेदना को सत्य मान सकता है किन्तु एक वारवनिता में, जिसका प्रेम कपट तथा शारीरिक हाव-भाव-प्रदर्शन से प्रारम्भ हुआ, कहाँ से इतना अटल, निश्छल, तथा उज्जवल प्रेम उत्पन्न हो गया और वह भी केवल चार मिनट की बात-चीत के बाद। अन्य वनिताओं के साथ उत्सव में भाग लेने वाली अनारकली और अल्प समय के वार्तालाप के बाद सलीम के प्रेम में जीने-मरने वाली तथा सम्राट अकबर तक की प्रणय-याचना को अस्वीकार कर अपने सर्वनाश को आमन्त्रित करने वाली अनारकली में कोई भावगत या

विचारगत सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। शान्तिदेवी ने इस भाव-परिवर्तन के लिये न तो यथेष्ट समय का व्यवधान ही दिखाया और न वह भाव-संघर्ष ही, जिसके बीच से होकर मनुष्य निम्न प्रवृत्तियों को छोड़ता हुआ उच्चतर जीवन की ओर बढ़ता है। इसे हम पात्र के साथ, कहानी-कला के साथ तथा जीवन की वास्तविकता के साथ खिलवाड़ करना ही कह सकते हैं। किन्तु इस तरह की कलात्मक त्रुटियाँ एक अल्प-वयस्का नारी साहित्य-कार में बिल्कुल उपेक्षणीय हैं। अस्तु, इनके निरूपण का प्रयत्न उनके प्रारम्भिक रचना-प्रयत्नों को समझने के निमित्त ही किया गया है, न कि उनके सर्वांगीण साहित्य के मूल्यांकन या समालोचना के लिये।

इस कहानी में अनारकली के निमित्त सलीम का अकबर से विद्रोह करना दिखाया गया है। अकबर तथा सलीम को इस प्रकार से प्रेम का प्रतिद्वन्दी दिखलाकर एक ऐतिहासिक तथा राज-नीतिक मनोमालिन्य एवं विरोध को अत्यन्त विकृत रूप दे दिया गया है। ऐतिहासिक घटनाओं में कलाकार को परिवर्तन करने का पूर्ण अधिकार है, किन्तु इस प्रकार का परिवर्तन जो ऐतिहासिक पात्रों के प्रति हमारी चिर धारणाओं को विकृति की ओर ले जाय तथा उनके चरित्र को व्यर्थ में लांछित करे, उचित नहीं है।

फिर सलीम से मिलने पर तथा उसे अपने प्रेम-अधिकार मे पाकर भी अनारकली उसे न अपना कर न जाने क्यों आत्महत्या कर लेती है, इसका उचित कारण कहीं पर भी नहीं दिखाई पड़ता। इसीलिये यह आत्म हत्या महत्वहीन हो जाती है। हम अनार-कली के प्राण-नाश पर भले ही मानसिक कष्ट का अनुभव करें किन्तु उसकी आत्म हत्या के कलात्मक महत्व को नहीं समझ सकते। कला तथा स्वाभाविकता के साथ यही अनिर्वाह हमें 'भाई' नामक कहानी में भी मिलता है। जिसमें विश्व-विद्यालय में

पढ़ने वाली एक निर्धन अनाथ छात्रा अपनी 'जीवन-नौका' को खेने के लिये एक भाई चाहती है, पति नहीं। एक छात्र उससे विवाह करने का सामाजिक तथा नैतिक साहस दिखाता है। वे दोनों एक बार मिलते हैं और यही उनका अन्तिम मिलन होता है। स्त्री शीघ्र ही आत्म हत्या कर लेती है क्यो कि वह 'भाई' की खोज में थी, पति या प्रेमी की नहीं। उसे पुरुष जाति पर विश्वास भी नहीं है। वह उनमे स्वार्थपरता, विलासिता तथा अस्थायित्व आदि देखती है। इस प्रकार की आत्म हत्या का कोई कारण हमारी समझ मेंनहीं आता। आखिर उसने फिर विवाह ही क्यो किया ? प्रथम मिलन में पति ने उसके साथ ऐसा कोई दुर्व्यवहार भी नहीं किया था। इस प्रकार की आत्म हत्या भाव की दृष्टि से ऐसी रुग्ण स्त्रियो का ही कार्य हो सकता है जो कम-से-कम अर्द्ध विक्षिप्त हो।

शान्ति जी की नायिकाओं मे एक आदर्शवादी प्रेम की झलक मिलती है। वे शारीरिक वासना से ऊपर उठना चाहती हैं और उठ भी जाती हैं। उन्हें पुरुषो की कामुकता पसन्द नहीं है। यह बात हम 'भाई' में निश्चित रूप से पाते हैं तथा 'अन्तिम मिलन' में भी हमें अनारकली इसी श्रेष्ठ रूप में दिखाई पड़ती है। इसीलिये शायद वह सलीम को प्रणयी के रूप मे अपनाती भी नहीं है। किन्तु इनमे एक बेतुकापन भी दिखाई पड़ता है। पुरुषों को अपने से प्रेम करते हुए देखकर वे रोकती भी नहीं है और अन्त में जब समस्या अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब वे अपने आदर्शवादी रूप मे हमारे सामने आती हैं। लेखिका को उनके चरित्र-चित्रण में अवश्य सफलता मिली है।

आपके पात्र अपने मानसिक भावों का सुन्दर प्रदर्शन करते और पाठक की कल्पना में अपने व्यक्तित्व को स्थापित करने में सफल होते हैं। इसी से हम उनके प्रति सहानुभूति का अनुभव

करते हैं। इसी से आपकी कहानियों में करुणा, वेदना, आँसू, और निराशा आदि की प्रधानता हो गई है। किन्तु आपकी जीवन-दृष्टि यहीं तक सीमित नहीं है। आप प्रेम के संयोग-पहलू का सफल चित्रण करती तथा हास्य एवं व्यग्य की सुन्दर योजना कर सकती हैं। 'अंतिम मिलन' में सलीम और अनार का वार्तालाप स्वाभाविक, संक्षिप्त, अभिप्राययुक्त तथा नाटकीय है। बाद में रात्रि में काला बुरका पहने हुए अनारकली से अकबर की प्रणय-याचना वास्तव में व्यंग्य, हास्य तथा कपट-व्यवहार के चित्रण का श्रेष्ठ उदाहरण माना जा सकता है। पाठक इसमें मुक्त हास्य हँसता हैं और मनुष्य के चरित्र की निर्बलता का नग्न दर्शन करता है।

आपकी रचनाओं में आपकी ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं सामाजिक दिलचस्पी का परिचय मिलता है। 'अन्तिम मिलन' एक ऐतिहासिक कहानी कही जायगी, जिसमें राजनीतिक दाँव-पेंचों का भी सुन्दर समावेश मिलता है। 'भाई' नामक कहानी में मालती स्त्रियों पर पुरुषो तथा पुरुषों से निर्मित समाज द्वारा ढाये जाने वाले अत्याचारों के प्रति रोष प्रकट करती और पुरुषों को स्वार्थी एवं कामुक आदि कहती है। वह ऐसे संसार में जीना नहीं चाहती। शान्ति देवी जीवन में धीरता, वीरता, एवं उज्जवल प्रेम आदि के महत्व को भली भाँति समझतीं और इनका प्रतिपादन अपनी नायिकाओ द्वारा करवाती है। इस प्रकार आपका प्रेम-चित्रण जीवन के अन्य पहलुओं से पूर्णतया घुला-मिला दिखाई पड़ता है।

आप में हम अपने चारों ओर के वातावरण के प्रति जागरूकता पाते हैं। 'भाई' मे विश्व-विद्यालय के वातावरण तथा विद्यार्थियों की मनोवृत्ति का सफल चित्रण मिलता है। आपका वर्णन

भी आपके सूक्ष्म निरीक्षण का द्योतक है। पात्रों, विशेषकर प्रेमिका स्त्री-पात्रों के सौन्दर्य, हाव-भाव एवं पोशाक आदि का भी आप सुन्दर चित्रण करती हैं। उनके प्रेम-व्यापार के विकास का प्रदर्शन भी आप सफल ढंग से करती हैं। अस्तु, आपकी कहानियाँ सुख-दुख-पूर्ण दृश्यों का संघटन-स्थल बन जाती हैं। किन्तु उनका अन्त प्रायः दुःख में ही रहता है।

आपकी कहानियाँ छोटी होती हैं। उनमें पात्रों की संख्या अधिक नहीं होती। कुछ गौण पात्र नाममात्र को आते हैं। इनका विशेष महत्व नहीं होता। आपके प्रेम-चित्रण में कोई उच्छृंखलता या अमर्यादा आदि नहीं दिखाई पड़नी। सर्वत्र सांकेतिक और कहीं कुछ स्पष्ट एवं मुखर भाषा से काम निकाला जाता है। आपकी नायिकायें अवश्य पुरुषों के शारीरिक और कलुषित प्रेम की निन्दा करती हैं; किन्तु कहीं भी आप पुरुषों के ऐसे प्रेम को मूर्त रूप देने का प्रयत्न नहीं करतीं।

आप हास्य एवं व्यंग्य की अत्यन्त सुन्दर योजना करती है जो पात्रों के वार्तालाप में न होकर पात्रों के आचरण तथा परिस्थिति मे दिखाई पडती है। इस प्रकार का व्यंग्य निश्चय ही श्रेष्ठ कला का लक्षण है। 'अन्तिम मिलन' में अनारकली से अकबर की प्रणय-याचना कुछ ऐसा ही व्यंग्य है।

आपकी भाषा शनैः-शनैः अधिक विकसित, प्रौढ़ एवं परिमार्जित होती जा रही है। आपकी प्रारम्भिक रचनाओं में हमें भाषा का एक ऐसा प्रौढ़ एवं परिमार्जित रूप दिखाई पड़ता है जो आपके भावों तथा विचारों को व्यक्त करने की यथेष्ट शक्ति लिये हुए परिलक्षित होता है। उसमें कहीं भी ग्रामीणता, बाज़ारूपन तथा दिखावट के दर्शन नहीं होते। एक निश्चित उच्च साहित्यिक माप-दण्ड पर अग्रसर होती हुई आपकी भाषा पात्र तथा वातावरण की दृष्टि

से परिवर्तित होती हुई चलती है। 'भाई' में भाषा का अधिक विशुद्ध रूप मिलता है जिसमें संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का दर्शन होता है, किन्तु 'अन्तिम मिलन' में मुस्लिम शाही वातावरण के अनुसार उर्दू शब्दों का समुचित प्रयोग मिलता है। आपके पात्र भी अपनी शिक्षा-दीक्षा एवं संस्कृति के अनुकूल भाषा बोलते हैं। आपकी भाषा में वर्णात्मकता के साथ ही भावावेश का भी वर्णन करने की शक्ति है। सरलता उसमें सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

—:o:—

अन्तिम मिलन

वर्ष-गाँठ का दिन था। बादशाह अकबर के शाहजादे सलीम का सोलहवाँ वर्ष पूरा हुआ था। प्रत्येक स्थान अच्छी तरह से सजाया गया था, शाही सालगिरह थी। सभी अमीर-उमरा आये थे। सभी फकीर अपनी दुआओं के साथ आ रहे थे। सभी राजा-महाराजा अपने-अपने तोहफों के साथ इकट्ठे हो रहे थे। सभी का अपना अलग प्रबन्ध था। बड़ी आरजू और मिन्नत के बाद बादशाह को यह दिन देखने का मौका मिला था। सभी खुशी में डूबे हुए थे—खुशी की बात ही थी। हरमसरा में और ही रङ्ग था। सारा महल ऐश महल हो रहा था। वहीं पर नर्तकियों के नृत्य की भी व्यवस्था की गई थी। सब रस्मोरिवाज के अदा हो जाने के बाद शाम को नृत्य होने वाला था। शाही जनान-खाने में सबको जाने की आज्ञा न थी केवल शाहजादा सलीम अपनी शाही पोशाक में तशरीफ लाये और अपने निश्चित स्थान पर बैठ गये। एक ओर हसीनों का भी एक छोटा सा जमाव था। वे शायद सोच रहे थे, "मेरे आँगन में भीड़ लगी, मैं किसको कितना प्यार करूँ?"

बहुतों का नाच हुआ। दूर-दूर से नर्तकियाँ आई थीं और अपने साथ अपने सुन्दर गाने भी लाई थीं। कुमार सलीम का दिल केवल एक को ही देख कर बेहद दीवाना हो गया था। उस सारे हुस्न के बाज़ार में वही हूर-सी लगती थी। उसका नाच देखकर कुमार 'वाह-वाह' कह उठे। उनकी नज़रें ऊपर उठ गईं—दोनों की नज़रें मिल गईं—'जब आँखे चार होती हैं मुहब्बत आ ही जाती है।' दोनों ने इस बात को महसूस किया। दोनों के दिल में धड़कन हुई। उस हसीना का नाम था अनारकली। वह थी भी वाक़ई मे अनार की कली। सलीम को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती हुई वह अत्यन्त उत्साह से गाने लगी।

कुमार सलीम पर अपरिमित प्रभाव पड़ा। शाहज़ादा बेबस था। उसके दिल की हालत निहायत बदतर हो रही थी। वह चाहते थे कि किसी तरह यह समारोह समाप्त हो और वह उस कली को अपने पास तोड़कर रख लें। चाहे जो भी हो, इस हालत में पड़ा हुआ मनुष्य अपना काम बखूबी नहीं कर सकता। उसकी वैसी ही संजीदा हालत थी जैसे कि मछली की, जो पानी से अलग बाहर कर दी गई हो और पानी से मिलने के लिये तड़पती हुई बेक़रार हो। उधर अनारकली भी इसी ख्वाहिश में थी कि ये सब युवतियाँ किसी प्रकार वहाँ से हटें और सलीम उसे अपनी ओर बुलाये। जैसे कि एक भौंरा रस के लोभ में कभी-कभी कमल के पुष्प मे बन्द हो जाता है, उसी प्रकार अनारकली भी उन सुन्दरियों के बीच में फँसी हुई थी।

× × ×

'यह कमल दिखला कर तुमने मेरे दिल को अपने अधिकार में कर लिया है।'

'आपने भी तो मेरे दिल............।'

'ठीक कहती हो—हम दोनों ने आपस में बदल लिया है।'

'कहीं आप इसको वापस न कर दें...... ।'

'और कहीं तुम्हीं न अपना दिल वापस माँग लो।'

'मैं भला क्यूँ...ये शाही लोगों के ही ढकोसले होते है। उनका क्या ? आज यह तो कल वह, आज यहाँ तो कल वहाँ।'

'तो क्या तुम्हें मेरा एतबार नहीं है ?'

'एतबार भी तो इन्तज़ार से बदल जाता है।'

"मैं समझा, तुम चाहती हो कि पेश्तर से बेहतर—'यह कहते हुए सलीम ने अपने गले की माला अनारकली के गले में छोड़ दी। कली शरमा कर झेंप गई। सलीम के इस बर्ताव से वह कुछ पीछे को हटी किन्तु सलीम ने आगे बढ़ कर उसे गले लगा लिया। शरमाई कली फिर खिली। अनारकली ने घूँघट से मुँह निकाला। वह प्रेमी भ्रमर रस के हेतु आगे बढ़ा, बड़े उत्साह के साथ किन्तु—

अकबर—सलीम क्या हो रहा है ? क्या तुम इतने उद्दण्ड हो गये हो ?

सलीम—अब्बाजान मैं.........

अकबर—मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता।

सलीम—लेकिन फिर भी.........

अकबर—अनार तुम यहाँ क्यों और कैसे आई हो, क्या तुम्हें ज़रा भी शर्मोलिहाज़ नहीं है ?

अनार—जहाँ पनाह ! मुहब्बत अंधी होती है।

अकबर—तेरी यह हिम्मत ? तू इतनी गुस्ताखी करे ? जानती है तू किससे बातें कर रही है ? मैं तेरी सारी उम्मीदों को मिट्टी में मिला सकता हूँ। मैं तुझे मौत की सज़ा दूँगा।

सलीम—लेकिन अब्बाजान यह मेरी.........

अकबर—मैं तेरी-मेरी सुनने के लिये यहाँ नहीं आया हूँ।

वह अबला बन्दीगृह की दीवारों में बन्द कर दी गई।

सलीम अपने महल में था। दोनों कुछ-न-कुछ सोच रहे थे। सलीम के दिमाग में बहुत सी बातें घूम रहीं थीं—उसके भाग्य का फैसला कल प्रातःकाल होते ही हो जायगा। उसका प्राण-दण्ड दिया जायगा—यही सोचते-सोचते सलीम के विचार रुक जाते—फिर उसके जीवन का क्या होगा? जीवन में प्रथम बार यह मिलन हुआ और वह भी इतना शोक-प्रद? क्या होने वाला है? उसे अनारकली को छुड़ाने के लिये कुछ करना चाहिये। कली क्या बिना खिले ही मुरझा जायगी? क्या माली अपने लगाये फूल को खिलने के पहले भी उखाड़ कर फेंक सकता है? शायद नहीं। तब फिर खुदा को यह कैसे मंजूर होगा कि वह कली विकसित ही न हो।

उसके दिमाग में बहुत सी बातें घूम रही थीं किन्तु उसे कार्यरूप में परिणत करना उसके अधिकार के बाहर की बात थी। कभी वह सोचने लगता कि वह कुछ करेगा। क्या अनार के साथ इतने बड़े साम्राज्य में वह कहीं रहने नहीं पायेगा? यदि वह अनारकली से सदैव के लिये दूर कर दिया जायगा तो फिर वह जीवन भर किसी भी कली को अपने जीवन-उद्यान में न खिलने देगा। उसने सोचा कि वह चल कर उससे मिले किन्तु पिता के भय से वह कुछ दूर जाकर लौट आया। पहरेदारों ने पूछा, 'आप कहाँ जा रहे हैं? बादशाह का हुक्म है कि हम भी आपके साथ रहें।' वह लौट आया।

अनारकली भी विचार-सागर में गोते खा रही थी—मैं केवल कुछ घण्टों की मेहमान हूँ फिर मैं सदा के लिये यहाँ से उठा दी जाऊँगी—यद्यपि मैं सलीम से अलग कर दी गई हूँ फिर भी मैं चाहती हूँ कि एक बार फिर से सलीम को देखूँ। एक बार उन्हें देख कर मरने मे मुझे कुछ भी दुख न होगा—वह चिल्ला उठी, 'सलीम! एक बार आ जाओ मेरे सलीम—'

इसी समय बन्दीगृह का द्वार खुला। एक काली मूर्ति उसकी ओर बढ़ने लगी—उसकी आँखों में सलीम था—उसके दिमाग में सलीम था। उसने सोचा कि हो-न-हो, यह सलीम ही है—इस अन्धकार में वह मिलने आया होगा। उसने कहा...'मेरे दिलो दुनिया के मालिक प्यारे सलीम! तुम आ गये। क्यों न आते? मुहब्बत खींच लाई होगी। मैं भी तुम्हें याद कर रही थी। मेरी ख्वाहिश थी कि तुम्हें एक बार देख कर मरूँ।'

लेकिन उसने सुना—'ठहर जा सलीम, नहीं तेरी मौत आई है। क्या तुझे दिखाई नहीं पड़ता कि तू शाहंशाह के सामने है? तुझे कल को गुस्ताखी पर मौत की सजा........'

'मैं चाहती हूँ कि अभी इसी समय मेरा सर धड़ से जुदा कर कर दिया जाय।'

'लेकिन मैं तुझे मौका देने आया हूँ।'

'मौका—कैसा—मौका?'

'यदि तुम चाहो तो खुद अपने आप को बचा सकती हो।'

'मैं इन पेचीदा बातों को नहीं समझती। खुलासा कहिये—आप का क्या मतलब है?'

'अगर तुम उस छोकरे को छोड़ कर मेरी गोद........'

'बस-बस वह तो हो चुका।'

'क्या तुझे नहीं मालूम कि मैं बादशाह हूँ—मेरी दौलत-मेरा मुल्क-सब तेरा ही—'

'लेकिन दौलत देकर किसी का दिल नहीं खरीदा जा सकता।'

'खूब सोच ले—जिससे फिर पछताना न पड़े—तेरे इस जवाब में ज़िन्दगी का सवाल है। वरना मौत तेरे सामने है।'

'मैं खूब सोच चुकी—खुदा के यहाँ जाकर सलीम से मिलूँगी। मुझे आप मौत की सज़ा दें। जल्दी से ज़िन्दगी की तकलीफों से छुटकारा मिल जाय।'

'लेकिन तुझे इतनी जल्दी छुटकारा नहीं मिलेगा। तू ज़िन्दगी भर उसके लिये पछतायोगी। मैं तुझे देश से निकाल दूँगा। तू घुल-घुल कर मरेगी उस सलीम के लिये और सलीम तेरी परवाह न करेगा। बोल क्या चाहती है?'

'जो कुछ कह चुकी।'

'जा, सुबह होते ही तुझे यह जगह छोड़ देनी होगी।'

× × ×

सलीम के विद्रोह की बात बहुत ही शीघ्र सब जगह फैल गई। बादशाह के पत्र बराबर आने-जाने लगे। दोनों में समझौता ही न होता था। बात क्या थी, किसी को ज्ञात नहीं। सलीम सेना इकट्ठी कर इलाहाबाद की ओर बढ़ने लगा। वह अनारकली के पीछे पागल था। वह चाहता था कि उसे फिर साम्राज्य के अन्दर आने की आज्ञा मिल जाय किन्तु बादशाह इसके लिये तैयार न था—यहीं पर दोनों का विद्रोह था।

सलीम ने कोई स्थान न छोड़ा। सब जगह ढूँढ़ा कि कहीं भी वह मिल जाय। वह राज-पाट और माता-पिता को छोड़ने के लिये तैयार था केवल अनारकली के लिये। बहुत दिनों की खोज-बीन के बाद उसने एक दिन जङ्गल में देखा कि कोई स्त्री पथ पर बढ़ती चली जा रही है। वह रो रही है कि गा रही है यह वह न समझ सका—और वह थोड़ी देर के बाद लड़खड़ा कर गिर पड़ी। वह घोड़ा दौड़ा कर वहाँ जा पहुँचा। उसकी अनारकली मुरझा रही थी। वह मूर्छित थी। कुछ देर बाद उसने आँखें खोलीं और सलीम की ओर देख कर पूछा—'तुम कौन हो?'

'तुम मुझे इतनी जल्दी भूल गईं। मैं.........'

'हाँ तुम मेरे—बादशाह अकबर के पुत्र—साम्राज्य.........

'लेकिन मैंने—वह सब तुम्हारे लिये छोड़ दिया।'

'मेरी अन्तिम इच्छा पूरी हुई। तुम बादशाह को रुष्ट न

रूंगी। जाओ, भूल जाओ मुझे। जाओ, हँसी-खुशी से मुल्क का काम सँभालो। मेरे लिए अपना जीवन नष्ट न करो।'

'कहाँ जाऊँ? तुम्ही ऐसा कहती हो। मैं सब-कुछ छोड़ आया हूँ। मेरा जीवन सुमन तुम्हें पाकर खिल उठेगा। मैंने वहाँ न जाने की कसमें खा ली है। मैं अब तुम्हें लेकर ही जाऊँगा। वरना यहीं........'

'तो तुम न मानोगे'—ऐसा कहते-कहते अनारकली ने अपनी हीरे वाली अँगूठी मुँह मे डाल ली। सलीम हाथ पकड़ता ही रह गया—और विष गले के नीचे उतर गया। वह धड़ाम से पृथ्वी पर लुढ़क पड़ी। उसका जीवन-दीप बुझ गया। वह अनार-कली एक बार खिल कर सदैव के लिये मुरझा गई। किसको मालूम था कि वह कली जो कि बाग़ मे खिलने के लिये आई है, इतनी जल्दी मुरझा जावेगी? ताकता ही रह गया सलीम—भौंरा भनभनाता ही रह गया कली के आस-पास परन्तु कुछ कर न सका। उसने अनार के अधरों को बार-बार चाटा, यदि ज़रा भी विष शेष हो तो वह भी उसी के साथ वहीं चला जाय और दोनों सुख पूर्वक वहीं मिलें किन्तु सब व्यर्थ हुआ।

सलीम को लोग जबरदस्ती अनार के पास से हटाना चाहते थे, औ सलीम को अपना जीवन दे देना स्वीकार था किन्तु अनार को छोड़ कर वहाँ से हट जाना किसी भी मूल्य पर स्वीकार नहीं था। जब सलीम ने देखा कि अब लोग बिना मुझे यहाँ से हटाये न मानेंगे तो उसकी आँखों में आँसू आ गये और उसने रो कर कहा—'मुझे केवल कुछ क्षण और अनार को देख लेने दो। आज अनार से मेरा अन्तिम मिलन है। आज के बाद फिर अनार कहाँ और मैं कहाँ?' क्या वास्तव मे अनार से वह उसका अन्तिम मिलन था?

— ० —